ЛЕВ ТОЛСТОЙ

ДЕТСТВО
ОТРОЧЕСТВО
ЮНОСТЬ



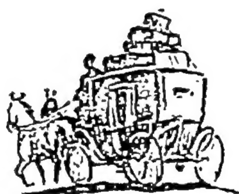
ИЗДАТЕЛЬСТВО ЛИТЕРАТУРЫ
НА ИНОСТРАННЫХ ЯЗЫКАХ
Москва

लेव तोलस्तोय

बचपन

किशोरावस्था

युवावस्था



विदेशी भाषा प्रकाशन गृह

अनुवादक : गिरिजा कुमार सिनहा

चित्रकार: द० वीस्ती

विषय—सूची

वचपन

380

परिच्छेद पृष्ठ

किशोरावस्था

परिच्छेद पृष्ठ

युवावस्था

पृष्ठ

परिच्छेद

परिच्छेद	पृष्ठ

बचपन



पहला परिच्छेद

हमारे मास्टर साहब – कार्ल इवानिच

बारहवीं अगस्त १८... को बड़े तड़के ही कार्ल इवानिच ने मुझे जगा दिया। परसों ही मेरा दसवां जन्मदिन मनाया गया था जब मुझे अनूठे उपहारों से लाद दिया गया था। अभी सात ही बजे थे। हाथ में दफ़्ती का एक पंखा लिये जिसमें मीठे गोंद का काग़ज़ चिपकाया हुआ था कार्ल इवानिच ने ठीक मेरे सिर के ऊपर एक मक्खी मारी – फट! ऐसे भद्दे ढंग से उसने हाथ चलाया कि पंखा मेरे पलंग के सिरहाने लगे बलूत के तख्ते में लटकी मूर्ति से जा टकराया और मरी मक्खी मेरे माथे पर आ गिरी। मैंने लिहाफ़ से सिर निकाला, मूर्ति को, जो हिल रही थी, ठीक किया, मरी मक्खी को झाड़कर ज़मीन पर फेंका और कार्ल इवानिच को गुस्से और नींद से भरी आंखों से घूरने लगा। लेकिन कार्ल इवानिच – देह पर रंगबिरंगा रुईदार ड्रेसिंग-गाउन, कमर में उसी कपड़े की पेटी, खोपड़ी पर लाल बुनाई की चुस्त टोपी जिसमें फुदना लटक रहा था, पैरों में बकरे की खाल के हलके जूते – अपनी फटाफट जारी रखे हुए था। कमरे में दीवार के किनारे-किनारे, मक्खियों के ऊपर उसकी निशानेबाजी रुकने का नाम नहीं लेती थी।

मैं सोच रहा था – "मान लिया कि मैं अभी छोटा हूं, लेकिन इस तरह मेरी नींद में खलल डालने का किसी को क्या अख्तियार है? मजाल है कि यों वह वोलोद्या के पलंग पर मक्खियां मारे? ढेर के ढेर

भनभन कर रही है वहां! वोलोद्या के पास जाने की किसे हिम्मत है? वह मुझसे बड़ा जो है। और मैं चूंकि सबसे छोटा हूं, इसी लिए यह मुझे तंग करता है। और कोई काम नहीं है इसे—बस मुझे दिन भर सताना। देखो तो, कैसा सीधा बना हुआ है, लेकिन सब जानता है। उसे मालूम है कि उसकी हरकत के कारण मेरी नींद खुल गयी है और मैं डर गया हूं, फिर भी मानो देखा ही नहीं—दुष्ट कहीं का! और ज़रा ड्रेसिंग गाउन तो देखो इसका, और यह टोपी, और यह फुदना—छि:!"

मैं इसी तरह मन ही मन कार्ल इवानिच को कोस रहा था जब कि वह मक्खियों को भगाते हुए अपनी चारपाई के पास पहुंचा। उसी के ऊपर एक छोटे स्लीपर में, जिसमें शीशे के दाने जड़े थे, घड़ी लटक रही थी। उस घड़ी में वक़्त देखा, एक कील में हाथ की दफ़्ती टांग दी और हम लोगों की ओर मुड़कर उत्फुल्ल स्वर में अपनी मीठी जर्मन बोली में बोला:

„Auf, Kinder, auf... s'ist Zeit. Die Mutter ist schon im Saal."* यह कहते हुए वह मेरे पास आया, और मेरे पायताने बैठकर जेब से अपनी नासदानी निकाली। मैं ऐसा बन गया मानो सो रहा हूं। कार्ल इवानिच ने इतमीनान से सुंघनी निकालकर नाक में डाली, नाक साफ़ किया, अपनी उंगलियां चटखायीं और तब मेरी ओर मुड़ा। हंसते हुए लगा मेरी एड़ी गुदगुदाने और बोला—„Nu, nun, Faulenzer!"**

गुदगुदी मुझे बहुत लगती है; पर न मैंने लिहाफ़ फेंका न कुछ बोला, बल्कि सिर को तकिये में और गाड़ लिया और लगा ज़ोर से दुलत्तियां झाड़ने। पूरी ताक़त लगाकर मैं हंसी ज़ब्त करने की कोशिश कर रहा था।

---

*[जाओ बच्चो, जाओ। वक़्त हो गया है। अम्मा बैठक में आ गयी हैं।]

**[उठो, उठो! ऐ सुतक्कड़ कहीं के!]

"कितना भला आदमी है यह! कितना प्यार करता है हम लोगों को। और मैं हूं कि अभी ऐसी बुरी बातें सोच रहा था इसके बारे में," मैंने मन ही मन कहा।

मुझे अपने और कार्ल इवानिच के ऊपर बड़ी खीझ आ रही थी। चाहता था कि हंसूं और रो पड़ूं। मेरा हृदय विचलित हो उठा था।

मेरी आंखों में आंसू भर आये और तकिये के नीचे से सिर निकालकर मैं रोनी आवाज़ में, जर्मन में ही बोला – „Ach, lassen sie, * कार्ल इवानिच!"

कार्ल इवानिच अचम्भे में आ गया। मुझे गुदगुदाना छोड़कर वह मेरा मुंह देखने लगा और घबराकर मेरे रोने का कारण पूछने लगा। "कोई बुरा सपना तो नहीं देखा तुमने?" उसका वह दयालु जर्मन चेहरा मुझे याद रहेगा। मेरी आंखों में आंसू देखकर उसमें जो सहानुभूति और उद्विग्नता थी उसे मैं नहीं भूल सकता। मैं फूट पड़ा। मुझे बड़ी ग्लानि हो रही थी। मैं हैरान हो रहा था कि कैसे अभी एक ही क्षण पहले मैंने कार्ल इवानिच को दुष्ट कहा था और उसके पहनावे तक से मुझे घृणा हो रही थी। अब वही पहनावा मुझे कितना भला लग रहा था – वह घुटने के नीचे तक लटका ड्रेसिंग-गाउन, लाल टोपी और फुंदना। यह फुंदना तो अब खास तौर से मुझे उसकी सहृदयता का चिन्ह मालूम हो रहा था। मैंने कहा, यों ही रो रहा था – दरअसल मैं सपना देख रहा था कि अम्मा मर गयी हैं और लोग उसे दफ़नाने क़ब्रिस्तान ले जा रहे हैं। यह मैंने सोलही आना झूठ कहा था, क्योंकि सच तो यह है कि मुझे उस रात के सपने याद ही न थे। लेकिन मेरे सपने की कहानी सुनकर कार्ल इवानिच का हृदय उमड़ आया और लगा वह मुझे ढाढ़स देने। उस वक़्त मुझे लगा कि सचमुच ही मैंने ऐसा

---

* [छोड़िये मुझे]

सपना देखा था। मेरी आंखों से फिर आंसुओं की झड़ी लग गयी, और इस बार उसका कारण दूसरा ही था। जब कार्ल इवानिच चला गया तो मैं पलंग पर उठकर बैठ गया और अपने छोटे पैरों में मोज़े चढ़ाने लगा। मेरे आंसू अब थम चले थे, पर उस झूठे सपने ने मन में उदासी का असर घोल दिया था। द्यादका* निकोलाई हमारे कमरे में आया। वह चुस्त, साफ़ सुथरा, नाटा आदमी था जिसका संजीदगी, सुस्थिरता और शिष्टता कभी साथ नहीं छोड़ती थी। कार्ल इवानिच के साथ उसकी गहरी मित्रता थी। वह हाथ-मुंह धोने के बाद बदलने के हमारे कपड़े और जूते लाया था। वोलोद्या बूट पहनता था, पर मेरे लिए अभी भी फुदनेदार जूते ही उपयुक्त समझे जाते थे यद्यपि उनकी सूरत देखने से ही मुझे चिढ़ होती थी। मैं नहीं चाहता था कि वह मुझे रोता हुआ देखे। मुझे शर्म लग रही थी। साथ ही, बालरवि की सुनहली किरणें खिड़की के ऊपर उत्फुल्ल धूप बिखेर रही थीं और वोलोद्या उधर मार्या इवानोवना (मेरी बहिन की अभिभाविका) की नक़ल कर रहा था। मुंह धोने की चिलिमची के पास खड़ा होकर वह इतने ज़ोर से हंस तथा उछल रहा था कि शांत और संजीदा निकोलाई के—जो कंधे पर तौलिया, एक हाथ में साबुन और दूसरे में चिलिमची लिये खड़ा था—चेहरे पर भी मुसकराहट आ गयी। वह बोला—"बस, बस! व्लादीमिर पेत्रोविच अब धो लो मुंह-हाथ!"

मेरी उदासी भी रफ़ूचक्कर हो चुकी थी।

पाठशाला वाले कमरे से कार्ल इवानिच ने पुकारा—„Sind sie bald fertig?" **

उसकी आवाज़ में अनुशासन की दृढ़ता थी, सुबह की संवेदनशील आर्द्रता नहीं, जिसने मुझे रुला दिया था। पाठशाला में कार्ल इवानिच

---

* छोटे बच्चों का खवास। —सं०

** [तैयार हो गये या नहीं तुम लोग?]

का रूप ही और हो जाता था—यहां वह मास्टर साहब थे। मैंने जल्दी जल्दी कपड़े पहने, मुंह-हाथ धोया और अपने भीगे बालों में ब्रश फेरता हुआ पढ़ाई के कमरे में दाखिल हुआ।

कार्ल इवानिच, नाक पर ऐनक चढ़ाये और हाथ में किताब थामे, दरवाज़े और खिड़की के बीच की अपनी रोज़ की जगह पर बैठे हुए थे। दरवाज़े की बायीं तरफ़ किताबों की दो आलमारियां रखी थीं; एक तो हमारी थी—बच्चों की आलमारी। दूसरी में कार्ल इवानिच का निजी सामान था। हमारी आलमारी में क़िस्म-क़िस्म की किताबें थीं—स्कूली किताबें और कुछ अन्य भी। कुछ खड़ी थीं, कुछ पड़ी थीं। दो मोटी मोटी किताबें—„Histoire des voyages" *—जिसपर लाल जिल्द बंधी हुई थी—दीवार से सटकर बाक़ायदा खड़ी थीं। इनके बाद लम्बी, मोटी, बड़ी और छोटी किताबों का एक बेतरतीब ढेर था। कुछ जिल्ददार और कुछ में केवल जिल्द ही, यानी किताब नदारद। कार्ल इवानिच ने इस आलमारी को 'पुस्तकालय' का नाम दे रखा था। खेल की घंटी होने के पहले कार्ल इवानिच का हुक्म होता "पुस्तकालय को ठीक करो!" और हम लोग जल्दी जल्दी आलमारी में सब कुछ ठूंसठांस देते। उनकी अपनी आलमारी में यद्यपि किताबें इतनी नहीं थीं जितनी हमारे यहां, पर विषयों के लिहाज से वे और भी बेहिसाब थीं। तीन का नाम मुझे याद है। एक थी, छोटी-सी पुस्तिका—गोभी की खेती में खाद के प्रयोग के विषय में—जर्मन भाषा में, जिल्द के बिना। दूसरी किताब थी 'सप्तवर्षीय युद्ध का इतिहास' जिसपर चमड़े की जिल्द थी और जिसका एक कोना जल गया था। तीसरी का नाम था,—'हाइड्रोस्टेटिक्स की पाठ्य पुस्तक'। कार्ल इवानिच का ज्यादा समय किताबें पढ़ने में जाता था; बल्कि, इस कारण उनकी आंख की रोशनी खराब हो गयी थी। पर इन किताबों

---

* ['यात्राओं की कहानियां']

तथा "उत्तरी मधुमक्खी" नामक एक सर्वप्रिय मासिक पत्रिका के अतिरिक्त, वह और कुछ नहीं पढ़ते थे।

उनकी आलमारी के विविध सामान में एक चीज़ ऐसी थी जो ख़ास तौर से मेरे मन में उनकी याद ताज़ा कर देती है। यह थी लकड़ी पर टिकी एक छांहदानी जिसे लकड़ी की दो खूंटियों के सहारे ऊपर-नीचे खिसकाया जा सकता था। छांहदानी पर एक महिला और बाल संवारनेवाले हज्जाम का एक व्यंग-चित्र बना हुआ था। कार्ल इवानिच ऐसी चीजें बनाने में ख़ूब कुशल थे, और तेज़ रोशनी से अपनी आंखों को बचाने के लिए उन्होंने खुद ही यह छांहदानी तैयार की थी।

मेरी आंखों के आगे कार्ल इवानिच का लम्बा आकार स्पष्टतया दिखाई दे रहा है। छरहरा लम्बा शरीर, जो रुईदार लम्बे ड्रेसिंग-गाउन में ढका हुआ है, सर पर वही लाल टोपी जिसके नीचे से उनके खसखसे सफ़ेद बाल झांक रहे हैं। वह एक छोटी मेज़ पर बैठे हैं जिसपर पड़ी हज्जाम की तसवीर वाली छांहदानी उनके चेहरे को साये में किये हुए है। उनके एक हाथ में किताब है; दूसरा हाथ उन्होंने कुर्सी की बांह पर टेक रखा है। सामने उनकी घड़ी है जिसके ऊपर एक शिकारी की रंगीन तसवीर खिंची है। घड़ी के अलावा मेज़ के ऊपर चारखाने का उनका रूमाल, गोल काली नासदानी, चश्मे का हरा डिब्बा और एक तश्तरी में मोमबत्ती का गुल काटनेवाली कैंची। हर चीज़ करीने से रखी हुई है जिससे जान पड़ता है कि कार्ल इवानिच का हृदय शुद्ध और मन शान्त है।

कभी कभी नीचे के हाल में खेल-कूद में थक जाने पर जब मैं दबे पांव ऊपर आता तो पाठघर के कमरे में कार्ल इवानिच को अपनी कुर्सी पर बैठे अपनी प्रिय पुस्तकों में से किसी एक को पढ़ते हुए देखता – चेहरे पर शांति और सौम्यता का अनोखा भाव। कभी अचानक मैं ऐसे वक़्त आ पहुंचता जब वह कुछ पढ़ नहीं रहे होते थे। देखता कि वह चुपचाप

बैठे हुए हैं—चश्मा नाक तक लटका हुआ, नीली, अधमुंदी आंखें एक विचित्र दृष्टि सामने गड़ाये हुए, ओठों पर एक उदास मुसकान की रेखा है। कमरे में नीरवता छाई है; कुछ सुनाई पड़ता है तो केवल उनके श्वास का हलका और नियमित स्वर तथा शिकारीवाली घड़ी की निरंतर टिक टिक।

अक्सर ऐसा होता कि मेरे आने का उन्हें कुछ मालूम नहीं पड़ता और मैं दरवाज़े पर खड़ा चुपचाप सोचने लगता—"बेचारा बूढ़ा! बेचारा! हम लोग कितने हैं—पूरी टोली की टोली। सभी एक होकर खेलते और दिल बहलाते हैं, पर यह आदमी कैसा एकाकी है। कोई भी नहीं जो दो मीठे शब्द सुनाकर इनका मन ही बहला देता। इनके न मां है न बाप, ऐसा वह खुद एक बार बता चुके थे। और इनके जीवन की कहानी कितनी मार्मिक और व्यथापूर्ण है! मुझे याद है कि एक बार वह निकोलाई को अपना जीवन-वृत्तांत सुना रहे थे। ओह! अगर हम-आपको उनकी जैसी स्थिति में रहना पड़े तो कलेजा फट जाय!"

मेरा मन व्यथा से भर जाता और मैं उनके पास जाकर, उनका हाथ अपने हाथों में लेकर कहता—„Lieber * कार्ल इवानिच।" मेरे मुंह से ये शब्द उन्हें ज़रूर बहुत अच्छे लगते, क्योंकि इसके बाद वे प्यार से मेरी पीठ थपथपाने लगते थे। स्पष्ट था कि मेरे व्यवहार ने उनका हृदय छू लिया होता।

एक ओर की दीवार पर नक़्शे टंगे हुए थे जो सभी के सभी फट चुके थे, और जिन्हें कार्ल इवानिच ने अपने कुशल हाथों से मरम्मत करके फिर टांग दिया था। तीसरी दीवार पर, जिसके बीच में नीचे जाने का दरवाज़ा था, दो रूलर टंगे हुए थे। एक में इस्तेमाल करते करते अनगिनत निशान पड़ गये थे। वह हम लोगों का था। दूसरा,

---

* [प्रिय]

जो नया था, उनका निजी रूलर था जिसका इस्तेमाल कापियों में लकीरें खींचने से अधिक हम लोगों पर "शासन करने" के लिए होता था। दरवाज़े की दूसरी तरफ़ एक काला तख्ता टंगा हुआ था जिसपर गोल घेरे और क्रास के निशान बने हुए थे—घेरे हमारी बड़ी बदमाशियों के और क्रास छोटी शरारतों के प्रतीक थे। तख्ते के बाजूवाले कोने में हम लोगों को सज़ा देने के लिए उकड़ूं खड़ा किया जाता था।

वह कोना मैं कभी नहीं भूल सकता। उसमें एक झिलमिली लगी हुई थी जिसे खोल देने पर गरम हवा कमरे में आने लगती थी। खोलने पर उससे विचित्र आवाज़ आती थी। कोने में खड़े खड़े मेरा घुटना और पीठ दुखने लगते और मैं सोचने लगता कि कार्ल इवानिच को मेरा ख्याल ही नहीं रहा क्या! "आप तो ठाठ से अपनी गुदगुदी कुर्सी पर बैठे, मज़े से हाइड्रोस्टेटिक्स की अपनी किताब पढ़ रहे हैं और मेरी कोई खोज-ख़बर भी लेनेवाला नहीं।" और तब उन्हें अपने अस्तित्व की चेत दिलाने के लिये मैं धीरे से झिलमिली खोलता और बंद करता या दीवार का पलस्तर खरोंचने लगता। अक्सर दीवार का बहुत बड़ा टुकड़ा धमाक से नीचे आ पड़ता। उस आवाज़ से मैं इतना भयभीत हो जाता कि वह चौंकना मेरे लिए मास्टर साहब की पूरी सज़ा से अधिक भयानक हो जाता। मैं दबी नज़र से कार्ल इवानिच की ओर ताकता, पर वह किताब हाथ में लिये, डूबे, बैठे रहते मानो कुछ हुआ ही न हो।

कमरे के बीचोबीच एक मेज़ थी जो काले रंग के फटे मोमजामे से ढकी हुई थी। मोमजामे की सूराखों से मेज़ के किनारे झांक रहे थे जिनपर जगह जगह क़लमतराश के निशान थे। मेज़ के चारों ओर कई स्टूल रखे हुए थे जिनपर रोग़न नहीं हुआ था पर जो इस्तेमाल से घिसकर चिकने हो गये थे। कमरे की आखिरी दीवार में तीन खिड़कियां थीं। वे सड़क की ओर खुलती थीं जिसपर का प्रत्येक गड्ढा, पहियों की

लकीर और रोड़ा मेरा प्रिय परिचित बन चुका था। सड़क के पार लाइम-वृक्षों का एक बाग़ था जिसकी डालियां क़ायदे से कटी हुई थीं। बाग़ की उस ओर हरी टट्टी का एक घेरा दिखाई देता था। उस पार घास का खाली मैदान था जिसकी एक तरफ़ एक खलियान था और दूसरी ओर जंगल शुरू हो जाता था। कुछ दूर चौकीदार की झोंपड़ी दिखाई देती थी। दाहिनी ओर की खिड़की के सामने खुले छज्जे का कोना दिख पड़ता था। इसी छज्जे पर दोपहर के भोजन से पहले बड़े लोग प्रायः बैठा करते थे। कार्ल इवानिच जब हमारी इमला की कापी देखने में मशग़ूल हो जाते थे तो हम लोग इस खिड़की से झांककर बाहर का दृश्य देखते। दूर से अम्मा का सिर और काले केश नज़र आते। कभी किसी की पीठ दिखाई दे जाती। वार्तालाप और हंसी की हलकी हलकी आवाज़ें हमारे कानों में पड़तीं। उस बैठक में हम शरीक नहीं हो सकते, यह हमें बहुत अखरता, और मैं सोचने लगता—"मैं कब बड़ा हूंगा कि मुझे पढ़ना नहीं पड़े और मैं अपने प्रिय जनों की उस जमात में, किताबों की रटाई से छुटकारा पाकर, बैठ सकूं?" धीरे धीरे हमारी परेशानी की जगह एक गहरी टीस उठती और दिमाग़ में तरह तरह के ख़्याल चक्कर काटने लगते। उस वक़्त इमला की हमारी ग़लतियों पर कार्ल इवानिच की झिड़कियां मानो कानों में सुनाई ही नहीं पड़ती थीं।

पढ़ाई समाप्त होती। कार्ल इवानिच अपना ड्रेसिंग-गाउन उतार डालते और फांकदार नीला कोट, जिसके कंधों पर बकरम लगे हुए थे और शिकनदार सिलाई की हुई थी, धारण कर और शीशे के सामने अपना उजला कालर दुरुस्त कर हम लोगों को नीचे अम्मा का प्रातः अभिवादन करने के लिए ले जाते।

दूसरा परिच्छेद

Maman*

अम्मा बैठकखाने में बैठी हुई, चाय ढाल रही थीं। उनके एक हाथ में चायदानी थी और दूसरे में समोवार की टोंटी। चायदानी भर गयी थी और टोंटी का पानी थाल में गिरने लगा था। यद्यपि उनकी नज़र उसी ओर थी, पर उन्होंने इसे नहीं देखा और न हम लोगों का अन्दर आना ही।

किसी प्रियजन का चेहरा-मोहरा याद करने की कोशिश करते वक़्त अनगिनत पुरानी स्मृतियां सामने आ खड़ी होती हैं। भूला हुआ चेहरा इन स्मृतियों की झिलमिली में छिप जाता है, मानो आंसुओं की आड़ में। ये कल्पना के आंसू हैं। उस वक़्त की मां की सूरत याद करने की चेष्टा करता हूं, तो सामने आती हैं केवल उसकी भूरी आंखें, जिनसे सदा ममता छलकती रहती थी, गर्दन पर छोटा-सा मस्सा, ठीक जहां धीरे धीरे बाल उगते हैं; उनका सफ़ेद कामदार कॉलर; और शीतल, मुलायम हाथ जिन्हें प्रायः वह प्यार से मेरे मस्तक पर फेरती थीं और मैं जिन्हें प्रायः चूमा करता था। पर पूरी आकृति न जाने कहां अंतर्धान हो जाती है।

सोफ़े की बायीं तरफ़ पुराना अंग्रेजी पियानो रखा हुआ था जिसके पास बैठी सांवले रंग वाली मेरी बहिन ल्यूबा ज़ोर लगाकर क्लीमेंती की गतों का अभ्यास कर रही थी। उसकी उंगलियां, जो अभी अभी ठण्डे पानी से स्नान के कारण गुलाबी हो रही थीं, पियानो पर दौड़ रही थीं। उसकी उम्र ११ साल की थी। वह एक छोटी-सी सूती पोशाक पहने हुए थी। साथ में गोटेदार ज़नाना पाजामा। बेचारी कड़ी मेहनत करके तेज़ी से आठ चरणों की एक धुन साधने की कोशिश कर रही थी। उसकी बग़ल में मार्या इवानोवना बैठी हुई थी, कुछ

*मां के लिए फ़्रांसीसी सम्बोधन विशेष।—सं०

कुछ उसकी ओर घूमकर। वह एक नीली जाकिट और टोपी, जिसमें गुलाबी फ़ीते टंके हुए थे, धारण किये हुए थी। उसका चेहरा, जो तमतमाया हुआ था, कार्ल इवानिच के प्रवेश करने के साथ और भी कठोर हो गया। उनकी ओर एक बार टेढ़ी दृष्टि फेंककर, उनके अभिवादन का जवाब दिये बिना, वह संगीत-शिक्षा के अपने क्रम में फिर लग गयी। पैरों से और ज़ोर के साथ ताल देती हुई वह फ़्रांसीसी में कहने लगी—«Un, deux, trois, un, deux, trois!» *

कार्ल इवानिच उधर ध्यान न देकर अम्मा के पास गये और मामूल के मुताबिक़ जर्मन भाषा में उनका अभिवादन किया। वह चौंक पड़ी, सिर यों हिलाया मानो चिंताओं को झकझोरकर दूर हटा रही हो और दाहिना हाथ कार्ल इवानिच की ओर बढ़ा दिया। कार्ल इवानिच ने झुककर हाथ को चूमा। अम्मा ने उसकी झुर्रीदार कनपटी चूमकर अभिवादन का उत्तर दिया।

„Ich danke, lieber ** कार्ल इवानिच।" उसने कहा और जर्मन में ही पूछा—"बच्चे रात को ख़ूब अच्छी तरह सोये तो?"

कार्ल इवानिच का एक कान ख़राब था और पियानो के शोरग़ुल में यों भी कुछ सुनाई पड़ना कठिन था इसलिये उसने कुछ नहीं सुना। वह मेज़ पर हाथ टेककर एक पैर के सहारे सोफ़ा की ओर झुके और सिर से टोपी उतारकर मुसकराते हुए (जो मुझे उस समय शिष्टाचार की चरम परिणति ज्ञात होती थी) बोले:

"क्षमा कीजिये, नाताल्या निकोलायेवना, क्या मुझे इजाज़त है?" सर्दी लगने के डर से कार्ल इवानिच अपनी लाल टोपी कभी उतारते न थे। उनका दस्तूर था कि बैठकख़ाने में घुसने के साथ टोपी पहने रहने की इजाज़त मांग लेते थे।

---

* [एक, दो, तीन, एक, दो, तीन!]
** [धन्यवाद प्रिय...]

Maman ने ज़रा पास खिसककर तथा ग्रावाज़ को ऊंचा करके कहा—"नहीं! नहीं क्यों उतारते हैं इसे, कार्ल इवानिच—मैं पूछ रही थी बच्चे ग्रच्छी तरह सोये तो?"

फिर भी उन्होंने नहीं सुना। लाल टोपी गंजी खोपड़ी के ऊपर थामे वह ग्रौर भी मीठी मुसकान घोलते रहे।

"मीमी, ज़रा ठहर जाना एक मिनट को; कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है हम लोगों को," Maman ने मुसकराते हुए मार्या इवानोवना से कहा।

ग्रम्मा का मुखड़ा यों ही बड़ा सुन्दर था; पर मुसकराते समय तो मानो चार चांद लग जाते। ऐसा ज्ञात होता मानो ग्रास-पास की वस्तुग्रों पर किरणें बिखेर दीं। जीवन की कड़ी परीक्षाग्रों के ग्रवसर पर उस मुसकान की एक झांकी मिल जाय तो भूल जाऊं कि मुसीबत किसे कहते हैं। मैं सोचता हूं कि सुन्दरता नाम की चीज़ का निवास मुसकान में ही है। यदि मुसकान से चेहरे का ग्राकर्षण बढ़ जाये तो चेहरा सुन्दर; मुसकान से कोई ग्रन्तर न ग्राये तो चेहरा साधारण; ग्रौर मुसकान से विकृत हो जाय तो चेहरा कुरूप।

Maman ने दोनों हाथों में मेरा मस्तक लेकर मेरा ग्रभिनंदन किया ग्रौर उसे पीछे की ग्रोर झुकाकर दृष्टि मेरे चेहरे पर टिका दी। बोलीं:

"ग्राज तड़के रो रहा था तू?"

मैं कुछ न बोला उसने मेरी ग्रांखों को चूमते हुए जर्मन में कहा:

"रो क्यों रहा था?"

प्रसन्न रहने पर वह हमसे जर्मन में बात करती थीं जिसपर उसे पूर्ण ग्रधिकार था।

"यों ही सपने में रो पड़ा था," मैंने कहा। यह कहते समय मुझे ग्रपने गढ़े हुए सपने का प्रत्येक ब्योरा याद ग्रा गया ग्रौर शरीर में सिहरन दौड़ गयी।

कार्ल इवानिच ने मेरे कथन की पुष्टि की; पर सपना क्या था यह नहीं बताया। इसके बाद कुछ देर यों ही मौसम के संबंध में बातें होती रहीं जिसमें मीमी ने भी हिस्सा लिया। और तब अम्मा उठ गयीं। उठने से पहले उन्होंने विशेष प्रियपात्र नौकरों के लिये थाल में ६ मिठाइयां रख दीं और खिड़की के पास चली गयीं जहां क़सीदाकारी का उनका सामान रखा हुआ था। बोलीं:

"अच्छा, बच्चो, पिता के पास जाओ अब। उनसे कहना, खलिहान की ओर जाने से पहले मुझे ज़रूर मिलते जायें।"

ल्यूबा का संगीत और मीमी का ताल देना तथा ग़लती होने पर त्योरी चढ़ाना फिर आरंभ हो गया। हम लोग चले पिता के पास। बग़ल के कमरे से होकर—इसे दादा के समय से ही भंडारघर कहा जाता है—हम लोग अध्ययनकक्ष में घुसे।

तीसरा परिच्छेद

पिताजी

वह डेस्क के पास खड़े थे। सामने कुछ लिफ़ाफ़े, काग़ज़ और नोटों के बंडल रखे थे जिनकी ओर उंगली से इशारा करके वह अपने कारिंदे याकोव मिख़ैलोव पर बिगड़ रहे थे। याकोव मिख़ैलोव, मामूल के मुताबिक़, दरवाज़े और बैरोमीटर के बीच खड़ा था। यही उसकी जगह थी। दोनों हाथ पीछे की ओर बांधे वह घबराहट में अपनी उंगलियों को तोड़-मरोड़ रहा था।

पिताजी का पारा गर्म होने के साथ उसकी उंगलियों की चेष्टा तेज़ होती जा रही थी। पिताजी बोलना बंदकर देते तो उंगलियों की हरकत आप से आप रुक जाती। पर याकोव जब स्वयं बोलने लगता तो उसकी उंगलियां बड़े ज़ोर से नाचने लगतीं। यह घबराहट की मुद्रा थी।

उसकी उंगलियों की हरकत से उसके मन के भाव आसानी से पढ़े जा सकते थे। किन्तु चेहरा उसका निश्चल था। उसपर आत्ममर्यादा के साथ तावेदारी का भाव मिश्रित था; मानो वह कह रहा हो—"वात तो मैं ही ठीक कह रहा हूं, पर मर्ज़ी आपकी।"

पिताजी ने हमें देखा और "एक मिनट" कहकर दरवाज़ा वंद कर देने का संकेत किया।

कारिंदे से अपनी वातचीत जारी रखते हुए और अपने कंधे सिकोड़ते हुए जैसी कि उनकी आदत थी, वोले—"याकोव! हो क्या गया है तुझे आज? यह लिफ़ाफ़ा रहा, जिसमें ८०० रूवल हैं..." याकोव ने गिनती-यन्त्र में लगे लट्टुओं को खिसकाकर ८०० रूवल गिने और किसी अनिश्चित स्थल पर दृष्टि टिकाये इन्तज़ार करने लगा कि अव पिता क्या कहते हैं।

"...ये मेरी ग़ैरहाज़िरी में खेतीवारी पर खर्च के लिए हैं। समझा? एक हज़ार रूवल तुझे मिल से मिलेंगे... है न? खज़ाने से तुझे ८ हज़ार का क़र्ज़ मिलनेवाला है। इसके अलावा भूसा है जिसका, तुम्हारे अपने हिसाव से, ७ हज़ार पूड* तुम विक्री कर सकते हो; अगर ४५ कोपेक** पूड भी विका तो उसके तीन हज़ार रूवल और होंगे। अव तू ही वता, कितने रुपये होंगे तेरे पास? १२ हज़ार—हुए न?"

"जी हुज़ूर," याकोव ने कहा।

लेकिन उसकी उंगलियों में फिर कम्पन आरंभ हो गया। स्पष्टत: वह उपरोक्त कथन का खण्डन करने जा रहा था। पर पिता वीच में ही फिर वोल उठे:

"इन रुपयों में से १० हज़ार तुझे पेत्रोव्स्कोये के खाते काउंसिल में जमाकर देने होंगे। और जो रुपये अभी तहवील में हैं (याकोव ने

* पूड—लगभग आधा मन—सं०
** कोपेक—१०० कोपेक का एक रूवल होता है।—सं०

१२ हज़ार रूबल नफ़ी किये और गिनती-यन्त्र पर फिर २१ हज़ार तक जोड़ गया), वे मेरे ज़िम्मे रहेंगे और आज की तारीख से घर खर्च के खाते लिखे जायेंगे। (याकोव ने हाथ के गिनती-यन्त्र को फिर हिलाया और उलट दिया जिसका शायद संकेत यह था कि ये २१ हज़ार भी उसी प्रकार उड़ जायेंगे)। और इस लिफ़ाफ़े में रुपये हैं जिन्हें मेरे पास भेज देने के लिए पता दे रहा हूं।"

मैं मेज़ के पास ही खड़ा था। मेरी नज़र लिफ़ाफ़े पर पड़ गई, लिखा था—"कार्ल इवानिच माअोयर।"

पिताजी ने निश्चय ही मुझे लिफ़ाफ़ा पढ़ते देख लिया, क्योंकि उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा और मेज से हटकर खड़े होने का हलके से इशारा किया। पता नहीं यह प्यार की थपकी थी या झिड़की। जो भी अर्थ रहा हो, मैंने कंधे पर रखे उस बड़े बलिष्ट हाथ को चूम लिया।

"जी हुज़ूर," याकोव बोला। "और खावारोव्का के रुपयों के बारे में क्या हुक्म है?"

खावारोवका मेरी मां की ज़मींदारी थी।

"वे रुपये तहवील में रहेंगे और किसी भी हालत में बिना मेरी इजाज़त के उनमें हाथ नहीं लगाया जायगा।"

याकोव कुछ क्षण चुप रहा और तब उसकी उंगलियां बढ़ती हुई गति से नाचने लगीं; चेहरे से ताबेदार का जड़तापूर्ण भाव ग़ायब हो गया और उसका स्थान ले लिया चपल बुद्धि चातुर्य ने। यही उसका असली रंग था। लट्टू लगे तारों को सटाकर वह कहने लगा:

"इजाज़त हो तो हुज़ूर को पूरी स्थिति बतला दूं। बात यों है कि काउंसिल में तारीख पर रुपये जमा करना नामुमकिन है। और हुज़ूर ने क़र्ज़, मिल और भूसे के रुपयों की जो बात कही है (इन तीनों मदों को उसने तार पर गिनकर जोड़ाया), तो उसमें भी थोड़ी

ग़लती है।" अंतिम बात उसने एक क्षण रुककर पिताजी के चेहरे पर नज़र गड़ाते हुए कही।

"क्यों?"

"हुज़ूर, बात यों है कि जहां तक मिल का सवाल है, मिल वाला दो बार मेरे पास मोहलत के लिए आ चुका है। वह क़समें खा रहा था कि हाथ में एक पैसा नहीं है। वह इस वक़्त भी बाहर बैठा है। हुक्म हो तो उसे यहीं बुला लाऊं।"

"वह कहता क्या है?" पिताजी ने पूछा और सिर हिलाकर जताया कि मिलवाले से मुलाक़ात नहीं करेंगे।

"कहेगा क्या—बस वही पुराना राग। कहता है बैठा-बैठी है; रुपिये जो थे वे बांध बनवाने में ख़र्च हो गये। उसे निकाल देने से कोई लाभ नहीं होगा। रही क़र्ज़ की बात जो मेरा ख़्याल है हुज़ूर को पहले ही बता चुका हूं कि अपने सारे रुपये वहीं डूबे हुए हैं और जल्द निकलने के भी नहीं। कुछ ही दिन हुए, मैंने शहर में इवान आफ़ानासिच के लिए कुछ बोरे आटा भिजवाया था और साथ ही मामले के बारे में पुर्ज़ी भी लिखी थी। उसने जवाब दिया कि प्योत्र अलेक्सान्द्रिच जो सेवा कहेंगे करने के लिए तैयार है, लेकिन यह मामला अपने वश का नहीं। अतः दो महीनों के पहले चुकती मिलने की उम्मीद नहीं है। इसके अलावा हुज़ूर ने भूसे का ज़िक्र किया था, लेकिन उसे अगर तीन हज़ार में बेच भी डालें..."

उसने तार पर फिर तीन हज़ार की गिनती की और एक क्षण चुप रहकर पहले तार की ओर और फिर पिताजी की आंखों की ओर ताका मानो कह रहा हो:

"आप ख़ुद समझ सकते हैं कि यह बिल्कुल मामूली-सी रक़म है। इसके अलावा, जैसा कि आप ख़ुद जानते हैं, इस वक़्त बेचने से उसका पूरा दाम भी न मिलेगा।"

स्पष्ट हो गया कि दलीलों में उससे पार पा सकना असंभव है—उनकी पूरी सूची उसके पास तैयार है शायद इसी लिए पिताजी बीच में ही टोककर बोले :

"देखो, जो इंतज़ाम मैं कर चुका हूं उसमें कोई तबदीली नहीं होगी। लेकिन इन रुपयों के मिलने में किसी तरह देर हो तो लाचारी है। हस्ब जरूरत ख़ावारोवका के हिसाब में से निकाल लेना।"

"हुज़ूर।"

याकोव की मुख-मुद्रा और उंगलियों की हरकत से स्पष्ट था कि अंतिम आज्ञा से उसे बड़ा संतोष हुआ है।

याकोव भू-दास था और मालिक का नमक-हलाल। कुशल कारिंदे को जैसा चाहिये, मालिक के रुपयों के विषय में वह अत्यन्त मितव्ययी था, किन्तु किन बातों से मालिक का स्वार्थ सधेगा इस संबंध में उसकी धारणाएं विचित्र थीं। एक चिन्ता उसे सदा सवार रहती—कैसे मालकिन की जायदाद के मत्थे मालिक की जायदाद बढ़ाये। वह हमेशा यही सिद्ध करने की कोशिश करता कि मालकिन की ज़मींदारी की सारी आमदनी पेत्रोव्स्कोये (जिस गांव में हम रहते थे) में लगाना आवश्यक है। तत्काल वह विजय का उल्लास महसूस कर रहा था, क्योंकि उसकी ही बात रही थी।

पिताजी ने हमारी ओर सिर हिलाया और कहा कि हमें अब निठल्लापन छोड़कर पढ़ाई में लग जाना चाहिये; अब बच्चे नहीं रहे हम।

बोले—"यह तो तुम्हें मालूम ही हो गया होगा कि आज रात मैं मास्को जा रहा हूं और तुम्हें भी साथ लेता जाऊंगा। तुम वहां अपनी नानी के पास रहोगे और अम्मा लड़कियों को लेकर यहां रहेंगी। जानते ही हो उनकी हार्दिक इच्छा है कि तुम लोग मन लगाकर पढ़ो-लिखो और तुम्हारे मास्टर तुमसे संतुष्ट रहें।"

पिछले कई दिनों से घर में जो तैयारियां चल रही थीं उनसे हमने पहले ही अनुमान किया था कि कोई नया शिगूफ़ा खिलनेवाला है किन्तु

उपरोक्त समाचार से हम सन्नाटे में आ गये। वोलोद्या का चेहरा लाल हो गया और कम्पित स्वर में उसने मां का संदेह कह सुनाया।

मैंने मन में कहा–"अच्छा, यही था मेरे सपने का अर्थ! लेकिन आगे क्या होने को है, भगवान?"

मुझे अम्मा के लिए बड़ा अफ़सोस होने लगा; पर यह सुनकर कि अब बड़ों की श्रेणी में हमारी गणना होने लगी है, खुशी भी हुई।

फिर मैंने सोचा–"आज ही रात को जाने का मतलब है कि आज पढ़ाई न होगी। वाह! मज़ा आ गया! पर कार्ल इवानिच के लिए हमें अफ़सोस है। उसकी नौकरी गयी, इसी लिए उनके नाम का लिफ़ाफ़ा रखा हुआ था। नहीं, नहीं; पढ़ाई का वर्तमान सिलसिला जारी रहना ही अच्छा है ताकि हमें यहां से जाना न पड़े; अम्मा से अलग न हों; और कार्ल इवानिच का भी दिल न दुखे। ओफ़! कैसा सदमा होगा उन्हें!"

ये विचार तेज़ी से मेरे मस्तिष्क में घूम गये। निश्चल खड़ा मैं अपने स्लीपरों में लगे काले फ़ीतों को देखता रहा।

पिताजी बैरोमीटर को लेकर थोड़ी देर कार्ल इवानिच के साथ मौसम की चर्चा करते रहे। फिर याकोव से कहा कि कुत्तों को खाना न दिया जाय ताकि मास्को जाने से पहले दोपहर के भोजन के बाद नये कुत्तों की परीक्षा हो सके। मेरा अनुमान ग़लत निकला क्योंकि इसके बाद हम लोगों को वापस जाकर पढ़ने को कहा। लेकिन साथ ही हमारी तसल्ली के लिए हमें भी शिकार में साथ ले चलने का वादा किया।

कोठे पर जाने से पहले मैं खुले छज्जे पर चला गया। पिताजी की चहेती कुतिया मिल्का दरवाज़े पर बैठकर धूप में आंखें मटका रही थी। उसे थपथपाते और उसकी नाक को चूमते हुए मैंने कहा–"मिलोच्का, आज हम जा रहे हैं। अलविदा! फिर भेंट न होगी।"

यह कहते हुए मेरा कलेजा मुंह को आ गया, और आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।

चौथा परिच्छेद

पढ़ाई-लिखाई

कार्ल इवानिच आपे में न थे। उनकी हर चेष्टा से यह प्रकट हो रहा था। भौंहों पर बल पड़े हुए थे, कोट खोलकर उन्होंने जोर से कपड़ों की आलमारी में फेंक दिया, पेटी को झटके से कमर में बांधा, और पाठ देते समय कथोपकथन की किताब पर इतने जोरों से पंक्तियों के नीचे नाखून रगड़ा कि दाग़ पड़ गया। वोलोद्या मेहनत से पाठ याद कर रहा था। पर मेरा दिमाग़ काम नहीं कर रहा था। मैं शून्य दृष्टि से किताब को देख रहा था, पर जुदाई के ख्याल से आंखों में बार बार आंसू भर आते थे जिससे उनकी लिखावट को पढ़ना असंभव था। कार्ल इवानिच ने पाठ सुनाने को कहा तो उस स्थल पर पहुंचकर जहां एक पूछता है– „Wo kommen sie her?“ * और दूसरा जवाब देता है– „Ich komme vom Kaffe-Hause,“ ** आंसुओं को थामना असंभव हो गया और सिसकियों के कारण मैं आगे के इन शब्दों „Haben sie die Zeitung nicht gelesen?“ *** का उच्चारण न कर सका। स्वयं कार्ल इवानिच आंखें आधी मूंदकर पाठ न रहे थे (यह अशुभ लक्षण था)। लिखाई की बारी आयी तो पन्ना मेरे आंसुओं से तर हो गया। लिखाई ऐसी हो गई मानो पानी से रूखड़े काग़ज़ पर निशान बनाये गये हों।

कार्ल इवानिच बिगड़ उठे और मुझे कोने में खड़े हो जाने का हुक्म दिया। बोले, यह निरा ज़िद्दीपना है–निरा कठपुतले का स्वांग है (यह उनका तकिया कलाम था)। फिर छड़ी से मार मारकर दुरुस्त कर देने की धमकी दी और माफ़ी मांगने को कहा। पर मेरी हालत यह थी कि

---

* [तुम कहां से आये हो?]

** [मैं क़हवेखाने से आया हूं]

*** [क्या तुमने अखबार नहीं देखा है?]

रुलाई से कंठ नहीं खुल रहा था। अंत में शायद उन्होंने अपनी ज़्यादती महसूस की क्योंकि वह निकोलाई के कमरे में चले गये और अंदर से दरवाज़ा वन्द कर लिया।

निकोलाई के कमरे का वार्तालाप पढ़ाई के कमरे में सुनाई दे रहा था।

कार्ल इवानिच ने अंदर दाखिल होते ही कहा—"सुना है तुमने—लड़के मास्को जा रहे हैं!"

"सुना तो है"—निकोलाई ने अदव से कहा। वह उठने को भी हुआ क्योंकि हमने कार्ल इवानिच को कहते सुना—"नहीं, नहीं वैठे रहो, निकोलाई," और तव उन्होंने दरवाज़े की सिटकिनी चढ़ा दी। मैं कोने में से निकलकर उनकी वातें सुनने के लिए दवे पांवों दरवाज़े के पास जा खड़ा हुआ।

कार्ल इवानिच आवेशपूर्ण स्वर में कह रहे थे— "निकोलाई, कोई किसी का नहीं। जिसके लिए जान तक हाज़िर कर दो वह भी वक़्त आने पर ऐसी आंखें फेर लेगा मानो कभी भी जान-पहचान ही न रही हो।"

निकोलाई खिड़की पर वैठकर जूता गांठ रहा था। उसने सिर हिलाकर सहमति प्रगट की।

"मुझे वारह साल हो गये इस घर में और ईश्वर जानता है," कार्ल इवानिच आंखें और नासदानी दोनों को छत की ओर उठाते हुए वोले—"मैंने इन वच्चों को इतना प्यार किया है जितना शायद अपने वच्चों को भी न करता। याद है तुम्हें जव वोलोद्या वीमार पड़ा था?—नौ दिन तक मैं उसकी चारपाई के नजदीक से टला नहीं, न नौ दिन तक एक पलक सोया। उस वक़्त 'अच्छा कार्ल इवानिच' था, उस वक़्त इन्हें अपनी ग़रज़ जो थी। लेकिन अव कहते हैं कि वच्चे वड़े हो गये हैं। उन्हें पढ़ाई-लिखाई पर पूरा ध्यान देना चाहिये। मानो यहां वे पढ़-लिख नहीं रहे थे!" उन्होंने रोषभरी मुसकराहट के साथ कहा।

"मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा कि बच्चों की पढ़ाई बहुत अच्छी हो रही है यहां," निकोलाई ने टकुए को नीचे रख तागे को दोनों हाथों से खींचते हुए कहा।

"सच्ची बात यह है कि अब ग़रज़ नहीं रही। इसलिए हटाओ मास्टर को। लेकिन मैं पूछता हूं आपकी बातों की क्या क़ीमत रही – क्या हुए वे सारे वादे? अब तो मास्टर का एहसान मानने की भी ज़रूरत नहीं। नाताल्या निकोलायेवना के लिए मेरे दिल में बड़ी श्रद्धा है," छाती पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "पर उस बेचारी को इस घर में कौन पूछता है! उसकी कौन सुनता है? उसकी इच्छा-अनिच्छा का कौड़ी भर मोल नहीं।" "कौड़ी भर" पर ज़ोर देने के लिए उन्होंने रद्दी चमड़े के एक टुकड़े को उठाकर ज़मीन पर पटक दिया। "मैं जानता हूं कि इसके पीछे किसकी साज़िश है, और क्यों मुझे निकाल बाहर करने की बातें की जा रही हैं। कुछ लोग हैं जिनकी तरह मैं भी चापलूसी और खुशामद करूं तो कोई मेरा बाल न बांका कर सके पर मैं यह नहीं कर सकता – बात जो होती है मुंह पर कह देता हूं,"– उन्होंने गर्व के साथ कहा। "भगवान के न्याय पर छोड़ता हूं। मुझे निकालकर ये लोग अमीर न हो जायेंगे और मैं भी, ईश्वर ने चाहा तो भूखों नहीं मरूंगा। कहीं न कहीं दो जून रोटी का प्रबंध हो ही जायगा ... क्यों भाई निकोलाई?"

निकोलाई ने सिर उठाकर कार्ल इवानिच को देखा, मानो सोच रहा हो कि कार्ल इवानिच सचमुच अपनी रोटी चला पायेंगे या नहीं। पर मुंह से कुछ नहीं बोला।

कार्ल इवानिच उसी लहजे में और भी बहुत कुछ बकते चले गये। फ़लां जनरल के यहां, उनकी सेवाओं की कहीं अधिक क़दरदानी की गई थी (मुझे इस तुलना से बहुत अधिक कष्ट हुआ) फिर अपने देश सैक्सनी की, अपने मां-बाप की, अपने दर्ज़ी मित्र शौनहैट की, और इसी तरह अन्य बहुत से प्रसंगों की चर्चा करते रहे। मुझे उनके साथ पूरी हमदर्दी

थी। मैं पिताजी तथा कार्ल इवानिच को समान रूप से प्यार करता था। अतः इन दोनों में पटरी न वैठना मेरे लिए विशेष कष्टदायी था। मैं कोने में जाकर फिर घुटनों के वल खड़ा हो गया और सोचने लगा किस तरह दोनों में समझौता कराया जाए।

कार्ल इवानिच भी उसके फ़ौरन ही वाद पढ़नेवाले कमरे में लौट आये। उन्होंने इवारत की कापी निकालने को कहा। मैं तैयार हो गया तो वह रोव से अपनी कुर्सी पर वैठ गये और जर्मन में इमला लिखाने लगे। उनकी आवाज़ कहीं अतल गहराई से आती हुई जान पड़ती थी— „Von al-len Lei-den-schaf-ten die grau-samste ist . . . haben sie geschrie-ben?"* यह कहकर वह रुके, एक चुटकी सुंघनी नाक में डाली, और दुगने जोश के साथ फिर वोले—„die grausamste ist die Un-dank-bar-keit . . . Ein grosses U." **

अंतिम शब्द लिख लेने के वाद आगे के वाक्य के लिये उनका मुंह देखने लगा।

„Punctum," *** वह एक हलकी-सी मुसकान के साथ वोले जिसे देखनेवाला मुश्किल से लक्ष्य कर सकता था और कापी मांग ली।

कापी लेकर उन्होंने अपनी उक्ति को, जिसमें उनके अंतरतम की भावना निहित थी, सुर वदलकर कई वार वड़े संतोष से पढ़ा। इसके वाद हमें इतिहास का एक पाठ देकर खिड़की पर जा वैठे। अव उनके चेहरे पर पहले जैसी उदासी न थी, वल्कि एक प्रकार के संतोष का भाव था मानो अन्याय का वदला उन्होंने ले लिया हो।

* [मा-न-व दो-षों में सवसे नि-कृष्ट दोष ... लिख लिया?]

** [सवसे नि-कृष्ट दोष है कृ-त-घ्न-ता ... 'कृतघ्नता' वड़े अक्षरों में लिखो]

*** [पूर्ण विराम]

पौना बज गया पर कार्ल इवानिच छुट्टी देने का नाम ही नहीं लेते थे। छुट्टी देनी तो दूर वह तावड़तोड़ नये पाठ देते जा रहे थे।

हम लोग उकता गये। जोरों की भूख भी लग रही थी। बड़ी अधीरता से हम भोजन के आगमन के हर चिन्ह को लक्ष्य कर रहे थे। रकाबियां पोंछने के लिये महरी आयी। इसके बाद आलमारी में रकाबियों की खटर-पटर सुनाई पड़ने लगी। फिर मेज़ खींचने और कुर्सियां लगाने की आवाज़ आयी। इसके बाद मीमी बाग़ से ल्यूबोच्का और कातेंका (कातेंका उसकी बारह वर्षीय पुत्री थी) को लेकर घर में दाखिल हुई। लेकिन अभी तक खानसामा फ़ोका का जो ऊपर आकर भोजन तैयार होने की सूचना देता था, कहीं पता न था। फ़ोका का आगमन छुट्टी की घंटी थी। अब कार्ल इवानिच की इजाज़त की आवश्यकता न थी, और हम किताबें फेंककर नीचे भाग जाते।

आखिर सीढ़ियों पर किसी की आहट सुनाई पड़ी, लेकिन यह फ़ोका न था! फ़ोका के पदचाप की हर ध्वनि मेरी जानी-पहचानी थी। उसके जूतों की परिचित चरमराहट चीन्हने में हम ग़लती नहीं कर सकते थे। दरवाज़ा खुला, एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति दरवाज़े पर दिखाई दिया।

पांचवां परिच्छेद

जनूनी

आगंतुक की अवस्था लगभग पचास वर्ष होगी। उसका चेहरा लम्बा ज़र्द और चेचकरू था। उसके बाल लम्बे और सफ़ेद थे। दाढ़ी खसखसी और लाल-सी थी। वह स्वयं इतना लम्बा था कि दरवाज़े में प्रवेश करते समय उसे झुकना पड़ा। उसकी पोशाक जो लबादे और चोग़े की बीच की चीज़ थी, जीर्ण-शीर्ण थी। हाथ में एक भारी डंडा उठाये हुए था। कमरे में प्रवेश करते समय उसने ज़ोर से डंडा फ़र्श पर पटका और मुंह

बाकर तथा भौंहें जोड़कर एक भयानक, अस्वाभाविक हंसी हंसा। वह काना था और उसकी फूटी हुई आंख की सफ़ेद पुतली लगातार मटकती रहती थी जिससे उसका भद्दा चेहरा और भी अधिक वीभत्स हो उठता था।

"ओहो! मिल गया! मिल गया!" वह ज़ोरों से चिल्लाया और वोलोद्या की ओर दौड़कर उसका सिर हाथों में ले लिया तथा बड़े ग़ौर से उसकी खोपड़ी का बिचला भाग निहारने लगा। इसके बाद उसकी मुद्रा गंभीर हो गयी। वोलोद्या को छोड़कर वह मेज़ के पास चला गया और मोमजामे के नीचे फूंकने लगा और मेज़ पर क्रास के चिन्ह बनाने लगा। "छि:, छि:! अफ़सोस! उड़ जायेंगे सभी के सभी!" उसने अश्रु विह्वल स्वर में, वोलोद्या की ओर टकटकी लगाकर कहा। उसकी आंखों से सचमुच आंसुओं की धारा बह चली थी जिन्हें वह आस्तीन से पोंछ रहा था।

उसकी आवाज़ कड़वी और रूखी थी; बोलते या चलते समय हाथ-पांव झटके से हिलाया, बातों में सिर पैर का पता लगाना कठिन था; पर स्वर में ऐसी करुणा थी और भद्दे पीले चेहरे पर उदासी का प्राय: ऐसा भाव फैल जाता कि उसकी बातें सुननेवाला दया, भय और व्यथा की एक मिश्रित भावना से ओत-प्रोत हुए बिना नहीं रह सकता था। आगन्तुक था फ़क़ीर ग्रिशा।

कोई नहीं जानता था कि उसका घर कहां है, उसके मां-बाप कौन हैं और वह फ़क़ीर क्यों बना। मैंने इतना ही सुन रखा था कि पन्द्रह साल की उम्र से वह दरवेश बनकर दर-बदर मारा मारा फिर रहा है और लोग उसे मूर्ख या बददिमाग़ समझते हैं। जाड़ा हो या गर्मी वह नंगे पांव ही रहता था। मठों में जाना, जिसपर प्रसन्न हो गया उसे छोटी छोटी मूर्तियां उपहार देना, और रहस्यपूर्ण अटपटे शब्द बोलना जिन्हें कुछ लोग आगमज्ञान समझते थे ... यही उसका काम था। उसके जीवन के अन्य पहलू अज्ञात थे। वह कभी कभी नानी के यहां आया करता था।

कुछ लोगों का कहना था कि वह अमीर मां-बाप का अभागा लड़का और पहुंचा हुआ फ़क़ीर है। कुछ अन्य लोग उसे निकम्मा, गंवार किसान समझते थे।

फ़ोका जिसकी हम लोग इतनी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे ठीक समय पर आ गया और हम लोग नीचे चले। ग्रिशा भी जिसका प्रलाप समाप्त नहीं हुआ था, हमारे पीछे हर सीढ़ी पर डंडा पटकता हुआ, उतरा। पिताजी और अम्मा हाथ में हाथ दिये, धीमे स्वर में बातें करते हुए बैठकखाने में दाखिल हुए। मार्या इवानोवना सोफ़े की बग़ल में क़रीने से रखी कुर्सियों में एक के ऊपर मज़े से बैठी हुई थीं। उसकी दोनों ओर दोनों लड़कियां थीं जिन्हें अनुशासन में रखने के लिये वह सतत प्रयत्नशील थीं। कार्ल इवानिच कमरे में घुसे तो एक बार उनकी ओर देखकर उन्होंने मुंह फेर लिया। उनका चेहरा कह रहा था – "मेरे सामने तुम बहुत तुच्छ हो!" लड़कियों की चेष्टा से स्पष्ट था कि वे हमें कोई महत्वपूर्ण खबर सुनाने को उतावली हो रही हैं; उनका वश चलता तो एक छलांग में हमारे पास पहुंच जातीं पर यह असंभव था क्योंकि ऐसा करना मीमी के क़ानूनों का उल्लंघन होता। नियम के अनुसार पहले हमें उसके पास जाना चाहिये और ज़मीन पर पांव रगड़ते हुए कहना चाहिये – "Bonjour, Mimi!"* इसके बाद ही बातचीत आरंभ की जा सकती है।

मीमी का 'यह न करो, वह न करो,' असह्य था। उसकी उपस्थिति में दो बातें भी करना असंभव था। उसे हर चीज़ में ही शिष्टता और उपचार के नियमों का उल्लंघन नजर आता था। इसके अलावा, वह हमेशा हमें फ़्रांसीसी में बोलने को कहती। उसका टोकना हमें अखर जाता खासकर उस वक़्त और भी जब हम मग्न होकर रूसी में गपें लड़ाते होते, उस समय उसके टोकने में हमें विद्वेष की स्पष्ट झलक मिलती।

---

* [नमस्कार, मीमी!]

प्राय: ठीक जब हम भोजन की किसी खास सामग्री को एकाग्र होकर उदरस्थ कर रहे होते, मीमी बीच में टपक पड़ती – «Mangez donc avec du pain» या «Comment ce que vous tenez votre fourchette?»* वाह! उपदेश देना है तो अपनी छात्राओं को दो, हम लोगों से मतलब तुम्हें? हमारे मास्टर तो कार्ल इवानिच है" – हम लोग सोचते। 'कुछ' लोगों के प्रति कार्ल इवानिच के दिल में जो घृणा थी, वैसी ही मेरे दिल में भी उठती।

भोजन के बाद जब बड़े लोग बैठकखाने में चले तो कातेंका ने पीछे से हमारी क़मीज़ खींची और धीरे से मेरे कान में बोली – "अम्मा से कहो कि हम लोगों को भी शिकार में ले चलें।"

"बहुत अच्छा। कोशिश करेंगे।"

ग्रिशा ने भी भोजनकक्ष में ही खाना खाया पर अलग एक कोने में छोटी-सी मेज़ पर। जब तक भोजन चलता रहा उसने प्लेट पर से सिर नहीं उठाया। वह मुंह और हाथों से विचित्र विचित्र चेष्टाएं कर रहा था। ठंडी सांसें छोड़कर वह अपने आप बुदबुदा रहा था – "शोक, महाशोक ... उड़ गयी ... उड़ चली चिड़िया ऊपर को ... उफ़ वह देखो। क़ब्र पर पत्थर लगा हुआ है।" और इसी तरह अंट-शंट न जाने क्या क्या बोलता रहा।

अम्मा सुबह से ही उद्विग्न और उचाट थीं। ग्रिशा की उपस्थिति, उसके अटपटे शब्दों और व्यवहार से उनकी उद्विग्नता स्पष्ट रूप से बढ़ गयी।

"अरे हां, एक चीज़ तो तुमसे कहना भूल ही गयी थी" – भोजन की मेज़ पर पिताजी की ओर शोरबे का कटोरा बढ़ाते हुए वह बोलीं।

"क्या बात है?"

---

*[इसे रोटी के साथ खाओ... तुमने कांटा किस तरह पकड़ रखा है?]

"अपने इन भयानक कुत्तों को बंधवा दो। आज सवेरे ग्रिशा पर आंगन में वे झपट पड़े। मुश्किल से बचा बेचारा। कोई ठिकाना नहीं उनका, क्या मालूम बच्चों को ही काट खायें किसी दिन।"

अपना नाम सुनकर ग्रिशा ने मुंह फेरा और अपने लबादे का नोचा हुआ निचला भाग दिखलाकर मुंह में कौर भरे ही बोला:

"नोच कर खतम कर देना चाहते थे मुझे ... लेकिन भगवान जो ऊपर देख रहा था ... इस तरह किसी पर कुत्ते छोड़ना पाप है! पर मारना मत उन्हें, चौधरी ... मारने से लाभ? भगवान स्वयं क्षमा करेगा... समय बदल गया है अब।"

"क्या कह रहा है यह?" पिताजी ने टेढ़ी दृष्टि से उसकी ओर ताकते हुए कहा। "मेरे पल्ले तो एक शब्द भी नहीं पड़ रहा है।"

"खैर, मुझे समझ आ गया है"–अम्मा ने कहा–"वह कह रहा है कि किसी शिकारी ने जान-बूझकर उसके ऊपर कुत्ते छोड़ दिये थे कि नोचकर खतम कर दें उसे और आपसे अनुरोध कर रहा है कि उस आदमी को इसके लिए सजा न दें।"

"अच्छा! यह बात है," पिताजी ने कहा, "लेकिन हज़रत यह क्यों समझते हैं कि मैं उस आदमी को सजा दूंगा। तुम जानती हो कि मैं इन जैसों को मुंह नहीं लगाता ... और खासकर इस आदमी से तो न जाने क्यों मुझे और भी चिढ़ हो रही है ..." अन्तिम बात उन्होंने फ़्रांसीसी में कही।

"छि:! ऐसी बातें नहीं कहते," अम्मा ने सिहरकर कहा। "इस आदमी के अंदर जो है उसे आप क्या जानते हैं?"

"मैं बहुत देख चुका हूं, ऐसों की नस नस पहचानता हूं। सभी एक जैसे होते हैं ... सबकी एक ही कहानी होती है।"

स्पष्टत: अम्मा की राय इस मामले में भिन्न थी, पर वे बहस नहीं करना चाहती थीं।

"ज़रा एक समोसा वढ़ाना उधर से। अच्छे बने हैं?" उसने कहा।

पिताजी ने एक समोसा उठाया और उसे अम्मा के नज़दीक ले जाकर कांटे में ही पकड़े हुए बोले—"पढ़े-लिखे, समझदार लोगों को भी ऐसों के चक्कर में फंसते देखकर मुझे बड़ी हैरानी होती है!"

यह कहकर उन्होंने मेज़ पर कांटे को पटका।

अम्मा ने हाथ बढ़ाते हुए कहा—"मैंने एक समोसा मांगा था तुमसे?"

"ऐसों को गिरफ़तार कर पुलिस ठीक काम करती है," पिताजी ने समोसेवाला हाथ पीछे हटाते हुए कहा। "इन लोगों का पेशा ही यही है—कमज़ोर लोगों को डराकर अपना उल्लू सीधा करना।" अन्तिम बात—यह देखकर कि यह बातचीत अम्मा को अच्छी नहीं लग रही है—पिताजी ने मुसकराते हुए कही और समोसा बढ़ा दिया।

"एक बात मैं ज़रूर मानता हूं। जो आदमी साठ वर्ष का बूढ़ा होने पर भी जाड़ा, गर्मी, बरसात में नंगे पांव चलता है, जो मन भर की ज़ंजीर गले में लटकाये रहता है और जिसने एक जगह आराम से रहने के प्रस्ताव को कई बार ठुकरा दिया है वह केवल निठल्लेपन के कारण मारा मारा फिरता है, यह विश्वास करना कठिन है।"

एक क्षण मौन रहने के बाद मां ने ठंडी सांस लेकर कहा—"और जहां तक भविष्यवाणी का प्रश्न है, मैं इसमें विश्वास करने का फल भोग चुकी हूं। मैं तुम्हें शायद बता चुकी हूं कि किर्युशा ने मेरे पिताजी के मरने का दिन ही नहीं घड़ी तक बता दी थी।"

"अरे! यह क्या किया तुमने"—पिताजी ने व्यंगपूर्ण अभिनय के साथ अचानक मीमी की ओर से मुड़कर कहा। (जब पिताजी इस तरह अभिनय करते थे उस समय हम लोग अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उनके मुंह से कोई नया मज़ाक सुनने की प्रतीक्षा करने लगते थे) "तुमने उसके पैरों की याद क्यों दिला दी मुझे? मेरी नज़र उनके ऊपर पड़ गयी है, अब तो कुछ भी खा सकना मेरे लिए असंभव है।"

भोजन समाप्ति पर आ रहा था। ल्यूबोच्का और कातेंका बार बार कनखियों से इशारे कर रही थीं और बड़ी बेचैनी के साथ अपनी कुर्सियों में हिल-जुल रही थीं। इशारों का मतलब था—"जल्दी करो, हमें भी शिकार में ले चलने को कहो।" मैंने कुहनी से वोलोद्या को हिलाया, वोलोद्या ने मुझे कुहनी मारी। अन्त में हिम्मत बंधी और उसने मुंह खोला। पहले तो उसकी आवाज़ सहमी हुई सी निकली फिर दृढ़ और तेज हो गयी। लम्बी भूमिका के साथ उसने अपनी बात कही—"चूंकि आज हम लोग चले जायेंगे। इसलिए लड़कियों को भी हमारे साथ गाड़ी में शिकार को चलने दिया जाता तो अच्छा होता।" बड़े लोगों के बीच इसके बाद कुछ परामर्श हुआ और अंत में फ़ैसला हम लोगों के पक्ष में सुनाया गया। सबसे अधिक आनंद की बात तो यह हुई कि अम्मा भी हम लोगों के साथ चलने को तैयार हो गयीं।

छठवां परिच्छेद

शिकार की तैयारियां

भोजन के बाद जब फल खा रहे थे तो याकोव को बुलाया गया और उसे गाड़ी, कुत्ते और घोड़े ठीक करने की हिदायतें दी गयीं—हर चीज़ के विषय में ब्योरेवार हिदायत थी। नाम लेकर बताया गया कि कौन कौन घोड़े शिकार में जायेंगे। वोलोद्या के घोड़े के पांव में चोट थी, अतः पिताजी ने उसके लिए एक 'शिकारी' पर ज़ीन कसने को कहा। अम्मा को 'शिकारी' शब्द से ही भय लगता था। उसे ऐसा भास होने लगता कि घोड़े की जगह कोई जंगली जानवर जोता जा रहा है उनके वोलोद्या के लिए। और कल्पना में वह देखती कि 'शिकारी' बेक़ाबू हो गया है, वोलोद्या गिर पड़ा है और उसकी गर्दन टूट गयी है! पिताजी और वोलोद्या दोनों ने उसे बारम्बार समझाया। वोलोद्या बड़ी मर्दानगी के साथ बोला—डरने की कोई बात नहीं, सरपट दौड़नेवाले घोड़े तो

मुझे खास तौर से पसन्द हैं। पर अम्मा वेचारी की दिलजमई नहीं हुई। वह यही कहती रहीं कि वोलोद्या के 'शिकारी' पर चढ़ने से वह सारा वक़्त घवरायी रहेंगी और सैर का उनका सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा।

भोजन समाप्त हुआ; वड़े लोग कॉफ़ी पीने के लिए पुस्तकालय वाले कमरे में चले गये। हम लोग वग़ीचे में। कितना आनंददायी था वाग़ में खेलना। रविशों पर सूखी पत्तियों में पांव खड़खड़ाकर चलने में वड़ा मज़ा आता है। दिलचस्प वातों की चर्चा चल रही है। वोलोद्या 'शिकारी' पर चढ़ेगा, ल्यूवोच्का लद्धड़ है—वह दौड़ने में कातेंका जैसा तेज़ नहीं दौड़ सकती, चुपके से ग्रिशा की वोझल जंजीर देखना चाहिये, आदि, आदि। विदाई के वारे में कोई कुछ नहीं कहता था। इसी वीच गाड़ी आ गयी जिसकी पावदान पर अर्दलियों की पोशाक में दो लड़के खड़े थे। गाड़ी के पीछे कुत्ते लिये शिकारी थे। सवसे पीछे कोचवान इग्नात था जो वोलोद्या के लिए रखे गये घोड़े पर वैठा था और हाथ में हमारी वुड्ढी घोड़ी की लगाम थी। खेलना छोड़ हम लोग वाड़ की ओर दौड़े इस जलूस को देखने। इसके वाद शोर मचाते, पैर पटकते शिकार की पोशाक पहनने हम लोग कोठे पर भागे। शिकारी का रूप वनाने की प्रधान तरक़ीव थी पतलून को वूटों में खोंस लेना। जल्दी से यह काम समाप्त कर हम सायवान में जा खड़े हुए ताकि कुत्तों तथा घोड़ों के गिरोह को देख सकें तथा शिकारियों से वातें कर सकें।

आज काफ़ी गर्मी थी, श्वेत वादलों के नाना रूपधारी टुकड़े सवेरे से ही नीले आकाश में चक्कर काट रहे थे। अव हवा कुछ तेज़ हो गयी और वादल सिमटकर नज़दीक आ गये जिससे कभी कभी सूरज छिप जाता था। इस समय वादल काले और घने लगने लगते थे, पर इतना स्पष्ट था कि आंधी-पानी नहीं होगा और शिकार का हमारा आनंद विगड़ने की आशंका नहीं है। शाम होते होते वादल फिर विखरने लगे—कुछ का रंग ज़र्द हो गया और वे फैलकर क्षितिज की ओर भागे; कुछ, जो ठीक

सिर पर से, मछली के सोंइटे की तरह स्वच्छ और श्वेत हो गये, केवल एक बड़ा-सा काला मेघखण्ड पूरब दिशा में देर तक डटा रहा। कार्ल इवानिच बता देते थे कि कौन बादल किधर जायगा और क्या करेगा। उन्होंने कहा, काला मेघ मास्लोवका चला जायगा, पर वर्षा नहीं होगी और मौसम स्वच्छ रहेगा।

बूढ़ा फ़ोका चपल गति से नीचे उतरा और चिल्लाया—"गाड़ी दरवाज़े पर लगाओ!" यह कहते हुए वह तपाक से देहरी और उस जगह के बीच जहां गाड़ी खड़ी की जाती थी टांगें फैलाकर खड़ा हो गया, मानो जता रहा हो कि अपनी ड्यूटी वह बखूबी जानता है, इसमें उसे सचेत करने की जरूरत नहीं, इसके बाद ही महिलाएं नीचे उतरीं, गाड़ी के पास पहुंचकर एक क्षण उनमें बहस होने लगी कि कौन कहां बैठेगा और किसको सहारा देगा (यद्यपि मेरी समझ में गाड़ी में किसी को थामकर बैठने की जरूरत न थी) और फिर वे अपनी अपनी जगह लेकर बैठ गयीं और छाते खोल लिये। गाड़ी रवाना हो गयी। ज्योंही बग्घी चली अम्मा ने 'शिकारी' की ओर इशारा किया और कांपती हुई आवाज में कोचवान से पूछा:

"व्लादीमिर पेत्रोविच के लिए यही घोड़ा है क्या?"

जब कोचवान ने सिर हिलाकर हां कहा तो उन्होंने हाथ से एक विचित्र संकेत किया और मुंह फेर लिया। मैं अधीर हो रहा था। अपने घोड़े पर सवार होकर उसके कानों के बीच सामने की ओर ताका और आंगन में कुलांचें करने लगा।

"ध्यान से! घोड़ा कुत्तों को न कुचल दे!" एक शिकारी ने कहा।

"डरो मत—मैं क्या पहली बार घोड़े पर चढ़ रहा हूं?" मैंने गर्व भरे स्वर में कहा।

वोलोद्या भी 'शिकारी' पर जा बैठा। साहसी होने के बावजूद

उसका पोढ़ा कलेजा भी एक वार कांप उठा। घोड़े की पीठ थपथपाते हुए उसने कई वार पूछा—"शरारत तो नहीं करेगा?"

घोड़े पर वह ख़ूब फव रहा था, विलकुल वड़ों जैसा। ज़ीन पर उसकी जांघें यों भरपूर वैठी हुई थीं कि मुझे ईर्ष्या होने लगी। ख़ासकर इसलिए कि अपनी परछाई देखने पर मुझे लग रहा था कि मैं उसकी तरह शानदार नहीं दीख रहा हूं।

तव सीढ़ियों पर पिताजी की पदचाप सुनाई पड़ी। कुत्तों के रखवाले ने फ़ौरन सवों को एक जगह इकट्ठा किया, शिकारियों ने अपने अपने शिकारी कुत्तों को संभाला और सभी लगे अपने घोड़ों पर सवार होने। साईस पिताजी के घोड़े को सीढ़ियों के पास ले आया। पिताजी के कुत्ते, जो अभी तक अजीव अजीव मुद्राओं में लेटे या पौढ़े हुए थे, कूदकर उनके पास जमा हो गये। उनके पीछे मिल्का थी जिसके कालर में मनके टंके थे और गले की जंजीर मधुर स्वर में झनझना रही थी। घर से वाहर निकलने पर मिल्का अन्य सभी कुत्तों का वाक़ायदा अभिनंदन करती थी—कुछ के साथ कुलांचें करके, कुछ को सूंघ और गुर्राकर तथा कुछ पर के पिस्सू पकड़कर।

पिताजी घोड़े पर सवार हुए, और हम लोग रवाना हो गये।

सातवां परिच्छेद

शिकार

प्रधान शिकारी जिसका नाम तुर्का था, सवसे आगे था। वह मुश्की घोड़े पर सवार था। सिर पर उसने वड़ी रोयेंदार टोपी पहन रखी थी; कंधे पर एक वड़ी-सी तुरही और कमर में छुरा। उसकी ख़ूंखार और रूखी आकृति से ऐसा ज्ञात होता था मानो किसी भयंकर लड़ाई के लिए सजकर निकला है, शिकार के लिए नहीं। उसके घोड़े

के पीछे विभिन्न रंगों वाले कुत्तों की एक टेढ़ी-मेढ़ी पांत दौड़ रही थी। पांत से पीछे रह जानेवाले कुत्ते की खैर नहीं। एक पट्टे में बंधा होने के कारण अपने साथी के साथ उसे खींचातानी तो करनी ही पड़ती, पीठ पर पीछे से आनेवाले सवारों का कोड़ा भी बरसता—"पांत में चल, बे !"

फाटक के बाहर हुए तो पिताजी ने हमें तथा नौकरों को सड़क के साथ साथ चलने को कहा और स्वयं रुई के खेत में घुस गये।

फ़सल तैयार थी, कटनी लगी हुई थी। जहां तक दृष्टि जाती पके अनाज की सुनहली बालियां लहलहाती दिखाई पड़ रही थीं। केवल एक ओर नीले ढालू जंगल का सिवान था। वह उन दिनों मुझे बड़ा रहस्यपूर्ण स्थान ज्ञात होता था मानो वहीं दुनिया का छोर है या उस पार किसी निर्जन प्रदेश का विस्तार है। विस्तृत खेतों में जहां-तहां कटी फ़सल के अंबार लगे थे और आदमी काम कर रहे थे। खड़ी फ़सल के बीच रास्ते काट लिये गये थे जिनमें कहीं कोई किसान स्त्री हवा में डोलती बालियों के बीच झुकी कटनी कर रही होती। कहीं छांह देखकर बच्चों के पालने लगा दिये गये थे जिनके ऊपर कोई स्त्री झुकी हुई होती। कहीं ताज़ा कटी खूंटियों के ऊपर जिनमें बनैले फल बिखरे हुए थे रुई के गट्ठे रखे जा रहे थे। और आगे, लम्बे कुर्ते पहने किसान गाड़ियों में खड़े होकर गट्ठों को लाद रहे थे जिससे सूखे खेतों में धूल उड़ रही थी। गुमाश्ता जी ने जो घुटनों तक का बूट पहने, देहाती लबादा कंधे पर डाले और हाथ में गिनती करनेवाली छड़ी लिये काम करा रहे थे, दूर से पिताजी को आते देखकर सिर से भेड़ के खाल की अपनी टोपी उतार ली, अपने लाल बालों और दाढ़ी को तौलिये से पोंछा तथा ज़ोर ज़ोर से औरतों पर हुक्म चलाने लगे। पिताजी का मुश्की घोड़ा मौज के साथ नाचता, उछलता कभी सिर झुकाता और कभी लगाम को खींचता हुआ चला जा रहा था। उसकी दुम मोरछल की तरह भिनभिनाती मक्खियों और मच्छरों को झाड़ती चल रही थी।

दो शिकारी कुत्ते, जिनकी दुम हंसिये की तरह हवा में मुड़ी हुई थीं, खूंटियों को फांदते हुए घोड़े के पीछे पीछे भाग रहे थे। मिल्का आगे आगे दौड़ रही थी। वह बीच बीच में सिर घुमाकर अपने मालिक को देख लेती थी। बड़ा ही सुहावना दृश्य था। खेत में चारों ओर फैले आदमियों की धीमी धीमी आवाज़ें, घोड़ों और गाड़ियों का चरमर शब्द, लवे पक्षियों की मीठी टां टां, झुण्ड बांधकर हवा में उड़नेवाले पतंगों की भन-भन, चिरायते, घोड़ों के पसीने और भूसे की हलकी गंध, ताज़ी कटी पीली खूंटियों के ऊपर सूर्य-किरणों का इंद्रधनुष, क्षितिज-रेखा पर दृष्टिगत होनेवाले जंगल का नीला रंग, स्वच्छ आकाश का हलका गुलाबी रंग तथा हवा में फैले अथवा खूंटियों पर तने रेशमी जाले-यह दृश्य, यह गंध और ये स्वर मेरी आंख, नाक और कान द्वारा मेरे अन्दर प्रवेश करते हुए हृदय में अनुपम आनंद भरने लगे।

हम कालिनोवो के जंगल में पहुंच गये। बग्गी वहां पहले ही पहुंच चुकी थी। सबसे शानदार चीज़ थी, जिसे देखकर हमारी बाछें खिल गयीं, वहां पर खानसामा की मौजूदगी। वह भी अपनी गाड़ी के साथ वहां मौजूद था। गाड़ी के अन्दर पुआल के ढेर से 'समोवार' झांक रही थी, एक बाल्टी में बर्फ़ थी, और खाने-पीने के सामान की अनेक टोकरियां जगह जगह पड़ी थीं। इस तैयारी का अर्थ स्पष्ट था-जंगल में चाय मिलेगी, फल और आईस-क्रीम खायेंगे। गाड़ी को देखकर हम खुशी से चिल्लाने लगे। आज जंगल में घास के ऊपर बैठकर चाय पीना मिलेगा। एकांत स्थल में जहां पहले किसी ने चाय नहीं पी होगी। कितना सुन्दर, कितना अनोखा! तुर्का आया और पिताजी उसे हिदायतें देने लगे-कौन कहां जायगा, कुत्ते किस ओर से हंकवा करेंगे, फिर कहां इकट्ठा होना है आदि (यद्यपि उन्होंने स्वयं इन हिदायतों पर कभी अमल नहीं किया और जिधर मन चाहा निकल गये)। तुर्का ने कुत्ते खोल दिये, खाली पट्टी समेटी और घोड़े पर सवार होकर बर्च-वृक्षों

के झुरमुट में ओझल हो गया। पट्टी खुलते ही कुत्ते खुशी से दुम हिलाने और उछलने कूदने लगे। जमीन सूंघते हुए वे इधर उधर भागे।

"तुम्हारे पास रूमाल है?" पिताजी ने मुझसे पूछा।

मैंने जेब से रूमाल निकालकर दिखलाया।

"इसे इन भूरे कुत्ते के गले में बांध दो।"

"जिरान के?" मैंने जानकारी जताते हुए कहा।

"हां। अब सड़क का किनारा पकड़कर दौड़ जाओ। आगे खुला मैदान मिलेगा। वहीं रुक जाना और चौकस रहना। ख़रगोश मारे बिना मत लौटना।"

जिरान की भूरी गर्दन में अपना रूमाल बांधकर मैं पिताजी की बतायी जगह की ओर सरपट भागा। पीछे से वह हंसकर बोले:

"और तेज़! नहीं तो रह जाओगे।"

जिरान चलते हुए रुक जाता और कान खड़े कर शिकार की आहट लेने लगता। मैं उसे पूरा जोर लगाकर खींचना चाहता पर कसकर डांटे बिना वह बढ़ने का नाम ही न लेता था। इतने में दूर से शिकारियों का कोलाहल सुनाई पड़ा—"लियो! लियो! लियो!!" इस बार जिरान इतने ज़ोर से दौड़ा कि उसे संभालना मुश्किल हो गया। नियत जगह पर पहुंचने से पहले मैं कई बार ढंगलाकर गिरा। बलूत के एक घने वृक्ष के नीचे छांह तथा समतल जमीन देखकर मैं घास पर लेट गया और जिरान को भी बग़ल में लिटा लिया। हम शिकार की प्रतीक्षा करने लगे। जैसा साधारणतः ऐसे अवसरों पर होता है, मेरी कल्पना वास्तविकता से नाता तोड़कर आकाश में कुलांचें मारने लगी। मैं दो ख़रगोश मारकर तीसरे का पीछा कर रहा था कि कुत्ते शिकार की टोह पाकर ज़ोरों से भूंक उठे। तुर्की की तीखी आवाज जंगल में गूंज उठी। कहीं पर एक कुत्ता ज़ोर से कूं कर उठा और कूं-कूं की आवाज़ें कई बार सुनाई पड़ीं। इसके बाद दूसरा कुत्ता भौंक उठा; फिर तीसरा और

चौथा। शिकार की ये आवाज़ें कभी तेज़ और कभी मंद हो जातीं। पर इस बार वे ज़ोर ही पकड़ती गयीं और पूरा जंगल भों भों की ध्वनियों से भर गया। शिकारियों के शब्दों में, जंगल जाग उठा था; कुत्तों पर शिकार का रंग जम चुका था।

एक ही जगह बैठे रहने से मेरी पीठ दुखने लगी। आंखें पेड़ों के झुरमुट की ओर गड़ाये मैं जड़वत मुसकरा रहा था। शरीर पसीने से तर हो रहा था। ठुड्डी को गुदगुदाती पसीने की बूंदें नीचे टपक रही थीं। पर मैंने उन्हें पोंछा नहीं। मुझे ऐसा मालूम हुआ बस इसी एक क्षण के अन्दर हां या न का फ़ैसला हो जायगा। यह तनाव कितनी देर टिक सकता था? कुत्तों की आवाज़ कभी नज़दीक आती और कभी दूर चली जाती पर खरगोश का कहीं पता न था। मैंने चारों ओर नज़र दौड़ायी। जिरान का भी मेरे जैसा ही हाल था। पहले तो वह रूमाल खींचता और कूं-कूं करता रहा, फिर मेरी बग़ल में लेट गया और मेरे घुटनों के ऊपर नाक रखकर शांत हो गया।

मैं जिस बलूत के नीचे बैठा था उसकी नंगी जड़ों के चारों ओर असंख्य चींटियां रेंग रही थीं। शुष्क भूरी धरती तथा सूखे बलूत की पत्तियों, जैतून के फलों, घास से ढके डंठलों और पीली-हरी दूब के ऊपर चींटियों की क़तार दौड़ रही थी। अपने लिए रास्ता निकालकर वे एक पांत में बढ़ती चली जा रही थीं—कुछ बोझ से लदी हुई, कुछ खाली। मैंने एक सूखी लकड़ी से लेकर उनका मार्ग रोक दिया। कुछ चींटियां बेधड़क लकड़ी पर चढ़कर पार हो गयीं, पर कुछ, खासकर जो बोझ ढो रही थीं, घबराकर रुक गयीं। इसके बाद चक्कर काटकर वे दूसरा रास्ता ढूंढ़ने की कोशिश करने लगीं। कुछ पीछे लौट चलीं और कुछ मेरे आस्तीन में घुसने के इरादे से आगे बढ़ीं। उनका यह व्यापार मुझे विचित्र लग रहा था। पर इसी बीच मेरा ध्यान पीले पंखों वाली एक तितली की ओर चला गया। वह इधर से उधर उड़कर मुझे लुभाने

की कोशिश कर रही थी; मैंने मुड़कर देखा तो वह उड़कर दो क़दम पीछे जा रही और कुछ देर एक श्वेत तिनपतिया के मुरझाये शीश के चारों ओर मंडराने के बाद उसी के ऊपर बैठ गयी। पता नहीं वह धूप खा रही थी या फूल से रस खींच रही थी। जो भी हो अपनी क्रीड़ा में मग्न थी। बीच बीच में पंखों को फड़फड़ाकर वह फूल को और पास सटा लेती और थोड़ी देर के लिए निश्चल हो जाती। मैं दोनों हाथों में सिर थामे अनंत आनंदपूर्वक उस कौतुक को देख रहा था।

अचानक जिरान ज़ोर से भौंक उठा और रूमाल में इतने ज़ोर का झटका दिया कि मैं उलटने से बचा। मैंने उठकर देखा। एक ख़रगोश जंगल के किनारे एक कान समेटे और दूसरा कान उठाये घास पर फुदक रहा था। मैंने आव देखा न ताव, एक बार बड़े ज़ोरों से चिल्लाया और कुत्ते को छोड़ उसके पीछे दौड़ा। लेकिन केवल हाथ मलकर रह गया— ख़रगोश एक छलांग मारकर जंगल में ग़ायब हो गया।

लेकिन अभी मुझे और लज्जित होना था। ख़रगोश के भागते ही शिकारी कुत्ते शोर मचाते हुए पीछे से आये और मैंने देखा कि एक झाड़ी की ओट से तुर्का बाहर निकल रहा है। उसने मेरी ग़लती अर्थात उतावलेपन को देख लिया था। तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए बोला—"छि:! मालिक, यह क्या किया?" उसके मुंह से इतने ही शब्द निकले, पर मैं शर्म से गड़ गया—इससे तो अच्छा था कि मुझे भी वह ख़रगोश की भांति ज़ीन में बांधकर टांग लेता।

मैं निराशा की मूर्ति बना हुआ बड़ी देर तक वहीं खड़ा रहा। मैंने कुत्ते को भी नहीं पुकारा। केवल जांघ पीटकर बार-बार यही कहता रहा—"उफ़! क्या कर डाला मैंने?"

दूर कुत्तों के दौड़ने की आवाज़ मेरे कानों में आ रही थी। ख़रगोश जंगल की दूसरी तरफ़ उन्हें फिर मिल गया था, क्योंकि वे

एकवारगी ज़ोर से भूंक उठे। शिकार मारा गया और तुर्का ने अपने बड़े विगुल के सहारे कुत्तों को एक जगह इकट्ठा कर लिया। लेकिन मैं मूरत वना उसी जगह खड़ा रहा।

आठवां परिच्छेद

हमारे खेल

शिकार खतम हो चुका था। वर्च-वृक्षों के नीचे एक क़ालीन विछा दी गयी थी। सभी लोग वहां जमा हो चुके थे। खानसामा गाव्रीलो हरी हरी दूव को पैरों से रौंदता हुआ रिकावियां पोंछ रहा था। उसने टोकरियों से पत्तों में लिपटे सतालू और वेर निकाले। सूरज वर्च की हरी डालियों से होकर झांक रहा था। क़ालीन की रंगविरंगी चित्रकारी के ऊपर, मेरे पैरों के आस-पास और गाव्रीलो की गंजी खोपड़ी पर किरणें आंखमिचौनी खेल रही थीं। पत्तों से छनकर आनेवाली ठण्डी मंद हवा मेरे वालों तथा धूप से गर्म चेहरे पर पंखा झल रही थी।

वर्फ़-मलाई और फल खा चुकने के वाद क़ालीन पर वैठे रहने में कोई लाभ न था। सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने लगी थीं, पर उनमें ताप वाक़ी थी। इसके वावजूद, हम उठकर खेलने चल दिये।

ल्यूवोच्का धूप में आंख मटकाती और घास पर फुदकती हुई वोली— "कौनसा खेल होगा? आओ राविंसन खेलें।"

वोलोद्या ने घास पर लेटे ही मुंह में पत्ती चवाते हुए कहा— "ऊंह! वेकार है यह खेल। जव देखो राविंसन का खेल! खेलना ही है तो आओ मिलकर कुटिया वनायें।"

स्पष्टतः वोलोद्या, रंग वांधने की कोशिश कर रहा था। आज उसने 'शिकारी' पर सवारी की थी। इसी का रोव डालने के लिए वह थका होने का स्वांग कर रहा था। या, संभव है वह इतना समझदार किन्तु कल्पना-शून्य था कि राविंसन का खेल उसे जंचता न था। इस

खेल में हम 'Robinson Suisse'* नामक किताब के, जिसे हमने हाल ही में पढ़ा था, कुछ दृश्यों का अभिनय किया करते थे।

"उठो, उठो...हमारी खातिर..." लड़कियों ने अनुनय किया। कातेंका आस्तीन पकड़कर उसे ज़मीन से उठाने की कोशिश करती हुई बोली—"तुम चार्ल्स बनना, या अर्नेस्ट, या पिताजी, जो जी में आये।"

"नहीं, मैं नहीं खेलता। मेरा मन नहीं लगेगा," वोलोद्या ने जवाब दिया और आत्मतुष्टि की एक मुस्कान के साथ और भी लम्बा लेट गया।

ल्यूबोच्का रुआंसी हो गयी। बोली—"कोई खेलेगा ही नहीं; इससे अच्छा था घर पर ही रह जाते हम लोग।"

बड़ी रोनी लड़की थी वह! "अच्छा, अच्छा! रो मत भाई! आओ खेलें।"

पर वोलोद्या की इस उदारता से हमारा काम बना नहीं। क्योंकि वह अब भी ऐसा बना हुआ था मानो खेल में मन नहीं लग रहा है उसका—निर्लिप्त और निरानंद-सा, इससे सारा मज़ा किरकिरा हुआ जा रहा था। जहां मछुआ ही के लिये नाव चलाने का दृश्य है, हम लोग ज़मीन पर बैठ गये और लगे ज़ोरों से डांड़ चलाने; पर वोलोद्या हाथ पर हाथ धरकर बैठ रहा। मैंने कहा—"इस तरह कहीं नाव चलायी जाती है।" वह बोला—"मुफ़्त हाथ थकाने से फ़ायदा? कितना भी हाथ मारें जिस जगह है वहां से एक क़दम आगे नहीं बढ़ पायेंगे।" अनिच्छापूर्वक, मुझे सहमति प्रगट करनी पड़ी। जब हम लोग शिकार वाले भाग का अभिनय करने लगे और मैं कंधे पर डंडा लेकर जंगल की ओर चला। वोलोद्या ज़मीन पर चित लेट गया और सिर के नीचे दोनों हाथ रखकर बोला—"समझ लो कि मैं भी चल रहा हूं।" उसकी

---

* [स्विस फ़ैमिली राबिंसन]

इन टीकाओं और चेष्टाओं ने हमारा जोश ठंडा कर दिया। हमें वे अच्छी नहीं लग रही थीं; इसका एक विशेष कारण यह था कि वे सत्य थीं—अप्रिय सत्य।

मैं स्वयं जानता था कि कंधे पर डंडा रखकर चिड़ियों पर गोली नहीं चलायी जा सकती, मारना तो दूर रहा। लेकिन यह तो खेल था। अगर खेल में इस तरह तर्क करने लगें तो कुर्सी घोड़ा-गाड़ी कैसे बनेगी? क्या वोलोद्या को याद नहीं कि जाड़े की लम्बी शामों में घर पर हम मामूली कुर्सी को कपड़े से ढक बग्गी बना लिया करते थे? घोड़ों की जगह आगे तीन कुर्सियां जोत दी जातीं; एक आदमी कोचवान और एक अर्दली बन जाता; बीच में लड़कियां बैठ जातीं और हम लोग मीलों की यात्रा तै कर डालते। मार्ग में गाड़ी उलटने से बचती, डाकुओं से मुठभेड़ हो जाती, न जाने कितने प्रकार के साहसिक कार्य करने पड़ते। जाड़े की शाम इन कौतुकों में बात की बात में बीत जाती। दर-असल यदि वास्तविकता के अनुसार चलें तो खेल नहीं खेले जा सकते। और यदि खेल नहीं है तो बाक़ी रह क्या गया?

नवां परिच्छेद

कुछ कुछ प्रथम प्रेम जैसा

ल्यूबोच्का वृक्ष से अमरीकी फल तोड़ने का खेल खेल रही थी। अनायास उसके हाथ में एक पत्ता आ रहा जिसपर एक विशालकाय पिल्लू बैठा हुआ था। घबराकर पत्ते को उसने नीचे गिरा दिया और इतने ज़ोर से भागी मानो कीड़ा उसके ऊपर विष की पिचकारी चला देगा। खेल बन्द हो गया, और सभी एक दूसरे से सटकर उस विचित्र कीड़े को देखने लगे।

कातेंका एक पत्ते के ऊपर कीड़े को उठाने की कोशिश कर रही थी। मेरी दृष्टि उसके कंधे पर पड़ी, उसे उघाड़ता हुआ नीचे गले का

फ़ाक खिसक गया था। मैंने देखा था इस तरह फ़ाक खिसक जाने पर झटका देकर लड़कियां उसे ऊपर चढ़ा लिया करती थीं। मुझे याद है ऐसी हरकत करने पर मीमी उन्हें हमेशा डांटा करती थी। फ़ांसीसी भाषा में वह कहती – «C'est un geste de femme de chambre.»* कातेंका ने कीड़े को उठाते समय इसी तरह अपने कंधों को झटका दिया। ठीक उसी समय हवा के झोंके से उनकी श्वेत ग्रीवा से रूमाल हट गया। उनके कंधे मेरे ओंठों से केवल दो अंगुल की दूरी पर थे। कीड़े को मैं भूल गया, मेरी आंखें कातेंका के कंधों पर गड़ गयीं; और इसके बाद मैंने बड़े जोर से उन्हें चूम लिया। वह पीछे नहीं मुड़ी पर मैंने साफ़ देखा कि उसकी गर्दन और कान तक लाल सुर्ख़ हो गये। वोलोद्या ने सिर उठाये बिना ही टीका की:

"वाह रे! सुकुमार दिलवाले!" पर मेरी आंखें डब डबा आयी थीं।

मैं उसके ऊपर से अपनी आंखें हटा नहीं पा रहा था। वह फूल-सा चेहरा मेरे लिए नया न था मैं उसे प्यार भी करता था। पर इस समय उसने मुझे विशेष रूप से आकृष्ट कर लिया था; मैं उसे अधिक चाहने लगा था।

हम लोग जब फिर बड़ों के पास पहुंचे तो पिताजी ने ख़बर सुनायी कि अनुरोध के कारण हमारा मास्को जाना कल तक स्थगित हो गया है। इस संवाद से हमारी ख़ुशी का ठिकाना न रहा।

हम लोग बग्गी के साथ ही घर लौटे। वोलोद्या और मैं गाड़ी की बग़ल में घोड़ों पर सवार चल रहे थे। हमारी इतराहट का ठिकाना न था। दोनों ही अपनी घुड़सवारी और बहादुरी का रोब जताने की कोशिश कर रहे थे। इस वक़्त मेरा साया अधिक लम्बा पड़ रहा था जिससे मैंने अनुमान किया कि घोड़े की पीठ पर मैं बड़ा शानदार लग

---

*[ऐसा व्यवहार तो दासियां करती हैं]

रहा हूं। लेकिन एक छोटी-सी घटना ने मेरी शान धूल में मिला दी। बात यों हुई। मैंने सोचा ऐसी घुड़सवारी दिखाऊं कि गाड़ी में बैठने वालियां 'वाह! वाह!' कर उठें। अतः मैं थोड़ी देर को रुक गया और निश्चय किया कि आंधी की तरह घोड़ा फेंकता हुआ गाड़ी की बग़ल से (जिधर कातेंका बैठी है) उड़ूंगा और आगे निकल जाऊंगा। मैं उड़ा भी, पर गाड़ी के सामने पहुंचने से पहले जब मैं सोच ही रहा था कि चुपचाप निकल जाऊं या आवाज़ देकर निकलूं, दुष्ट घोड़े ने ऐसा दगा दिया कि सारी इज्ज़त खाक में मिल गयी। हठात गाड़ी के सामने आकर वह रुक गया और मैं उलटकर ज़ीन से गर्दन पर जा रहा। ख़ैरियत यह हुई कि ज़मीन पर नहीं गिरा!

दसवां परिच्छेद

पिताजी कैसे आदमी थे?

पिताजी पिछली शताब्दी के आदमी थे। उस पीढ़ी के नौजवानों की सभी विशेषताएं उनके अंदर सम्मिलित रूप से मौजूद थीं—शौर्य, साहस, शिष्टता, शेख़ी तथा शराब और औरतों का शौक़। नयी पीढ़ी को वह तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। इसका कारण आत्मश्लाघा तो थी ही, एक और चीज़ भी थी। पहले की तरह अब उनकी चल नहीं पाती थी और वह सफलताएं भी नहीं मिल सकती थीं जो किसी ज़माने में मिला करती थीं, जिससे वे मन ही मन नये ज़माने से कुढ़ा करते थे। जुआ और औरत—इन दो चीज़ों के पीछे वे पागल रहते थे। जुए में उन्होंने लाखों रुपये जीते थे और हर वर्ग की अनगिनत औरतों से संबंध क़ायम किया था।

होश संभालने के दिन से आज तक उनका व्यक्तित्व मेरे मानसपटल पर अंकित है—पुष्ट, ऊंचा शरीर, छोटी छोटी आंखें जिनसे

सदा मुस्कराहट छलकती रहती थी, लम्बी सीधी नाक, अटपटे से ओंठ जो विचित्र ढंग से मिंचे रहते एवं बड़े अच्छे लगते थे, बोली में एक प्रकार की मीठी तुतलाहट, खल्वाट सिर। उनकी चाल बड़ी रोबीली थी। उन्हें रह रहकर कंधे डुलाने की आदत थी। उनका यह व्यक्तित्व सभी जगह सर्वप्रिय था। लोग उन्हें à bonnes fortunes * कहते थे। किसी को खुश करना उनके लिए बायें हाथ का खेल था।

कैसे भी आदमी से पाला पड़े वे अपना काम निकाल लेना जानते थे। वह 'उच्चतम समाज के' सदस्य न थे, पर वहां उनकी पहुंच थी और उन्हीं के बीच उनका उठना-बैठना होता था। कहीं उनके सम्मान में कमी नहीं होती थी। आत्मविश्वास और अभिमान का कितना पुट होने से आदमी व्यक्तित्व नहीं खोता और साथ ही दुनिया की आंखों में भी नहीं खटकता यह उन्हें ठीक ठीक मालूम था। हर चीज़ में तो नहीं, पर बहुतेरी बातों में उनमें मौलिकता थी। धन अथवा सर्वोच्च अभिजात्य की कमी वह प्राय: मौलिकता से पूरी किया करते थे। दुनिया की कोई चीज़ उन्हें चकित या आश्चर्यान्वित नहीं कर सकती थी। उच्च से उच्च अथवा अनोखी से अनोखी वस्तु अथवा व्यक्ति को वे सहजभाव से लेते थे। जीवन के धूमिल पहलुओं को और छोटी छोटी परेशानियों को वे इस तरह अपने आप में पचा जाते और बाहरी लोगों की दृष्टि से ओझल रखते कि लोग उनकी इस क्षमता पर दंग रह जाते थे।

वह मौज-आराम में काम आनेवाली सभी चीज़ों के ज़बर्दस्त पारखी थे। अधिकांश वस्तुएं तो वे बनाना जानते थे। समाज में उनके अनेक उच्चस्थानीय रिश्तेदार और मित्र थे। इन रिश्तेदारियों पर उन्हें गर्व था, जो उन्होंने अम्मा के साथ शादी करके प्राप्त की थीं

---

*[किस्मत का धनी]

ग्रौर कुछ युवावस्था के साथियों के ज़रिये। पर इन साथियों से वे मन ही मन चिढ़े भी रहते थे क्योंकि वे सब के सब ऊंचे ग्रोहदों पर पहुंच गये थे जब कि वे स्वयं ग्रवकाशप्राप्त लफ़्टिनैंट तक ही रह गये थे। जैसा कि फ़ौज के ग्रवकाशप्राप्त ग्रफ़सरों में साधारणतः पाया जाता है, वे फ़ैशनेबुल कपड़े पहनना नहीं जानते थे फिर भी उनकी पोशाक में मौलिकता ग्रौर सुरुचि थी। वे सदा ढीले-ढाले ग्रौर हलके कपड़े पहनते थे। उनकी क़मीज़ हमेशा ग्रच्छे से ग्रच्छे कपड़े की होती जिसकी चौड़ी कफ़ ग्रौर कालर वे उलटकर रखते थे। हर पोशाक उनके लम्बे सुगठित शरीर, खल्वाट माथे, ग्रौर शांत ग्रात्मविश्वासयुक्त व्यक्तित्व पर खूब फबती थी। स्वभाव के वह भावुक थे। उनकी ग्रांखों में ग्रासानी से ग्रांसू ग्रा जाते। ज़ोर से किताब पढ़ते समय यदि कोई करुण ग्रंश ग्रा जाता तो उनका स्वर कम्पित होने लगता, ग्रांखें सजल हो जातीं। परेशान होकर वे किताब रख देते। उन्हें संगीत प्रिय था ग्रौर प्रायः स्वयं पियानो पर ग्रपने मित्र 'ए' के प्रेमगीत, या खानाबदोशों ग्रथवा ग्रापेरा के गाने गाया करते थे। शास्त्रीय संगीत उन्हें पसन्द न था। "बीथोवन के सोनाटों से मुझे तो नींद ग्राने लगती है," यह बात जनमत की परवाह किये बिना वे खुलकर कहते थे। मैदम सेम्योनोवा के "सुप्त सुंदरी को न छेड़ो" ग्रौर खानाबदोश गायिका तान्यूशा के "बस एक तेरी..." में ही उनके संगीत प्रेम की चरम परिणति थी। उनके स्वभाव की तुलना उन लोगों से की जा सकती है जिनके सुकार्यों के लिये जनसाधारण का होना ग्रावश्यक है ग्रौर जो स्वयं उसी चीज़ की क़दर करते हैं जिसकी जनसाधारण में क़दर हो। नैतिकता संबंधी कोई ग्रास्था उनकी थी या नहीं, यह कहना कठिन है। उनका जीवन ग्रावेशों ग्रौर ग्रावेगों की एक शृंखला थी जिसमें नैतिक मूल्यों के विषय में सोचने का ग्रवकाश ही न था। ग्रपने जीवन में वह इतने खुश ग्रौर संतुष्ट थे कि इसकी ग्रावश्यकता भी उन्हें नहीं महसूस होती थी।

उम्र बीतने के साथ, उन्होंने जीवन के प्रति अपना एक बंधा दृष्टिकोण तथा आचरण की कठोर नियमावली बना ली थी जो पूर्णतया व्यवहारिकता पर आधारित थी। जिन कामों अथवा आचरण से उन्हें सुख मिलता था उन्हें वे अच्छा समझते थे और समझते थे कि उन्हीं पर चलना सबका अनिवार्य कर्त्तव्य होना चाहिए। उनकी वाकशक्ति प्रबल थी और मुझे ऐसा ज्ञात होता कि इस गुण ने उनके सिद्धांत विषयक लचीलेपन को बल प्रदान किया है। किसी काम को बढ़िया मजाक, अथवा दुष्टता की चरमसीमा सिद्ध करने की वे क्षमता रखते थे।

ग्यारहवां परिच्छेद

अध्ययन कक्ष एवं बैठकखाने में

हम लोग अंधेरा होने के बाद घर पहुंचे। अम्मा पियानो बजाने लगीं। बच्चों ने काग़ज़, पेंसिल और रंग का बक्स संभाला और चित्रकारी करने बैठ गये। मेरे पास केवल नीला रंग था; पर मैंने आज के शिकार का दृश्य खींचने का निश्चय किया। मैंने झट नीले घोड़े पर सवार एक नीले लड़के का चित्र खींच डाला; साथ में बहुत से नीले कुत्ते थे। लेकिन खरगोश बनाने की बारी आयी तो मैं असमंजस में पड़ गया—नीले रंग में खरगोश बना सकते हैं क्या? इस विषय में पिताजी की राय लेने मैं पुस्तकालय दौड़ा। पिताजी पढ़ रहे थे। मैंने पूछा—"नीले खरगोश भी होते हैं?" उन्होंने सिर उठाये बिना जवाब दिया—"जरूर होते हैं, बेटे।" मैं अपनी गोल मेज पर लौट आया और नीला खरगोश बना डाला। लेकिन फिर कुछ सोचकर नीले खरगोश को झाड़ी में परिवर्तित कर डाला। पर झाड़ी भी न जाने क्यों मुझे पसंद न आयी। मैंने उसे वृक्ष बना डाला। वृक्ष पुआल की ढेरी में परिवर्तित हो गया और पुआल की ढेरी बादल में। लेकिन यह करते

हुए काग़ज़ नीले रंग से लिपा-पुताकर बरावर हो गया। मैंने उसे कुढ़कर फाड़ डाला और नींद लेने के विचार से बड़ी कुर्सी में जा लेटा।

अम्मा फ़ील्ड की एक धुन बजा रही थीं। फ़ील्ड उनका उस्ताद रह चुका था। मैं सुनहले स्वप्न लोक में पहुंच गया जहां अद्भुत प्राणी विचरण कर रहे थे। अव अम्मा ने बीथोवेन का एक करुण राग बजाना आरंभ किया। मेरा कल्पना-लोक करुणा और उदासी से भर गया। अम्मा ये दोनों धुनें प्रायः बजाया करती थीं। उनसे मेरी भावना पर जो असर पड़ता, वह मुझे अच्छी तरह स्मरण है। कोई भूली याद ताज़ी हो उठती थी—लेकिन किस चीज़ की याद, यह नहीं कह सकता। ऐसा लगता कि हमें याद आनेवाली वस्तु का अस्तित्व ही न था।

मेरे सामने अध्ययन-कक्ष का दरवाज़ा था। मैंने याकोव को कुछ देहाती अंगरखाधारी, लम्बी दाढ़ीवाले आदमियों के साथ उसमें घुसते देखा। उनके अंदर घुसने के साथ ही दरवाज़ा वंद हो गया। "अव कारोवार की वातें हो रही हैं," मैंने मन में सोचा। मुझे ज्ञात होता था कि अध्ययन-कक्ष में चलनेवाले उस कार-वार से दुनिया में अधिक गम्भीर तथा महत्वपूर्ण विषय और नहीं हो सकता था। हर शख़्स दवे पांव अध्ययन-कक्ष में प्रवेश करता और फुसफुसाकर वोलता। इससे मेरी धारणा और पुष्ट हो जाती थी। द्वार के उस पार से पिताजी की तेज़ आवाज़ और सिगार की गंध आ रही थी जिससे न जाने क्यों मेरे मन पर उत्तेजना का रंग फैलता जा रहा था। कुर्सी पर ऊंघते हुए हठात् मैंने नौकर के कमरे में जूतों की सुपरिचित चरमर ध्वनि सुनी। मुझे वड़ा अचम्भा हुआ। कार्ल इवानिच हाथ में कुछ काग़ज़ और चेहरे पर दृढ़ संकल्प का भाव लिये, दवे पांवों द्वार पर आये और धीरे से दस्तक दी। दरवाज़ा खुला और उन्हें अंदर दाखिल कर लेने के वाद पूर्ववत वन्द हो गया।

मैं मन में मनाने लगा कि अंदर कोई वैसी वात न हो जाय,

क्योंकि कार्ल इवानिच सवेरे ही से नाराज़ थे—कौन जानता है क्या कर बैठें!

मुझे फिर आँधी आ गयी।

लेकिन कोई दुर्घटना नहीं घटी। लगभग एक घंटे बाद बूटों की उसी चरमर ध्वनि से मेरी नींद खुल गयी। कार्ल इवानिच अध्ययन-कक्ष से बाहर निकले। उनकी आंखें डबडबायी हुई थीं। रूमाल से आंसुओं को पोंछते और आप ही आप कुछ बुदबुदाते वे कोठे पर चले गये। उनके बाद ही पिताजी बाहर निकले और बैठकखाने में चले गये।

"जानती हो अभी मैंने क्या तय क्या है," उन्होंने अम्मा के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा। वह बहुत ही खुश थे।

"क्या किया है?"

"कार्ल इवानिच को मैं बच्चों के साथ ही लेता जाऊंगा। ब्रिच्का* में जगह है ही। बच्चे उससे हिल गये हैं और देखता हूं कि वह भी बच्चों को जी-जान से चाहता है। साल में सात सौ रूबल कुछ ज्यादा नहीं हैं। «Et puis au fond c'est un très bon diable.»**

कार्ल इवानिच के प्रति पिताजी का ऐसा नीचा ख्याल, मुझे तो समझ में न आया।

अम्मा बोली—"बहुत अच्छा किया। मुझे बड़ी खुशी हो रही है। इससे दोनों को लाभ होगा—बच्चों को भी और उन्हें भी। बड़ा अच्छा स्वभाव है बुड्ढे का।"

"मैंने जब उससे कहा कि पांच सौ रूबल हमारी तरफ़ से भेंट समझकर अपने पास रख सकते हो, उस समय देखतीं तुम उसका हाल? लगा रोने। लेकिन एक बड़ा मजेदार काम किया है उसने—यह चिट्ठा

---

*एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी।—सं०

**[इसके अलावा कम्बख्त दिल का बुरा नहीं है]

दिया है। पढ़ने लायक चीज़ है।" यह कहकर मुसकराते हुए उन्होंने कार्ल इवानिच के हाथ का लिखा एक पुर्ज़ा बढ़ा दिया।

पुर्ज़े में लिखा था:

"बच्चों के लिए मछली मारने के कांटे दो—सत्तर कोपेक।

"पन्नीदार कोर का रंगीन काग़ज़, गोंद और दबाने का यंत्र उपहार के लिए काग़ज़ के बक्स बनाने के लिए—छै रूबल पचपन कोपेक।

"एक किताब और एक धनुष, बच्चों को उपहार दिया—आठ रूबल सोलह कोपेक।

"निकोलाई के लिए एक पतलून—चार रूबल।

"एक सोने की घड़ी जिसे मास्को से लाकर सन् १८—में देने का प्योत्र एलेक्ज़ैन्द्रोविच ने वादा किया था—कीमत एक सौ चालीस रूबल।

"कार्ल माओयर का कुल पावना, तनख़ा छोड़कर—एक सौ उनसठ रूबल उन्नासी कोपेक।"

इस अनोखी सूची में कार्ल इवानिच ने अपने द्वारा दिये गये उपहारों का दाम लौटाने की मांग तो की ही थी, उस घड़ी का हिसाब भी जोड़ लिया था जो उन्हें भेंट देने का वचन दिया गया था। इस चिट्ठे को जो भी देखता यही समझता कि बड़ी ओछी तबीयत का, निहायत खुदग़र्ज़ मास्टर है। लेकिन ऐसा सोचना भूल होती।

अध्ययन-कक्ष में प्रवेश करते समय वे एक पूरा भाषण कंठस्थ करके गये थे। इसे वे हिसाब का चिट्ठा पेश करते समय देनेवाले थे। भाषण में उन्होंने पिताजी को इस घर में रहकर सहन किये गये कष्टों की पूरी सूची सुनाने का निश्चय किया था। लेकिन जिस समय वे अपने उस मार्मिक स्वर में, जिसे कभी कभी इमला लिखाते समय वे इस्तेमाल किया करते थे, बोलने लगे तो अपने ही वाक्प्रवाह में ऐसा बहे कि उस स्थल पर पहुंचकर जहां वह कहनेवाले थे—"इन बालकों से विदा होते समय यद्यपि हमें अपार कष्ट हो रहा है..." गाड़ी रुक गयी। उनका गला

भर आया, आवाज़ कांपने लगी और जेब से चारखानेवाला अपना रूमाल निकालना पड़ा।

डबडबायी आंखों से उन्होंने कहा—"जी, प्योत्र एलेक्ज़ैन्द्रोविच," (यह अंग उनके पूर्व प्रस्तुत भाषण में नहीं था) "ये बच्चे मेरे साथ इतने हिल गये हैं कि मैं नहीं जानता उन्हें छोड़ने के बाद मेरा क्या हाल होगा। मुझे उनके साथ ही रहने दिया जाय—मैं बिना वेतन काम करूंगा।" ये शब्द उन्होंने एक हाथ से आंसुओं को पोंछते और दूसरे हाथ से उपरोक्त पुर्जा थमाते हुए कहे थे।

मैं जानता हूं, कार्ल इवानिच कितने नेकदिल थे और कह सकता हूं कि वे जो कुछ भी कर रहे थे नेकनीयती से ही। पर एक रहस्य मैं अभी तक नहीं सुलझा पाया हूं—जो उद्‌गार उन्होंने प्रगट किये, उनका मेल उस चिट्ठे के साथ उन्होंने किस तरह बैठाया था?

"अगर जुदाई में तुम्हें कष्ट होता है तो मुझे तो तुम से जुदा होने में और भी कष्ट होगा," पिताजी ने कार्ल इवानिच के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा। "मैंने अपना निश्चय बदल दिया है।"

रात के भोजन से कुछ देर पहले ग्रिशा ने कमरे में प्रवेश किया। आने के वक्त से उसका रोना और ठंडी आहें भरना न रुका था। जिन्हें विश्वास था कि वह सिद्ध फ़क़ीर है, उन्होंने उसका अर्थ यह लगाया कि इस घर पर कोई आफ़त आनेवाली है। अंत में उसने विदा ली और कहा कि मैं तड़के ही चला जाऊंगा। वोलोद्या को कनखी से इशारा करके मैं बाहर निकल गया।

"क्या बात है?" वोलोद्या ने पूछा।

"ग्रिशा की सिक्कड़ देखना है तो चलो कोठे पर। वह बाजूवाले कमरे में सोता है। कबाड़वाली कोठरी से सब कुछ दिखलायी पड़ेगा।"

"बहुत ठीक। तुम यहीं ठहरो। मैं लड़कियों को भी बुला लेता हूं।"

लड़कियां दौड़ती हुई आयीं और हम लोग कोठे पर पहुंचे। कुछ देर यह बहस चलती रही कि कौन पहले जायेगा। इसके बाद हम अंधेरे कवाड़-घर में घुसे और लगे प्रतीक्षा करने।

बारहवां परिच्छेद

ग्रिशा

अंधेरे में डर लग रहा था। हम सटकर एक जगह बैठे हुए थे; बिलकुल मौन। तुरन्त ही ग्रिशा ने अपनी निःशब्द चाल से कमरे में प्रवेश किया। एक हाथ में डंडा था, दूसरे में पीतल का चिराग़दान जिसमें मोमबत्ती खोंसी हुई थी। हम सांस रोककर बैठ गये।

वह एक सुर से "प्रभु ईसामसीह! प्रभु की परमपवित्र मां! पिता, पुत्र, और पवित्र आत्मा!" के नाम रट रहा था। निरंतर इन नामों को रटनेवालों के लहजे में जो विशेषता होती है वह उसके स्वर में स्पष्ट प्रगट हो रही थी।

मुंह से प्रभु के नाम का उच्चारण करते हुए उसने कोने में डंडा टेका और लगा कपड़े उतारने। पहले उसने अपना पुराना काला पटका खोला, फिर नानकीन का फटा कुर्ता उतारकर तह किया और कुर्सी की पीठ पर लटका दिया। इस समय उसके चेहरे पर उतावलेपन और जड़ता का सुपरिचित भाव न था। इसके विपरीत, वह सुस्थिर, विषादयुक्त एवं भव्य लग रहा था। उसकी मुद्राओं से शांतचित्तता और विचारशीलता टपक रही थी।

अब केवल नीचे के कपड़े पहने हुए वह धीरे से चारपाई पर बैठ गया और उसकी चारों ओर क्रास का चिन्ह बनाया। कमीज़ के नीचे उसने सिक्कड़ को ठीक किया। स्पष्टतः उसे ज़ोर लगाना पड़ा था (उसकी भौंहों पर बल पड़ गया)। कुछ देर वह योंही बैठा अपनी

कमीज़ के छेदों को निहारता रहा; इसके वाद उठा, कोने में रखी मूर्तियों की तरफ़ चिराग़दान ऊंचा किया; उनके सामने खड़े होकर अपने ऊपर क्रास का चिन्ह वनाया और तव मोमवत्ती उलट दी। वह भुकभुकाकर वुझ गयी।

जंगल के ऊपर खड़ा चतुर्दशी का चंद्रमा खिड़की से झांक रहा था। उसकी फीकी, रूपहली रोशनी मूर्खराज के लम्वे शरीर पर पड़ रही थी। दूसरी ओर घनी साया थी जो फ़र्श और दीवारों पर पड़ने वाली खिड़कियों की साया के साथ एकाकार होकर छत को छू रही थी। नीचे आंगन से संतरी की खड़खड़ाहट की आवाज़ आ रही थी।

दोनों विशाल हाथों को छाती पर वांधे, सिर झुकाये, ग्रिशा मूर्तियों के सामने निश्चल और निःशब्द खड़ा था। केवल निरंतर ठंडी आहें भरना जारी था। इसके वाद वह थोड़ी कठिनाई के साथ नीचे झुककर उपासना करने लगा।

पहले उसने धीमे स्वर में, ख़ास शब्दों पर विशेष जोर देते हुए, सुपरिचित स्तोत्रों का पाठ किया; फिर तनिक तेज़ आवाज़ में उन्हें दुहराया; और तव यह क्रम जोर-जोर से चलने लगा। वह मातृभाषा में ईश वंदना करने की कोशिश कर रहा था और इसमें स्पष्टतः उसे कठिनाई हो रही थी। उसके शब्द अटपटे किन्तु मर्मग्राही थे। पहले अपने सभी हितैषियों के लिए (जो उसे अपने घरों में शरण देते थे) प्रभु से प्रार्थना की। इनमें अम्मा और हम लोग भी शामिल थे। फिर अपने लिए प्रार्थना की और ईश्वर से अपने घनघोर पापों की माफ़ी चाही। अंत में कहा–"हे ईश! मेरे शत्रुओं को माफ़ कर।" उसके मुंह से एक मर्मांतक कराह निकल रही थी। उन्हीं शब्दों को वारम्वार दुहराता हुआ वह कमर झुकाकर माथा नवा रहा था। गले की भारी लोहे की ज़ंजीरों की उसे परवाह न थी। प्रत्येक वार सिर झुकाने पर वे झनझनाहट के साथ फ़र्श से टकरा जाती थीं।

वोलोद्या ने मेरे पैर में ज़ोर से चिकोटी काटी, पर मैं घूमा नहीं। एक हाथ से चिकोटी के स्थान को मलता हुआ, मैं कान और आंखें बाये ग्रिशा का हर शब्द और चेष्टा देख रहा था। मेरा हृदय बाल्य आश्चर्य, करुणा एवं श्रद्धा की एक विचित्र भावना से परिपूरित हो रहा था।

कवाड़-घर में प्रवेश करते समय हमने सोचा था कि खूब दिल्लगी रहेगी; पर इस समय हमारी उलटी अवस्था हो रही थी—हृदय कांप रहा था, डूबा-सा जा रहा था।

ग्रिशा बड़ी देर तक इस तन्मय अवस्था में रहा। उसने कई बार दुहराया—"प्रभु, मेरे ऊपर रहम कर!" किन्तु हर बार नवीन मुद्रा, नये भाव के साथ। अथवा, जिस समय उसने कहा—"प्रभु, क्षमा कर; राह दिखा, प्रभु राह दिखा!" उसके मुख पर ऐसा भाव था मानो प्रभु का उसे तत्काल संदेशा मिलनेवाला है। कभी कभी उसके मुंह से केवल अस्फुट शोकोद्गार ही निकलते। इस प्रकार उपासना समाप्त हुई; वह उठा, दोनों हाथों को छाती पर बांधा और मौन हो गया।

मैंने चुपके से अपना सिर दरवाज़े में डाला और सांस रोककर खड़ा हो गया। ग्रिशा निश्चल बैठा हुआ था; दीर्घ निश्वासों से उसका सारा शरीर डोल रहा था; कानी आंख की सफ़ेद पुतली में आंसू की एक बूंद चांदनी में चमक रही थी।

"जैसी तेरी मर्ज़ी," एक विचित्र और अवर्णनीय मुख-मुद्रा के साथ वह हठात् चिल्लाया और फ़र्श पर सिर पटककर बच्चों की तरह सिसकने लगा।

इस घटना को एक युग-सा बीत चुका है। बीते काल की अनेक स्मृतियां मेरे लिए आज कोई महत्व नहीं रखतीं। पुरानी यादें धुंधली पड़ गयी हैं जैसे बहुत दिन पुराना सपना। फ़क़ीर ग्रिशा भी अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर चुका है। पर जो असर उसने मेरे मानसपटल पर डाला, जो भावनाएं मेरे मन में जगायीं, वे स्मृतिपट की अमिट लकीरें बन गयी हैं।

ग्रिशा! तू प्रभु यीशु का महान अनुयायी था। तेरी भक्ति ऐसी सच्ची थी कि तू प्रभु से साक्षात्कार का अनुभव करता था; तेरा प्रेम ऐसा महान था कि शब्द तेरे मुंह से आपसे आप निकलते थे, उनपर बुद्धि की लगाम लगाने की तुझे आवश्यकता न थी। तेरी भक्ति ऐसी अनन्य थी कि शब्द न मिलने पर तू भूमि पर लोट गया और अश्रुओं से अपना आवेदन प्रगट किया।

मैं जिस भावावेश के प्रवाह में बह गया था वह ज्यादा देर नहीं रहा। अव्वल तो हमारा कौतूहल शांत हो चुका था; दूसरे एक ही आसन में बैठने से टांगें अकड़ गयी थीं। मैं चाहता था कि अपने पीछे अंधेरे में चलनेवाली चेष्टाओं एवं फुसफुसाहट में शरीक हो जाऊं। किसी ने मेरा हाथ पकड़कर कहा—"किसका हाथ है?" यद्यपि वहां घनघोर अंधेरा था, पर स्पर्श तथा बगल की फुसफुसाहट से मैं समझ गया कि वह कातेंका थी।

अचेतन, मैंने उसकी बाहों को, जिसमें कुहनी तक ही आस्तीन थी, पकड़कर चूम लिया। कातेंका ने चौंककर हाथों को जोर का झटका दिया। ऐसा करने में कमरे में रखी एक टूटी कुर्सी से हाथ टकरा गया। ग्रिशा ने सिर उठाकर चारों ओर ताका और उपासना के मंत्र पढ़ता हुआ कमरे के हर कोने में क्रास का चिन्ह बनाने लगा। हम लोग कवाड़-घर घड़घड़ाते, शोर मचाते हुए भागे।

तेरहवां परिच्छेद

नाताल्या साविश्ना

पिछली शताब्दी के मध्य में नाताश्का नामक एक छोटी-सी बालिका खाबारोव्का ग्राम के घर-आंगनों में फुदकती घूमा करती थी। उसके पांवों में जूते न थे और तन पर चीथड़े थे, पर उसके गोल-मटोल शरीर, गुलाबी गालों और चंचल मुखड़े से सदा हंसमुखपन टपकता

रहता था। उसका पिता साव्वा मेरे नाना का भू-दास और अच्छा क्लैरियोनेट-वादक था। नाना ने उसकी सेवाओं का ख़याल करके उसी के अनुरोध से, उस बालिका को 'अंतःपुर' में रख लिया, अर्थात् उसे नानी की दासी के स्थान पर नियुक्त किया। नाताश्का दासी के शरीफ़ और उद्यमी स्वभाव की सभी प्रशंसा करते थे। जब मेरी मां का जन्म हुआ और दाई की ज़रूरत पड़ी तो यह काम नाताश्का को ही सौंपा गया। अपनी छोटी मालकिन की सेवा में उसने जिस नमक-हलाली, मेहनत और प्यार का परिचय दिया, उससे उसका बड़ा नाम हुआ और कई बार तरह तरह के इनाम भी मिले।

ख़ानसामा फ़ोका उन दिनों हृष्ट-पुष्ट, गबरू जवान था। अपने काम के सिलसिले में उसे नाताल्या के अक्सर सम्पर्क में आने का अवसर मिलता था। उसके पाउडर पुते केशों, और बकलसदार पोशाक ने नाताल्या के प्रेमपूर्ण, सरल हृदय को जीत लिया। प्रेम ने उसे साहस प्रदान किया और वह स्वयं नाना से फ़ोका के साथ विवाह करने की अनुमति मांगने गयी। पर उसके इस अनुरोध में, नाना को कृतघ्नता की गंध मिली। उन्होंने उसे भगा दिया, और इतना ही नहीं, उसे स्टेपी* स्थित अपनी ज़मींदारी के एक गांव में चरवाहा बनाकर भेज दिया। लेकिन शीघ्र ही सभी को ज्ञात हो गया कि नाताल्या का स्थान ग्रहण करनेवाला कोई नहीं और वह छः महीने के अंदर फिर अपने पुराने काम पर बुला ली गयी। लौटते ही वह नाना के पास गयी, उनके पैरों पर गिरकर अपनी भूल की माफ़ी मांगी और मालिक से अनुरोध किया कि फिर पूर्ववत् अनुकम्पा रखें। उसने कहा कि ऐसी भूल फिर न करेगी। और अपने वचन को पूरी तरह निभाया।

---

* दूर के वीरान प्रदेश में जहां उस समय खेती नहीं होती थी, बल्कि चरागाह थे। – सं०

उस दिन से नाताश्का नाताल्या साविश्ना वन गयी और सिर पर टोपी धारण करने लगी। प्रेम का जो अथाह भण्डार उसके हृदय में था, उसे उसने अपनी छोटी मालकिन के ऊपर उंडेल दिया।

वाद में, जव उसके स्थान पर एक अभिभाविका नियुक्त हुई तो उसे घर की प्रवंधिका का काम दिया गया, कपड़े-लत्ते तथा अनाज-पानी का सारा हिसाव-किताव उसे ही सौंप दिया गया। अपने नये काम को भी उसने उसी लगन और उत्साह के साथ अंजाम दिया। जीवन में उसका एक ही ध्येय था—मालिक की सम्पत्ति की हिफ़ाज़त करना। उसे लगता जैसे चारों ओर छीन-झपट और वरवादी का राज छाया हुआ है। इससे लड़ना उसने अपना कर्तव्य वना लिया।

अम्मा की शादी हुई तो नाताल्या की वीस वर्ष की अनवरत सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उसने उसे अपने पास वुलाया और असीम प्यार और कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उसके हाथ में एक दस्तावेज़ रख दिया जिसमें लिखा था कि नाताल्या साविश्ना आज से स्वतंत्र* है। साथ ही उसने कहा कि वह काम करे या न करे अव से उसे सालाना ३०० रूवल पेंशन मिला करेगी। नाताल्या साविश्ना इन शब्दों को चुपचाप सुनती रही; इसके वाद दस्तावेज़ हाथ में लेकर उसे गुस्से से उलट-पलट कर देखा और अस्फुट स्वर में वड़वड़ाती हुई तेज़ी के साथ कमरे से वाहर हो गयी तथा जाते हुए ज़ोर से दरवाज़ा वंद किया। उसका विचित्र व्यवहार अम्मा की समझ में नहीं आया। वह पीछे लगी हुई उसके कमरे में गयीं। नाताल्या अपने संदूक के ऊपर वैठी हुई थी; अपनी उंगलियों को उसने रूमाल में लपेट रखा था; मुक्ति का दस्तावेज़ टुकड़े टुकड़े करके ज़मीन पर डाला हुआ था, और वह टकटकी वांधकर उन टुकड़ों को देख रही थी; आंखों से आंसुओं की अविरल धारा वह रही थी।

---

*वह भू-दास प्रथा का युग था।—सं०

अम्मा ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा—"मेरी अच्छी नाताल्या साविश्ना, तुझे हो क्या गया है आज?"

"कुछ भी नहीं, मेरी प्यारी मालकिन," उसने जवाब दिया। "मैं समझती हूं तुम्हारा मन मुझसे भर गया है, इसीलिए तुम मुझे घर से निकाल बाहर करना चाहती हो। खैर, जैसी तुम्हारी मर्ज़ी। मैं खुद ही चली जाऊंगी।"

उसने अपना हाथ खींच लिया, बड़ी मुश्किलों से आंसुओं को थामा, और कमरे से जाने का उपक्रम करने लगी। उस वक्त अम्मा ने उसे रोककर छाती से लगा लिया। दोनों गले लगकर रोने लगीं।

होश संभालने के बाद से पहली चीज़ जो मेरे स्मृतिपटल पर अंकित है, वह है नाताल्या साविश्ना और उसका दुलार। लेकिन अब उसकी कीमत आंक पाया हूं। उस समय भूलकर भी न सोचा था कि नाताल्या कितनी महान, कितनी अनूठी है। किसी ने उसे अपने विषय में बोलते नहीं सुना। अपने विषय में वह सोचती भी न थी। उसका पूरा जीवन प्रेम और उत्सर्ग का उदाहरण था। उसके स्वार्थहीन स्नेह का मैं इस क़दर आदी बन चुका था कि उसके स्नेह के बारे में सोचता भी न था; कृतज्ञता महसूस करना, या कभी उसके आराम-तकलीफ़ की सोचना तो दूर रहा।

प्रायः किसी बहाने पढ़ाई से छुट्टी ले मैं उसके कमरे में जा बैठता और वहां, निस्संकोच होकर, कल्पनालोक में कुलांचें भरने लगता। वह अपने काम में लीन रहती। कभी मोज़ा बुन रही होती; कभी संदूकों को, जिनसे उसका सारा कमरा भरा हुआ था, झाड़ती-पोंछती रहती; कभी कपड़ों का हिसाब कर रही होती। काम का क्रम चलता जाता और वह मेरी बेसिरपैर की बातें सुनती जाती—"मैं जनरल हो जाऊंगा तो अद्वितीय सुंदरी से ब्याह करूंगा; मेरा अपना खूबसूरत मुश्की घोड़ा होगा; मैं रहने के लिए शीशे का महल बनवाऊंगा; सैक्सनी से कार्ल

इवानिच के सभी रिश्तेदारों को वुला पठाऊंगा," आदि। आम तौर से, जव मैं चलने को होता तो वह एक वड़े से नीले वक्स को खोलती जिसकी ढक्कन के नीचे पोमेड के डिब्बे से काटकर चिपकायी एक सिपाही की तसवीर थी और एक चित्र वोलोद्या के हाथ का वनाया हुआ था। वह उसमें से एक धूपवत्ती निकालकर जलाती और उसे आरती की तरह घुमाती हुई कहती :

"वेटे, यह ओचाकोव की धूपवत्ती है। जव तुम्हारे स्वर्गीय नाना –ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे–तुर्कों के खिलाफ़ युद्ध में गये थे तो यह धूपवत्ती वहीं से लाये थे। यह आखिरी टुकड़ा वचा है।" यह कहकर उसने ठंडी सांस ली।

नाताल्या साविश्ना के कमरे में भरे संदूकों में दुनिया की जितनी भी वस्तुएं हो सकती हैं मौजूद थीं। किसी भी चीज़ की आवश्यकता पड़ती, हम झट कहते–"चलो नाताल्या साविश्ना के पास," और मजाल क्या कि वक्सों में थोड़ा इधर-उधर ढूंढ़ने के वाद वह चीज़ निकाल न दे। "अच्छा हुआ मैंने इसे जोगाकर रख दिया था," वह उस सामान को थमाते हुए कहती। उन संदूकों में हज़ारों किस्म के सामान भरे थे जिनकी उसके सिवा घर में न किसी को जानकारी थी न परवाह।

एक वार मैं उससे जी-जान से नाराज़ हो गया था। वात यों हुई। क्वास* पीते समय गिलास मेरे हाथ से छूट गया और मेज़पोश पर दाग़ आ गया।

"ज़रा नाताल्या साविश्ना को वुलाओ; देखे अपने लाड़ले की करतूत," अम्मा ने कहा।

---

*एक प्रकार का पेय।–सं०

नाताल्या साविश्ना ग्रायी और मेज़पोश की हालत देख सिर हिलाने लगी। तव मां ने धीरे से उसके कान में कुछ कहा। और वह उंगली के इशारे से मुझे धमकाती हुई वाहर चली गयी।

भोजन समाप्त करने के वाद मैं मस्ती के साथ हाल में उछल-कूद रहा था कि नाताल्या साविश्ना ने अचानक दरवाज़े के पीछे से आकर मुझे खींच लिया। उसके हाथ में भीगा मेज़पोश था जिसके कोने से वह ज़ोरों से मेरे गाल मलने लगी और वोली–"और भी गंदा करेगा मेज़पोश!" मैं छटपटाता रहा। अपमान और क्रोव से मैं गरज उठा।

"इसकी यह मजाल! भीगे मेज़पोश से मेरे गाल मल दिये मानो मैं नौकर का छोकरा हूं," कमरे में घूमते और आंसुओं को घोंटते हुए मैंने सोचा।

मुझे रोते देख वह भाग गयी। मैं सोचने लगा कि इस गुस्ताख़ वुढ़िया से किस तरह अपमान का वदला चुकाया जाय।

चंद ही मिनटों के वाद वह लौट आयी। वह सहम गयी थी और लगी मुझे शांत करने का प्रयत्न करने।

"हो गया तो, रोते क्यों हो? माफ़ कर देना मुझे। अकल नहीं है न मुझमें वेटे! कसूर मेरा ही है। माफ़ कर दे मुझे, मेरे लाल! हां, और यह लो!"

अपने रूमाल में से उसने लाल काग़ज़ का एक पुलिंदा निकाला जिसमें दो मिठाइयां और एक अंजीर था। कांपते हाथों से ये चीज़ें उसने मेरी ओर वढ़ा दीं। मैं लाज से गढ़ गया; उस स्नेहशील वुढ़िया से नज़र मिलाना असंभव था मेरे लिए। मुंह फेरकर मैंने उसका उपहार ले लिया। मेरी आंखों से फिर आंसुओं की धारा वह चली–क्रोध के आंसू नहीं, प्रेम और ग्लानि के आंसू।

चौदहवां परिच्छेद

विदाई

ऊपर वर्णित घटनाओं के दूसरे दिन १२ बजे दिन को ब्रिच्का और बग्गी दरवाज़े पर खड़ी थी। निकोलाई ने सफ़र की पोशाक पहन रखी थी। अर्थात्, पतलून बूटों में खोंस ली गयी थी और पुराने कोट के ऊपर कसकर पटका बंधा था। बग्गी के पास खड़े होकर वह ओवरकोट और गद्दियां सीट के नीचे ठूंस रहा था। सीट ज्यादा उठ गयी तो उसे बराबर करने के लिए वह उसके ऊपर बैठ गया और लगा हुमकने।

पिताजी का अपना नौकर ब्रिच्का पर सामान लादने में व्यस्त था। हांफते हुए उसने कहा—"निकोलाई मित्रिच! खुदा के लिए मालिक का बक्स बग्गी पर रख लो। छोटा ही है, ज्यादा जगह नहीं लेगा।"

"पहले ही कहना चाहिए था न तुम्हें, मिखेई इवानिच," उसने पूरी ताकत से एक गठरी को बग्गी के पावदान पर फेंकते हुए, तीखे स्वर में जवाब दिया। "मेरा सिर चकरा रहा है और तुम्हें बक्स की ही पड़ी हुई है," सिर से टोपी उतारकर धूप से लाल माथे से पसीने की बड़ी बड़ी बूंदों को पोछते हुए उसने कहा।

सायबान में कई नौकर कोट, देहाती अंगरखे या कमीज़ें पहिने नंगे सिर खड़े थे। बहुत-सी औरतें भी धारीदार पेटिकोट और धारीदार कुर्ती पहने और गोद में बच्चे लिये मौजूद थीं। कई नंगे पांववाले लड़कों ने भी वहां भीड़ लगा रखी थी। सभी टकटकी बांधकर सामान को देख रहे थे और आपस में बातें कर रहे थे। एक बूढ़ा कोचवान, जिसकी कमर झुक गयी थी और जो सिर पर जाड़े की टोपी तथा अंगरखा धारण किये हुए था, तांगे का बम पकड़कर उसकी जांच कर रहा था। खूब सुडौल चेहरे-मोहरे वाले एक और नौजवान कोचवान

ने, जिसने सफ़ेद अध-वहिया पहन रखी थी जिसकी वग़लों पर लाल दो सूती चौवगले टंके हुए थे, अपने हाथ का अंगरखा तथा लगाम कोचवान की सीट पर रखा। उसके सिर पर भेड़ की खाल की टोपी थी जिसे एक वार दाहिने और दूसरी वार वायें कान पर सरकाकर उसने अपने घुंघराले वालों को खुजलाया। अपने वालदार कोड़े को हवा में सटकारता हुआ वह कभी अपने जूतों को और कभी अन्य कोचवानों को, जो वग्गी के पहियों में चर्वी मल रहे थे, देख रहा था। एक टेक देकर पहिये को उठा रहा था; दूसरा धुरी में चरवी मल रहा था। कपड़े में लिपटी चरवी वचकर वरवाद न हो, इसलिए उसने पहिये का घेरा तक रगड़ डाला। हाते के वाड़े के पास सफ़र के लिए तैयार विभिन्न रंगों वाले घोड़े अपनी दुम से मक्खियां भगा रहे थे। कुछ अपनी रोएंदार, सूजी टांगें फैलाये आंखें वंद किये ऊंघ रहे थे। दूसरे, खड़े रहने से उकताकर एक-दूसरे की देह रगड़ रहे थे या सायवान की वग़ल में लगी घनी काली झाड़ियों पर मुंह मार रहे थे। कई शिकारी कुत्ते धूप में लेटे जीभें लपलपा रहे थे। कुछ कुत्ते गाड़ियों की छांह में घूमकर धुरी में लगी चरवी चाट रहे थे। वातावरण में एक प्रकार का ग़ुवार उठ रहा था। क्षितिज में लाल-वैंगनी रंग छाया हुआ था। पर आकाश स्वच्छ था—वादलों का नामोनिशान नहीं। तेज़ पच्छिम पवन के कारण सड़क और खेतों में धूल उठ रही थी; वाग में लाइम तथा वर्च के वृक्ष झुके जा रहे थे। पीली सूखी पत्तियां हवा में इधर से उधर उड़ रही थीं। मैं खिड़की के पास वैठकर अधीरता से इन तैयारियों के खत्म होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

चलने से पहले सभी लोग थोड़ी देर के लिए वैठकखाने की वड़ी मेज़ के पास इकट्ठा हुए। उस समय मुझे ज़रा भी एहसास न हुआ कि वड़ी कष्टकर घड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही है। मैं छोटे छोटे व्योरों को लेकर ही परेशान था—जैसे, कौन कोचवान तांगा हांकेगा और कौन

वग्गी; कौन पिताजी के साथ बैठेगा, कौन कार्ल इवानिच के साथ; या मुझे लम्वे ओवरकोट और गाती में क्यों लपेट दिया गया है।

"इतना कमज़ोर नहीं हूं; न सर्दी में जम ही जाऊंगा! ओह, कितनी देर लगा रहे हैं ये लोग। वेकार इतना वक्त चला जा रहा है। अव तक तो हमारी वग्गी ठाठ से सड़क पर दौड़ती होती!"

इतने में नाताल्या साविश्ना नीचे आयी। रोने से उसकी आंखें सूज गयी थीं। उसके हाथ में एक सूची थी। अम्मा से उसने पूछा– "वच्चों के कपड़ों की यह फेहरिस्त है। कौन रखेगा इसे?"

"निकोलाई को दे दो। और आ जाओ वच्चों को विदा देने," अम्मा वोली।

वुढ़िया कुछ कहना चाहती थी, पर यकायक रुक गयी और मुंह पर रूमाल डालकर हाथों से विदाई का इशारा करती हुई कमरे से वाहर हो गयी!

उसके उस इशारे ने मेरा कलेजा मुंह को ला दिया। लेकिन अफ़सोस से ज्यादा प्रवल थी रवाना हो जाने की उतावली। इसी लिए अम्मा के साथ पिताजी की वातचीत की ओर मेरा विशेष ध्यान न था। वे ऐसी वातें कर रहे थे जिनमें, स्पष्टतः, उन्हें भी दिलचस्पी न थी–घर के लिए किन सामानों की ज़रूरत होगी, शाहज़ादी Sophie एवं Madame Julie को क्या संदेश देना है, यात्रा में विघ्न उपस्थित होने की आशंका तो नहीं है, आदि, आदि।

फ़ोका आ पहुंचा और देहलीज़ से ही वोला–"गाड़ियां तैयार हैं।" ये शब्द उसने उसी लहजे में कहे जिसमें हर रोज़ वह कहा करता था– "भोजन तैयार है।" मैंने देखा, इस सूचना ने अम्मा को हठात् चौंका दिया; उनके चेहरे का रंग उड़ गया मानो कोई विलकुल अप्रत्याशित वात हो गयी हो।

फ़ोका से कमरे के सभी दरवाज़े वंद कर देने को कहा गया।

मुझे यह वड़ा विचित्र लगा ऐसा, "मानो किसी के डर से छिप कर वैठ रहे हों!"*

सभी के वैठ जाने पर फ़ोका भी एक कुर्सी के विलकुल किनारे वैठ गया। उसके वैठने के साथ ही दरवाज़ा चरमराया; सभी की दृष्टि उस ओर घूम गयी। यह नाताल्या साविश्ना थी। वह तेज़ी से कमरे में घुसी और विना सिर उठाये, दरवाज़े के समीप फ़ोका की ही कुर्सी पर वैठ गयी। आज भी मुझे उनकी वह तसवीर याद है—फ़ोका का गंजा सिर, झुर्रीदार, निश्चल चेहरा और समीपवर्त्ती नाताल्या साविश्ना की झुकी हुई देह, सीधा-सरल मुंह और सिर पर टोपी जिसके नीचे से सफ़ेद वाल झांक रहे थे। दोनों एक ही कुर्सी में अंडस कर वैठे थे। दोनों ही झेंप रहे थे।

मैं निर्लिप्त एवं अधीर था। दरवाज़े वंद कर लोग कुल दस सेकेंड वैठे होंगे, पर मुझे ऐसा लगा कि एक घंटा हो गया। आखिरकार सभी अपनी कुर्सियों से उठे, क्रास के चिन्ह वनाये, और विदाई का क्रम आरंभ हुआ। पिताजी ने अम्मा का आलिंगन किया और कई वार चूमा।

"वस, वस, प्राणप्रिये! हमेशा के लिए थोड़े ही विदा हो रहे हैं हम," पिताजी ने कहा।

"फिर भी कष्ट तो होता ही है," अम्मा ने रुंधे कंठ से जवाव दिया।

उसका वह स्वर, कम्पित ओठ एवं सजल आंखें देखकर मैं सुधवुध खो वैठा। मेरे हृदय में शूल चुभने लगा; जी चाहता कि भाग खड़ा होऊं वहां से। मुझमें मां से विदा लेने की हिम्मत नहीं रह गयी। उस समय मैंने महसूस किया कि पिताजी का आलिंगन करने से पहले ही वह हम लोगों से विदा ले चुकी थी।

---

*एक पुरानी रूसी प्रथा—सफ़र में चलने से पहले कुछ देर सभी दरवाज़े वंद करके वैठ लेते हैं।—सं०

उसने वोलोद्या को वारम्वार चूमकर उसके ऊपर क्रास का चिन्ह वनाया। मैं अपनी वारी समझ कर जव आगे वढ़ता तो, वह फिर वोलोद्या को चिमटा लेती और आशीर्वाद देती। अंत में मेरी भी वारी आयी। मैं उसकी छाती से चिमट गया और अपनी मुसीवतों के वारे में सोचते हुए ज़ोरों से रोने लगा।

वाहर निकले तो नौकरों से विदाई लेने की वारी आयी। वे दालान में खड़े थे। उनका "छोटे मालिक! इधर हाथ" कहना, हमारे कंधों को ज़ोर से चूमना और उनके माथे से मोम की गंध—मैं उकता गया। जिस समय नाताल्या साविश्ना डवडवायी आंखों से हमें विदा देने आयी, उस समय मेरे ऊपर इसी मानसिक स्थिति का प्रभाव था, अतः मैंने उसे भी उसकी टोपी पर एक औपचारिक चुम्वन देकर विदा किया।

आश्चर्य की वात यह है कि इन सभी नौकरों का चेहरा मेरे सामने जीता-जागता खड़ा है। मैं सवों का हूवहू चित्र उतार सकता हूं, पर अम्मा की आकृति और मुद्रा न जाने कहां लोप हो गयी है। संभवतः इसका कारण यही है कि विदाई के उन क्षणों में एक वार भी उसके मुख की ओर नज़र उठाने का साहस नहीं कर सका था। उस समय मुझे यह एहसास हो रहा था कि यदि हम दोनों की दृष्टि मिली तो मेरी और उसकी मार्मिक पीड़ा का पारावार न रहेगा।

मैं दूसरों से आगे दौड़कर तांगे पर सवार हो गया और पीछेवाली सीट पर जा वैठा। सीट पीछे से ऊंची थी, इसलिए मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, पर एक प्रकार की अंतर्दृष्टि मुझे वता रही थी कि अम्मा अभी वहीं खड़ी हैं।

"फिर देख लूं उसे एक वार?" मैंने मन में सोचा। "नहीं, एक वार और देख लेना चाहिए," इस विचार के साथ मैंने तांगे पर से सायवान की ओर झांका। ठीक उसी समय मां भी मुझे एक वार और देखने के इरादे से पीछे की तरफ़ से तांगे के पास आयी

ग्रौर मेरा नाम पुकारा। आवाज़ सुनकर मैं एकबारगी पीछे की ग्रोर मुड़ा ग्रौर हम दोनों का सिर लड़ गया। मां के मुखमण्डल पर एक विषादपूर्ण मुसकान खेल गयी, उसने मुझे चूमा ग्रौर ग्राख़िरी बार, देर तक, गले से लगाये रखा।

गाड़ी के कई गज़ ग्रागे बढ़ जाने के बाद ही मैं दुबारा पीछे मुड़कर देखने की हिम्मत कर सका। ग्रम्मा के सिर में बंधा नीला रूमाल हवा में फरफरा रहा था ग्रौर सिर झुका हुग्रा था। दोनों हाथों से उसने मुंह ढांप रखा था। इसी मुद्रा में वह धीरे धीरे सायबान की सीढ़ियां चढ़ रही थी। फ़ोका उसे सहारा दिये हुग्रा था।

पिताजी मेरी बगल में बिलकुल मौन बैठे थे। मेरा गला रुंधा जा रहा था—ऐसा लगता था कि दम ही घुट जायेगा। सड़क पर ग्राने पर बारजे से किसी का सफ़ेद रूमाल हिलता हुग्रा दिखाई पड़ा। मैंने भी ग्रपना रूमाल हिलाया। इससे मन थोड़ा शान्त हुग्रा। पर ग्रांसुग्रों का तार टूट न रहा था। हां, उन ग्रांसुग्रों से एक प्रकार की सांत्वना प्राप्त हो रही थी क्योंकि उनका ग्रर्थ यह था कि मेरा हृदय ग्रम्मा के प्रति ममता से खाली नहीं है।

ग्राध मील से कुछ ऊपर निकल जाने के बाद मन थोड़ा स्वस्थ हुग्रा। ग्रब ध्यान निकटवर्ती वस्तुग्रों की ग्रोर दौड़ा। सबसे नज़दीक तांगे के चितकबरे घोड़े के कूल्हे थे। उसका दुम हिलाना, एक के बाद दूसरा पैर फेंकना, कोचवान का रोएंदार चाबुक पड़ने पर उछल पड़ना—ये सारी हरकतें मैं ध्यान से देख रहा था। दौड़ने से साज़ ग्रौर उसमें टंके लोहे के कड़े उसकी पीठ से निरंतर टकरा रहे थे। मेरे देखते ही देखते दुम के पास का तस्मा गाज से भर गया। मैंने चारों ग्रोर दृष्टि डाली। खेतों में रई की पकी फ़सल लहलहा रही थी। एक ग्रोर काली परती भूमि थी जिसमें इक्के-दुक्के किसान हल चला रहे थे या कोई घोड़ी बछेड़े को साथ लेकर चर रही थी। सड़क के किनारे लगे मील

के पत्थर भागते जा रहे थे। मैंने यह देखने को कोचवक्स पर नज़र दौड़ायी कि कौन कोचवान हमारी गाड़ी हांक रहा है। ग्रांसू ग्रभी तक सूखे न थे लेकिन मस्तिष्क मां से दूर, जिससे शायद हम हमेशा के लिए विछुड़ चुके थे, भाग रहा था। हां, स्मृतियां विजली की तरह कौंधती हुई हमें उसी के पास लौटा लातीं। हठात् मुझे उस छत्रक की याद ग्रा गयी जिसे मैंने उस दिन वर्च के झुर्मुट में पाया था। कातेंका ग्रौर ल्यूवोच्का उसे तोड़ने के लिए झगड़ा करने लगी थीं। फिर विदाई के समय दोनों का विसूरना याद ग्रा गया।

उनसे, नाताल्या सविश्ना से, वर्च-वृक्ष के उस प्यारे झुरमुट से, या फ़ोका से विछुड़ना कितना हृदयविदारक था! कुटिल प्रकृतिवाली मीमी भी इस समय याद ग्रा रही थी। इनसे ग्रव जल्द भेंट न होगी। प्यारी ग्रम्मा क्योंकर मिलेंगी? यह सोचते ही ग्रांखें फिर तर हो गयीं। पर ग्रधिक देर नहीं।

पंद्रहवां परिच्छेद

वचपन

ग्रहा! कितना मीठा है भोला वचपन! कैसा नैसर्गिक सुख है शैशव में! उसकी हर स्मृति सुनहरी है। ग्रात्मा को प्रेरित ग्रौर उत्थित करने की ग्रद्भुत शक्ति है उसमें। मैं तो विभोर हो उठता हूं उसकी याद से ही।

खेलने से थककर चाय की मेज़ की वग़ल की ग्रपनी ऊंची कुर्सी पर वैठ गया हूं। वहां वैठने में कोई तुक नहीं है। दूध-चीनी का ग्रपना एक प्याला मैं पहले ही खतम कर चुका हूं। ग्रांखें नींद से झपी जा रही हैं—फिर भी वैठा हुग्रा हूं ग्रौर पी रहा हूं ग्रम्मा की मधुरिमा को। वह किसी से वातें कर रही है। उसका स्वर कानों में मिठास उंडेल रहा है। उस स्वर के कान में पड़ने से ही मन न जाने

कितनी वातें सुन लेता है! पलकों पर निंदिया आ वैठी है, पर मेरी निगाह अम्मा पर टंगी है। हठात् उसका मुखड़ा सिकुड़ने लगता है—वटन के आकार से वड़ा नहीं रह गया अव; फिर भी एकदम स्पप्ट। वह मेरी ओर देखकर मुसकराती है। उसकी संक्षिप्त आकृति मुझे विशेप भाती है। मैं पलकें मींच लेता हूं। अव वह आंख की पुतली में उठनेवाली छाया से वड़ी नहीं है। पर यह क्या? मैं हिल गया और इंद्रजाल भंग हो गया। आंखें मींचकर और इधर से उधर डोलकर उस कल्पना-चित्र को फिर प्रस्तुत करने की कोशिश की पर कोशिशें व्यर्थ सिद्ध हुईं।

उठकर, मैं आराम कुर्सी पर लेट गया।

अम्मा कहती है—"निकोलेंका फिर नींद आ जायगी तुझे; चला जा कोठे पर।"

मैं जवाव देता हूं—"नहीं अम्मा! अभी न सोऊंगा।" मधुर धुंधले स्वप्न मेरे मानसपटल पर नाचने लगते हैं। शैशव की स्वस्थ नींद दवोच लेती है। सपने में किसी का कोमल हाथ मुझे स्पर्श करता है। मुझे उस स्पर्श को पहिचानने में कठिनाई न हुई—अम्मा का हाथ है। नींद में ही मैं उसे छाती से चिमटाकर चूम लेता हूं।

कमरे से सभी वाहर जा चुके हैं। केवल एक मोमवत्ती जल रही है वैठकखाने में। अम्मा ने कहा है मुझे उठा देगी। वही मेरी कुर्सी पर आकर अपने अनूठे कोमल हाथों से मेरा माथा सहला रही है। उसका प्यारा सुपरिचित स्वर कानों में मधुरिमा उंडेल रहा है।

"उठ, मेरे लाल! रात हो गयी। जा सो रह अपने विस्तर पर।"

उपचारों का व्यवधान नहीं हमारे वीच। निस्संकोच, मां की ममता का छलकता प्याला वह मेरे ऊपर उंडेल देती है। मैं हिलता-डोलता नहीं; केवल उसके हाथ चिमटाकर चूम लेता हूं।

"उठ! मेरे लाल उठ!"

दूसरे हाथ से आवेष्ठित कर वह मुझे अपनी पतली उंगलियों से गुदगुदाने लगती है। कमरे में निस्तब्धता और लगभग अंधकार छाया हुआ है। नींद से जगाये जाने और गुदगुदी से मेरा सारा शरीर आंदोलित हो रहा है। अम्मा सटकर बैठी है और मेरे ऊपर हाथ फेर रही है। उसके स्वर की मिठास और शरीर की सुगंध मेरी चेतना को स्पर्श कर रही है। मैं कुर्सी से उछलकर दोनों हाथ उसके गले में डाल देता हूं और सिर उसकी छाती पर रखकर ठंडी सांसें छोड़ता हुआ बोल उठता हूं—"अम्मा! मेरी अम्मा! कितनी प्यारी अम्मा!"

उसके चेहरे पर वही विशिष्ट विषादमय, मनमोहक मुसकान खेल जाती है। मेरा सिर दोनों हाथों में लेकर वह मेरा माथा चूम लेती है और तब, धीरे से, गोद से नीचे उतार देती है।

"बहुत प्यार करता है तू अपनी अम्मा को?" कहकर वह एक क्षण को चुप हो जाती है; फिर बोलती है—"अम्मा को इसी तरह हमेशा प्यार करना। कभी भूलना न उसे। अम्मा मर जायगी तो भी नहीं! नहीं भूलेगा न?"

यह कहते हुए उसने प्यार भरा एक बोसा और जड़ दिया।

"मेरी प्यारी अम्मा! ऐसी बात नहीं कहते," यह कहकर मैं उसकी गोद में और चिमट गया। आंसुओं से मेरी आंखें तर हो गयीं। ये प्रेम और आनंदातिरेक के आंसू थे।

इसके बाद जब कोठे पर अपने सोने के कमरे में जाता हूं और रूईदार ड्रेसिंग-गाउन बदलकर उपासना के निमित्त मूर्ति के सामने खड़ा होता हूं तो मेरे सम्पूर्ण हृदय से यह प्रार्थना निकलती है—"ईश्वर, पिताजी और अम्मा को चिरायु कर!" मां के स्वर में अपना तोतला स्वर मिलाकर मैंने प्रार्थना सीखी थी। अतः उसमें ईश्वर-प्रेम के साथ मां के प्रति प्रेम का एक अद्भुत सम्मिश्रण था। दोनों भावनाएं एकाकार हो गयी थीं।

प्रार्थना कर चुकने के वाद मैं अपना छोटा कम्वल ओढ़ लेता हूं। मेरा चित्त उल्लसित है। मन सपनों के देश में झूलने लगता है। मैं नहीं जानता, ये सपने क्या हैं। उनकी रूपरेखा नहीं, पर सभी विशुद्ध प्रेम और स्वर्णिम आशाओं से ओत-प्रोत हैं। उस समय हठात् कार्ल इवानिच की याद आ जाती है। कैसा हतभाग्य है वेचारा! सुख ही सुख के इस वातावरण में वही एकमात्र दुखी जीव है। करुणा से मेरा हृदय भर जाता है। मैं उन्हें इतना प्यार करता हूं कि आंखों में आंसू भर आते हैं। मन में कहता हूं—"भगवान उन्हें सुखी वना; इतनी क्षमता प्रदान कर कि उनकी मदद कर पाऊं, उनका दुख हलका कर सकूं। जो भी त्याग तू कहेगा मैं करने को तैयार हूं उनके लिए।" इसके वाद अपने सव से प्रिय चीनी मिट्टी के कुत्ते और खरगोश को गुदगुदे तकिये के कोने तले सुला लेता हूं। यह सोचकर कि अव वे गरम होकर खूव आराम से सोयेंगे मैं वड़ा संतोप प्राप्त करता हूं। मैं फिर ईश्वर से प्रार्थना करता हूं, सभी को सुखी करे, सभी शांत और संतुष्ट हों, और कल मौसम अच्छा रहे ताकि हम टहलने जा सकें। इसके वाद मैं करवट लेता हूं; स्वप्न और जागरण की सीमारेखाएं न जाने कव एकाकार हो जाती हैं—नींद हलके से मुझे गोद में ले लेती है। आंसुओं से मेरे गाल अव भी भीगे हुए हैं।

वह मासूम वचपन क्या कभी लौट सकता है? वह प्यार, वह उल्लास, वह भोलापन और वह सहज विश्वास क्या फिर कभी प्राप्त कर सकूंगा? मासूमी से भरी मस्ती और प्यार की अमिट प्यास, जव ये ही दो जीवन के प्रेरणास्रोत हों तो उससे भी सुंदर क्या कोई अवस्था हो सकती है?

कहां चली गयीं वे प्रार्थनाएं जिनमें आत्मा मुखरित हो उठती थी? कहां गयी जीवन की वह सर्वोत्कृष्ट देन—भावावेश के सच्चे आंसू? सांत्वना की देवी मुसकराती हुई आती, अपने हाथों से उन आंसुओं को पोंछ डालती और भर देती शैशवकालीन सरल कल्पना में सुनहले सपने।

क्या हो गया वह ग्रानंद, वे ग्रांसू? कैसा वोझ रख दिया है जीवन ने हृदय के ऊपर कि स्वप्नसमान हो गये वे? ग्रव उनकी स्मृतियां मात्र शेष रह गयी हैं।

सोलहवां परिच्छेद

पद्य-रचना

मास्को ग्राने के लगभग एक महीना वाद, नानी के घर में कोठे के ऊपर वैठा हुग्रा मैं कुछ लिख रहा था। वड़ी मेज़ के दूसरे किनारे पर हमारे ड्राइंग-शिक्षक पेंसिल से ग्रंकित एक तुर्क के मस्तक पर ग्रपनी पेंसिल चला रहे थे। मास्टर साहव के पीछे खड़ा हुग्रा वोलोद्या गर्दन टेढ़ी कर चित्र को देख रहा था। यह उसका प्रथम पेंसिल-चित्र था जो नानी को उपहार देने के लिए वनाया गया था क्योंकि ग्राज नानी ग्रपने इष्ट संत का पर्व* मनानेवाली थीं।

पंजों के वल खड़े होकर वोलोद्या ने तुर्क की गर्दन की ग्रोर संकेत करते हुए पूछा – "यहां थोड़ा ग्रौर गहरा रंग दिया जाय तो कैसा होगा?"

"नहीं इसकी ग्रावश्यकता नहीं," मास्टर साहव ने पेंसिल ग्रौर कलम चित्रकारी के वक्स में डालते हुए कहा। "ग्रव यह विलकुल ठीक है; इसमें हेर-फेर करने की कोई ज़रूरत नहीं।" इसके वाद कुर्सी से उठकर ग्रौर ग्रांखें दवाकर तुर्क के चित्र को देखते हुए उन्होंने मुझसे पूछा – "निकोलेंका! तुम्हारा क्या हाल है? ग्रपना भेद तुम नहीं वताग्रोगे? तुम नानी को क्या उपहार दोगे? ठीक ऐसा ही सिर तुम भी वना डालो! वहुत वढ़िया उपहार होगा वह। ग्रच्छा, सलाम, दोस्तो।" यह कहकर उन्होंने ग्रपना टोप ग्रौर रजिस्टर उठाया ग्रौर विदा हो गये।

उस समय मैं स्वयं सोचने लगा कि जो उपहार देना सोच रखा है उससे इस तरह का सिर भेंट करना ही ज्यादा ग्रच्छा होगा। जिस दिन हमें

---

*जिस संत के नाम पर व्यक्ति का नाम होता है उसका दिवस।–सं०

बताया गया था कि नानी का नाम-दिवस आने को है और हमें उस दिन उन्हें कोई उपहार देना है, उसी दिन मेरे दिमाग़ में आया था कि कोई कविता तैयार करूं। मैंने दो दोहे बैठा भी लिये थे तथा आशा कर रहा था कि बाकी आप ही आ जायेंगे। मैं स्वयं नहीं कह सकता कि ऐसा विचार किस तरह मेरे मस्तिष्क में उठा क्योंकि भेंट में कविता देने की बात एक बच्चे के लिए बिलकुल अनहोनी-सी है। पर इतना याद है कि यह सूझ आने से मैं बहुत ख़ुश हुआ था और उस दिन से जो भी उपहार के बारे में पूछता, उसे मैं यही जवाब देता कि नानी को मुझे भी उपहार देना है पर क्या चीज़ दूंगा यह अभी नहीं बता सकता।

किन्तु मेरी आशा निराशा में परिणत होने लगी क्योंकि जो दो दोहे मुझे तुरंत सूझ गये थे उनसे आगे गाड़ी बढ़ न रही थी। मैंने अपनी पाठ्य-पुस्तक की कविताओं का मनन करना आरंभ किया, पर न द्मीत्रियेव काम आये न देर्जाविन*। बल्कि उलटा परिणाम हुआ—मुझे दृढ़ निश्चय होने लगा कि कविता मेरे बूते के बाहर है। मुझे यह मालूम था कि कार्ल इवानिच को कविताएं उतारने का शौक है, इसलिए मैंने चुपके चुपके उनकी कापियों को ढूंढ़ डाला। उसमें जर्मन कविताओं के अतिरिक्त एक रूसी पद्य भी था जो निश्चय ही उनकी अपनी रचना रही होगी। कविता यों थी:

श्रीमती ल० को

दूर रहो, या
निकट रहो
पर मेरी याद भुलाना मत
यदि दुनिया के भी पार रहो
तो प्यार मेरा ठुकराना मत।

पेत्रोव्स्कोये १८२८, जून ३ कार्ल माउयेर

---

*दो रूसी कवि।—सं०

सुन्दर, बड़े अक्षरों में, पतले काग़ज़ पर लिखी हुई यह कविता मुझे बहुत पसंद आयी क्योंकि मुझे वह बड़ी कोमल भावनाओं से प्रेरित होकर लिखी गयी प्रतीत हुई। मैंने तुरंत उसे रट डाला और उसी के नमूने पर अपनी कविता तैयार करने का निश्चय किया। इसके बाद, काम तेज़ी से चल निकला। नाम-दिवस आने के पहले ही बधाई के मेरे बारह दोहे तैयार हो गये। पढ़ाई के कमरे में बैठकर मैं उन्हें पतले चर्म जैसे पत्र पर उतारने लगा।

दो पन्ने काग़ज़ यों ही बरबाद हो गये। इसका कारण यह न था कि कविता में मेरी दृष्टि से कोई अशुद्धि थी, बल्कि मुझे तो वह बड़ी ही सुंदर जंच रही थी। दरअसल लिखते समय पंक्तियां नीचे से ऊपर को चली गयीं, फलतः दूर से देखने पर भी सारी लिखावट टेढ़ी लग रही थी – बिलकुल रद्दी।

तीसरे पन्ने का भी वही हाल हुआ – पंक्तियां उसी तरह टेढ़ी हो गयीं। पर मैंने निश्चय कर लिया कि दुबारा उन्हें नहीं उतारूंगा। कविता में मैंने नानी को मुबारकबाद दिया था। उसके लिए पूर्ण स्वस्थ लम्बी आयु की कामना की थी और अंत में लिखा था:

तुम्हें पूजना हमको भाता,
करें प्यार ज्यों अपनी माता।

बड़ी अच्छी बनी थीं ये आख़िरी पंक्तियां, पर अंतिम शब्द न जाने क्यों मुझे बुरी तरह खटक रहे थे।

मैं उन्हें बार बार दुहरा रहा था–"करें प्यार ... ज्यों ... अपनी ... माता"। 'माता' की जगह कौनसा शब्द बैठेगा – 'आता' ... 'जाता'... 'सुहाता'? .. हटाओ भी। कार्ल इवानिच से तो अच्छी ही बनायी है कविता!

अतः, आख़िरी पंक्ति भी उतार डाली। इसके बाद सोने के कमरे में जाकर पूरी कविता भाव और मुद्रा के साथ, जोर से पढ़ी।

कई पंक्तियों में तो छन्द या अनुप्रास का सर्वथा अभाव था, पर इसकी मुझे चिंता न थी। आखिरी लाइन पर आकर मैं फिर अटक गया। इस वार उसके शब्द और भी ज्यादा अखरे। पलंग पर बैठकर मैं सोचने लगा:

"ज्यों 'अपनी माता' क्यों लिखा मैंने? वे यहां हैं नहीं, इसलिए उनका ज़िक्र करने की तुक ही क्या है? नानी को ज़रूर प्यार करता हूं, उसकी इज़्ज़त करता हूं, फिर भी वे मां की तरह नहीं हो सकतीं। फिर ऐसा मैंने लिखा ही क्यों? यह तो झूठ है। कविता है तो क्या, ऐसा काम मुझे न करना चाहिए था।"

इसी समय दर्ज़ी मेरे नये कपड़े लिये हुए आ पहुंचा।

"जाने दो, चलेगा ऐसे ही," मैंने ऊबकर कहा और पद्य को तकिये के नीचे रखकर दौड़ा अपनी नयी पोशाक ट्राई करने।

कपड़े लाजवाव सिले थे। हलके भूरे रंग का नाटा कोट जिसमें पीतल के वटन टंके थे एकदम फिट आता था। कैसा फ़र्क़ है देहात की सिलाई और मास्को की सिलाई में! काली पतलून भी खूव चुस्त सिली थी—पुट्ठे उसमें साफ़ उभरते थे और जूते छिप जाते थे। कारीगरी इसे कहते हैं।

मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। पैरों को चारों तरफ़ झटकारते हुए मैंने मन में कहा:

"अव मेरे पास सचमुच अच्छी पतलून हुई," नयी पोशाक तंग थी, चलने में काफ़ी दिक़्क़त होती थी; पर यह वात मैंने छिपा ली। उल्टा, यह कह दिया कि कपड़े विलकुल ठीक हैं, वल्कि ज़रा ढीले होते हैं। इसके वाद देर तक आइने के सामने खड़े होकर पोमेड लगे वालों में व्रुश फेरता रहा। पर कितना भी व्रुश करूं, खोपड़ी पर वालों का एक गुच्छा वैठने का नाम ही नहीं ले रहा था। खूव दवाने के वाद यह देखने को कि ठीक हो गया या नहीं, ज्योंही व्रुश को हटाता गुच्छा उठ खड़ा हो जाता और मेरा चेहरा हास्यास्पद दिखाई देने लगता।

कार्ल इवानिच दूसरे कमरे में कपड़े वदल रहे थे। उनका फांकवाला

नीला नया कोट और नयी कमीज़ पढ़ाईवाले कमरे से होकर उनके पास ले जायी गयी। नीचे की ओर जानेवाले दरवाज़े के ऊपर खड़े होकर नानी की एक परिचारिका ने आवाज़ दी। मैंने कमरे से निकलकर पूछा, क्या बात है? उसके हाथ में कलफ़ की हुई एक कॉलर-कमीज़ थी। बोली रात भर जागकर कार्ल इवानिच के लिए तैयार किया है। मैंने उसके हाथ से कॉलर-कमीज़ ले लिया और कहा कि कार्ल इवानिच के पास पहुंचा दूंगा। फिर दासी से मैंने पूछा, नानी उठ चुकी हैं या नहीं।

उसने जवाब दिया—"जी। वह तो कभी की जगी हुई हैं, बल्कि काफ़ी पीना भी ख़तम कर चुकी हैं और पादरी साहब भी आ गये हैं... कितने शानदार लगते हो नयी पोशाक में तुम!" उसने मेरे ऊपर नज़र फेंकते हुए मुसकराकर कहा।

उसकी टीका से मैं झेंप गया। इसके बाद एक टांग पर लट्टू की तरह घूमकर और उंगली चटखाकर मैंने जताया कि उसने जितना समझा है उससे कहीं ज्यादा गबरू बन गया हूं।

कॉलर-कमीज़ लेकर मैं जब कार्ल इवानिच के पास पहुंचा, उस समय वह दूसरा कॉलर धारण कर चुके थे और मेज़ पर रखे हुए छोटे शीशे के सामने मुंह कर टाई की शानदार गांठ दुरुस्त कर रहे थे। ऐसा करते समय उनका साफ़ हजामत बना हुआ चेहरा टाई के फंदे में इधर से उधर घूम रहा था। हमारे कपड़ों को अपने हाथों से बराबर कर, और निकोलाई से अपनी पोशाक को भी इसी तरह बराबर कराकर वह हमें नानी के यहां ले चले। यह याद कर मुझे हंसी आती है कि सीढ़ी से उतरते समय हम तीनों पोमेड की सुगंध से सराबोर थे।

हमने नानी को देने का अपना अपना उपहार हाथ में ले रखा था। कार्ल इवानिच के हाथ में उनका स्वयं बनाया हुआ एक छोटा-सा बक्स था; वोलोद्या चित्र लिए हुए था; और मेरे हाथ में कविता थी। हरेक ने उपहार भेंट करते समय की एक छोटी-सी वक्तृता रट रखी थी। जिस

वक्त कार्ल इवानिच ने वैठकखाने का दरवाज़ा खोला, पादरी साहव अपना चोगा धारण कर रहे थे। घुसने के साथ ही नाम-दिवस की विधियां आरम्भ हो गयीं।

नानी पहले ही वैठकखाने में पहुंच चुकी थीं। वह दीवार के पास खड़ी थीं। दोनों हाथ एक कुर्सी की पीठ पर टिकाकर वह भक्तिभाव से प्रार्थना करने में तल्लीन थीं। उनकी वग़ल में पिताजी खड़े थे। हम लोग दरवाज़े के पास ठिठककर अपने हाथ का उपहार छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे। पिताजी ने इधर मुड़कर हमारी चेष्टा देखी और लगे मुसकराने। हमने सोचा था हठात् अपने उपहार उपस्थित करेंगे जिससे सभी अचम्भे में आ जायेंगे। पर अव सभी हमारा इरादा जान गये। अप्रत्याशितता का मजा जाता रहा।

अव हमारे आगे वढ़कर क्रास चूमने की वारी आयी। यही समय था भेंट देने का। यकायक मेरे ऊपर लजालूपन का दौरा सवार हो गया। ऐसा लगने लगा कि नाड़ी छूट रही है। मैं कार्ल इवानिच के पीछे छिप गया। वह अपना उपहार दे चुके थे। आगे वढ़कर सजे-संवारे वाक्यों में उन्होंने नानी को नाम-दिवस की मुवारक दी थी, वक्स को दाहिने से वायें हाथ में लिया और नानी के हाथ में उसे रखकर उलटे पांव पीछे की ओर हट गये थे ताकि वोलोद्या अव अपना उपहार भेंटकर सके। उपहार पाकर नानी ने वड़ी प्रसन्नता दर्शायी। छोटे-से वक्स के किनारों पर गोटे लगे थे। नानी ने अपनी उत्कृष्टतम मुसकराहट के साथ कृतज्ञता प्रकट की। फिर भी यह स्पष्ट था कि वह असमंजस में पड़ गयी थीं— वक्स रखें तो कहां? सम्भवतः इसी कारण उसने वक्स वनानेवाले की कारीगरी की प्रशंसा करते हुए उसे पिताजी को सौंप दिया।

पिताजी ने अपना कुतूहल शांत कर लेने के वाद उसे पादरी साहव के हाथ में दिया जिन्होंने उस खिलौने को देखकर अतीव संतोप प्रगट किया। प्रशंसासूचक मुद्रा में उन्होंने अपना सिर हिलाया और वक्स तथा

उसके वनानेवाले कारीगर को यों देखने लगे मानो कह रहे हों—"वाह, कमाल किया है! वड़ी ही खूबसूरत चीज़ वनायी है!" वोलोद्या ने अपना तुर्क भेंट किया और उसे भी चारों तरफ़ से वाह-वाहियां मिलीं। अव मेरी वारी आयी और नानी प्रोत्साहनपूर्ण मुसकराहट के साथ मेरी ओर मुड़ीं।

लजालूपन का शिकार रह चुकनेवाले जानते हैं कि यह एक विचित्र रोग है—जितनी ही अधिक देर कीजिए उतना ही इसका दौरा तेज़ होता जाता है और संकल्प की दृढ़ता डगमगाने लगती है। दूसरे शब्दों में, जितना ही ज्यादा लम्बा इस वीमारी का दौरा होता है, उतना ही अधिक उसका इलाज मुश्किल होता जाता है और उसी मात्रा में संकल्पहीनता मनुष्य को आक्रांत कर लेती है।

कार्ल इवानिच और वोलोद्या के उपहार समर्पित कर चुकने के वाद मेरी रही-सही हिम्मत भी जाती रही और लजालूपन का दौरा अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। मुझे ऐसा लग रहा था कि शरीर का रक्त हृदय से दौड़ता हुआ मस्तिष्क पर चढ़ा जा रहा था। चेहरे पर रक्त आ-जा रहा था—वह कभी पीला और कभी लाल वर्ण का हो रहा था। शरीर पसीना पसीना हो गया था; नाक और माथे पर स्वेद की वड़ी वड़ी वूंदें फैल गयी थीं। शरीर सर्द हो गया था, कंपकंपी आ गयी थी। मैं कभी इस पांव और कभी उस पांव पर खड़ा होता लेकिन पैर आगे वढ़ने से इनकार कर रहे थे।

"इधर आओ, निकोलेंका, देखूं तुम क्या लाये हो—वक्स या चित्र," पिताजी ने कहा। अव कोई उपाय न रह गया था। कांपते हाथों से मैंने काग़ज़ का मुड़ा-चिमुड़ा मुट्ठा वढ़ा दिया, पर मुंह से एक शब्द भी न निकल सका। मैं नानी के सामने गुम-सुम खड़ा हो गया। काटो तो वदन में लहू नहीं। अव क्या होगा? मुझे भी चित्र ही देना चाहिए था। लेकिन न जाने कहां से तीन कौड़ी की यह कविता उपहार देने की सूझ आयी थी! अव यह कविता सभी के सामने पढ़ी जायगी—वह पंक्ति भी जिसमें मैंने लिखा

है "ज्यों अपनी माता" जिसका स्पष्ट अर्थ है कि अपनी माता को मैंने कभी हृदय से प्यार नहीं किया है और इतनी जल्दी उसे भूल गया हूं। नानी ज़ोर से मेरी कविता को पढ़ने लगी। एक जगह अक्षर न पढ़ सकने के कारण ठीक पंक्ति के बीच रुककर उन्होंने पिताजी की ओर देखा। मुझे उनके मुख पर व्यंगपूर्ण मुसकराहट खेलती दिखाई पड़ी। वह मेरे मन के माफ़िक उच्चारण नहीं कर रही थीं। आंखें कमज़ोर होने के कारण उन्होंने कविता खतम होने के पहले ही पिताजी के हाथ में दे दी और उनसे उसे फिर आद्योपांत सुनाने का अनुरोध किया। मैं ये सारी चेष्टाएं लक्ष्य कर रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि कलेजे पर आरा चल रहा है। अबूरी कविता जब नानी ने पिताजी के हाथ में दे दी तो मुझे ऐसा भास हुआ कि वास्तव में वह उस ऊलजलूल रचना को पढ़ना नहीं चाहती थी और उसे पिताजी को देने का स्पष्ट अर्थ यह था कि वह अंतिम पंक्ति को पढ़ें और देख लें कि मैं कैसा हृदयहीन हूं। मैं आशा कर रहा था कि कविता समाप्त करते ही वह उंगली से मेरी नाक पर ठोंका मारेंगे और कहेंगे—"दुष्ट लड़के! इतनी जल्दी अपनी मां को भूल गया तू!" पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। बल्कि कविता पूरी पढ़ी जा चुकने के बाद नानी ने कहा— «Charmant!»* और मेरा मस्तक चूम लिया।

छोटा बक्स, चित्र और कविता कतार से नानी की कुर्सी में लगी मेज़ के ऊपर रख दी गयी। वहीं किमरिख के दो रूमाल तथा एक सुंघनीदानी भी रखी हुई थी जिसके ऊपर अम्मा का चित्र मढ़ा हुआ था।

इतने में नानी की अरदली में निकलनेवाले दो विशालकाय भृत्यों में से एक ने आकर शाहज़ादी वार्वारा इलिनिचना के आने की सूचना दी।

नानी ध्यानमग्न होकर सुंघनीदानी के कछुए की हड्डी के बने ढक्कन में लगे हुए चित्र को देख रही थीं। उन्होंने जवाब नहीं दिया।

भृत्य ने फिर प्रश्न किया—"सरकार मुलाकात करेंगी उनसे?"

* [शानदार]

सत्रहवां परिच्छेद

शाहज़ादी कोर्नाकोवा

नानी ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"उन्हें अंदर ले आओ।"

शाहज़ादी की उम्र लगभग पैंतालीस साल की होगी। वह कद की नाटी, पतली, सूखी और ऐंठी हुई सी थीं। आंखों का रंग भूरा मिला हुआ हरा था और उनमें कोमलता का नितांत अभाव था। उन्हें देखने से स्पष्ट ज्ञात होता था कि ओठों पर उन्होंने नकली उल्लास ओढ़ रखा है। उनकी मखमली टोपी के नीचे से, जिसके ऊपर शुतुरमुर्ग के पंख की कलग़ी लगी हुई थी, उनके हल्के लाल केश झांक रहे थे। चेहरे पर रोगियों की सी जर्दी थी जिसके कारण उनकी भौंहों और पपनियों का रंग और भी हलका तथा लाल ज्ञात होता था। इन सारी चीज़ों के बावजूद उनकी चाल-ढाल में एक प्रकार की उन्मुक्तता थी। उनकी हथेलियां छोटी छोटी और मुखाकृति में एक विचित्र शुष्कता थी। इन चीज़ों से उनके व्यक्तित्व से चुस्ती और रियासत टपकती थी।

बोलने का उन्हें मर्ज़ था और उनका बातूनीपन देखकर बरबस उन आदमियों की याद आ जाती थी जो यों बोलते जाते हैं मानो कोई उनका खण्डन कर रहा है, यद्यपि ऐसी बात नहीं। एक बार उनका स्वर ऊंचा हो जाता और दूसरे बार धीरे धीरे नीचा। और फिर अचानक धारा फूट पड़ती और वह यों चारों तरफ़ देखने लगतीं मानो व्यापक समर्थन की आवश्यकता महसूस कर रही हैं।

यद्यपि शाहज़ादी साहिबा ने नानी का हाथ चूमा और उन्हें «ma bonne tante» * कहकर पुकारा, पर मैं स्पष्ट लक्ष्य कर रहा था कि नानी उनसे प्रसन्न न थीं। वह बतला रही थीं कि क्यों हार्दिक इच्छा रहते हुए भी शाहज़ादा मिखैलो मुबारक देने के लिए स्वयं उपस्थित

---

*[मेरी अच्छी मौसी]

न हो सके। किन्तु जिस समय वह यह सुना रही थी, उस समय नानी विचित्र ढंग से अपनी भौंहें ऐंठ रही थीं और शाहज़ादी की फ़्रांसीसी का उत्तर रूसी में दे रही थीं।

शब्दों को अजीव तरह से तानते हुए उन्होंने कहा – "अहोभाग्य है मेरा कि आप लोगों को मेरी इतनी चिंता है... और जहां तक शाहज़ादा मिखैलो के न आ सकने की बात है, इसकी चर्चा ही करना व्यर्थ है। उनके जितना व्यस्त आदमी भला कहां मिलेगा? इसके अलावा, मुझ वुढ़िया से मिलने आने में सुख ही क्या है?" इसके पहले कि शाहज़ादी साहिबा उनकी बात का खंडन कर सकें नानी ने झट दूसरा सवाल पूछ दिया – "अच्छा प्यारी, यह बताओ कि वच्चों का क्या हाल है?"

"भगवान की कृपा से वच्चे अच्छी तरह हैं, ma tante *। पढ़ाई-लिखाई चल रही है उनकी और शरारतें भी औवल दर्जे के हैं, ख़ासकर ईतिएन तो कमाल है। सबसे वड़ा वही है न। वह तो ऐसा दुष्ट हो गया है कि समझ ही में न ही आता क्या किया जाय। लेकिन है वड़ा होशियार लड़का और « un garçon, qui promet » **।" लेकिन नानी को शाहज़ादी के वच्चों में दिलचस्पी न थी। वह अपने ही नातियों के वारे में दून की हांकने को आतुर हो रही थीं, अतः उन्होंने वक्स पर से मेरी कविता उठा ली और वड़ी सावधानी के साथ उसके पन्ने उलटने लगीं। इस वीच शाहज़ादी पिताजी की ओर मुख़ातिव होकर उनको अपनी कहानी सुनाने लगी थीं। वह कह रही थीं – "जानते हैं भाई साहव, क्या किया उस लौण्डे ने एक दिन" – और लगीं वड़े प्रेम से कोई कहानी सुनाने। मैंने सुना नहीं कि वह क्या कह रही थीं, पर कहानी ख़तम हो जाने पर उन्होंने हंसते हुए जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से पिताजी की ओर देखा और वोलीं :

---

* [मेरी मौसी]

** [ख़ूव होनहार]

"अब कहिए, भाई साहब! क्या कहेंगे इसे? काम तो उसने कोड़े खाने का किया था लेकिन उसके दिमाग़ की तेज़ी को दाद देना ही पड़ा, इसलिए मैंने उसे माफ़ कर दिया।"

यह कहकर उन्होंने नानी की ओर देखा और मुसकराने लगीं, पर बोली नहीं।

नानी ने अपनी भृकुटी को अजीब ढंग से टेढ़ा कर सवाल किया—"अच्छा प्यारी, तुम बच्चों को मारा भी करती हो क्या?" 'मारा करती हो' पर उन्होंने विशेष ज़ोर दिया।

शाहज़ादी ने पिताजी की ओर दृष्टि फेंकते हुए, खुशमिज़ाजी के लहजे में कहा:

"क्या कहूं, ma bonne tante,* मैं जानती हूं कि इस सवाल के ऊपर आपकी राय क्या है। पर मुझे दुख है कि इस मामले में मेरी राय ज़रा भिन्न है, यद्यपि मैंने इस विषय के ऊपर बहुत कुछ पढ़ा और सोचा है। लोग चाहे जो कहें, मेरा अपना पक्का तजुरबा यही है कि बच्चों के ऊपर भय से ही शासन किया जा सकता है। भय के बिना बालक का चरित्र गढ़ना नामुमकिन है। क्यों, भाई साहब मैं ठीक कह रही हूं न? आप ही बताएं कि छड़ी से ज्यादा बच्चे क्या किसी और चीज़ से भय खाते हैं?"

यह कहकर उन्होंने हम लोगों की ओर देखा और मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि उनकी उस दृष्टि ने मुझे सहमा दिया।

"कहने को आप जो भी कहें, पर बारह या चौदह साल का बच्चा बच्चा ही कहा जायगा। हां, लड़कियों की बात और है।"

मैंने मन में सोचा—"अपना भाग्य सराहना चाहिए कि मैं इनका बेटा नहीं हूं।"

---

* [मेरी अच्छी मौसी]

"ये तो तुम वहुत अच्छी वातें कह गयीं," नानी ने कविता को मोड़कर उसे वक्स के नीचे दवाते हुए यों कहा मानो उपरोक्त विचार सुनने के वाद शाहज़ादी को वैसी रचना सुनने के अयोग्य करार दिया हो, "पर यह वताओ कि ऐसे व्यवहार के वाद अपने वच्चों में क्या किसी तरह की कोमल भावना की अपेक्षा कर सकती हो?"

और अपने इस तर्क को अकाट्य मानते हुए नानी ने वार्तालाप का अंत कर देने के निमित्त कहा:

"जो भी हो, हर आदमी को इस विषय पर अपना अलग मत रखने का अधिकार है।"

शाहज़ादी कुछ वोलीं नहीं, केवल मुसकरा दीं मानो कह रही हों कि नानी के वड़े-वुजुर्ग होने की वजह से वह उनकी ऊटपटांग राय को अनुग्रहपूर्वक क्षम्य मानने को तैयार हैं।

फिर उसी अनुग्रहपूर्ण मुसकान के साथ हम लोगों की ओर देखकर वह वोलीं—"ज़रा अपने वच्चों से परिचय तो करा दीजिये मेरा।"

हम उठ खड़े हुए और शाहज़ादी के चेहरे पर दृष्टि अटकाकर देखने लगे; पर हमें यह न सूझ सका कि परिचय-क्रिया का पूर्ण होना किस प्रकार जतायें।

पिताजी ने निर्देश किया—"शाहज़ादी के हाथ का चुम्वन करो!"

"अपनी वड़ी मौसी को प्यार करोगे न?" वोलोद्या के मस्तक को चूमकर वह वोलीं। "मैं तुम्हारी दूर के रिश्ते की मौसी होती हूं, पर रक्त-संवंध से मित्रता के संवंध को मैं अधिक वड़ा समझती हूं," उन्होंने फिर कहा। उनकी इस उक्ति का लक्ष्य मुख्यतः नानी थीं, पर वह उनसे अभी तक नाराज़ ही थीं। वोलीं:

"तुम भी क्या खूव कहती हो? आजकल भी भला ऐसी रिश्तेदारियों की कोई कीमत है?"

"ये साहवज़ादे खूव चलते-पुर्ज़े निकलेंगे," पिताजी ने वोलोद्या

की ओर इशारा करके कहा, "और ये हज़रत शायर हैं।" जिस वक्त उन्होंने यह बात कही मैं शाहज़ादी के शुष्क छोटे हाथ का चुम्बन करते हुए बड़ी स्पष्टता के साथ यह कल्पना कर रहा था कि उस हाथ में छड़ी है, छड़ी के नीचे बेंच है, और ...

"कौन शायर?" शाहज़ादी ने मेरा हाथ पकड़कर कहा।

"यही छोटेवाले हज़रत जिनके बाल खड़े हैं," पिताजी ने हंसकर कहा।

मुझे बहुत बुरा लगा।

"मेरे खड़े बालों से इन्हें मतलब? और कुछ कहने को नहीं मिला? मैंने मन में कहा और जाकर कोने में खड़ा हो गया।

सुंदरता के बारे में मेरी धारणाएं विचित्र थीं। मैं कार्ल इवानिच तक को संसार के सुंदरतम पुरुषों में गिनता था; पर अपने बारे में मुझे बखूबी पता था कि मेरी सूरत-शक्ल अच्छी नहीं। मेरा ख्याल ग़लत भी न था। यही कारण है कि अपनी सूरत के संबंध की कोई चर्चा मुझे बहुत ही बुरी लगती थी।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार अम्मा और पिताजी भोजन के वक्त मेरी सूरत-शक्ल की विवेचना कर रहे थे। उस समय मैं छः साल का था। अम्मा मेरे चेहरे में सौंदर्य के चिन्ह ढूंढ़ निकालने का प्रयास कर रही थीं—वह बोलीं "आंखें इसकी बड़ी प्रतिभापूर्ण हैं," और "मुसकराता है तो अच्छा लगता है"। पर पिताजी के तर्कों तथा प्रत्यक्ष प्रमाण से क़ायल होकर उन्होंने स्वीकार किया कि मेरा चेहरा-मोहरा अत्यंत साधारण है। और इसके बाद जब मैंने भोजन के लिए उन्हें धन्यवाद दिया तो मेरे गालों को थपथपाते हुए बोलीं:

"एक बात याद रखना, बेटा! सूरत पर कोई तुझे प्यार नहीं करेगा। इसलिए खूब नेक और लायक बनने की कोशिश करना—समझे न?"

इन शब्दों से मेरे मन में यह तो बैठ ही गया कि मैं सुंदर नहीं हूं, साथ ही यह भी विश्वास हो गया कि मुझे ज़रूर नेक और लायक बनना है।

फिर भी कभी कभी हिम्मत हार जाता था। मुझे लगता ऐसी चपटी नाक, मोटे ओठ, और छोटी छोटी भूरी आंखों वाले के लिए जीवन में सुख नहीं है। मैंने ईश्वर से प्रार्थना की कि जादू-मंत्र से मुझे सुंदर बना दे; बदले में मेरे पास जो भी है, या जो भी होगा, न्योछावर करने को तैयार हूं।

अठारहवां परिच्छेद

प्रिंस इवान इवानिच

जब शाहज़ादी ने कविता सुन ली और उसके लेखक की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं तो नानी पसीज गयीं। अब वह उनसे फ़्रांसीसी में बोलने लगीं, तथा 'तुम',* और 'मेरी प्यारी' वाला सम्बोधन छोड़ दिया; और शाम को फिर, बाल-बच्चों समेत, आने को निमंत्रित किया। शाहज़ादी ने इसे स्वीकार कर लिया और कुछ देर और ठहरकर विदा हो गयीं।

दिन भर आगंतुकों का तांता लगा रहा। दरवाज़े के पास के आंगन में निरंतर बहुत-सी गाड़ियां खड़ी थीं, लोग नानी को मुबारकबाद देने आ रहे थे।

एक आगंतुक ने कमरे में प्रवेश करके फ़्रांसीसी में «bonjour, chère cousine»** कहकर नानी को सम्बोधित किया और उनके हाथ का चुम्बन लिया।

आगंतुक की अवस्था लगभग सत्तर वर्ष की रही होगी। उनका कद असाधारण लम्बा था। उन्होंने फ़ौजी वर्दी पहन रखी थी जिसके कंधों पर विशाल झब्बे टंके हुए थे। कमीज़ के कॉलर के नीचे एक बड़ा सफ़ेद

---

* अर्थात् अब 'तू' कहकर सामीप्य प्रगट किया। – सं०

** [प्यारी दीदी को नमस्कार]

क्रास दिखाई दे रहा था। उनकी मुखाकृति निष्कपट, शांत और भव्य थी। उनकी चालढाल की सादगी और उन्मुक्तता देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। उनके चेहरे से अब भी सुंदरता टपकती थी, यद्यपि सिर खल्वाट हो चुका था – केवल गर्दन के पास बालों की एक अर्ध चंद्राकार पंक्ति बच रही थी – तथा पोपला ऊपरी ओठ दांतों के अभाव का निर्देश कर रहा था।

पिछली शताब्दी के अंतिम चरण में, छोटी ही अवस्था में शाहज़ादा इवान इवानिच ने अपने महान चरित्र, सुंदर व्यक्तित्व, असाधारण वीरता, नामी और प्रभावशाली परिवार तथा सबसे अधिक भाग्य की प्रबल रेखा के ज़ोर से बड़ा यश उपार्जित किया था। वह फ़ौज में थे और वहां उनकी महत्वाकांक्षाएं इतनी शीघ्र पूरी हुई कि चाहने को कुछ न रहा। नौजवानी के दिनों से ही उनकी चालढाल और कार्यशैली ऐसी थी मानो वह अभी से उस उच्च ओहदे को ग्रहण करने की तैयारी कर रहे हों जिसे भाग्य ने उन्हें अंततः प्रदान किया। ऐसी बात नहीं कि निराशाओं या नाकामियों का उन्हें सामना करना ही न पड़ा हो। उनके शानदार एवं प्रायः मिथ्या अहंकार से परिपूरित जीवन में असफलताएं भी आयीं जो प्रायः सबों के जीवन में आया करती हैं लेकिन शांत स्वभाव, ऊंचे ख्यालात तथा धर्म और नैतिकता संबंधी सुदृढ़ सिद्धांतों ने उनका कभी साथ न छोड़ा और जो यश उन्होंने अर्जित किया वह ऊंचे ओहदे से अधिक चारित्रिक दृढ़ता और सिद्धांतनिष्ठा के सहारे। किताबी ज्ञान के मामले में वह कुछ मशहूर न थे, पर जिस ओहदे को वह सुशोभित करते थे उसमें उनके लिए यह सम्भव था कि जीवन की साधारण समस्याओं के प्रति उच्च उपेक्षा का रुख रख सकें और उनकी मननशीलता की सतह ऊंची हो। स्वभाव उनका दयालु और भावुक था पर वाह्य व्यवहार में वह रूखे और शानियत दिखाई देते थे। इसका कारण यह था कि जिस ओहदे पर वह थे उसमें उन्हें पैरवीकारों के घेराव का सामना करना पड़ता था, अतः उन्हें रूखेपन का कवच धारण करना पड़ा था। पर इस रूखेपन में उच्चतम

समाज के सदस्य की सहज शालीनता का पुट मिला हुआ था। अनुग्रहपूर्ण विनम्रता उपेक्षा का असर कम कर देती थी।"

वह सुसंस्कृत और सुशिक्षित व्यक्ति थे। पर युवावस्था में जो उन्होंने पढ़ा और सीखा था वही उनकी आत्म-शिक्षा की सीमारेखा थी। दूसरे शब्दों में, पिछली शताब्दी के अंतिम चरण तक। अठारहवीं शताब्दी तक, फ़्रांस में दर्शन एवं वाक्-विद्या के विषय पर जो भी लिखा गया था उससे वह सुपरिचित थे। उस युग की सभी विशिष्ट फ़्रांसीसी साहित्यिक कृतियां उन्होंने पढ़ी थीं, अतः रेसिन, कोर्न्येल, बोइलो, मोलियर, मोंटेन तथा फ़ैनीलों की अनेक सुंदर उक्तियां उन्हें याद थीं और उन्हें उद्धृत करने में उन्हें रस प्राप्त होता था। दंतकथाओं का उनका ज्ञान बेजोड़ था; सभी प्राचीन काव्यग्रंथों के वह फ़्रांसीसी में अनुवाद पढ़ गये थे। सैगुर की कृतियों से उन्होंने इतिहास का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था। किन्तु गणितशास्त्र की उनकी जानकारी साधारण अंकगणित तक सीमित थी। भौतिक विज्ञान एवं समकालीन साहित्य का भी उन्हें ज्ञान न था। गेटे, शिलर और बाइरन की चर्चा आने पर वह या तो विनम्र मौन से काम लेते अथवा कुछ सामान्य टीकाओं से संतोष कर लेते; पढ़ा इनमें से किसी को न था उन्होंने। फ़्रांसीसी तथा ग्रीक एवं लैटिन का ज्ञाता होने के बावजूद जो आज के युग में साधारण चीज़ नहीं है, उनकी बातचीत में बड़ी ही सादगी थी। वस्तुतः अनेक विषयों की उनकी अज्ञानता इस सादगी में छिप जाती थी; साथ ही उनके बोलने में सहिष्णुता एवं सुरुचि का पुट आ जाता था। उन्हें झक्कीपन से सख़्त चिढ़ थी। उनका कहना था कि झक्कीपन वास्तव में गंवारूपन की अभिव्यक्ति है। अकेलापन उन्हें पसंद न था—जहां भी हों उन्हें दस आदमियों की संगत चाहिए थी। चाहे मास्को में रहें, चाहे विदेश में उनके यहां मेहमानों का जमघट रहता। प्रायः पूरा नगर ही निमंत्रित होकर उनके घर उठ आया करता था। समाज में उनका ऐसा स्थान था कि उनका निमंत्रण प्राप्त करने का अर्थ था संभ्रांत से

संभ्रांत परिवारों में दाख़िला पा जाना। वहुतेरी नौजवान सुंदरियां वड़ी चाह के साथ अपने गुलावी गालों पर उनसे चुम्वन प्राप्त करती थीं, और यह क्रिया वह पितृतुल्य प्यार का प्रदर्शन करते हुए सम्पन्न करते थे। अनेक वड़े एवं संभ्रांत व्यक्ति – कम से कम वाहर से ऐसे ही दिखनेवाले – उनकी पार्टियों में वुलावा पाकर उछल पड़ते थे।

उनकी पुरानी मित्र-मण्डली के – उसी उम्र, शिक्षा एवं विचारों के – वहुत थोड़े ही लोग वच गये थे। इनमें नानी एक थीं। यही कारण है कि उनकी वह वड़ी क़दर करते थे।

मैं उनकी ओर टकटकी लगाकर देखता ही रह गया। हर आदमी उनके प्रति विशेष आदर प्रदर्शित कर रहा था। नानी उनके आने से वहुत ही प्रसन्न हुई। इसके अतिरिक्त, उनके विशाल ख़ब्बों तथा नानी से उनका भय न खाना और समानता का व्यवहार करना – यहां तक कि उन्हें फ़ांसीसी में ma cousine * कहकर संवोधित करना – इसने मुझे वहुत प्रभावित किया। उनके प्रति मेरे मन में वही श्रद्धा जाग उठी जो नानी के प्रति थी। जव नानी ने उन्हें मेरी कविता दिखायी तो उन्होंने मुझे अपने पास वुलाया और वोले – "कौन जानता है, ma cousine यह दूसरा देर्जाविन ही निकल सकता है!"

यह कहकर उन्होंने मेरा गाल इतने ज़ोर से खींचा कि मैं रो पड़ने को हो गया। किन्तु यह समझकर कि वस्तुतः वह प्यार दर्शाने के लिए ऐसा कर रहे हैं मैं चुप रहा।

अव मेहमान लोग विदा हुए। पिताजी और वोलोद्या भी वाहर चले गये। केवल प्रिंस, नानी और मैं वैठकख़ाने में रह गये।

कुछ क्षण मौन के वाद प्रिंस इवान इवानिच अचानक पूछ वैठे – "नाताल्या निकोलायेवना क्यों नहीं आयी प्यारी?"

---

* [मेरी मौसेरी वहिन]

"क्या कहूं मैं?" नानी ने ठण्डी निश्वास छोड़ते हुए सिर झुकाकर तथा हाथ उनकी वर्दी की आस्तीन पर रखकर कहा। "यदि वह अपनी इच्छा के अनुसार चल पाती तो अवश्य आती यहां। उसने लिखा है कि Pierre* ने उसे भी चलने को कहा, पर उसी ने इनकार कर दिया क्योंकि इस साल हाथ बहुत तंग हैं। इसके अलावा उसने लिखा है–'पूरी गृहस्थी को लेकर मास्को आऊं भी कैसे? ल्यूबोच्का अभी बच्ची ही है और जहां तक दोनों लड़कों का सवाल है, उनके तुम्हारे पास रहने से मैं ज्यादा निश्चिंत हूं।' बातें तो बड़ी अच्छी लिखी हैं उसने," नानी ने कहा, पर उसके लहजे से ज़ाहिर था कि दरअसल वह इसे बड़ा अच्छा बिलकुल ही नहीं समझती। "लड़कों को बहुत पहले ही यहां भेज देना चाहिए था जिससे वे कुछ सीख-पढ़ सकते और समाज में उठने-बैठने लायक हो जाते। देहात में भला क्या शिक्षा हो सकती थी उनकी? बड़े की उम्र तेरह होने को आयी है और दूसरा भी ग्यारह साल का होगा। आपने तो देखा ही है, mon cousin, उन्हें अभी साधारण शिष्टाचार की बातें भी नहीं ज्ञात हैं; कमरे में प्रवेश कैसे करना चाहिए यह भी अभी उन्होंने नहीं सीखा है।"

"लेकिन मुझे एक बात समझ में नहीं आती–हमेशा पैसे की किल्लत की शिकायत क्यों करते हैं ये लोग! उनकी जायदाद तो अच्छी-खासी है और नाताशा की अपनी खाबारोव्का की ज़मींदारी है ही। वहीं नाटक में कितनी बार तुम्हारे साथ पार्ट किया था। उस गांव का तो कोना-कोना छाने हुए हूं। बड़ा शानदार गांव है और उसकी आमदनी भी बहुत अच्छी होनी चाहिए!"

नानी का चेहरा उदास हो गया। वह बीच ही में टोककर बोली–"तुम तो घर के आदमी ठहरे, तुमसे क्या परदा–पर मेरा तो खयाल

---

*बातचीत पिताजी के बारे में चल रही है। –सं०

है कि यह सब निरी बहानेबाज़ी है ताकि ये हज़रत अकेले मास्को में मौज करें, क्लबों और दावतों की सैर तथा और भी न जाने क्या-क्या करें। पर वह संदेह भी नहीं करती है। तुम तो जानते ही हो, कितने सरल स्वभाव की है वह – वह आंख मूंदकर इनके ऊपर भरोसा करती है। इन्होंने उसे समझा दिया होगा कि लड़कों को मास्को में रखना ज़रूरी है तथा उसे खुद उस मूर्ख अभिभाविका के साथ देहात में ही रहना चाहिए, और आंख मूंदकर उसने मान लिया होगा इनकी नेक सलाह को। अगर ये उसे समझायें कि शाहज़ादी वार्वारा इलिनिचना की तरह बच्चों पर कोड़ेबाज़ी करना आवश्यक है तो वह शायद इसे भी मान लेगी।" ये शब्द नानी ने कुर्सी पर करवट पलटते हुए बड़े तिरस्कारपूर्ण लहजे में कहे और इसके बाद दो क्षणों के लिए चुप हो गयी। फिर मेज़ से एक रूमाल उठाकर उससे आंख में आये आंसू की एक बूंद पोंछी और कहना जारी रखा – "यही तो बात है मेरे दोस्त। मैं तो अक्सर सोचती हूं कि ये हज़रत उसकी क़दर नहीं जानते और न उसके हृदय को ही समझते हैं। और वह बेचारी भी लाख नेक हो, इन्हें प्यार करती हो तथा अपने दिल की कसर को छिपाने की कोशिश करती हो, पर इनके साथ खुश नहीं। मैं तो कहती हूं कि अगर इन्होंने ..."

नानी ने यह कहते हुए रूमाल से अपना चेहरा ढंक लिया।

शाहज़ादा ने मीठे उपालंभ के स्वर में कहा – «Eh! ma bonne amie»* तुम्हारी आदत गयी नहीं है। जब भी होता है व्यर्थ की कोई न कोई चिंता लेकर अपने को घुलाती रहती हो। छिः! मैं उसे बहुत दिनों से जानता हूं – बड़ा नेक, पत्नी का पूरा ख्याल रखनेवाला लायक पति है। और सब से बड़ी बात तो यह है कि आदमी un parfait honnête homme»**

---

* [अब देखो, प्राणप्रिये]
** [निहायत ईमानदार]

३४०

विना जाने और विना चाहे मैंने एक ऐसा वार्तालाप सुन लिया था जिसे मुझे सुनना न चाहिए था। मैं फ़ौरन दवे पांवों कमरे से वाहर हो गया। लेकिन उस वातचीत ने आंधी की तरह मेरा मस्तिष्क झकझोर दिया था।

उन्नीसवां परिच्छेद

ईविन परिवार

"वोलोद्या! वोलोद्या! ईविन विरादर आ रहे हैं," खिड़की से तीनों भाइयों को आता देख मैं चिल्लाया। तीनों भाइयों ने नीले ओवरकोट पहन रखे थे जिनके कालर ऊदविलाव की खाल के थे। सामने की पटरी से सड़क पार कर वे हमारे घर की ओर आ रहे थे। उनके साथ उनका नौजवान छैला मास्टर था। तीनों ईविन हम लोगों की ही उम्र के थे। उनसे हमारी रिश्तेदारी भी लगती थी। मास्को आने के कुछ ही दिनों वाद उनके साथ हमारा परिचय हुआ था और हम लोगों में वड़ी घनिष्ठता हो गयी थी।

दूसरे लड़के का, जिसका नाम सेर्योजा था, रंग सांवला और केश घुंघराले थे। उसकी नाक छोटी और आगे से उठी हुई थी। ओंठ अत्यंत सरल और लाल थे। उसके ऊपर के दांत कुछ वड़े और श्वेत थे जो लाल ओंठ से वाहर झलकते रहा करते थे। उसकी आंखें और भी सुंदर एवं नीले रंग की थीं। पूरी आकृति से चुस्ती टपकती थी। वह मुसकराता नहीं था—या तो संजीदा वना रहता या ज़ोर से हंस पड़ता। उसकी उन्मुक्त उल्लासपूर्ण हंसी में छूत का असर था। उसकी असाधारण सुंदरता ने मुझे प्रथम दृष्टि में ही मोह लिया था, उसे देखते ही मेरी वाछें खिल जातीं। मेरी सदा यही लालसा रहती कि वह मेरी आंखों के सामने रहे। उसे देखे विना यदि तीन-चार दिन गुज़र जाते तो मन उदासी से भर जाता और रुलाई आने लगती। सोते

जागते मेरे सामने उसका चेहरा नाचता रहता था। सोने जाता तो मेरी यही इच्छा होती कि सपने में उसे ही देखूं। आंख बंद कर लेने पर उसका सुंदर चेहरा आकर सामने खड़ा हो जाता और मुझे विभोर कर देता। मेरे मन की जो हालत थी उसे मैं ही समझ सकता था, दूसरे किसी को बतलाना असंभव था। उसे बोलोद्या के साथ खेलने और बातें करने में ही अधिक आनंद आता था। संभवतः इसका कारण मेरी बेचैन निगाहें थीं जो सदा उसी पर टिकी रहतीं। इससे संभवतः उसे परेशानी होती थी। पर इसका कारण यह भी हो सकता है कि उसका मन मुझसे नहीं मिलता था। जो भी हो मुझे उसके सामने रहने मात्र से ही पूर्ण संतोष था, मुझे और कुछ न चाहिये था। बल्कि मैं उसके लिये सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार था। उसके प्रति उत्कट अनुराग के अतिरिक्त उसे पाकर एक और भावना, जो उतनी ही बलवती थी मेरे मन में जाग उठा करती थी वह थी यह आशंका कि शायद मेरे किसी कार्य-कलाप से वह दुख मान जाये, उसके हृदय को चोट लगे अथवा वह मुझ से नाखुश हो जाय। मैं उसे जितना प्यार करता था उतना ही उससे भय खाता था। इसका कारण शायद उसका अहंकारपूर्ण व्यवहार था। यह भी हो सकता है कि स्वयं अपनी सूरत से घृणा होने के कारण मेरी सौंदर्यपूजक प्रवृत्ति अतिरंजित हो गयी हो। किंतु वास्तविक कारण संभवतः यह है कि यही प्रेम की निश्चित निशानी है। प्रथम बार जब सेर्योजा मुझसे बोला था तो आनंदातिरेक से मेरी ऐसी अवस्था हो गयी थी जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मुझे ऐसा लगा था कि मैंने कोई अप्रत्याशित वरदान प्राप्त कर लिया है। मेरे चेहरे का रंग उड़ गया था, मैं शर्मा गया था और मुंह से एक शब्द न निकल सका था। उसकी एक बुरी आदत थी—कुछ सोचते समय वह किसी वस्तु पर दृष्टि अटकाकर भौंहों तथा नाक को विचित्र ढंग से सिकोड़ने लगता था। सभी लोग कहते थे कि यह आदत

वड़ी वुरी पड़ गयी है उसे, लेकिन मुझे वह इतनी आकर्षक मालूम हुई कि विना जाने ही मैंने उसकी नकल करनी शुरू कर दी। हमारी पहली जान-पहिचान के कुछ ही दिनों वाद एक दिन नानी मुझसे पूछ वैठीं—"क्या हुआ है तुम्हारी आंख को—इस तरह उल्लू की तरह पलकें क्यों मटका रहे हो ?" हम दोनों के वीच प्रेम-प्यार का कभी एक शब्द भी नहीं कहा गया। पर उसे मेरे ऊपर अपने प्रभाव का ज्ञान था और इसका वह अनजाने ही कठोरता से इस्तेमाल भी किया करता था। जहां तक मेरा प्रश्न था, मेरा हृदय उसके चरणों में न्योछावर हो जाने को विलकुल तैयार था, पर उसके भय के मारे मैं खुलकर वोल नहीं सकता था। मैं उदासीन होने का स्वांग करता था, पर उसके हर इशारे पर नाचना ही मेरा काम था। कभी कभी उसका प्रभाव मुझे उत्पीड़क और असह्य ज्ञात होता था। पर उससे छूट सकूं ऐसी शक्ति मुझमें न थी। निस्वार्थ और निःसीम प्यार की उस स्वच्छ, सुंदर भावना को जो अभिव्यंजना अथवा प्रतिदान प्राप्ति के विना मुरझा गयी आज जव याद करता हूं तो हृदय में एक हूक-सी उठती है।

जव वालक था तो वड़ों जैसा वनने की कोशिश करता था और अव, वालपन छूट जाने के वाद वालक वनने की लालसा होती है। कैसा आश्चर्यजनक है यह व्यापार। दवाये रखता था इस तीव्र इच्छा के कारण कि सेर्योजा मुझे वच्चा न समझे, मैं अपने दिल को जो वार वार उसे अपना हाल सुनाने के लिये मचल उठता था छल-छंद लगाकर मन की मन ही रख लेता था। प्रायः दिल कुरेदता था कि उसे चूम लूं या उसका हाथ अपने हाथ में लेकर वता दूं कि उसे देखकर मुझे वहुत ही खुशी होती है। पर ऐसा कर गुजरने की कभी हिम्मत नहीं हुई। यहां तक कि उसे कभी सेर्योजा कहकर पुकारने का भी साहस नहीं हुआ... सदा औपचारिक "सेर्गेइ" कहकर ही उसे संवोधित किया। मेरी यह धारणा थी कि भावावेशों को प्रगट करना लड़कपन है, वह इस वात

का निर्विवाद प्रमाण उपस्थित करना है कि आप निरे बच्चे हैं। वय:प्राप्त लोग जीवन के कटु अनुभवों से गुजर चुकने के कारण पारस्परिक व्यवहार में सावधानी एवं उपेक्षाभाव से काम लेते हैं। किन्तु हमने बालोचित कोमल प्यार के विशुद्ध आनंद से केवल इसलिए अपने को वंचित कर लिया था कि 'बड़ों' जैसा बनना चाहते थे।

मैं नीचे दौड़ा और बाहरवाले कमरे में जाकर तीनों भाइयों का अभिनंदन किया। इसके बाद दौड़कर नानी को उनके आने की ख़बर दी मानो उनकी भी सारी ख़ुशी इसी समाचार पर निर्भर थी। इसके बाद सेर्योजा के पीछे लगा हुआ मैं बैठक में गया। मेरी आंखें एक क्षण को भी उसे छोड़ने को तैयार न थीं। उसकी हर चेष्टा मैं अपनी आंखों से जैसे पी रहा था। नानी ने अपनी पैनी दृष्टि से कुछ देर उसे देखा और फिर बोलीं– "तू बहुत बड़ा हो गया है।" जब तक वह उसे निहारती रहीं मैं भय और आशा के बीच झूलता रहा। मेरी अवस्था उस चित्रकार की सी थी जो अपनी कृति को ऐसे आलोचक के हाथ में रखकर जिसकी राय का वह आदर करता है, निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा हो।

ईविन भ्राताओं के नौजवान मास्टर Herr Frost नानी से अनुमति लेकर हमारे साथ सामनेवाले बगीचे में चले गये, वहां एक हरी बेंच पर टांगें फैलाकर और उनके बीच अपनी पीतल की मूठवाली छड़ी टिकाकर बैठ गये और सिगार निकालकर पीने लगे। सदा की भांति वह हज़रत अपने आपसे अत्यंत संतुष्ट नज़र आ रहे थे। Herr Frost भी जर्मन थे पर कार्ल इवानिच से बिलकुल भिन्न। एक तो वह रूसी बिलकुल सही बोलते थे लेकिन फ़्रांसीसी का उनका उच्चारण बहुत ख़राब था। लोगों में ख़ासकर महिला समाज में, उन्होंने अपने पांडित्य की धाक जमा रखी थी। दूसरे, वह लाल-सी मूंछें रखते थे, काली सैटिन के अपने कालर में लालमणि का बड़ा-सा पिन लगाते थे और

हल्के नीले रंग की पतलून पहनते थे। तीसरे, वह नौजवान थे, देखने-सुनने में अच्छे और सदा बने-संवरे रहते थे। उनकी टांगें बड़ी सुंदर और गठी हुई थीं। अपनी टांगों का उन्हें प्रगट रूप से बड़ा घमंड था। उनका विचार था कि स्त्रियां उनपर मोहित हुए बिना नहीं रह सकतीं और संभवतः यही कारण था कि अपनी टांगों का प्रदर्शन करने का कोई अवसर वह हाथ से नहीं जाने देते थे। बैठे हों या खड़े, उनकी पिंडलियां नाचती रहती थीं। वह उन रूसी जर्मनों में से थे जो छैला बने महिलाओं में सर्वप्रियता प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

बाग में बड़े आनंद से हमारा खेल चल रहा था। हम लोग डाकू-डाकू खेल रहे थे। बड़ा आनंद आ रहा था, लेकिन एक घटना ऐसी हो गयी जिसने लगभग सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। सेर्योजा डाकू बना हुआ था। मुसाफ़िरों को पकड़ने के लिए दौड़ते समय वह अचानक गिर पड़ा और उसका घुटना इतने ज़ोर से एक पेड़ के तने से जा टकराया कि हम लोगों ने यही समझा कि हड्डी टूट गयी है। मैं सिपाही बना हुआ था और मेरा काम था उसे गिरफ़्तार करना, पर मैं इसे भूल गया और उसके पास जाकर हमदर्दी के साथ पूछने लगा कि चोट तो नहीं लगी है? सेर्योजा बिगड़ खड़ा हुआ, मुट्ठी ताने हुए पैर पटककर ज़ोर से ऐसे स्वर में बोला जिससे स्पष्ट ज्ञात होता था कि उसे बहुत दर्द हो रहा है। "चोट लगी तो तुम्हें क्या? तुम सारा खेल बिगाड़ दे रहे हो। चलो, गिरफ़्तार करो मुझे, करते क्यों नहीं?" यह उसने कई बार कहा और कनखी से वोलोद्या और बड़े ईविन की ओर देखता रहा जो मुसाफ़िर होने के नाते भागे जा रहे थे। इसके बाद वह ज़ोर से चिल्लाया और फिर हंसकर दोनों के पीछे दौड़ पड़ा। उसकी इस बहादुरी से मैं अत्यंत प्रभावित हुआ। इतने ज़ोर की चोट होते हुए भी रोना तो दूर रहा, उसने यह भी नहीं प्रगट होने दिया कि चोट लगी है और न खेल को बिगड़ने दिया।

इसके थोड़ी ही देर बाद ईलिंका ग्राप भी हम लोगों की मण्डली में शरीक हो गया और हम लोग खेलने के लिये कोठे पर चले गये। वहां भी सेर्योजा ने जिस शौर्य और दृढ़ता का परिचय दिया उसने मुझे दंग कर दिया और मेरा मन आनंद से भर गया।

ईलिंका ग्राप का पिता एक गरीब विदेशी था जिसके साथ नाना ने कभी कोई बड़ा उपकार किया था। उसका विचार था कि अपने बेटे को कभी कभी हमारे घर भेजकर वह एक आवश्यक कर्तव्य पूरा कर रहा है। यदि उसकी यह धारणा थी कि उसके बेटे को हम लोगों की मण्डली में आकर बड़ा सम्मान अथवा सुख प्राप्त होता है तो यह उसकी बड़ी भूल थी क्योंकि इलिंका के साथ हम लोगों ने कभी मित्रता का व्यवहार नहीं किया। मित्र का व्यवहार करना तो दूर रहा, हम उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते थे। केवल चिढ़ाने या मज़ाक करने की इच्छा होने पर ईलिंका हमारे उपयोग में आता। उसकी उम्र लगभग तेरह साल की रही होगी। वह दुबला-पतला और लम्बा था... पीला और पक्षियों जैसा चेहरा। उसकी आकृति से अतीव सिधाई और परवशता टपकती थी, पोशाक उसकी गरीबों की सी थी, लेकिन बालों में वह इतनी चिकनाहट पोते रहता था कि हम लोग कहा करते थे कि धूप में चलने पर ईलिंका के माथे की पोमेड पिघल कर गरदन के रास्ते उसके कोट में घुस जाती होगी। इस वक़्त जब उसकी याद करने की कोशिश करता हूं तो यही याद आता है कि वह बड़ा भला, नेकदिल और सीधा लड़का था, लेकिन उस समय हम सभी उसे बड़ी हिक़ारत की नज़र से देखा करते थे। यह सोचना तो दूर रहा कि हमें उसके साथ दोस्तों का सा सुलूक करना चाहिये, हम उसे गिनती में ही न रखते थे।

डाकू का खेल समाप्त हो जाने के बाद हम लोगों ने कोठे पर जाकर एक दूसरे को कलाबाज़ियां, नाच और कसरत के करतब दिखाने शुरू किये। ईलिंका संकुचित प्रशंसा की दृष्टि से हम लोगों की कुलांचें

देख रहा था। हम लोगों ने उसे भी खेल दिखाने को कहा तो बोला कि नहीं मैं इतना तगड़ा नहीं हूं, ये सब खेल नहीं जानता। सेर्योजा इतना आकर्षक लग रहा था कि देखते ही बनता था। उसने अपनी जाकेट उतार दी थी, और उसके ऊपर खेल का नशा सवार हो गया था। आंखें चमक रही थीं, गाल तमतमाये हुए थे और लगातार हंसी के फ़ौवारे छूट रहे थे। वह तरह-तरह के खेल गढ़ रहा था – एक बार तीन कुर्सियां सटाकर उन्हें एक छलांग में डाक गया, फिर गाड़ी के पहिये की तरह चक्कर काटा, उसके बाद कमरे के बीच तातीश्चेव का कोष* रखकर उसके ऊपर सिर के बल खड़ा हो गया और अपनी टांगों को ऐसे विचित्र ढंग से हवा में हिलाने-डुलाने लगा कि सभी हंस पड़े। अंतिम खेल दिखाने के बाद वह एक क्षण के लिये कुछ सोचने लगा। ऐसा करते समय आदत के मुताबिक उसकी आंखें मटमटा रही थीं। और तब अत्यंत संजीदा बनकर ईलेंका के पास गया और बोला – "अब ज़रा तुम भी यही खेल दिखाओ, बिलकुल आसान है।" आप ने देखा सभी की दृष्टि उसी की ओर मुड़ गयी थी। उसका चेहरा लाल हो गया और बड़ी धीमी आवाज़ में बोला – "मुझे नहीं आता।"

"क्या हो गया है उसको, हर बात में न। लड़का है या लड़की? नहीं सिर के बल खड़ा होना ही होगा उसे। देखें कैसे भागता है!"

यह कहकर सेर्योजा ने उसका हाथ पकड़ लिया। "हां, हां, फ़ौरन।" कहते हुए हम सबों ने ईलेंका को घेर लिया। वह घबरा उठा और उसके चेहरे का रंग उड़ गया। हम लोगों ने उसका हाथ पकड़ लिया और खींचकर शब्दकोष के पास ले गये।

वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा – "छोड़ दो मुझे। ठहरो, मैं करता हूं। मेरे कपड़े फट जायेंगे।" पर उसकी चिल्लाहट से हम लोगों

---

* रूसी शब्दकोष। –सं०

के ऊपर नशा-सा चढ़ गया। मारे हंसी के हमारा वुरा हाल था। उसकी हरी जाकेट चरमराकर फटी जा रही थी।

वोलोद्या और वड़े ईविन ने उसका सिर झुकाकर किताव के ऊपर रखा। सेर्योजा और मैंने वेचारे की पतली टांगों को पकड़ा जिन्हें वह ज़ोरों से भांज रहा था, और उसकी पतलून घुटने तक चढ़ गई। छोटे ईविन ने वीच से पकड़कर उसे सीधा करने की कोशिश की। इस तरह सव ने मिलकर उसे सिर नीचे और पांव ऊपर कर खड़ा किया। हंसते-हंसते हम लोट-पोट हो रहे थे।

इसके वाद हंसी हठात् वंद हो गयी और कमरे में निस्तव्वता छा गयी। केवल वेचारे ग्राप का हांफ़ना सुनाई पड़ रहा था। मेरे हृदय में तव भी यह वात निश्चित तौर पर स्पष्ट न थी कि हंसी या दिल्लगी की कौन सी वात उसमें है।

सेर्योजा ने ग्राप की पीठ ठोंकते हुए कहा—"अव हुए अच्छे लड़के तुम! वेकार ज़रा सी वात के लिये नखरे कर रहे थे।"

ईलेंका कुछ नहीं वोला। अपने को छुड़ाने के लिये वह दुलत्तियां झाड़ रहा था। अकस्मात उसकी लात ज़ोर से सेर्योजा की आंख में लगी। वह तिलमिला उठा। ईलेंका की टांग उसके हाथ से छूट गयी और आंखों से टपाटप पानी गिरने लगा। उसने ईलेंका को ज़ोर से ढकेल दिया, वह धमाक से फ़र्श पर गिर पड़ा। रोने स्वर में वह इतना ही वोला:

"तुम लोग मुझे क्यों इतना तंग करते हो?" वेचारे की पूरी दुर्गति हो गयी थी। गाल आंसुओं से भीगे हुए थे, वाल विखरे हुए और पतलून घुटनों तक चढ़ी हुई थी जिसके नीचे मैल से भरी टांग दिखाई पड़ रही थी। हम लोगों के मन में अव दिल्लगी न थी, सभी चुप खड़े होकर वनावटी मुस्कान लाने की चेष्टा कर रहे थे।

सवसे पहले सेर्योजा अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गया। पैर

से ग्राप को हल्का धक्का देते हुए वह बोला—"बड़े रोते हो जी तुम! मज़ाक में भी रो देते हो। छि:! उठो, पड़े क्या हुए हो?"

"तुम बड़े दुष्ट हो," ईलेंका ने विगड़कर कहा श्रौर मुंह फेरकर रोने लगा।

"क्या कहा तुमने! एक तो मुझे दुलत्ती लगा दी श्रौर श्रव गाली भी दे रहा है। ठहरो।" सेर्योजा ने यह कहकर शब्दकोप उठा लिया श्रौर लगा श्रभागे ग्राप के सिर पर उसे मारने। उसने सहमकर दोनों हाथ सिर पर रख लिये। "यह लो! श्रौर एक यह भी!.. श्रौर श्रव छोड़ दो इसे। मज़ाक भी नहीं समझ सकता है यार! चलो हम लोग नीचे चलें," सेर्योजा ने नकली हंसी हंसते हुए कहा।

मुझे उस बेचारे पर दया ग्रा रही थी। वह शब्दकोप में मुंह छिपाये श्रभी तक फ़र्श पर पड़ा हुग्रा था। सिसकियों के कारण उसकी पूरी देह हिल रही थी।

"यह क्या किया तुमने सेर्योजा," मैंने कहा।

"यह ग्रच्छी रही। मेरा तो घुटना कट गया था फिर भी नहीं रोया।"

"यह तो ठीक है," मैंने मन में सोचा, "ईलेंका सचमुच भारी रोंदू लड़का है श्रौर यह सेर्योजा कितना बहादुर है।"

उस समय मैंने यह नहीं सोचा कि ग्रभागा ग्राप चोट के कारण उतना नहीं रो रहा था जितना इस ख्याल से कि पांच लड़कों ने जिनकी मित्रता का वह भूखा था मिलकर उसके साथ दुर्व्यवहार किया।

मुझे ग्रपनी बेरहमी के ऊपर ग्राश्चर्य होता है। मैं उसका पक्ष ले सकता था, कम से कम उसे धैर्य बंधा सकता था। कहां गयी मेरी वह सहृदयता जो कौए के बच्चे को घोंसले से गिरा देखकर, या पिल्ले को सड़क पर पड़ा देखकर ग्रथवा मुर्गी के बच्चे को बावर्ची खाने में ले जाते देखकर मेरी ग्रांखों में ग्रांसू ला देती थी? संभवत: सेर्योजा के प्रेम ने

अथवा सेर्योजा जैसी मर्दानगी प्रदर्शित करने की इच्छा ने उसे दबोच दिया था। यदि यह सच है तो प्रेम अथवा मर्दानगी प्रदर्शित करने की वह प्रेरणा कोई सद्‌गुण न थी। हमारे बाल्यकालीन स्मृतियों की किताब में वही एक काला धब्बा है।

बीसवां परिच्छेद

घर में आगंतुक

आज घर में असाधारण चहल-पहल है। रसोईघर में विशेष तैयारियां हो रही हैं। बैठक और प्रतीक्षालय में रोशनी की गयी है जिससे दोनों कमरे जगमग कर रहे हैं। प्रिंस इवान इवानिच ने अपने बाजेवालों को भेज दिया है। प्रगट है, आज रात बहुत से मेहमान जुटेंगे।

घोड़ा गाड़ी आने की आवाज़ कान में पड़ते ही मैं खिड़की के पास दौड़ पड़ता और शीशे के साथ नाक सटाकर उत्कण्ठापूर्वक किसी नये अतिथि के आने की प्रतीक्षा करता। खिड़की के बाहर गहरा अंधकार था। देर तक दृष्टि गड़ाने के बाद सड़क के उस पार की सुपरिचित दूकान और उसमें लटकती हुई लालटेन दिखायी देती थी। उसी से थोड़ा हटकर एक बड़ा मकान था जिसकी नीचे की मंज़िल में दो खिड़कियां नज़र आ रही थीं जिनमें से प्रकाश आ रहा था। सड़क पर कोई इक्केवान दो सवारियां लादकर जा रहा था, कोई ख़ाली बग्घी मंथर गति से घर लौट रही थी। इतने में एक गाड़ी सायेबान के सामने आकर लगी। मैं इस निश्चय के साथ नीचे दौड़ा कि इसमें तीनों भाई ईविन होंगे क्योंकि उन्होंने पहले ही पहुंचने को कहा था। बाहरवाले कमरे में आकर मैंने देखा ईविन बंधुओं के बदले दो महिलाएं उतर रही हैं। वर्दी पहने नौकर ने दरवाज़ा खोल दिया और दोनों महिलाएं उसके पीछे कमरे में दाखिल हुईं। एक लम्बी थी और उसने रोएंदार खाल के कालर का नीला लबादा पहन रखा था। दूसरी, जो छोटी थी,

हरे दुशाले में सिर से पांव तक लिपटी हुई थी। केवल छोटे छोटे पांव जिनमें रोएंदार खाल के जूते थे दिखाई पड़ रहे थे। उसने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया यद्यपि मैंने अपना कर्तव्य समझकर उन्हें अभिवादन किया था। वह वड़ी के पास जाकर खड़ी हो गयी। वड़ी ने छोटी के सिर में लपेटे हुए रूमाल को खोल दिया और लवादे के वटन खोल डाले, इवर वर्दी पहने नौकर ने उसके रोएंदार खाल के जूते खोल दिये। इस प्रकार एक सुंदर वारहवर्षीय वालिका अनावृत हुई जिसने नीचे गले का श्वेत मलमली फ़ाक, सफ़ेद जनानी पतलून और छोटी काली स्लीपर पहन रखी थी। उसकी घवल ग्रीवा के ऊपर काला मखमली फ़ीता वंधा हुआ था। मस्तक पर काली घुंघराली लटें विखरी हुई थीं जिनके नीचे उसका सुंदर मुखमंडल अत्यंत शोभा दे रहा था। अलकें वल खाती हुईं उसके घवल कंधों के ऊपर छायी हुई थीं। उस समय यदि कार्ल इवानिच ने भी कहा होता कि उन अलकों के घुंघरालेपन का रहस्य इस में है, कि उन्हें सुवह से ही "मास्को गज़ेट" अखवार के टूकड़ों में वांध कर रखा गया था और फिर गरम लोहे की सलाखों पर लपेटा गया था, तो मैं विश्वास न करता। वे घुंघराली अलकें सर्वथा जन्मजात जान पड़ती थीं।

वालिका के रूप की सर्वप्रधान विशिष्टता थी असाधारण, अर्धनिमीलित आंखें। उन विशाल आंखों के साथ छोटे-से मुंह का कोई मेल न था, किंतु यह विरोध ही उसकी छवि को निखार रहा था। उसके दोनों ओंठ भिंचे हुए थे। आंखों में गंभीरता थी और पूरी आकृति से ऐसा भास होता था कि मुसकान उसके लिये अपरिचित वस्तु है। यही कारण है कि मुस्कराने पर उसकी खूवसूरती दोवाला हो जाती थी।

उसने मुझे देखा नहीं, अतः अव मैं उसकी नज़र वचाकर चुपके से हाल में चला गया। वहां मैं यों चहलकदमी करने लगा मानो विचारों में डूवा होने के कारण अतिथियों के उतरने की मुझे खवर न हो

सकी है। दोनों के कमरे के बीच में पहुंचने पर मानो चौंककर मैंने उन्हें प्रणाम किया और सूचना दी कि नानी बैठकखाने में है। मैंदम वालाहिना ने मनोहारी शिष्टता के साथ सिर हिलाकर मेरे अभिवादन का उत्तर दिया। उसका चेहरा मुझे अत्यंत आकर्षक ज्ञात हुआ विशेषकर इसलिए कि पुत्री सोनेच्का के साथ उसका गहरा सादृश्य था।

नानी ने सोनेच्का को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और एक लट को, जो माथे पर लटक आयी थी, अपने हाथ से संवार दिया। फिर उसके चेहरे को गौर से देखने के बाद बोलीं – «Quelle charmante enfant!» * सोनेच्का मुस्करायी और इसके बाद लज्जा की रक्तिमा उसके कपोलों पर दौड़ गयी। उसका शर्माना इतना मनमोहक था कि मैं भी शर्म से लाल हो गया। "मुझे आशा है कि तेरा मन यहां लगेगा, मेरी बिटिया," नानी ने ठुड्डी पकड़कर उसका मुंह ऊपर उठाते हुए कहा। "खूब खेलो और नाचो। एक महिला और दो भद्र पुरुष तो हो ही गये," उसने मैडम वालाहिना की ओर देखकर और मुझे हाथ से छूते हुए कहा।

इस प्रकार पारस्परिक परिचय प्राप्तकर मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ और फिर हठात् शर्मा गया।

मेरा शर्मीलापन बढ़ता जा रहा था जब एक और गाड़ी लगने की आवाज़ आयी। मैं फिर दौड़ा। बाहरवाले कमरे में शाहज़ादी कोर्नाकोवा और उनका लड़का खड़ा था। साथ में उनकी लड़कियां थीं जिनकी संख्या गिनकर ही बतायी जा सकती थी। पर शक्ल-सूरत में सभी एक-सी थीं... मां की ही तरह बदसूरत। लबादे और अन्य लवाज़मात उतारने के साथ ही सबकी सब तेज़ आवाज़ में एक ही बार चों-चों कर उठीं। संभवतः उनकी हंसी और कोलाहल का कारण उनकी संख्या थी।

---

*[कैसी मोहनी सूरत!]

ईतिएन पंद्रह साल का लम्बा, मोटा-ताज़ा लड़का था। उसके चेहरे पर लाली न थी और आंखें धंसी हुई थीं जिनके नीचे नीले गढ़े थे। उम्र के लिहाज़ से उसके हाथ और पैर बेतरह लम्बे थे, उसकी चाल-ढाल भद्दी और स्वर कर्कश और अप्रिय था। किंतु इन चीज़ों की उसे परवाह न थी। वह पूर्ण आत्मसंतुष्ट नज़र आता था। मैंने उसके विषय में तत्काल यह धारणा बनायी कि कोड़ाख़ोर बालकों की जमात का वह निश्चय ही अग्रणी होगा।

कुछ देर हम दोनों आमने-सामने खड़े रहकर एक दूसरे को देखते रहे। कोई कुछ न बोला फिर दोनों ही चुम्बन के लिये आगे बढ़े किंतु किसी कारणवश, एक दूसरे को आंखों-आंखों में देख लेने के बाद हमने यह इरादा बदल दिया। लड़कियां एक एक कर पोशाकें सरसराती हुई मेरी बग़ल से निकल गयीं। अंतिम के चली जाने के बाद मैंने बातचीत शुरू करने के ख़याल से प्रश्न किया कि गाड़ी में तो तिल रखने की भी जगह नहीं रही होगी?

"पता नहीं," उसने लापरवाही के साथ कहा। "बंदा तो कभी गाड़ी के अंदर बैठता नहीं। मेरा सिर घूमने लगता है और अम्मा इसे जानती हैं। इसलिये हम शाम को कहीं के लिये भी निकलते हैं तो मैं ऊपर कोचवान की बग़ल में डटकर बैठता हूं। बड़ा मज़ा आता है वहां... आदमी सब कुछ देख सकता है। इसके अलावा फ़िलिप मुझे ही लगाम दे देता है। कभी-कभी तो कोड़ा भी मैं ही ले लेता हूं। उस समय एकाध कोड़ा अगल-बगल राह चलनेवालों पर भी पड़ जाता है," उसने कनखी भर कर कहा। "बड़ी मौज रहती है।"

इतने में उसके अर्दली ने कमरे में दाख़िल होकर पूछा—"हुज़ूर! फ़िलिप पूछ रहा है कि सरकार ने कोड़ा कहां रखा है?"

"क्या कहता है? मैंने उसी को तो दे दिया था।"

"वह कहता है आपने नहीं दिया उसे।"

"तब, उसे लालटेन की बगल में खोंस दिया होगा।"

"फ़िलिप कहता है कि लालटेन पर भी कोड़ा नहीं है। आप कहते क्यों नहीं कि कोड़ा आप से खो गया है आपका तो खेल हुआ पर बेचारे फ़िलिप को दण्ड लग जायेगा।" प्रगट था कि अर्दली गुस्से से भरा हुआ था।

वह फ़िलिप का पक्ष लेकर अड़ा हुआ था। उसे आत्ममर्यादा का बोध था। साथ ही स्वभाव भी थोड़ा चिड़चिड़ा था। मैं वहां से धीरे से टल गया मानो कुछ सुना ही नहीं क्योंकि मेहमान की बेइज़्ज़ती हो रही थी। लेकिन वहां खड़े हुए नौकर-चाकरों का दूसरा रवैया था, वे और निकट आ गये। उनकी दृष्टि बता रही थी कि अर्दली के व्यवहार का वे अनुमोदन करते हैं।

और कैफ़ियत देने से बचने के लिये ईतिएन ने कहा—"अच्छी बात है। मैंने खो ही दिया कोड़ा, करते क्या हो तुम? मैं दाम दे दूंगा। दो कौड़ी की चीज़ के लिये इतनी बकवाद मचा रखी है... अच्छा तमाशा है।" यह कहते हुए वह मेरे पास आ गया और मुझे लेकर बैठक की ओर चल दिया।

"माफ़ करियेगा हुज़ूर, लेकिन दाम दीजियेगा कैसे आप? आठ महीने से आप मार्या वासील्येव्ना का बीस कोपैक मारे हुए हैं। मेरे पैसे भी अभी तक बाकी ही हैं और पेत्रुश्का बेचारे को दो साल हो गये..."

"बंद कर ज़बान!" नौजवान शाहज़ादे ने गुस्से से तमककर कहा, "मैं कह दूंगा।"

"मैं कह दूंगा! कह दूंगा! क्या कह दीजियेगा?" अर्दली ने मुंह चिढ़ाया। "शर्म आनी चाहिये आप को"। उसने दुखित हृदय से कहा। हम लोग बैठक में घुस गये और अर्दली लबादों को समेटकर कपड़े टांगने की आलमारी की तरफ़ चला गया।

"ठीक किया है। ठीक किया है।" पीछे के कमरे से किसी की आवाज़ आयी।

किसी व्यक्ति के विषय में अपनी राय प्रगट करने के लिए नानी 'आप' और 'तू' का बड़ा विलक्षण प्रयोग किया करती थीं। दोनों शब्दों का वह बिल्कुल उलटे अर्थों में इस्तेमाल करती थीं। जब नौजवान शाहज़ादा उनके पास गया तो उन्होंने उसे 'आप' कहकर संबोधित किया, पर आदर नहीं तिरस्कार था उनकी दृष्टि में, ऐसा तिरस्कार कि कोई और होता तो झेंप जाता। पर ईतिएन और ही सांचे का ढला लड़का था... उसने नानी के उस स्वागत की ओर ध्यान ही न दिया और विशिष्ट रूप से नानी को प्रणाम करने के बदले सभी लोगों को एक साथ अभिवादन किया। उसके अभिवादन में परिष्कार का अभाव था किंतु झेंप या हिचकिचाहट न थी।

मेरा ध्यान सोनेच्का पर केंद्रित था। मैं, वोलोद्या और ईतिएन एक स्थान पर थे। बातें करते समय मैं देख लिया करता था कि सोनेच्का है या नहीं। यदि वह सामने होती तो मैं वार्तालाप में बढ़-बढ़कर हिस्सा लेता। कोई ऐसी उक्ति जो मेरी समझ से विनोदपूर्ण अथवा मर्दानी थी कहते समय मेरा स्वर ऊंचा हो जाता और मैं झांककर बैठक के दरवाज़े की ओर देख लेता। किंतु जब हम ऐसी जगह होते जहां से बैठक में हमें देखना या हमारी बातचीत सुन सकना असंभव था तो मैं मौन हो जाता एवं बातचीत मुझे नीरस और निरानंद जान पड़ने लगती।

बैठकख़ाना और प्रतीक्षालय धीरे-धीरे मेहमानों से भर गये। बच्चों का भी अच्छा जमघट हो गया। उनमें कई अधिक उम्रवाले लड़के भी थे और जैसा ऐसी पार्टियों में होता है वे नृत्य और रासरंग का यह अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहते किंतु इस दिखावे के साथ कि मेजबान को खुश करने के ही लिए वे नाचें गायेंगे।

अब तीनों ईविन भी आ पहुंचे। किंतु आज सेर्योजा को पाकर मुझे वह खुशी न हुई। खुशी की जगह मुझे यह परेशानी सता रही थी कि वह सोनेच्का को देखेगा और सोनेच्का उसे देखेगी।

इक्कीसवां परिच्छेद

मजुरका* से पहले

"देखता हूं तुम्हारे यहां आज नाच की तैयारी है," सेर्योजा ने बैठक से बाहर आते हुए कहा। यह कहकर उसने जेब से बकरे की खाल के दस्तानों का नया जोड़ा निकाला और बोला—"दस्ताने पहन लेना चाहिये।"

"हम लोग क्या करेंगे, हमारे पास तो दस्ताने हैं ही नहीं," मैंने मन में सोचा। "चलें कोठे पर, शायद ढूंढ़ने से एकाध जोड़ा कहीं मिल जाय।"

लेकिन वहां तमाम दराज़ों को ढूंढ़ डालने के बाद केवल अपने हरे सफ़री सूती दस्ताने मिले। इसके अलावा एक पुराना, मैला और बड़े साइज़ का बकरे की खाल का दस्ताना भी निकला लेकिन एक ही हाथ का और उसकी भी बिचली उंगली ग़ायब थी। संभवतः किसी की उंगली को चोट आ जाने पर ऊपर से बांधने के लिए कार्ल इवानिच इस भाग को काटकर ले गये थे। पर मैंने उसे ही पहन लिया। बिचली उंगली, जिसमें सदा स्याही लगी रहा करती थी, नंगी रह गयी।

"इस समय यदि नाताल्या साविश्ना यहां होती तो मेरे लिये अवश्य एक जोड़ा दस्ताना ढूंढ़ निकालती," मैंने मन में कहा। अब बिना दस्ताने के नीचे जाना भी असंभव था क्योंकि अगर लोग पूछते कि नाच क्यों नहीं रहे हो तो क्या जवाब देता? रुक जाना भी उतना ही असंभव था क्योंकि नीचे फ़ौरन मेरी खोज होने लगती। मैं बड़ी असमंजस में पड़ गया।

इतने में वोलोद्या दौड़ता हुआ आया और बोला—"तुम यहां क्या

---

*तिताला पोलिश नृत्य।—सं०

कर रहे हो? नाच शुरू होने ही जा रहा है ... जल्दी से अपनी संगिनी तय कर लो।"

मैंने अपना हाथ दिखलाते हुए, जिसकी केवल दो उंगलियां दस्ताने के अंदर थीं, हताश स्वर में कहा—"वोलोद्या! क्या तुम भूल गये? इसका क्या होगा?"

"क्या?" उसने अधीर होकर कहा, "... ओ! दस्ताने! हां, इनकी ज़रूरत तो होगी। हमारे पास नहीं हैं। चलो नानी से पूछें क्या किया जायेगा," उसने लापरवाही से कहा और विना कुछ सोचे नीचे भागा।

मैं जिस वस्तु को इतना अधिक महत्व दे रहा था उसके विषय में वोलोद्या में उपेक्षाभाव देखकर मैं आश्वस्त हो गया। मैं भी उसके पीछे बैठकखाने की ओर भागा और यह भूल गया कि मेरे बायें हाथ में फटा दस्ताना है।

बड़ी सावधानी के साथ मैं नानी की कुर्सी के पास जा खड़ा हुआ। और हल्के से उसका लबादा छूकर उसके कान में कहा—"नानी, हम लोग क्या करें? हम लोगों के पास दस्ताने नहीं हैं।"

"क्या, बेटे?"

"हम लोगों के पास दस्ताने नहीं हैं," मैंने और भी सटकर तथा उसकी कुर्सी की बांह पर दोनों हाथ रखकर दुहराया।

हठात् उनकी दृष्टि मेरे हाथ पर पड़ी और वह बोल उठीं—"और यह क्या है?" इसके बाद मैडम वालाहिना की ओर मुड़ते हुए उन्होंने कहा—«Voyez, ma chère, voyez comme ce jeune homme s'est fait élégant pout danser avec votre fille»*

---

*[ज़रा इधर तो देखना प्रिये। देखो इन हज़रत को। तुम्हारी बेटी के साथ नृत्य करने के लिये कैसे बन संवरकर आये हैं!]

नानी ने मुझे कसकर पकड़ लिया और मुझे सब मेहमानों को दिखाने लगी। सभी ने कुतूहलपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा और हंसने लगे।

मैं शर्म से गड़ा जा रहा था और अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। उस समय यदि सेर्योजा ने मुझे देख लिया होता तो मैं समझता कि मेरी पूरी दुर्गति हो गयी। पर सोनेच्का की उपस्थिति ने मुझे विचलित नहीं किया। वह इतने ज़ोर से हंस रही थी कि उसकी आंखों में पानी आ गया। घुंघराली अलकें रक्तिम चेहरे पर नाच रही थीं। उसकी हंसी सीधे हृदय से निकलनेवाली स्वाभाविक हंसी थी, मज़ाक या चिढ़ाने की हंसी नहीं। बल्कि हम दोनों साथ हंस पड़े और इसने हमें परस्पर निकटतर ला दिया। दस्ताने की घटना मेरे लिये अपशकुन सिद्ध हो सकती थी, पर हुआ उसका उलटा। मेरी झिझक जाती रही और बैठकखाने में एकत्रित मेहमान जिनसे मुझे पहले डर लग रहा था अब सहज और साधारण ज्ञात होने लगे। जिस समय मैंने नृत्यशाला में पैर रखा मेरी झिझक सम्पूर्णत: जाती रही थी।

लजालु प्रकृति वालों की मुसीबत का मुख्य कारण यह होता है कि उनके दिल में अपने विषय में लोगों की राय के बारे में आशंका बनी रहती है। राय अच्छी हो या बुरी जिस समय उसका पता लग जाता है मुसीबत का अपने आप अंत हो जाता है।

भद्दे नौजवान शाहज़ादे के साथ सोनेच्का बालाहिना 'फ़्रांसीसी चौताला' नाच रही थी। बला की सुंदरी थी वह। कतार पूरी करने के लिये जिस वक्त उसने अपना हाथ मेरे हाथ में रखा था कितनी मनमोहक थी उसकी मुस्कान! नाच के तालों पर उसकी सुनहली घुंघराली अलकें भी नाच रही थीं। उसके उन छोटे पैरों की थिरकन में अजीब भोलापन था। पांचवें चरण में मेरी साझेदार अलग होकर दूसरी ओर चली गयी और मैं एकांत नृत्य के वाद्य संकेत की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय सोनेच्का ने गंभीरतापूर्वक अपने ओंठ भींच लिये और तिरछा ताकना

शुरू किया। पर उसे मुझसे भयभीत होने की कोई आवश्यकता न थी। मैंने इतमीनान से एक थिरकन आगे और एक थिरकन पीछे देकर पूरी की और जब उसके नज़दीक पहुंचा तो हंसी से दस्तानेवाला हाथ, जिसकी दो उंगलियां बाहर झांक रही थीं, उसके सामने कर दिया। वह ज़ोर से हंस पड़ी। हंसी की फुलझड़ियों के साथ मोम लगे हुए फ़र्श पर पैर और भी अधिक मनमोहक ढंग से थिरकने लगे। मुझे याद है एक दूसरे का हाथ थामकर घेरा बनाते समय उसने सिर झुकाकर बिना मेरे हाथ से हाथ अलग किये ही अपनी छोटी सी सुंदर नाक खुजलायी थी। आज भी वह दृश्य चित्र की तरह मेरी आंखों के सामने है और 'डैन्यूब की सुंदरी' शीर्षक उस चौताला नृत्य की ध्वनियां कानों में गूंज रही हैं।

दूसरे चौताले में स्वयं सोनेच्का मेरी संगिनी थी। इसके बावजूद मध्यांतर में जब दोनों साथ बैठे तो मैं विचित्र झिझक महसूस कर रहा था और मेरी समझ में न आता था कि क्या बात करूं। मौन जब ज्यादा देर तक जारी रहा तो मुझे आशंका होने लगी कि वह मुझे मूर्ख न समझने लगे और जैसे भी हो उसे अपने प्रति इस भूल से उबारने के लिये मैंने साहस बटोरकर फ़्रांसीसी में कहा—«Vous êtes une habitante de Moscou?»* उससे सकारात्मक उत्तर पाकर मैंने फिर कहा—«Et moi je n'ai encore jamais fréquenté la capitale»** यह कहते समय «fréquenter»*** शब्द के उसपर पड़नेवाले प्रभाव पर मैं विशेष ध्यान दे रहा था। पर उसके बाद ही मैंने महसूस किया कि वार्तालाप का क्रम जो बड़े शानदार ढंग से आरंभ हुआ था और जिसने फ़्रांसीसी भाषा के मेरे ज्ञान का उसपर सिक्का जमा दिया था अधिक देर जारी नहीं रखा जा सकता। हम लोगों के नाचने की

---

* [तुम मास्को की रहनेवाली हो?]
** [और मैं तो राजधानी फिर कभी नहीं आने का]
*** [आने का]

वारी आने में देर थी और इस बीच मौन ने हमें फिर घेर लिया। मैंने किंचित उद्विग्नता के साथ उसकी ओर देखा। उस देखने में अपने प्रति उसकी प्रतिक्रिया जानने की जिज्ञासा थी, साथ ही सहायता की याचना। हठात् वह पूछ बैठी – "यह लाजवाब दस्ताना कहां से निकाला था तुमने?" इस प्रश्न ने मुझे आश्वस्त कर दिया, साथ ही अतीव प्रसन्नता हुई। मैंने कहा, दस्ताना कार्ल इवानिच का है, इसके बाद मैं कार्ल इवानिच का व्यंग्यपूर्ण वर्णन करने लगा .... जब वह लाल टोपी उतार ले तो उसकी खल्वाट खोपड़ी बड़ी मज़ेदार लगती है, एक बार हज़रत हरा ओवरकोट पहिने घोड़े पर चले जा रहे थे कि मुंह के बल कीचड़ में बड़ाम से गिरे इसी लहज़े में। इसी क्रम से मैं बातें करता रहा। चौताला की समाप्ति का हमें पता ही न चला। उस बातचीत में बहुत रस आ रहा था। किंतु बेचारे कार्ल इवानिच का क्यों मज़ाक बनाया मैंने? जो प्यार और आदर उनके लिये मेरे हृदय में था उसे सोनेच्का के सामने प्रगट करने से क्या मैं उसकी दृष्टि में गिर जाता?

चौताला समाप्त हो जाने के बाद सोनेच्का ने मधुरिमा घोलते हुए ऐसे स्वर में 'धन्यवाद' कहा मानों मैंने वास्तव में उसे उपकार के बोझ से लाद दिया हो। मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही और मेरा रोम-रोम एक विलक्षण आत्मविश्वास और साहस से भर गया जिसका स्रोत मैं नहीं समझ पाया। मुझे ज्ञान हुआ कि मैं विश्वविजयी हूं और यही भावना लेकर मैं नृत्यशाला में टहलने लगा।

सेर्योजा ने मुझसे vis-à-vis* नाचने को कहा। मैंने कहा – "मेरे पास कोई संगिनी नहीं है, पर मैं ढूंढ़ लाऊंगा।" यह कहकर मैंने कमरे में चारों तरफ़ अपनी आत्मविश्वासभरी नज़र दौड़ायी – सभी लड़कियां किसी न किसी साथी के साथ नाच रही थीं। केवल एक तरुणी

---

*[आमने-सामने]

बैठकखाने के द्वार पर अकेली खड़ी थी। एक नौजवान उसे संगिनी बनाने के लिये निमंत्रित करने के लिए उसकी ओर बढ़ रहा था। वह उससे कोई दो क़दम पर रह गया था जब कि मैं हाल के दूसरे छोर पर था, पलक मारते ही मैं भागता हुआ पालिश लगी फ़र्श पर थिरकता हुआ उस पार जा पहुंचा और पैर जोड़कर दृढ़ता से तरुणी को अपने साथ नृत्य के लिये आमंत्रित कर दिया। तरुणी ने अनुग्रहपूर्ण मुसकान के साथ मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया और नौजवान मुंह ताकता खड़ा रह गया। नौजवान भौंचक्का रह गया पर मैंने उसकी परवाह न की यद्यपि बाद में मुझे पता चला कि वह पूछ रहा था कि वह नामाक़ूल भद्दा लड़का कौन था जो उचककर उसकी संगिनी को ले भागा।

बाईसवां परिच्छेद

मज़ुरका

जिन सज्जन की संगिनी को मैं ले भागा था वह सबसे पहले जोड़े में मज़ुरका नाचने के लिये उतरे। कुर्सी से कूदकर उन्होंने अपनी संगिनी का हाथ थामा और बजाए गत पर चलने के जैसा कि मीमी ने हम लोगों को सिखाया था, सीधे दौड़ गये। कोने में पहुंचकर वह रुके, एड़ियां चटखायीं और थिरकते हुए आगे बढ़ने लगे। मज़ुरका में हमारी कोई संगिनी न थी, अतः मैं नानी की ऊंची कुर्सी के पीछे बैठकर तमाशा देख रहा था।

मैंने मन में सोचा—"वह ऐसा क्यों करता है? मीमी ने तो हमें दूसरी ही तरह से सिखाया है। वह कहती थी कि मज़ुरका में लोग पंजों के बल नाचते हैं और पैर को वृत्ताकार थिरकाते हैं। लेकिन यहां तो किसी को ऐसा करते मैं नहीं देख रहा हूं। ईविन या ईतिएन कोई भी वास्कप्रदेशीय गत के अनुसार नहीं चल रहा है। वोलोद्या ने भी नया फैशन सीख लिया है। बुरा भी नहीं है। और सोनेच्का कितनी सुंदर लग रही है! वह जा रही है।"

मैं खूब मगन था।

मजुरका अन्त होने आ रहा था। कई बुजुर्ग पुरुष और महिलाएं नानी के पास विदा लेने के लिये आये और चले गये। नौकर लोग नाचने वालों की भीड़ से बचते कतराते पीछे के कमरे में भोजन की सामग्री पहुंचा रहे थे। नानी, स्पष्टतः थक गयी थीं और अनिच्छापूर्वक तथा बहुत कम बोल रही थीं। वादकों ने मध्यम सुर में तीसवीं मर्तबा वही धुन छेड़ा। वही तरुणी जिसके साथ मैं पहले नाचा था नृत्य करती हुई सामने आयी और मुझे बैठा देख लिया। एक श्लेषयुक्त मुसकान के साथ—जिसका उद्देश्य संभवतः नानी को प्रसन्न करना था—वह सोनेच्का तथा अनगिनत शाहज़ादियों में से एक को लेकर मेरे पास आयी और बोली—«Rose ou hortie ?» *

नानी ने पीछे मुड़कर मुझे लक्ष्य किया और बोलीं—"अच्छा तू यहां बैठा हुआ है। जाओ नाचो बेटा।"

उस समय मेरी इच्छा यही हो रही थी कि नानी की कुर्सी के पीछे छिप जाऊं, पर इन्कार मैं कैसे कर सकता था? खड़ा होकर और दबी दृष्टि से सोनेच्का की ओर देखकर मैंने कहा—«Rose» ** लेकिन पेश्तर इसके कि मैं अपने को संभाल सकूं किसी का श्वेत दस्ताना पहने हाथ मेरे हाथ में आ रहा और प्रसन्नवदन शाहज़ादी आगे बढ़ चली। यह बात उसके ध्यान में आयी ही नहीं कि मैं अनाड़ी हूं।

यह मुझे मालूम हो चुका था कि बास्कप्रदेशीय गत उपयुक्त नहीं उस रीति से नाचना सुरुचि के प्रतिकूल होगा और मुझे बेइज्ज़ती का सामना करना पड़ेगा। लेकिन मजुरका की परिचित धुन कानों में पड़ने के साथ ही पांव अभ्यास के अनुसार आपसे आप मीमी की सिखायी गत पर उठ

---

*[गुलाब या कांटा]

**[गुलाब]

गये और मैंने सभी दर्शकों को अचम्भे में डालते हुए, पंजों के वल वृत्ताकार थिरकन आरम्भ कर दिया जिसने मुझे कहीं का न रखा। जव तक हम लोग आगे जा रहे थे किसी तरह काम चल रहा था, लेकिन घूमने पर मैंने महसूस किया कि विशेष उपाय न करने से वेताल होकर आगे निकल जाने का खतरा है। इस खतरे से वचने के लिये मैं रुक गया और चाहा कि पहले जोड़े वाले नौजवान की तरह सुंदर लययुक्त घेरा काटूं पर ज्योंही मैंने पैरों को अलग किया और उछलने ही वाला था कि मेरे चारों ओर वृत्त वनाकर थिरकती हुई शाहज़ादी की स्तव्ध दृष्टि मेरे पैरों पर पड़ी। उस दृष्टि ने मेरा सर्वनाश कर दिया। मेरा आत्मविश्वास जाता रहा और नाचने के वदले मैं एक ही स्थल पर विचित्र ढंग से पांव पटकने लगा तथा उसके वाद हठात् रुक गया। सभी की दृष्टि मेरे ऊपर थी–कोई आश्चर्य से कोई कुतूहल से तथा कोई सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से मुझे देख रहा था। केवल नानी पूर्णतया उदासीन थीं।

कान के पास आकर पिताजी ने क्रुद्ध स्वर में कहा– «Il ne fallait pas danser, si vous ne savez pas!» * इसके वाद हलके से मुझे एक किनारे करके मेरी संगिनी का हाथ अपने हाथ में ले लिया और पुरानी रीति से उसके साथ नृत्य का एक चक्कर देकर उसे अपनी सीट पर पहुंचा दिया। देखनेवाले वाह-वाह कर उठे। मजुरका भी उसी क्षण समाप्त हो गया।

हे भगवान। दण्ड देने को क्या मैं ही मिला था तुझे?

. . . .

मैं कहीं का न रहा। हर आदमी घृणा की दृष्टि से देख रहा है। प्यार, मित्रता और आदर-सम्मान के द्वार मेरे लिये वंद हो गये। वोलोद्या क्यों मुझे इशारे कर रहा था जो सव लोग देख रहे थे? दुष्ट शाहज़ादी

---

*[नाचना आता नहीं तो नाच में उतरते क्यों हो!?]

ने मेरे पैरों की तरफ़ क्यों देखा? सोनेच्का – इतनी सुंदर सोनेच्का – को भी क्या उसी समय मुस्कराना था? पिताजी का चेहरा क्यों लाल हो गया था? क्यों उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया था? क्या उन्हें भी मेरा करतव देखकर लाज लग रही थी? ओह! मेरा सिर चकराने लगा। न रहीं अम्मा, वह होतीं तो अपने निकोलेंका की करनी पर उन्हें कभी लाज न आती। और कल्पना के घोड़े पर सवार होकर मैं उस मधुर लोक में पहुंच गया – मकान के सामने घास का विस्तृत मैदान है, बाग में लाईम के लम्बे वृक्ष खड़े हैं, सामने स्वच्छ सरोवर है जिसके ऊपर अबाबीलें उड़ रही हैं। नीले आकाश में श्वेत बादल मंडरा रहे हैं, खेतों में ताज़ी घास के सुगंधपूर्ण गट्ठे रखे हुए हैं। मेरे व्याकुल मानसपटल पर अनेक आनंदयुक्त एवं शान्तिदायिनी स्मृतियां तैरने लगीं।

तेईसवां परिच्छेद

मज़ुरका के बाद

भोजन के समय वह नौजवान जो पहले जोड़े में नाचा था हम लोगों के साथ बच्चों की मेज़ पर बैठा। वह मुझे रिझाने की कोशिश कर रहा था और यदि थोड़ी देर पहले की दुर्घटना के कारण मेरा मन खट्टा न हो गया होता तो मैं उसकी खुशामदी चेष्टाओं से फूला न समाता। पर वह मेरी उदासी दूर करने पर तुला हुआ था। उसने कई बार मुझसे मज़ाक किया और मेरी तारीफ़ की। इसके अतिरिक्त, बुज़ुर्गों की नज़र बचाकर उसने शराब की विभिन्न बोतलों से एक पेग बनाई और मुझे पीने को कहा। भोजन खत्म होने पर जब खानसामा कपड़े में लिपटी शैम्पेन की बोतल उठाये आया और नियम के मुताबिक बच्चों को एक एक चौथाई गिलास शैम्पेन देते हुए मेरे गिलास में भी डालने लगा तो नौजवान ने गिलास लबालब भरवा दिया और मुझसे कहा कि एक ही घूंट में पी

जाऊं। मेरे वदन में फुरहरी दौड़ गयी और मेरा मन अपने मस्त नौजवान दोस्त एवं संरक्षक के प्रति कृतज्ञता से भर गया। मैं भी मस्त होकर हंसने लगा।

हठात् नृत्यशाला में 'दादा' नृत्य की धुन वज उठी और मेहमान मेज़ से उठने लगे। नौजवान के साथ मेरी दोस्ती का अध्याय भी उसी समय समाप्त हो गया। वह वड़ों की मण्डली में चला गया, पर मेरी हिम्मत उधर जाने की न थी। मेरे मन में यह जानने का कुतूहल उठा कि मैडम वालाहिना अपनी वेटी से क्या कह रही हैं, अतः मैं उसी ओर चल दिया।

सोनेच्का मां से अनुनय कर रही थी :

"वस आध घंटा और ठहर जाओ, मां!"

"नामुमकिन है।"

"मेरी ख़ातिर मां थोड़ा-सा और रुक जाओ!" वह वोली।

"क्या तू यही चाहती है कि कल को मैं वीमार पड़ जाऊं," मैडम वालाहिना ने उत्तर दिया, पर उन्होंने एक ग़लती की – यह कहते हुए वह मुसकरा दीं।

"तो, रहेंगे थोड़ी देर और? क्यों न?" कहती हुई सोनेच्का ख़ुशी से नाचने लगी।

"मैं क्या कहूं, तेरी मर्ज़ी है तो जा, नाच। यह ले। संगी तैयार ही है तेरे लिए," उन्होंने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा।

सोनेच्का ने मेरे हाथ में अपना हाथ दे दिया और हम दोनों नृत्यशाला की ओर दौड़े।

शराव का रंग तथा सोनेच्का की उपस्थिति और मस्ती ने मजुरकावाली दुर्गति की याद भुला दी। मैंने टांगों का एक से एक दिलचस्प करतव दिखलाना शुरू किया – कभी घोड़े की तरह दुलकी मारता और कभी उस मेढ़े की तरह जिसे कुत्ते ने छेड़ दिया हो एक ही जगह पर खड़ा फ़र्श को

पटकने लगता। मेरी मस्तीभरी हंसी रुकने का नाम न लेती थी। दर्शकों पर मेरे करतबों का क्या प्रभाव पड़ रहा है इसकी मुझे अब परवाह न थी। सोनेच्का भी लगातार हंस रही थी। जब हम लोगों ने दोनों हाथ मिलाकर घेरा काटा तो वह हंस रही थी। एक बूढ़े आदमी ने बड़ी सावधानी से अपना पांव उठाया और वह रूमाल पर पड़ गया। वह यह दिखाने की कोशिश कर रहे थे कि उन्हें नाचना नहीं आता। सोनेच्का उन्हें देखकर हंस पड़ी। और उस वक्त तो हंसते हंसते उसका पेट ही फूल गया जब मैं अपना फुर्तीलापन प्रदर्शित करने के लिये इतने जोर से ऊपर उछला कि लगभग छत छू गयी।

नानी के अध्ययनकक्ष से गुजरते समय मैंने शीशे में अपनी सूरत देखी। चेहरा पसीने से तर था। बाल बिखरे हुए थे और खोपड़ी के बीचवाला गुच्छा और भी सीधा खड़ा था किंतु पूरी आकृति से मस्ती, सहृदयता और स्वास्थ्य टपक रहा था जिससे मुझे स्वयं बहुत संतोष हो रहा था।

"यदि सदा इसी तरह रहा करूं तो शायद मैं भी किसी को खुश कर सकूं," मैंने मन में सोचा।

लेकिन दूसरे ही क्षण जब मैंने अपनी संगिनी का सुंदर भोला मुखड़ा देखा और उसमें मस्ती, स्वास्थ्य और चिंताशून्यता के अतिरिक्त अनूठे सुगढ़ सौंदर्य का दर्शन पाया तो मेरा दिल बुझ गया। ऐसी रूपसी का हृदय जीत सकने की आशा करना महामूर्खता थी।

उससे प्रेम का प्रतिदान पाने की आशा झूठी थी और वस्तुतः मुझे ऐसी बात भी न सोचनी चाहिये थी। मेरे मन का प्याला यों ही उल्लास से छलक रहा था। जो प्रेम आत्मा को आनंद से सराबोर कर दे उसका प्रतिदान क्या? उसका प्रतिदान यदि मांगा जा सकता है तो यही कि वह पवित्र भावना चिरस्थायी हो, अमिट और अनंत हो। मैं उल्लसित था। मेरा मन-मयूर नाच रहा था, रगों में मस्ती दौड़ रही थी, मैं चाहता था, हर्ष के अजस्र आंसू आंखों से प्रवाहित हों।

दालान से जाते हुए हम लोग सीढ़ी के नीचेवाले अंधेरे भण्डार-घर की बगल से गुज़रे। उस अंधेरे कमरे को देखकर मैंने मन में सोचा – "काश इसी कमरे में उसके साथ ज़िंदगी काट पाता – एकांत और अविघ्न, कि किसी को कानोकान खबर न हो।"

"कैसा मस्त समां है आज," मैंने शांत, कम्पित स्वर में पूछा और अपनी चाल तेज़ कर दी। मैं कांप उठा – उस शब्द पर नहीं जो मेरे मुंह से निकल गया वरन् उसपर जो मेरे मन में था उस समय।

"हां!" उसने अपने प्यारे सिर को मेरी ओर घुमाते हुए कहा। उसके चेहरे पर भोलेपन का ऐसा भाव था कि मेरी आशंका जाती रही।

"खासकर खाने के बाद तो और भी मज़ा आ गया है। पर यह सोचकर मुझे बहुत दुख हो रहा है कि आप जल्दी ही चली जायेंगी और फिर हम लोगों की मुलाकात न होगी, आपको पता नहीं कैसा दुख हो रहा है मुझे।" (मैंने 'दुख' के बदले 'वेदना' शब्द का प्रयोग करना चाहा था पर हिम्मत न हुई)

"मुलाकात क्यों न होगी?" उसने अपनी स्लीपरों के अंगूठे पर दृष्टि गड़ाकर और जालीदार परदे पर उंगलियां फेरते हुए कहा। "मैं अम्मा के साथ हर मंगलवार और शुक्रवार को 'त्वेस्कोंई बौलेवार्ड' को जाती हूं। आप घूमने नहीं जाते क्या?"

"अगले मंगलवार को मैं भी घूमने जाने की इजाज़त मांगूंगा, अगर इजाज़त नहीं मिलेगी तो चुपके से भाग जाऊंगा। नंगे सिर आना पड़े तो भी आऊंगा, मुझे रास्ता मालूम है।"

"एक बात कहूं?" सोनेच्का ने अचानक कहा – "मेरे घर जो लड़के आते हैं उन्हें मैं 'तू' कहकर पुकारती हूं, हम लोग भी एक-दूसरे को 'तू' ही कहें। बोलो, मंजूर है तुम्हें?" उसने अपने छोटे-से प्यारे मस्तक को सीधा करके और मेरी आंखों में आंखें डालकर कहा।

इसी समय हम लोगों ने नृत्यशाला में प्रवेश किया। 'दादा' का दूसरा मज़ेदार भाग आरंभ हो रहा था। "मैं ... आपसे सहमत हूं," मैंने यह सोचकर कहा कि संगीत के रव में मेरे शब्द सुनायी न पड़ेंगे।

"आपसे नहीं, तुझसे," उसने हंसकर संशोधन किया।

'दादा' समाप्त हो गया, पर मैं एक बार भी उसे 'तू' कहकर संबोधित नहीं कर सका यद्यपि मैंने मन में ऐसे अनगिनत वाक्य तैयार किये थे जिनमें यह प्यारा सर्वनाम एक बार नहीं कई कई बार आता था। मेरी हिम्मत ही नहीं हुई। 'तू करेगा?' 'तू कहेगा?' ये शब्द मेरे मस्तिष्क में गूंज रहे थे और एक नशा-सा उत्पन्न हो गया था। मेरी आंखों में सोनेच्का नाच रही थी। उसकी मां ने उसके बाल समेटकर पीछे जूड़ा बांध दिया था जिससे भौंहों और कनपटी के ऐसे हिस्से दिखाई दे रहे थे जिन्हें अभी तक मैंने न देखा था। फिर जाते वक्त उसे हरा दुशाला ओढ़ाया गया जिसमें उसका पूरा शरीर छिप गया, केवल नाक का सिरा बाहर रह गया—दरअसल यदि उसने अपनी गुलाबी कोमल उंगलियों से मुंह के पास थोड़ी जगह नहीं बना ली होती तो शायद उसका दम ही घुट जाता। इसके बाद मां के साथ सीढ़ियों से उतरते हुए वह एक बार तेज़ी से हम लोगों की तरफ़ घूमी और अभिवादन में सिर हिलाकर दरवाज़े में अंतर्धान हो गयी।

वोलोद्या, तीनों ईविन, युवा शाहज़ादा और मैं, ये सभी सोनेच्का के प्रेम में गिरफ़्तार थे। सीढ़ी पर खड़े होकर हम लोगों ने उसे जाते हुए देखा। कहना कठिन था कि उसके अभिवादन का लक्ष्य कौन है, पर उस समय तो मेरा दृढ़ विश्वास था कि सिर हिलाकर उसने मुझे ही अलविदा कहा था।

ईविन भाइयों से विदा होते समय मैंने बिना झिझक सेर्योज़ा से बात की और हाथ मिलाया, सच तो यह है कि मेरे हाथ मिलाने में संभवतः

उपेक्षा का भी पुट था। सेर्योजा ने यदि उस दिन महसूस किया हो कि मेरे ऊपर उसकी सत्ता एवं उसके प्रति मेरा प्रेम समाप्त हो चुका है तो उसे निश्चय ही अफ़सोस हुआ होगा, यद्यपि उसने उस समय सम्पूर्णतः उदासीनता ही व्यक्त की थी।

जीवन में मैंने पहले पहल प्रेम में बेवफ़ाई की थी और साथ ही प्रेम के माधुर्य का स्वाद चखा था। पहला प्रेम जो दोस्ती के आधार पर खड़ा था अब फीका पड़ चुका था और उसकी जगह प्रेम की एक नयी भावना ने ले ली थी जो रहस्य और अनिश्चितता से भरी थी। उनका विनिमय कर मैंने अतीव आनंद लाभ किया था। इसके अतिरिक्त, एक प्रेम को त्यागकर उसी क्षण दूसरे प्रेम के फंदे में गिरफ़्तार होने का अर्थ होता है, पहले से दुगने जोश के साथ प्यार करना।

चौबीसवां परिच्छेद

पलंग पर

पलंग पर लेटा हुआ मैं सोच रहा था— "मैं क्योंकर इतने दिनों सेर्योजा को इतना अधिक प्यार करता रहा? कैसी बेतुकी बात थी? उसने कभी मेरे प्यार की कीमत नहीं पहचानी, न ही पहचान सकता था। यह क्षमता है ही उसमें कहां? किन्तु सोनेच्का? अहा, कितनी प्यारी है वह! उसका वह कहना—'तू कहेगा', 'अब तेरी बारी है'। ये मेरे कानों में गूंज रहे थे। उसके प्यारे मुखड़े को देखते हुए मैं उठ बैठा और लिहाफ़ में सिर हाथ और पांव लपेट लिये। जब कहीं कोई छिद्र नहीं रह गया तब मैं फिर लेट गया और उस सुखद कोमल उष्णता का अनुभव करते हुए फिर उन मधुर, जाग्रत स्वप्नों एवं स्मृतियों के लोक में विचरण करने लगा। मैंने लिहाफ़ की कोर पर दृष्टि डाली—वहां सोनेच्का साक्षात खड़ी थी। मैं उससे वार्तालाप करने लगा। उस वार्तालाप में सिर पैर

का पता न था, किन्तु अवर्णनीय आनंद था उसमें क्योंकि 'तुम', 'तू', 'तुम्हारी' और 'तेरी' शब्द अबाध रूप से आ रहे थे।

मधुर आवेग में मेरी नींद न जाने कहां लुप्त हो चुकी थी। मानस नये नये दृश्यों में उसका दर्शन कर रहा था। मैं आनंदातिरेक के प्रवाह में प्रवाहित हो रहा था, और चाह रहा था कि कोई बांटनेवाला मिलता इस अथाह आनंद का।

"आह, प्यारी," मैंने करवट लेकर कहा, और वोलोद्या को पुकारा – "वोलोद्या! जाग रहे हो, कि सो गये?"

"नहीं, सोया नहीं हूं," उसने उनींदे स्वर में कहा, "क्या बात है?"

"मैं प्रेम करने लगा हूं, वोलोद्या! सोनेच्का से मैं प्रेम करता हूं।"

"तो! हुआ क्या?" उसने पैरों को फैलाते हुए कहा।

"क्या बताऊं, वोलोद्या! मेरे मन को कोई मथ रहा है। अभी लिहाफ़ में मुंह ढककर लेटा हुआ था तो वह साक्षात मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी और मैंने उसके साथ बातचीत की। मुझे स्वयं बड़ा अचरज हो रहा है। और जिस समय मैं लेटकर उसके बारे में सोचता हूं मेरा मन इतना उदास हो जाता है कि रोने की इच्छा होने लगती है।"

वोलोद्या सुगबुगाया।

मैं बोलता ही गया – "मेरा मन कहता है कि सदा उसके ही पास रहूं, उसी को ही देखूं, और शेष सब कुछ भूल जाऊं। क्या तुमने भी प्रेम किया है? सचसच कहना, वोलोद्या।"

बात असंगत-सी है, किन्तु उस समय मेरी यही हार्दिक इच्छा थी कि सभी सोनेच्का को प्यार करें और सभी के ओंठों पर सोनेच्का का ही नाम हो।

वोलोद्या ने मेरी तरफ़ मुड़कर कहा – "तुम्हें इससे क्या? हो सकता है, मैं भी उसे प्रेम करता हूं।"

उसकी आंखें भी चमक रही थीं। मेरी दृष्टि उनपर पड़ी और मैं वोल उठा :

"तुम्हें भी नींद नहीं आ रही है! केवल वहाना कर रहे हो!" और लिहाफ़ उठाकर फेंक दिया। "आओ उसी की वातें करें हम लोग। सच कहो—कितनी प्यारी है वह! मुझे तो यदि वह कह दे कि 'निकोलेंका! कूद पड़ो खिड़की से, या उतर पड़ो जलती आग में' तो फ़ौरन उतर जाऊं, और खुशी से उतर जाऊं। अहा! कैसा मोहिनी रूप है उसका!" मेरे सामने वह फिर साक्षात खड़ी थी। मैं इतने मौज में आ गया कि एक वार पूरी करवट लेकर तकिये में सिर छिपा लिया। "वोलोद्या! ओह, वोलोद्या! जी चाहता है खूव रोऊं।"

"विलकुल वुद्धू हो तुम," उसने मुस्कराकर कहा, और थोड़ी देर के लिये मौन हो गया। "मेरे मन में दूसरी ही वात है, मेरा तो जी चाहता है कि उससे मुलाक़ात हो और उसके पास वैठकर उससे वातें करूं।"

"अच्छा, तो तुम्हें भी प्रेम हो गया है उससे," मैंने टोककर पूछा।

पर वोलोद्या वोलता गया—"इसके वाद मैं उसकी सुकुमार उंगलियों को, उसकी आंखों को, उसके अधरों को, उसकी नाक को, उसके पांवों को—उसके सारे शरीर को चूम लूंगा।"

"छि:!" मैंने तकिये के अंदर से कहा।

वोलोद्या तिरस्कारपूर्ण स्वर में वोला—"तुम इन चीज़ों को नहीं समझते।"

"मैं समझता हूं, तुम्हीं नहीं समझते, तुम अनापशनाप वक रहे हो," मैंने रोते हुए कहा।

"रोने की क्या वात है इसमें? विल्कुल वच्चे हो अभी—ज़रा-सी वात में रोने लगते हो।"

पच्चीसवां परिच्छेद

चिट्ठी

ऊपर वर्णित दिवस के लगभग छः महीने बाद एक दिन–उस दिन १६ अप्रैल थी– पिताजी कोठे पर आये। उस समय हम लोग पढ़ रहे थे। उन्होंने खबर सुनायी कि उसी रात हमें उनके साथ देहात जाना होगा। इस खबर ने हमें सन्नाटे में डाल दिया और न जाने क्यों फ़ौरन अम्मा की याद आने लगी।

हमारी अप्रत्याशित विदाई का कारण नीचे उद्धृत चिट्ठी थी:

"पेत्रोव्स्कोये, १२ अप्रैल

"३ अप्रैल को तुम्हारी प्यारी चिट्ठी मुझे अभी अभी मिली है, इस वक्त रात के दस बजे हैं और अपने नियम के अनुसार मैं खत पाते ही खत का जवाब लिख रही हूं। फ़्योदोर कल ही शहर से यह चिट्ठी लाया था, पर चूंकि रात ज्यादा जा चुकी थी इसलिये इसे उसने मीमी के हवाले कर दिया। और मीमी मेरी बीमारी और घबराहट के कारण दिन भर इसे अपने पास रखे रही। मुझे इधर थोड़ा बुखार लग रहा है। दरअसल आज बुखार को हुए चौथा दिन है।

"लेकिन मेरे प्रियतम, इससे घबरा न जाना, मेरी तबीयत काफ़ी अच्छी है और इवान वासीलिच ने इजाज़त दी तो कल बिस्तर छोड़ दूंगी।

"शुक्रवार को मैं लड़कियों को बाहर सैर कराने ले गयी थी, लेकिन रास्ता जहां बड़ी सड़क से मिलता है–उस पुल के पास जहां मुझे हमेशा ही न जाने क्यों डर लगा करता है, गाड़ी कीचड़ में फंस गयी। मौसम अच्छा था इसलिये मैंने सोचा कि जब तक लोग बग्गी को निकालते हैं तब तक पैदल ही सड़क तक चली जाऊं। गिरजाघर के पास पहुंचने पर मुझे बड़ी थकान-सी लगने लगी, और मैं बैठ गयी। इस तरह करीब आधा घंटा लग गया क्योंकि वे लोग बग्गी ठेलने के लिये आदमी जुटा रहे थे।

मुझे थोड़ी ठण्ड मालूम होने लगी, खासकर पैरों में क्योंकि मैंने पतले तल्ले के जूते पहन रखे थे जो बिलकुल भीग गये थे। भोजन के बाद मुझे हरारत मालूम हुई पर मैं लेटी नहीं, और चाय पीकर ल्यूबोच्का के साथ नित्य नियम के अनुसार, प्यानो पर एक दोगाना आरंभ किया (ल्यूबोच्का इधर इतना अच्छा प्यानो बजाना सीख गयी है कि तुम उसकी तरक्की देखकर दंग रह जाओगे)। लेकिन अचानक मैंने देखा कि मुझसे ताल के साथ बजाया नहीं जा रहा। मैंने गिनती करनी शुरू की पर सिर चकराने लगा और कानों में अजीब तरह की भनभनाहट मालूम होने लगी। मैंने एक-दो-तीन गिना, पर इसके बाद न जाने कैसे आठ, और फिर पंद्रह पर पहुंच गयी। सब से ज्यादा अचरज की बात तो यह है कि मुझे स्वयं मालूम हो रहा था कि मैं अनाप-शनाप बोल रही हूं, फिर भी दिमाग़ के ऊपर काबू न था। आखिर मीमी दौड़ी आयी और ज़बर्दस्ती मुझे पलंग पर लिटा दिया। यही मेरे बीमार पड़ने की कहानी है जिसके लिये मैं खुद ही ज़िम्मेदार हूं। दूसरे दिन मुझे ज़ोर का बुखार चढ़ आया था। इवान वासीलिच फ़ौरन दौड़े आये। बुड्ढा कितना नेक है! तब से वह लौटकर घर नहीं गये हैं। उनका कहना है कि जल्द ही मुझे चंगा कर देंगे। जिस वक्त मैं बुखार में पड़ी बक-झक कर रही थी उन्होंने, बेचारे, रात आंखों में काट दी। अभी जबकि उन्हें मालूम है कि मैं तुम्हें खत लिख रही हूं, वह लड़कियों के साथ बैठे उन्हें जर्मन कहानियां सुना रहे हैं। मैं अपने कमरे से उनकी आवाज़ सुन रही हूं। लड़कियां उनकी कहानियां सुनकर हंसी से लोटपोट हो रही हैं।

"«La belle Flamande»* जैसे कि तुम उसे बुलाते हो, पिछले दो हफ़्तों से यही हैं क्योंकि उसकी मां कहीं बाहर गयी हुई है। वह मुझसे बहुत हिल-मिल गयी है और बड़े प्यार से मेरी शुश्रूषा करती है। अपने

---

*[फ़्लेमिश सुंदरी]

दिल का कोई भेद मुझसे नहीं छिपाती। अच्छे हाथों में पड़ी तो बड़ी गुणवती लड़की निकलेगी क्योंकि रूप-रंग, शील-स्वभाव और यौवन सब कुछ है उसमें। लेकिन अभी जिस तरह की संगति में पड़ी हुई है, बरबाद हो जायगी। यह बात उसने खुद जो कुछ बयान किया है, उससे स्पष्ट है। मैंने तो सोचा था कि अगर अपने ही बच्चे इतने ज्यादा न होते तो उसे पाल लेती। इससे अधिक पुण्य का काम और क्या हो सकता था?

"ल्यूबोच्का खुद आपको चिट्ठी लिखना चाहती थी लेकिन तीन बार लिखकर फाड़ चुकी है। वह कहती है कि पिताजी बड़े वैसे हैं, कहीं एक भी ग़लती रह गयी तो सभी को चिट्ठी दिखा कर हंसी उड़ायेंगे। कातेंका वैसी ही लाड़ली और खुशदिल है, मीमी वैसी ही नेकदिल है पर जी ऊब जाता है उसके संग।

"अब तुमसे कुछ जरूरी बातों की चर्चा करूंगी। तुमने लिखा है कि इस साल जाड़े में कारबार ठीक नहीं जा रहा है और तुम्हें खबारोव्का की आमदनी में भी हाथ लगाना पड़ रहा है। मुझे अचरज होता है कि इसके लिए मेरी इजाज़त मांगते हो। क्या मेरी चीज़ और तुम्हारी चीज़ दो हैं?

"तुम इतने सीधे और भले हो कि मेरे तरद्दुद में पड़ने का ख्याल कर पूरी स्थिति भी मुझको नहीं बताते। पर मेरा अनुमान है कि जुए में इस बार तुम्हें ज्यादा घाटा लगा है। मैं विश्वास दिलाती हूं कि मुझे तुम्हारे ऊपर तनिक भी गुस्सा नहीं है। इसलिए, अगर किसी तरह यह संकट पार कर जाओ तो इसे भूल जाना और अपने को व्यर्थ परेशानी में न डालना। बच्चों की परवरिश के बारे में तो तुम जानते ही हो कि मैं जुए की तुम्हारी कमाई का भरोसा नहीं करती। सच तो यह (माफ़ करना मुझे) कि मुझे तुम्हारी पूरी ज़मींदारी का ही आसरा नहीं है। न तुम्हारे जीतने से मुझे खुशी होती है न तुम्हारे हारने से ग़म। ग़म तो है केवल इस बात का कि जुए के कारण तुम कभी कभी मुझे थोड़ा भूल जाते हो और मुझे तुम्हारे कोमल प्यार के अंश से वंचित होना पड़ता है। इसी के कारण, मुझे कभी-

कभी तुम्हें कुछ अप्रिय बातें सुनानी पड़ जाती हैं, जैसा कि अब कर रही हूं। किंतु ईश्वर ही जानता है कि ऐसा करते हुए मेरे मन को कैसी पीड़ा होती है! मैं तो उससे यही मनाती हूं कि हम लोगों को बचाये रखें – दरिद्रता से नहीं, दरिद्रता क्या चीज़ है? वरन् उस भयानक स्थिति से जिसमें कि बच्चों का हित, जिसकी रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूं, हम लोगों के हित से उलटा जाने लगे। अभी तक तो भगवान ने मेरी लाज रखी है, तुमने उस सीमा का उल्लंघन नहीं किया है जब हमारे सामने दो ही रास्ते बच रहेंगे ... एक जायदाद पर (जो अब हम लोगों की नहीं, हमारे बच्चों की है) हाथ लगाने का, और दूसरा – दूसरे की कल्पना मात्र से मैं सिहर उठती हूं पर वह सदा नंगी तलवार बनी सिर पर खड़ी है। सचमुच, भगवान ने हमें अग्निपरीक्षा में डाल रखा है।

"तुमने बच्चों के बारे में लिखा है और फिर हम लोगों की पुरानी बहस को छेड़ा है – तुम चाहते हो कि मैं बच्चों को किसी शिक्षण-संस्था में भेजने की सहमति दूं। पर तुम जानते ही हो कि ऐसी शिक्षा से मुझे कितनी नफ़रत है...

"मेरे प्रिय मित्र मैं नहीं जानती, तुम किस हद तक मेरी बात मानोगे, फिर भी तुमसे हाथ जोड़कर यह भीख मांगती हूं कि जब तक मैं ज़िंदा हूं, और मेरे मरने के बाद भी – अगर भगवान को हम दोनों की जुदाई ही मंज़ूर हो – तुम ऐसा नहीं करोगे।

"तुमने कारबार के सिलसिले में पीटर्सबर्ग जाने की बात लिखी है। भगवान तुम्हें सलामत रखे। तुम जाओ और जितनी जल्दी हो सके लौट आओ। तुम्हारे न रहने से हम सबके लिये समय काटना कठिन हो जाता है। अब की बसंत बड़ा सुंदर है। छज्जे पर से किवाड़ उतारे जा चुके हैं, वनस्पतिगृह को जानेवाली पगडंडियां चार दिन हुए सूख चुकी हैं, सतालू के वृक्षों में कलियां लदी हुई हैं, बर्फ़ इधर-उधर कोनों में ही रह गयी है, अबाबीलें फिर आ गयी हैं और अभी थोड़ी देर

हुए ल्यूबोच्का मुझे वसंत के प्रथम फूल तोड़कर दे गयी है। डाक्टर का कहना है कि मैं तीन दिन में अच्छी हो जाऊंगी और तव वाहर निकलकर अप्रैल की धूप और ताज़ा हवा का सेवन कर सकूंगी। अच्छा, तो प्यारे मित्र, अब विदा लेती हूं। मेरी बीमारी या अपने घाटे को लेकर व्यर्थ परेशान मत होना। जल्दी से जल्दी कारवार ख़त्म कर बच्चों के साथ चले आना ताकि गर्मी का सारा मौसम हम लोग साथ रह सकें। इस साल गर्मियों के लिए मैंने बड़ी बड़ी योजनायें बनायी हैं। केवल तुम्हारे आ जाने की कसर है।"

चिट्ठी का शेष अंश फ़्रांसीसी भाषा में काग़ज़ के दूसरे टुकड़े पर टेढ़ी लिखावट में लिखा हुआ था। नीचे मैं उसका एक एक शब्द अनुवाद कर रहा हूं:

"मैंने ऊपर अपनी बीमारी के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे भुलावे में मत आ जाना। मेरी बीमारी कितनी गंभीर है, इसका यहां किसी को अंदाज़ नहीं है। केवल मैं जानती हूं कि अब चारपाई से नहीं उठूंगी। इसलिए एक क्षण की भी देर न करना, ख़त पाते ही चले आना और बच्चों को भी साथ ले आना। शायद उन्हें एक बार गले से लगाने और अंतिम आशीर्वाद देने का अवसर मिल जाये। मेरी तो यही अंतिम लालसा है। मैं जानती हूं कि इसे पढ़कर तुम्हें बड़ा दुःख होगा। पर उपाय ही क्या है? मैं चुप भी रहूं तो आज नहीं तो कल किसी और से तुम्हें यह शोक-संवाद सुनना ही पड़ेगा। कलेजा पोढ़ा करके हमें इस दुर्भाग्य का सामना करना है। भगवान बड़े दयालु हैं—उनकी जो मर्ज़ी होगी वही होगा।

"मेरे लिखे को रोगी का प्रलाप मत समझ लेना, मेरा मस्तिष्क इस समय बिल्कुल साफ़ है और मेरा चित्त भी शांत है। यह सोचकर अपने को तसल्ली देने की कोशिश मत करना कि स्वभाव से डरपोक होने के कारण मैं ऐसी बातें सोच रही हूं। नहीं, ऐसी ग़लती मत करना।

भगवान बड़े कृपालु हैं, वह मुझे स्पष्ट दिखा रहे हैं कि अब मुझे ज़्यादा दिन ठहरना नहीं है।

"मैं सोचती हूं—क्या प्राणों के साथ तुम्हारे और बच्चों के प्रति मेरे प्रेम का भी अंत हो जायेगा? नहीं यह असंभव है। मेरा हृदय इस समय प्रेम से ओत-प्रोत हो रहा है, और मैं सोच रही हूं कि जो प्रेम मेरी ज़िन्दगी का अभिन्न अंग था उसका अस्तित्व कभी नहीं मिट सकता, कभी नहीं। तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी आत्मा ज़िन्दा नहीं रह सकती, और मैं जानती हूं कि मेरी आत्मा तुम्हारे प्रेम के ही बल पर सदा अमर रहेगी। मेरा जो प्रेम है उसकी उत्पत्ति ही न होती यदि वह अमर न होता।

"मैं तुमसे बिछुड़ जाऊंगी पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरा प्रेम सदा तुम्हारे साथ रहेगा। इस विचार से मेरे मन को ऐसी सांत्वना प्राप्त हो रही है कि मैं शांत और अविचल रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही हूं, उस मृत्यु की जो तेज़ी से निकट आ रही है।

"मेरा चित्त बिलकुल शांत है और भगवान जानता है, मृत्यु को मैंने सदा इस लोक से भी अच्छे लोक का मार्ग माना है, फिर भी न जाने क्यों आंखों के आंसू थम नहीं रहे हैं। मेरे बच्चे मां के दुलार बिना रह जायेंगे। हे भगवान! ऐसी मुसीबत क्यों ढा रहा है तू? मैं मरूं क्यों जब कि तुम्हारे साथ इस जीवन में मुझे अपार आनंद उपलब्ध है?

"पर जैसी उसकी इच्छा।

"आंसुओं के मारे अब आगे नहीं लिखा जा रहा है। हो सकता है, अब तुम्हें फिर न देख पाऊं। मेरे प्रियतम, मेरा रोम-रोम तुम्हें धन्यवाद दे रहा है—तुम्हारी कृपा से मेरा जीवन आनंदमय था। भगवान से मैं प्रार्थना करूंगी कि तुम्हें इसका पुरस्कार दे। विदा। मेरे प्राणप्यारे! मैं चली जा रही हूं पर याद रखना कि मेरा प्यार निरंतर तुम्हारे साथ रहेगा, तुम जहां भी रहो। विदा, मेरे वोलोद्या, मेरे लाल! विदा मेरे नन्हे बेंजामिन, मेरे निकोलेंका।

"क्या ऐसा भी हो सकता है कि वे हमें भूल जायेंगे?"

चिट्ठी के साथ फ़ांसीसी भाषा में लिखी मीमी की एक पुर्ज़ी थी जिसमें लिखा था:

"जिस शोकजनक आशंका का उन्होंने ख़त में ज़िक्र किया है उसकी डाक्टर ने पूर्णतः पुष्टि की है। कल रात इन्होंने मुझे चिट्ठी फ़ौरन डाक में डलवाने को कहा। मैं यह सोचकर कि अभी उन्हें सुधबुध नहीं है सुबह तक ठहर गयी। और फिर चिट्ठी को खोलकर पढ़ने का निश्चय किया। मैंने उसको पढ़ा ही था कि नाताल्या निकोलायेवना ने पूछा कि चिट्ठी का क्या किया और बोलीं कि अगर उसे डाला नहीं है तो जला दो। वह चिट्ठी की ही रट लगाये हुए हैं और कहती हैं कि उसे पाकर आप बचियेगा नहीं। आने में तनिक भी देर मत कीजिये यदि आप उस देवी को जाने से पहले देखना चाहते हैं। मेरी लिखावट को माफ़ कीजिएगा। तीन रात से मैं सोयी नहीं हूं। आप तो जानते ही हैं मुझे उनसे कितना प्यार है।"

११ अप्रैल को रात भर नाताल्या साविश्ना अम्मा के कमरे में ही थी। उसने मुझे बताया कि चिट्ठी का पहला भाग लिखने के बाद अम्मा उसे पास की छोटी मेज़ पर रखकर सो गयी थीं।

वह बोली—"कुर्सी में बैठे-बैठे मुझे झपकी आ गयी। मेरे हाथ का मोज़ा नीचे गिर गया। लेकिन करीब एक बजे रात को मैंने जैसे सपने में सुना कि, वह किसी से बातें कर रही है। आंखें खोलती हूं तो मेरी बिटिया पलंग पर हाथ जोड़े बैठी है और आंखों से ढर ढर आंसू बह रहे हैं। "तो क्या सब खेल ख़त्म है?" वह बोली और अपना मुंह दोनों हाथों से ढक लिया। मैं दौड़ी और पूछा—"क्या हुआ है तुमको?"

"क्या बताऊं तुम्हें नाताल्या साविश्ना! काश, अभी मैंने जो देखा उसे तुमने भी देखा होता," वह बोली।

"पर मैं कितना भी कहूं वह इसके आगे कुछ बोली ही नहीं। बस इतना ही कहा कि मेज़ को पास ले आओ। उसपर उसने कुछ और लिखा, अपने सामने ही लिफ़ाफ़ा बंद कराया और उसे फ़ौरन छोड़ आने को बोली। उसके बाद से उसकी हालत खराब होने लगी।"

छब्बीसवां परिच्छेद

देहात पहुंचकर हमने क्या देखा

१८ अप्रैल को हम लोग पेत्रोव्स्कोये के अपने घर के सायबान में गाड़ी से उतरे। मास्को से चलते समय पिताजी बहुत ही उदास थे। जब वोलोद्या ने उनसे पूछा – क्या अम्मा बीमार हैं तो उसकी ओर विषादपूर्ण दृष्टि डालकर उन्होंने केवल सिर हिला दिया। सफ़र में उनकी उद्विग्नता कुछ कम होती ज्ञात हुई, पर ज्यों ज्यों घर नज़दीक आने लगा उनके चेहरे पर उदासी की रेखा फिर गहरी होने लगी। बग्गी से उतरते ही फ़ोका हांफता हुआ दौड़ा आया। पिताजी ने उससे पूछा – "नाताल्या निकोलायेवना कहां है?" और यह पूछते समय उनका स्वर कांप रहा था तथा आंखों में आंसू थे। उस भले बुड्ढे ने हम लोगों की ओर देखकर नज़र नीची कर ली और बीच के कमरे का दरवाज़ा खोलकर एक ओर हो गया और बोला:

"हुज़ूर आज ६ दिन हो गये, वह कमरे से बाहर नहीं निकली हैं।"

मिल्का पिताजी को देखकर खुशी से कूदकर उनके पास आ गयी और मुंह से हलकी आवाज़ें निकालते हुए उनके हाथ चाटने लगी। (बाद में मुझे पता चला कि अम्मा के बीमार होने के दिन से ही वह शोकाकुल स्वर में निरंतर चिल्ला रही थी) पिताजी, उसे ठेलकर, बैठकखाने में से होते हुए ज़नाने छोटे कमरे में चले गये जहां से एक रास्ता सीधे शयनकक्ष को जाता था। कमरे के नज़दीक जाने के साथ उनकी उद्विग्नता जो उनकी

हर चेप्टा से प्रगट हो रही थी वढ़ती जा रही थी। ज़नाने कमरे में वह पंजों के वल गये, सांस लेने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी उन्हें, और शयनकक्ष का दरवाज़ा खोलने से पहले वह झिझके और क्रास का चिह्न वनाया। उसी समय मीमी जिसके वाल विखरे हुए थे और गालों पर आंसुओं के दाग़ थे ड्योढ़ी की तरफ़ से दौड़ी हुई आयी। उसके चेहरे पर गहरे शोक और निराशा की छाप थी। फुसफुस स्वर में उसने कहा—"आह! प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच!" फिर पिताजी को दरवाज़े का मुट्ठा घुमाते देख उसने धीमे स्वर में जो मुश्किल से सुनाई पड़ा, वोली—"इधर से नहीं। इधर का दरवाज़ा वंद है। नौकरानियों के कमरे से होकर जाने का रास्ता है।"

मेरा हृदय पहले ही से किसी अज्ञात आशंका से कांप रहा था। उसके ऊपर, इन छोटी-छोटी घटनाओं ने मेरी वाल्यकल्पना पर उदासी का गहरा रंग चढ़ा दिया।

हम लोग नौकरानियों वाले कमरे में गये। ड्योढ़ी में अकीम मिला जिसका विचित्र मुंह वनाना देखकर हम लोगों का कभी वड़ा मनोरंजन हुआ करता था। पर इस समय हमें उसमें हंसने की कोई चीज़ दिखायी नहीं पड़ी। वस्तुतः, उसके चेहरे की जड़ता और उदासीनता उस समय मुझे सवसे अधिक कष्टकर प्रतीत हुई। नौकरानियों वाले कमरे में दो दासियां जो वुनाई कर रही थीं हम लोगों का अभिवादन करने के लिये उठ खड़ी हुईं। उनकी शोकपूर्ण मुद्रा देखकर मैं डर गया। इसके वाद मीमी का कमरा था। उससे गुज़रकर पिताजी ने शयनकक्ष का दरवाज़ा खोला और हम लोग भीतर घुसे। दरवाज़े की दाहिनी ओर दो खिड़कियां थीं जिनपर दुशाले टांग दिये गये थे, इन्हीं में एक के पास नाताल्या साविश्ना नाक पर चश्मा चढ़ाये और मोज़ा वुनती हुई वैठी थी। उसने हमें चूमा नहीं यद्यपि साधारणतः वह यही किया करती थी। वह केवल उठ खड़ी हुई और चश्मे के अंदर से हमें ताकने लगी।

उसके गालों पर तर-तर आंसू वह चले। सदा शांत और संयत रहनेवाले लोगों को हमें देखते ही यों रो पड़ते देख मैं घबरा गया।

दरवाज़े की बायीं ओर एक परदा टंगा हुआ था। और परदे के पीछे एक पलंग, एक छोटी मेज़, दवाओं से भरी एक छोटी आलमारी और एक बड़ी-सी कुर्सी थी जिसपर बैठा हुआ डाक्टर ऊंघ रहा था। पलंग से लगकर बड़े ही मनमोहक केशों वाली एक रूपसी किशोरी खड़ी थी। अपनी श्वेत प्रातःकालीन पोशाक की आस्तीन मोड़े, वह अम्मा के सिर पर बर्फ़ मल रही थी, पर स्वयं अम्मा मुझे नहीं दिखीं। यह लड़की वही «la belle Flamande»* थी जिसकी अम्मा ने अपनी चिट्ठी में चर्चा की थी और जो आगे चलकर हमारे समूचे परिवार के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनेवाली थी। हमारे प्रवेश करते ही उसने अम्मा के सिर पर से अपना हाथ हटा लिया और उसकी छाती पर गाउन की शिकनों को बराबर करके, अत्यंत धीमे स्वर में बोली — "होश नहीं है।"

मेरा बुरा हाल था उस वक्त, किन्तु मैं बिना किसी चेष्टा के यह छोटी-छोटी बातें देख रहा था। कमरे में लगभग अंधकार था, बड़ी गर्मी लग रही थी और पिपरमिंट, यूडीकोलोन तथा दवाओं की गंध फैली हुई थी। इस गंध ने मेरे ऊपर इतना प्रभाव डाला कि आज भी उसे सूंघने पर वह अंधेरा, दम घोटने वाला कमरा और उस भयानक घड़ी की एक एक बातें सामने खड़ी हो जाती हैं।

अम्मा की आंखें खुली हुई थीं पर उन्हें दिख नहीं रहा था। उनकी वह भयावनी आकृति मैं कभी भूल न सकूंगा। उसमें घोर आंतरिक पीड़ा की छाप थी।

लोग हमें पकड़कर बाहर ले गये।

---

*[फ़्लेमिश सुंदरी]

वाद में, नाताल्या साविश्ना से अम्मा के अंतिम क्षणों के वारे में पूछने पर उसने हमें उसका निम्नलिखित वर्णन सुनाया:

"तुम लोगों के ले जाये जाने के वाद विटिया वड़ी देर तक छटपटाती रही मानो उसे भीतर कोई तकलीफ़ हो, इसके वाद तकिये पर उसका सिर लुढ़क गया और वह शांतिपूर्वक सो गयी मानो स्वर्ग की देवी हो। मैं वाहर देखने गयी कि उसके लिए पानी लाने में क्यों देर हो रही है। लौटकर आयी तो विटिया फिर जाग गयी थी और तुम्हारे पिताजी को पास आने का इशारा कर रही थी। वह उसके ऊपर झुके पर जो वह कहना चाहती थी उसे कहने की ताकत उसमें नहीं रह गयी थी केवल ओंठ खुले और कराहते हुए वह इतना ही वोली–'हे, भगवान, हे प्रभु, मेरे वच्चे।' मैंने चाहा कि दौड़कर तुम लोगों को वुला लाऊं पर इवान वासीलिच ने मुझे रोक दिया और वोले–'इससे उसकी उत्तेजना और वढ़ जायगी रहने दो उन्हें।' इसके वाद वह केवल हाथों को उठाती और गिराती रही। ईश्वर ही जानता है, वह क्या चाह रही थी। शायद वह तुम लोगों की गैरहाज़िरी में तुम्हें आशीर्वाद दे रही थी। भगवान की इच्छा न थी कि मरने से पहले अपने नन्हों का मुंह देखती। इसके वाद वह थोड़ा उठी, हाथ से यों इशारा किया और ऐसे स्वर में वोली जिसे सोचकर मेरी छाती फटने लगती है–'भगवान, उनका ख्याल रखना, उन्हें छोड़ना मत!' इसके वाद पीड़ा शायद कलेजे तक जा पहुंची थी। उसकी आंखें वता रही थीं कि वह घोर कष्ट में है, वह तकिये पर गिर पड़ी, चादर को दांत से पकड़ लिया और आंखों से आंसुओं की धारा वह चली।"

"इसके वाद क्या हुआ?" मैंने पूछा। पर नाताल्या साविश्ना इसके आगे न कह सकी; वह मुंह फेरकर फूट-फूटकर रोने लगी।

अम्मा के घोर कष्ट में प्राण छूटे।

शोक

दूसरे दिन रात के समय मेरी इच्छा उसे एक वार फिर देखने की हुई। मैंने अपने ऊपर छायी हुई भय की भावना को दवाकर धीरे से दरवाज़ा खोला और पंजों के वल हाल में प्रवेश किया।

तावूत कमरे के वीच एक मेज़ पर रखा हुआ था और उसके चारों ओर चांदी के लम्वे चिरागदानों में मोमवत्तियां जल रही थीं। दूर के एक कोने में मंत्रोच्चारक धीमे एकरस स्वर में भजनों की पुस्तक का पाठ कर रहा था।

मैंने दरवाज़े पर रुककर गौर से ताका, पर रोने से मेरी आंखें शिथिल पड़ गयी थीं और मिज़ाज इतना घवराया हुआ था कि कुछ दिखायी नहीं पड़ा। सारी चीज़ें—मोमवत्ती की रोशनी, कीमखाव और मखमल, कई मोमवत्तियों वाला विशाल शमादान, काम किया हुआ गुलावी तकिया, गोटे लगी हुई टोपी और मोम जैसी कोई पारदर्शी वस्तु विचित्र ढंग से एक-दूसरे से मिल-जुल गयी थीं। उसका चेहरा देखने के लिये मैं एक कुर्सी के ऊपर चढ़ गया, परन्तु जहां मुंह होना चाहिये था, वहां वही मोम जैसी पारदर्शी वस्तु थी। मुझे विश्वास न हुआ कि यही उसका चेहरा है। लेकिन देर तक टकटकी लगाने के वाद धीरे-धीरे सुपरिचित प्यारी रूपरेखा स्पष्ट होने लगी। यह महसूस करते ही कि यह वही है, मैं सिहर उठा। लेकिन उनकी आंखें इतनी धंसी हुई क्यों थीं? चेहरे पर ऐसी भयानक ज़र्दी क्यों थी और क्यों था एक गाल पर चमड़े के नीचे वह काला-सा धव्वा? पूरा चेहरा ऐसा कठोर और ठण्डा क्यों लग रहा था? ओंठ इतने पीले क्यों थे, उनकी रेखा इतनी सुंदर, इतनी भव्य और अलौकिक शांति से इतनी भरपूर क्यों थी कि उसे देखते ही मेरे शरीर में कंपकपी दौड़ गयी और रोंगटे खड़े हो गये?

टकटकी लगाकर उसे देखते हुए मुझे ऐसा लगा, कि कोई रहस्यपूर्ण और दुर्दम्य शक्ति मेरी आंखों को बरबस उस निर्जीव चेहरे की ओर खींच रही थी। मैंने दृष्टि हटायी नहीं और कल्पना ने जाग्रत जीवन और आनंद के चित्र खींचने शुरू कर दिये। मैं भूल गया कि मेरे सामने पड़ी मृत देह, जिसे मैं जड़वत यों निहार रहा था मानों मेरे सपनों से बिलकुल भिन्न कोई वस्तु हो, मेरी मां थी। मेरी कल्पना में वह फिर पहले की तरह जीवित उत्फुल्ल और मुस्कराती हुई साकार हो गयी। इसके बाद, हठात् उस पीले चेहरे की, जिसपर मेरी आंखें टंगी हुई थीं, कोई रेखा मेरे मानसपटल से टकरायी और भयानक वास्तविकता फिर मेरे सामने आ खड़ी हुई। मैं कांप उठा पर दृष्टि न हटायी। फिर कल्पनालोक के सपने आये और वास्तविकता को मिटा दिया। और फिर वास्तविकता की चेतना प्रगटी और सपने भाग गये। अंत में कल्पना थक गयी और मुझे ठगना बंद कर दिया, वास्तविकता की चेतना भी गुम हो गयी और मेरी सुधबुध जाती रही। मुझे पता नहीं कि कितनी देर मैं इस अवस्था में रहा। या यह अवस्था थी क्या, इतना ही जानता हूं कि कुछ देर के लिये अपने अस्तित्व की चेतना मैंने खो दी थी और एक सूक्ष्म अकथनीय, सुखद, शोकपूर्ण आनंद की अनुभूति में डूब गया था।

शायद इस लोक से बेहतर लोक को उड़कर जाते समय उसकी सुंदर आत्मा ने उदासी से भरकर पीछे, जहां वह हमें छोड़ गयी थी, ताका, उसने मेरा शोक देख लिया और मेरे प्रति दया से भरकर प्रेम के पंखों पर सवार, दया की दैवी मुसकान लिए, मुझे सांत्वना और आशीर्वाद देने पृथ्वी पर वापस उतरी।

दरवाज़ा चरमराया और पहले मंत्रोच्चारक का स्थान लेने एक दूसरा मंत्रोच्चारक कमरे में दाखिल हुआ। आवाज़ से मैं जाग-सा गया, और उस समय पहला विचार जो मेरे मस्तिष्क में आया वह था

कि चूंकि मैं रो नहीं रहा हूं और कुर्सी पर ऐसी मुद्रा में खड़ा हूं जिससे शोक प्रगट नहीं होता। इसलिए आनेवाला कहीं न समझ ले कि मैं ऐसा हृदय शून्य वालक हूं जो दया अथवा कुतूहल वश कुर्सी पर चढ़ा हुआ है। मैंने अपने ऊपर क्रास का चिह्न वनाया, माथा नवाया और रोना आरंभ कर दिया। उस समय की स्मृतियों को आज जव दुहराता हूं तो पाता हूं कि आत्मविभोरता का वही एक क्षण वास्तविक शोक का क्षण था। अन्त्येष्टि के पहले और वाद में भी मेरा रोना रुका न था और मैं वहुत उदास था, किंतु उस उदासी को याद करके शर्म आती है, क्योंकि उसके साथ निरंतर आत्मप्रेम की भावना मिश्रित थी —कभी मैं यह दिखाना चाहता था कि सवसे अधिक शोक मुझे ही है, कभी यह जानने की फ़िक्र में रहता था कि, लोगों पर मेरे भाव का क्या असर पड़ रहा है, और कभी एक उद्देश्यहीन कुतूहल के वशीभूत होकर ऐसी चीज़ों का निरीक्षण करने लगता था, जैसे मीमी की टोपी या उपस्थित लोगों के चेहरे। मैं अपने आपसे घृणा करने लगा क्योंकि मेरी तत्कालीन भावना केवल शोक की न थी, और अन्य भावनाओं को मैं औरों से छिपाने का यत्न करने लगा, अतः मेरा शोक दिल से नहीं उठता था, और अस्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त, यह सुनकर कि मैं शोकमग्न हूं मुझे एक प्रकार का सुख प्राप्त होता था। मैंने अपने अंदर दुख की चेतना को कुरेदकर उठाने की कोशिश की इसी स्वार्थ के हित चेष्टा ने सव से अधिक वास्तविक शोक का गला घोटा।

जैसा की घोर शोक के अवसरों पर हमेशा होता है, गहरी और शांतिपूर्ण नींद में रात विताने के वाद जव मैं उठा तो मेरे आंसू सूख चुके थे और चित्त स्थिर था। दस वजे, तावूत उठाने के पहले, मृतात्मा की शांति के लिए जव प्रार्थना होने लगी तो हम लोगों को वुला लिया गया। कमरा रोते नौकरों और किसानों से जो अपनी मालकिन की

अंतिम विदाई के लिए आये थे, भरा हुआ था। प्रार्थना के समय मैं खूब रोया, अपने ऊपर क्रास के चिन्ह बनाये और बार-बार धरती पर झुका, किंतु मेरी प्रार्थना हार्दिक न थी, वह भावनाहीन थी। मैं अपना आवी बाहों का नया कोट लेकर, जो मुझे पहनाया गया था, परेशान था, क्योंकि वह कांख के पास तंग हो रहा था। मुझे यह फ़िक्र भी थी कि ज़मीन पर झुकते समय पतलून के घुटने ज़्यादा गंदे न हो जायं, इसके अलावा, मैं चुपके से उपस्थित लोगों को गिन गया था। पिताजी ताबूत के सिरहाने खड़े थे। उनके चेहरे का रंग उनके रुमाल की तरह जर्द था, और स्पष्ट था कि वह बड़ी कठिनाई के साथ अपने आंसू रोक पा रहे थे। काले कोट में उनका लम्बा शरीर उनका ज़र्द भावपूर्ण चेहरा, और अपने पर क्रास का चिन्ह बनाते समय, झुककर हाथों से ज़मीन को छूते समय, पादरी के हाथ से मोमबत्ती लेते समय या ताबूत के निकट जाते समय उनकी चेष्टाएं, जो सदा की तरह परिमार्जित और आत्मनिष्ट थीं, अत्यन्त प्रभावकर लग रही थीं। पर पता नहीं क्यों उनकी प्रभावकर लगने की यही क्षमता उस समय मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। मीमी दीवार से यों लगकर खड़ी थी मानो बिना सहारे खड़े नहीं हुआ जाता उससे। उसके कपड़े मुड़े-चिमुड़े हुए थे। उनमें जगह-जगह पंख और रुई सटी हुई थी, उसकी टोपी तिरछी हो गयी थी। उसकी आंखें सूजी और लाल थीं। सिर कांप रहा था और हृदयविदारक सिसकियां बंद नहीं हो रही थीं। बार-बार वह अपने चेहरे को अपने हाथों और रुमाल में गाड़ लेती थी। मेरा ख़्याल था कि दिखावा करते-करते थक जाने पर लोगों से मुंह छिपाकर थोड़ा सुस्ता लेने के लिए ही वह ऐसा कर रही थी। मुझे याद आया कि कल उसने पिताजी से कहा था कि, अम्मा की मृत्यु उसके लिए ऐसी हृदयविदारक घटना थी कि उसके स्वयं बचने की आशा न थी, कि इस घटना ने उसे कहीं का न छोड़ा था, कि स्वर्ग की वह देवी (अम्मा को वह यही कहा करती थी)

मरते समय उसे भूली न थी और यह इच्छा व्यक्त की थी कि उसका और कातेंका का ऐसा कोई प्रबंध हो जाय कि दोनों भविष्य के लिए निश्चिन्त हो जायं। यह कहते समय वह फूट-फूटकर रोने लगी थी, और संभवतः उसकी रुलाई सच्ची भी थी किन्तु उसका कारण मां के लिए विशुद्ध शोक ही न था। ल्यूवोच्का काला फ़ाक पहने जिसपर शोकसूचक किनारी लगी थी, गाल आंसुओं से तर, सिर झुकाये खड़ी थी और एक वच्चे की सी सहमी हुई निगाहों से वार-वार तावूत को देख रही थी। कातेंका अपनी मां की वगल में खड़ी थी। उदासी के वावजूद उसका चेहरा सदा की तरह गुलावी था। खरे स्वभाव का वोलोद्या शोक के अवसर पर भी वैसा ही खरा था। वह प्रायः अपनी विचारपूर्ण अचल दृष्टि किसी स्थिर वस्तु पर टिकाये हुए खड़ा रहता, और तव सहसा उसके ओंठ हिलने लगते और झट क्रास का चिन्ह वनाकर श्रद्धा से माथा नीचे झुका लेता था। अंत्येष्टि क्रिया में उपस्थित अजनवी मुझे विलकुल नहीं भा रहे थे। पिताजी को सांत्वना देने के निमित्त प्रयोग की गयीं उनकी सूक्तियां—"वहां वह सुख से रहेंगी," "वह इस लोक की जीव न थी" आदि मेरे मन में खीझ उत्पन्न कर रही थीं।

उनके लिए वोलने और शोक मनाने वाले ये कौन होते हैं? कुछ लोग तो हमें 'अनाथ' कह रहे थे, मानो वे न वताते तो हमें मालूम ही न होता कि जिन वच्चों की मां नहीं होती उन्हें 'अनाथ' कहते हैं! प्रगट था कि, इस पदवी से हमें विभूषित करने में उन्हें मजा मिल रहा था। जिस प्रकार किसी लड़की का विवाह होने पर सवसे पहले उसे 'श्रीमती' कहकर सम्वोधित करनेवाला प्रथम व्यक्ति होने के लिए लोग होड़ करते हैं उसी तरह की होड़ इन लोगों ने भी मचा रखी थी। हाल के एक दूर के कोने में, भंडारघर के खुले दरवाज़े से लगभग छिपी हुई एक सफ़ेद वालों वाली स्त्री जिसकी कमर टेढ़ी हो चुकी थी

झुककर खड़ी थी। दोनों हाथों को जोड़े हुए और आकाश की ओर आंखें किये हुए वह रो नहीं रही थी वरन् प्रार्थना कर रही थी। वह प्रभु से कह रही थी मुझे भी उठा ले, अपनी प्राणप्यारी के पास मुझे भी ले चल। उसे पूरा विश्वास था कि प्रभु उसे भी शीघ्र ही अपने पास बुला लेंगे।

"यह वास्तव में उसे सच्चे हृदय से प्यार करती है," मैंने सोचा और मुझे अपने ऊपर ग्लानि हुई।

प्रार्थना समाप्त हुई, मृतक का चेहरा उघार दिया गया और हम लोगों को छोड़कर वहां उपस्थित सभी लोग बारी बारी से ताबूत के पास जाकर उसे चूमने लगे।

इस कतार के सब से पीछे के लोगों में एक सुंदर पांच वर्षीय बालिका का हाथ पकड़े हुए एक किसान स्त्री खड़ी थी। भगवान ही जानता होगा कि वह उस लड़की को किस लिए अपने साथ लायी थी। ठीक उसी समय मेरा भीगा रुमाल नीचे गिर पड़ा और मैं उसे उठाने के लिए झुका। पर मेरे झुकने के साथ ही एक भयानक मर्मभेदी चीख मेरे कानों में पड़ी और मैं चौंक उठा, उस चीख में भय का ऐसा भयानक कम्पन था कि सौ वर्ष भी मैं उसे नहीं भूल सकता और आज भी जब उसकी याद आती है तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और सारे शरीर में ठंडी सिहरन दौड़ जाती है। मैंने सिर उठाया: ताबूत की बग़ल में एक स्टूल के ऊपर वही किसान स्त्री बड़ी कठिनाई से छोटी लड़की को गोद में दबाये हुए खड़ी थी। लड़की ज़ोर से अपने नन्हे हाथ पटक रही थी और अपनी भयभीत दृष्टि मेरी मृत मां के चेहरे की ओर गड़ाये, विस्फारित नेत्रों से उसे देख रही थी। उसके मुंह से चीखों पर चीखें निकल रही थीं। मैं भी चीख पड़ा और शायद मेरी चीत्कार उससे भी अधिक लोमहर्षक थी। मैं कमरे के बाहर भागा।

उस समय सहसा मुझे बोध हुआ कि धूप की सुगंध से मिली हुई, कमरे में फैली तेज़ बू क्या थी। इस विचार ने कि चंद दिनों पहले तक का वह प्यारभरा हंसमुख चेहरा, वह चेहरा जो मुझे दुनिया की सभी वस्तुओं से अधिक प्रिय था किसी के दिल को भयभीत कर सकता है, पहले पहल मुझे इस वास्तविकता का भास कराया। मेरा मन निराशा से भर उठा।

अठाईसवां परिच्छेद

अंतिम विषादपूर्ण स्मृतियां

अम्मा चली गयी थीं, पर हमारे पुराने जीवन-क्रम में हेर-फेर न हुआ था। सोने और उठने का वही समय, वही कमरे, सुबह-शाम का वही चायपान, फिर दिन का भोजन और उसके बाद रात का भोजन—सब कुछ अपने पुराने नियमित समय पर चलता था। मेज़ और कुर्सियों का क़रीना न बदला था, घर में या हमारे जीवन-क्रम में कोई परिवर्तन न आया था एक—अम्मा जाती रही थीं।

दुख का इतना बड़ा पहाड़ टूटने के बाद सब कुछ बदल जाना चाहिए, ऐसा मेरा ख़याल था। इसलिए जीवन का वही साधारण क्रम चलता देख मुझे ऐसा लगता था कि उसकी स्मृति का अपमान हो रहा है। उसकी अनुपस्थिति और भी अधिक महसूस होने लगती।

अन्त्येष्टि क्रिया के एक दिन पहले, दोपहर के भोजन के बाद मैं सोना चाहता था; अतः नाताल्या साविश्ना के कमरे में गुदगुदे पंख भरे गद्दे पर गरम रूईदार लिहाफ़ में घुसकर सोने के ख़याल से मैं उसके कमरे में गया। मेरे कमरे में घुसते समय नाताल्या साविश्ना बिस्तर में, शायद नींद में, लेटी हुई थी। मेरे पैरों की आहट सुनकर वह उठ बैठी, और सिर से मक्खियों से बचाने वाले ऊनी कपड़े को फेंककर टोपी सीधी करती हुई पलंग की पाटी पर बैठी रही। भोजन

के वाद झपकी लेने के लिए मैं प्रायः उसके कमरे में जाया करता था, इसलिए मेरे आते ही वह मेरा मतलव समझ गयी।

"यहां थोड़ी देर आराम करने आये हो न? आ जाओ, मेरे मुन्ने," उसने कहा।

"नहीं नाताल्या साविश्ना," मैंने उसका हाथ थामते हुए कहा, "आराम करने नहीं आया। यों ही आ गया हूं। तुम खुद थकी हुई हो, तुम सो जाओ।"

"मैं तो, काफ़ी सो चुकी वेटा," उसने कहा· (यह ग़लत था; मैं जानता था कि वह तीन दिनों से सोयी नहीं है) "इसके अलावा नींद आती ही किसे है," उसने गहरी सांस छोड़कर कहा।

मैं नाताल्या साविश्ना से अपने दुर्भाग्य की चर्चा करना चाहता था। मैं जानता था, कि वह अम्मा को प्राणों से वढ़कर प्यार करती है, अतः उसके साथ रोकर थोड़ा मैं कलेजा हलका करना चाहता था।

कुछ देर दोनों मौन रहे। इसके वाद पलंग पर वैठते हुए मैंने कहा— "नाताल्या साविश्ना, तुमने कभी सोचा था कि ऐसा होगा?"

वुढ़िया ने आश्चर्य और कुतूहल से मेरी ओर देखा—संभवतः वह मेरे इस प्रश्न का कारण नहीं समझ सकी थी।

"किसे मालूम था कि यह हो जाएगा?" मैंने दुहराया।

"मुझे तो, वेटा, आज भी विश्वास नहीं हो रहा है," उसने अति वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा। "मैं वूढ़ी हुई, मुझे तो कव का क़ब्र में चला जाना चाहिए था, पर इन आंखों से—वूढ़े मालिक, तुम्हारे नाना प्रिंस निकोलाई मिखाइलोविच (भगवान उनकी आत्मा को शांति दे), अपने दो छोटे भाइयों और छोटी वहिन अनुस्का का जाना देख चुकी हूं हालांकि वे सव मुझसे छोटे थे। लेकिन मुझ, पापिन, को अभी इसका जाना भी देखना वदा था। जो मर्ज़ी तेरी प्रभु!

वह लायक़ थी इसलिए उसे उठा लिया तूने—अच्छे लोगों की ही तेरे यहां पूछ जो है।"

उसकी इस सरल धारणा ने मुझे सांत्वना प्रदान की, और मैं नाताल्या साविश्ना के और निकट सटकर बैठ गया। वह दोनों हाथ छाती पर बांधकर ऊपर की ओर देखने लगी। उसकी धंसी हुई आंसूभरी आंखें बता रही थीं कि उसका कलेजा फटा जा रहा है और वह धीरज धरकर सहन कर रही है। उसके मन में यह दृढ़ आशा थी कि, भगवान उसे अधिक दिनों तक उससे अलग न रखेगा जिसपर उसने अपने जीवन का सारा प्यार उंडेल रखा था।

"मुझे तो, बेटे, ऐसा लगता है जैसे कल ही की बात हो—मैं धाय थी, वह छोटी बच्ची; मैं उसे कपड़े पहनाकर सजाती थी और वह मुझे नाशा कहकर पुकारती थी। वह दौड़कर आती और अपनी नन्ही-सी बांहें मेरे गले में डालकर मुझे चूमने लगती और कहती—'मेरी नाशिक, मेरी सुंदर, मेरी प्यारी नाशिक!' और मैं मज़ाक़ से कहती—'ना, बेटी ना, तू मुझे प्यार नहीं करती; ठहर; ज़रा बड़ी हो जा, फिर तो तेरा दूल्हा आ जायगा और तू अपनी नाशा को भूल जायगी।' वह सोच में पड़ जाती। 'नहीं, नहीं, यदि मेरी नाशा साथ न जायगी तो मैं ब्याह ही न करूंगी; मैं नाशा को नहीं छोड़ सकती।' लेकिन अब देखो क्या हुआ—वह मेरे लिए रुकी नहीं, मुझे छोड़कर चल दी। ओह, कितना प्यार करती थी वह मुझे? सच तो यह है कि कोई ऐसा आदमी नहीं था जिसे वह प्यार न करती हो। तू, बेटा, अपनी अम्मा को कभी मत भूलना। वह मनुष्य न थी, स्वर्ग की देवी थीं। उसकी आत्मा अब स्वर्ग पहुंचेगी तो वहां भी तुझे प्यार करेगी और खुशियां मनायेगी।"

"'जब स्वर्ग पहुंचेगी तो,' क्यों कहती हो, नाताल्या साविश्ना?" मैंने पूछा। "मेरे विचार से तो वह अभी ही वहां पहुंच चुकी होगी।"

"ऐसी बात नहीं है, बेटा," उसने अपने स्वर को मद्धिम करके तथा मेरे और पास सटकर कहा। "अभी उसकी आत्मा यहीं है," यह कहकर उसने ऊपर की ओर इशारा किया। उसका स्वर बिलकुल धीमा हो गया था और उसके कहने में इतना दृढ़ निश्चय और आवेग था कि मेरी आंखें आपसे आप छत की ओर उठ गयीं और कार्निस पर कुछ ढूंढ़ने लगीं। "अच्छे आदमियों की आत्मा स्वर्ग जाने से पहले चालीस बार रूप बदलती है, और चालीस दिन अपने घर में ही रह सकती है।"

इसी लहजे में वह देर तक बोलती रही। उसके बोलने में ऐसी सरलता और निष्ठा थी मानो वह कोई किसी आंखों देखी लौकिक घटना का वर्णन कर रही हो जिसके बारे में शंका या संशय का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। मैं सांस रोककर उसकी बातें सुन रहा था। यद्यपि वे मुझे अच्छी तरह समझ में न आयीं, पर मैंने उनपर पूरा विश्वास कर लिया।

अंत में नाताल्या साविश्ना ने कहा—"हां बेटे, वह अभी यहीं है; हमें देख भी रही है और शायद हमारी बातें भी उसे सुनाई पड़ रही है।"

इसके बाद उसने सिर झुका लिया और मौन हो गयी। उसकी आंखें आंसूओं से तर थीं। वह, रूमाल खोजने लगी; उठकर उसने मेरी आंखों में देखा और भावावेश से कम्पित स्वर में बोली:

"इससे मैं और भी भगवान के निकट आ गई हूं। अब मेरे लिए ज़िंदगी में रखा ही क्या है? जियूं तो किसके लिए? प्यार करूं तो किसे?"

"तो तुम हम लोगों को प्यार नहीं करती हो?" मैंने भर्त्सना के स्वर में कहा। मुझे रुलाई आ गयी थी।

"भगवान ही जानता होगा मेरे लाल, कि तुम लोग मुझे प्राणों से प्यारे हो; पर जैसा प्यार मैंने उसे किया वैसा किसी को नहीं, और न आज भी किसी को उस तरह प्यार कर सकूंगी।"

इसके आगे वह कुछ न कह सकी और मुंह फेरकर ज़ोर से सिसकी भरने लगी।

नींद लेने का मेरा इरादा हवा हो चुका था। हम दोनों आमने-सामने बैठे रो रहे थे।

फ़ोका ने कमरे में प्रवेश किया; पर हम लोगों की अवस्था देखकर और सम्भवतः हमें टोकना न चाहते हुए वह दरवाज़े पर ठिठक गया और सहमी दृष्टि से चुपचाप हम लोगों को देखने लगा।

"क्या चाहिए तुम्हें, फ़ोका?" नाताल्या साविश्ना ने आंसुओं को पोंछते हुए कहा।

"कुत्या* के लिए तीन पाव किशमिश, दो सेर चीनी और डेढ़ सेर चावल चाहिए।

"अभी देती हूं," कहकर नाताल्या साविश्ना ने जल्दी से नाक में थोड़ी सुंघनी डाली और तेज़ी से आलमारी के पास गयी। हम लोगों की बातचीत से उमड़नेवाले शोकावेग के अंतिम चिन्ह गृहस्थी के अपने कर्तव्य में लग जाने के बाद जिन्हें वह सर्वोपरि महत्व देती थी, फ़ौरन ही मिट गये।

"दो सेर चीनी क्या होगी?" उसने भुनभुनाते और चीनी को तौलते हुए कहा, "पौने दो सेर से काम चल जायगा।" यह कहकर उसने तराज़ू से थोड़ी चीनी निकाल ली। "और इतना चावल लेकर क्या करोगे? अभी कल ही तो चार सेर दिये थे तुम्हें। फ़ोका देमीदिच, बुरा मत मानना; पर अब चावल नहीं दूंगी तुम्हें। उस वान्का को तो

---

* रूस में मरनी के भोज में खाया जानेवाला विशेष भोज्य-पदार्थ।—सं०

ख़ुशी ही हो रही होगी कि गृहस्थी उजड़ गयी; वह सोचता है देखनेवाला ही कौन रहा! लेकिन मैं तो मालिक का माल यों बरबाद नहीं होने दे सकती। चार सेर, सुनो तो भला!"

"करूं क्या? वह कहता है, सब की सब रसद ख़तम हो गयी।"

"ठीक है, तो ले जाओ। लेता है तो ले।"

मुझे नाताल्या साविश्ना का व्यवहार देखकर अचरज हो रहा था— अभी कुछ ही देर पहले वह शोक के आवेग में डूबी हुई मेरे साथ बातें कर रही थी और अब इन मामूली-सी चीज़ों को लेकर झंझट कर रही है। इसे बाद में सोचने पर मैंने समझा कि दिल के भीतर की आंधी के बावजूद घर का काम-काज संभालने की उसकी सहज बुद्धि अपना काम कर रही थी और वर्षों की आदत से वह यंत्रवत सब कुछ करती जा रही थी। उसका शोक इतना प्रबल और सच्चा था कि उसे यह दिखावा करने की आवश्यकता न थी कि छोटे छोटे कामों में मन नहीं लग रहा है। न ही उसे कभी ख़्याल आ सकता था कि ऐसी बात भी कोई सोच सकता है। झूठी शान और सच्चे शोक में कोई मेल नहीं है। फिर भी यह विकार कुछ लोगों की प्रकृति का ऐसा अभिन्न अंग बन जाता है कि गहरे से गहरे संताप आने पर भी उससे छुटकारा नहीं मिलता।

शोक के अवसर पर मनुष्य की झूठे दिखावे की वृत्ति उदास, या दुःखी दिखाने या दृढ़ता दिखाने के रूप में प्रकट होती है। और यह ओछी भावना, जिसे हम कभी स्वीकार नहीं करते पर जो गम्भीर से गम्भीर शोक के अवसरों पर भी हमारा साथ नहीं छोड़ती, शोक या संताप का गुरुत्व, गौरव और तत्व हर लेती है। लेकिन नाताल्या साविश्ना के हृदय पर शोक ने ऐसा गहरा प्रहार किया था कि उसकी आत्मा में कोई इच्छा शेष न रही थी, और उसका जीवनक्रम अब केवल आदत के कारण चल रहा था।

फ़ोका को, उसने रसोई का सामान देकर और पादरियों के भोज के लिए सालन के समोसे तैयार करने की याद दिलाकर विदा किया और फिर अपनी बुनाई लेकर मेरी बग़ल में आ बैठी।

बातचीत फिर पहले विषय पर जा पहुंची, और फिर हम दोनों बहुत रोये।

नताल्या साविश्ना के साथ की ये बातें दैनिक क्रम बन गयीं। उसके आंसुओं और शांत श्रद्धासिक्त शब्दों से मुझे सांत्वना प्राप्त होती।

लेकिन अंत में हमें जुदा होना पड़ा। अन्त्येष्टि क्रिया के तीन दिन बाद पूरा घर मास्को चला गया। फिर उससे मुलाक़ात करने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला।

नानी को यह भयानक समाचार हम लोगों के पहुंचने के बाद ही मिला। उसके शोक का ठिकाना न रहा। हमें उससे मिलने नहीं दिया जाता था क्योंकि वह पूरे सात दिन बेसुध पड़ी रही। डाक्टरों को आशंका हो गयी थी कि वह बचेगी नहीं। कारण, दवा लेना तो दूर, बोलना-चालना, खाना-पीना और सोना भी उसने बंद कर दिया था। प्रायः कमरे में अपनी कुर्सी पर अकेली बैठी बैठी वह अनायास कभी हंसने और कभी रोने लगती पर रोते समय आंखों में आंसू नहीं आते थे, या भयानक स्वर में प्रलाप करने लगती थीं। यह जीवन का उसका पहला सच्चा शोक था, जिसने उसका कलेजा मथ डाला था। अपने दुर्भाग्य के लिए किसी पर दोष मढ़ने की आवश्यकता थी उसे। किसी अदृश्य व्यक्ति के साथ वह ज़ोर ज़ोर से बातें करती, उसे भयानक स्वर में कड़वी से कड़वी बातें कहती, बोलते बोलते कुर्सी से उछल पड़ती और कमरे में लम्बे डगों से टहलना आरम्भ कर देती, और इसके बाद बेहोश होकर गिर पड़ती।

एक बार मैं उसके कमरे में गया। वह सदा की तरह अपनी कुर्सी पर बैठी हुई थी, बाहर से बिल्कुल शांत; किन्तु उसकी दृष्टि ने

मुझे चौंका दिया। आंखें पूरी खुली हुई थीं, पर दृष्टि उड़ी उड़ी-सी और शून्य। वह सीधे मेरी ओर देखते हुए भी मुझे नहीं देख रही थी। उसके ओंठों पर मुसकान प्रकट हुई और स्नेह से गीले स्वर में उसने कहा—"आ जा, आ जा; यहां आ जा, प्राण!" यह सोचकर कि वह मुझे बुला रही है मैं थोड़ा और नज़दीक गया, पर उसने मेरी तरफ़ देखा भी नहीं। "मेरी प्राण, मेरी सर्वस्व, मैं तेरे बिना मरी जा रही थी, अब तू आ गयी है तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है।" तब मैंने समझा कि वह अम्मा की छाया देख रही थी, और रुक गया। "इन लोगों ने आकर मुझे कह दिया कि तू मर गयी है," उसने माथे पर बल डालकर कहा। "मूर्ख कहीं के। तू मेरे से पहले क्योंकर मर सकती है?" यह कहकर वह पागलों की सी भयावनी हंसी हंसी।

जो गहरा प्रेम कर सकते हैं वे ही गहरा दुख भी उठाते हैं; किन्तु प्रेम करने की यह आवश्यकता ही दुख का मुक़ाबला करने का काम करती है और घाव भर देती है। यही कारण है कि मनुष्य की नैतिक प्रकृति भौतिक से अधिक मजबूत और बलवान होती है और मनुष्य को शोक नहीं मार सकता।

एक सप्ताह के बाद नानी की रोने की क्षमता लौट आयी, और उनकी हालत सुधरने लगी। सुध होने के बाद उनका ख़याल सबसे पहले हम लोगों के ऊपर दौड़ा और हमारे प्रति उनकी ममता बढ़ गयी। हम लोग उनकी कुर्सी के पास से कभी न हटते थे; वह हलके रोया करतीं, अम्मा की ही बातें करतीं और हमें बहुत अधिक दुलारा करती थीं।

नानी की तकलीफ़ को देखनेवाला कोई आदमी यह सोच भी न सकता था कि उसमें तनिक भी दिखावा है। उनका रोना देखकर सभी का कलेजा फटने लगता था। फिर भी न जाने क्यों मुझे नाताल्या साविश्ना से अधिक सहानुभूति थी और आज भी मुझे विश्वास है कि

अम्मा के प्रति उस वुढ़िया जैसी ममता और उसके जैसा सच्चा और गहरा शोक कोई अनुभव नहीं कर सकता था।

अम्मा की मृत्यु के साथ हंसी-खुशी से भरे उस वचपन का खातमा हो गया। जीवन का एक नया अध्याय आरंभ हुआ—किशोरावस्था का अध्याय। पर चूंकि नाताल्या साविश्ना से जुड़ी मेरी स्मृतियां जिससे मेरी फिर कभी भेंट न हुई और जिसने मेरे जीवन और मेरी भावनाओं के विकास पर इतना गहरा और हितकर प्रभाव डाला था, इसी पिछले अध्याय से सम्वन्ध रखती हैं, इसलिए मैं कुछ शब्द उसके और उसकी मृत्यु के विपय में और कह देना चाहता हूं।

जैसा कि हम लोगों को वाद में मालूम हुआ, हमारे चले आने के वाद वह देहात में ही रही और कुछ काम न रह जाने के कारण दिन काटना भी उसे कठिन प्रतीत होने लगा। कपड़ों के संदूक़ अव भी उसके ज़िम्मे थे और वह नियमपूर्वक उन्हें निकालने, धूप में डालने और फिर तह कर रखने का काम किया करती थी। फिर भी घर में मालिक के रहने से जो चहल-पहल और रौनक रहती थी, उसका अभाव उसे हमेशा खटकता रहा, क्योंकि वचपन से ही वह इसकी आदी थी। कुछ शोक के कारण, कुछ ज़िंदगी का सारा ढंग वदल जाने के कारण और कोई ज़िम्मेदारी न रह जाने से—इन सव वातों ने उसकी एक पुरानी वीमारी उधाड़ डाली। अम्मा की मृत्यु के ठीक एक वर्ष वाद उसे जलोदर ने धर दवोचा और उसने विस्तर पकड़ लिया।

नाताल्या साविश्ना की ज़िंदगी भारी हो गयी थी; और इससे भी भारी था पेत्रोव्स्कोये के उस सूने विशाल मकान में अकेले, विना किसी नातेदार या दोस्त के, मरना। घर के सभी लोग नाताल्या साविश्ना को प्यार और इज़्ज़त करते थे। पर उसने किसी को दोस्त नहीं वनाया था, और इसका उसे गर्व था। उसका विचार था कि चूंकि

वह मालिक की विश्वासभाजन घर की प्रबन्धिका थी और उसके जिम्मे मालिक के तरह तरह के सामानों से भरे बहुत से संदूक थे इसलिए यदि किसी को विशेषकर अपना मित्र बनाया तो इसका निश्चित परिणाम यह होगा कि, वह किसी के प्रति पक्षपात और अनुचित अनुग्रह की अपराधिनी बन जायगी। इसी कारण, या सम्भवत: इस कारण कि अन्य नौकरों से उसकी किसी वस्तु में समानता न थी, उसने अपने को सबसे अलग रखा और सदा यही कहा कि उसका न कोई नातेदार था न हमजोली, इसलिए जहां तक मालिक के माल का सम्बन्ध था वह सबको एक ही तराजू पर तौलेगी।

उसे ईश्वर-भजन का ही सहारा रह गया था और भगवान के समक्ष दिल खोलकर वह सांत्वना प्राप्त करने का प्रयत्न करती थी। फिर भी कभी कभी मानवीय दुर्बलता के वे अवसर आते थे जब आदमी किसी जीवित प्राणी के आंसुओं और सहानुभूति का सहारा लिया करते हैं। ऐसे अवसरों पर वह अपने छोटे-से कुत्ते को पलंग पर अपने साथ लिटा लेती (कुत्ता उसके हाथ चाटता और अपनी पीली आंखें गड़ाकर उसे देखता रहता), उससे बातें करती और उसे चुमकारते हुए मौन आंसू बहाती। जब नन्हा कुत्ता करुणापूर्ण स्वर में रोने लगता तो वह उसे शांत करने की कोशिश करती और कहती। "बस भी कर! तेरे कहने की जरूरत नहीं—मैं खुद जानती हूं कि मेरा वक़्त आन पहुंचा है।"

मरने से एक महीना पहले उसने बक्स से एक टुकड़ा सफ़ेद दरेस, एक टुकड़ा मलमल और कुछ गुलाबी फ़ीते निकाले; इनसे घर की एक नौकरानी की सहायता से उसने अपने लिए एक सफ़ेद पोशाक और टोपी बनायी और अपनी अन्त्येष्टि का सारा का सारा सामान तैयार किया; छोटी से छोटी चीज तक। इसके अलावा उसने मालिक के तमाम संदूक़ों के सामानों को छांटकर उनकी एक पक्की तालिका तैयार की

और तालिका के साथ सामान को गुमाश्ते के हवाले कर दिया। अपने पास उसने केवल दो रेशमी पोशाकें, एक पुरानी शाल जो कभी नानी ने उसे दी थी, और नाना की फ़ौजी वर्दी, जो भी उसे ही दे दी गयी थी, रखीं। उसकी सतत सावधानी के कारण वर्दी के ऊपर के क़सीदे और कलावत्तू अब भी नये जैसे थे तथा कपड़े को कीड़े ने छूआ तक नहीं था।

मरने से पहले उसने यह इच्छा व्यक्त की कि इनमें से गुलाबी पोशाक वोलोद्या को ड्रेसिंग गाउन या जैकट, जो भी वह चाहे, बनवाने के लिए दे दी जाय; दूसरी, अर्थात चारखाना भूरी पोशाक उसी काम के लिए मुझे दी जाय, तथा शाल ल्यूबोच्का को दी जाय। वर्दी के बारे में उसने कहा कि वह हम दोनों में से उसकी विरासत होगी जो पहले फ़ौजी अफ़सर बनेगा। अपनी बाक़ी सम्पत्ति और नक़दी (चालीस रूबल को छोड़कर जो उसने अपनी अन्त्येष्टि और मरने के बाद की प्रार्थना के लिए अलग कर दिये) उसने अपने भाई के नाम कर दी। उसका भाई जो बहुत दिन पहले से ही खेत-गुलाम नहीं रहा था, किसी दूर के प्रांत में दुराचारपूर्ण जीवन बिता रहा था। इसलिए मरते समय तक वह उससे न मिल पाई। मरने के बाद जब उसका भाई दाय लेने आया और मृतक की कुल कमाई २५ रूबल के नोट मात्र निकली तो उसे विश्वास ही नहीं होता था। उसने कहा कि ऐसा क्योंकर हो सकता है कि बुढ़िया जो साठ साल इतने धनिक परिवार में रही है और जिसके हाथ में गृहस्थी का सारा इंतज़ाम था, और जो भारी मक्खीचूस भी थी, कुछ न छोड़ गयी हो? पर वास्तविकता यही थी।

नाताल्या साविश्ना दो महीने बीमार रही और उसने एक सच्चे ईसाई के धैर्य के साथ उस तकलीफ़ को बर्दाश्त किया। उसके मुंह से कभी शिकायत न निकली; वह केवल नियमानुसार बाक़ायदा भगवान की स्तुति व प्रार्थना करती चली गयी। प्राणपखेरू उड़ने से एक घंटा

पहले उसने पादरी को बुलाकर अत्यंत शांति और प्रसन्नता के साथ अंतिम विधियां सम्पन्न करवायीं।

घर के नौकरों से उसने सभी भूल-चूक की माफ़ी मांगी और अपने पादरी, फ़ादर वासीली, से हम सभी लोगों को यह कह देने को कहा कि वह नहीं जानती कि किन शब्दों में हमारे उपकारों के लिए कृतज्ञता प्रकट करे और यदि उसकी मूर्खता के कारण किसी का दिल दुखा हो तो उसके लिए क्षमा मांगती है। "चाहे हमारे जितने भी दोष रहे हों, मैं चोर नहीं रही और मालिक का एक सूत भी धोखा देकर नहीं लिया," उसने कहलवाया। अपना यह गुण ही उसकी दृष्टि में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था।

अपनी तैयार की हुई पोशाक और टोपी पहने और तकियों का सहारा लिए वह अंतिम सांस तक पादरी के साथ बातें करती रही। उसे याद आया कि ग़रीबों को उसने कुछ दान नहीं दिया है, अतः उन्हें दस रूबल दिये और इलाक़े के ग़रीबों में बांट देने को कहा। इसके बाद उसने अपने ऊपर क्रास का चिन्ह बनाया, लेट गयी, उल्लासपूर्ण स्वर में भगवान का नाम लिया और प्राण त्याग दिये।

उसने बिना किसी दुःख व पश्चात्ताप के अपने प्राण त्यागे, मौत से उसे डर नहीं लगा बल्कि उसे आशीर्वाद समझकर गले लगाया। कहने को लोग अक्सर यही कहते हैं, पर व्यवहार में विरले ही ऐसा होता है! नाताल्या साविश्ना मौत से नहीं डर सकती थी क्योंकि उसे अपने धर्म पर दृढ़ विश्वास था और धर्मग्रंथों के नियमों का पालन करते हुए उसने तन त्यागा। उसका पूरा जीवन पवित्र तथा निःस्वार्थ प्रेम और आत्मत्याग से भरा जीवन था। कह सकते हैं कि उसके आदर्श और सिद्धांत और ऊंचे होने चाहियें थे, उसके जीवन का लक्ष्य अधिक उच्च होना चाहिए था। लेकिन इससे क्या? उसकी पवित्र आत्मा इन कारण प्रेम और श्रद्धा की कुछ कम अधिकारिणी न थी।

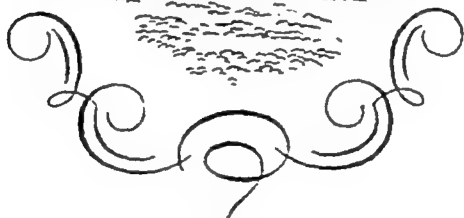
उसने जीवन का सब से बड़ा मैदान मारा— वह भय या पछतावे के बिना मरी।

उसकी इच्छा के अनुसार उसे अम्मा की क़ब्र के नज़दीक ही दफ़नाया गया। बिछुआ और बर्डक की झाड़ियों से भरे उस ढूह के, जिसके नीचे वह सो रही है, चारों ओर लोहे का एक काला जंगला लगा दिया गया है। जब भी मैं मां की क़ब्र पर जाता हूं, तो उस जंगले के पास जाकर माथा टेकना नहीं भूलता।

कभी कभी मैं मां की क़ब्र और उस काले जंगले के बीच मौन होकर रुक जाता हूं। मस्तिष्क में बड़ी कष्टप्रद स्मृतियां आने लगती हैं। मन में यह विचार उठता है—भगवान ने क्या केवल इसी लिए मुझे इन दोनों जीवों का साथ दिया था कि जन्म भर उनके शोक में डूबा रहूं?..

किशोरावस्था





पहला परिच्छेद

बिना रुके सफ़र

पेत्रोव्स्कोये भवन के सायवान के बाहर फिर दो गाड़ियां लगी हैं—एक बग्गी है जिसमें मीमी, कातेंका, ल्यूबोच्का और नौकरानी सवार हैं और ऊपर कोचवान की सीट पर हमारे मुंशी याकोव बैठे हुए हैं। दूसरी 'ब्रिच्का' है जिसमें मैं और वोलोद्या अर्दली वासीली के साथ जो फिर लगान-अदायगी के बदले में ख़िदमत के लिए रख लिया गया है, जायंगे।

पिताजी जो दो-चार दिनों में हमारे पीछे पीछे स्वयं मास्को आ जाने वाले हैं, नंगे सिर सायवान में खड़े होकर बग्गी और ब्रिच्का की खिड़की पर क्रास का चिन्ह बना रहे हैं। ईसा तुम्हारा साथ दें। अब जाओ!"

याकोव और कोचवान (हम लोग अपनी ही गाड़ी में जा रहे थे) अपनी टोपी उतारकर क्रास के चिन्ह बनाते हैं। "भगवान सहायक हों! टिक टिक!" बग्गी और ब्रिच्का ऊबड़-खाबड़ सड़क पर खड़बड़ाती हुई चल निकलती हैं। किनारे के बर्च के वृक्ष एक एक कर पीछे उड़ने लगते हैं। मुझे कोई अफ़सोस नहीं है—जो पीछे छूट रहा है उसके लिए मुझे दुख नहीं है; जो आगे आनेवाला है उसकी मैं उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा हूं। ज्यों ज्यों उन दुखमय स्मृतियों से जिन्होंने इतने दिन हमें घेर रखा था, सम्बन्धित वस्तुएं दूर होती जाती हैं, उन स्मृतियों का प्रभाव घटता जाता है। उनका

स्थान यह मधुर चेतना ले लेती है जो जीवन, ओज, स्फूर्ति और आशा से ओतप्रोत है।

यात्रा के वे चार दिन कैसी मौज से (नहीं, मौज से न कहूंगा क्योंकि अभी मौज की बात सोचने से अंतःकरण को आघात लगता है) कैसे आराम और खुशी से कटे थे वैसा कम ही मैंने अनुभव किया है। अम्मा के कमरे का वह बंद दरवाज़ा जिसके पास से गुज़रते हुए कलेजा कांप उठता था; वह बंद पियानो, जिसे खोलना तो दूर रहा, कोई आंख उठाकर भी देखने का साहस नहीं करता था; वह मातमी पोशाक (इस समय हम लोग सादे सफ़री लिबास में थे), और घर की वे सारी चीज़ें जिन्हें देखते ही मन को गहरा धक्का लगता था और मन किसी भी तरह की खुशियों के नज़दीक जाने से हिचकता था, अंतःकरण यह कहकर कुरेदने लगता था कि तू उसकी स्मृति का अपमान कर रहा है,—सभी छूट चुकी थीं। उनके बदले नये रमणीक स्थान और सुंदर दृश्य हमारा ध्यान आकर्षित कर रहे थे और वसन्त की प्राकृतिक शोभा मेरी आत्मा के अंदर वर्तमान के प्रति संतोष तथा भविष्य के लिए उज्ज्वल आशा की फुरहरी पैदा कर रही थी।

सवेरे, खूब सवेरे, निष्ठुर वासीली नयी नौकरी करने वाले की तरह जो अपनी ड्यूटी अति उत्साही होकर बजा लाते हैं, कम्बल खींचकर हमें जगा देता था और कहता था, उठो, गाड़ी तैयार है। इसके बाद, बिस्तरे में कितना भी सिमटने की कोशिश करो, बिगड़ो और बनो, ताकि ज्यादा नहीं तो पन्द्रह मिनट ही और सवेरे की मीठी नींद को गले से लगाये रखने का अवसर मिल जाय, वासीली का दृढ़ संकल्पी चेहरा साफ़ कह देता था कि ज़रूरत हुई तो वह बीस मर्तबा कम्बल खींचेगा और हमें सोने नहीं देगा। अब कोई चारा नहीं; अतः हम चारपाई से कूदकर मुंह-हाथ धोने के लिए सराय के आंगन में भागजाते।

बग़ल के कमरे में समोवार पहले ही गरम है। गाड़ी के साथ

चलनेवाला घुड़सवार मितका उसे मुंह से फूंकते फूंकते झींगा मछली की तरह लाल हो रहा है। घर से बाहर नमी और कुहासा है मानो गंदे गोबर के ढेर से सवेरे की भाप उठ रही है। उषाकालीन सूर्य पूर्वी आकाश और आंगन के चारों ओर खड़े ओसारे के फूस के छप्पड़ पर सुंदर, सुनहली किरणें बिखेर देता है। छप्पड़ पर पड़ी ओस की बूंदें दमक उठती हैं। ओसारों में हमारे घोड़े नांद पर बंधे हैं। उनके मुंह चलाने का चपर चपर शब्द सुनाई दे रहा है। एक झबरा काला कुत्ता जो सूर्योदय होने से थोड़ा पहले सूखी खाद के एक ढेर पर सिमटकर लेट रहा था, जंभाई लेते हुए देह सीधी करता है और इसके बाद दुम हिलाता हुआ आंगन में चहलक़दमी करने लगता है। सोकर उठते ही गृहस्थी के कामों में व्यस्त हो जाने वाली गृहिणी घर का चूं-चूं करता फाटक खोलती है और ऊंघती हुई गायों को गली में हांक देती है और अलसायी पड़ोसिन के साथ दो शब्द बोल लेती है। गली से गायों के झुण्ड के खुरों की खटखट ध्वनि और रंभाने की आवाजें आ रही हैं। फ़िलिप अपनी क़मीज की आस्तीनें चढ़ाये हुए गहरे कुएं में से चमकते और छलकते पानी की बाल्टी निकालकर लकड़ी की नांद में उंडेल देता है जिसके चारों ओर के गड्ढों में बत्तखों ने अपना प्रातः स्नान आरंभ कर दिया है। मैं उत्फुल्ल मन से फ़िलिप के सुंदर चेहरे, काली घनी दाढ़ी और मेहनत करते समय उघड़े बलिष्ठ हाथों में उभड़ी मोटी नसों और पुट्ठों को देखता हूं।

कमरे के बीच पार्टीशन के पीछे, जहां मीमी तथा लड़कियां सोयी थीं, हिलने-चलने की आहट आने लगी। कल शाम हम लोगों ने इसी दीवार के आरपार से बातें की थीं। उनकी नौकरानी माशा हाथ में तरह तरह की चीजें, जिन्हें वह हमारी कुतूहलपूर्ण दृष्टि से छिपाने के लिए अपने दामन का इस्तेमाल कर रही थी, लेकर आ-जा रही थी। अंत में, उसने दरवाजा खोलकर हम लोगों को चाय के लिए अंदर बुलाया।

वासीली को व्यर्थ ही जल्दी करने की धुन सवार है। वह वार वार कमरे में दौड़ा आता है, कभी यह चीज़ निकालता है कभी वह, हम लोगों को कनखियों से इशारे करता है और मार्या इवानोवना को जल्दी से जल्दी रवानगी के लिए तैयार होने को कहता है। घोड़े जोत दिये गये हैं। वे गले की घंटी घनघनाकर अपनी अधीरता प्रकट कर रहे हैं। बक्स, पेटियां, और कपड़ों के बैग फिर गाड़ियों में लाद दिये गये हैं; और हम लोग भी उनमें सवार हो जाते हैं। लेकिन हर रोज़ ब्रिच्का में घुसते ही सामानों का अंबार लगा मिलता है, समझ में ही नहीं आता कि कहां बैठें और कल ये चीज़ें किस तरह रखी गयी थीं कि सभी लोग बैठ सके थे। अखरोट की लकड़ी का बना तिकोन ढक्कनवाला चाय का बक्स, ब्रिच्का में मेरी ही सीट के नीचे रख दिया गया है जिसकी वजह से मुझे खास तौर से गुस्सा आ जाता है। लेकिन वासीली कहता है कि वह आप ही बराबर हो जायगा और मुझे उसकी बात माननी पड़ती है।

सूरज अभी अभी पूर्व दिशा के ऊपर छाये घने सफ़ेद बादल के परदे को चीरकर ऊपर निकला है। सारा वातावरण मस्त सुनहली धूप में नहा उठा है। चारों ओर रमणीकता का राज है और मेरा मन असाधारण रूप से शांत और उत्फुल्ल हो रहा है। सामने, चौड़ी खुली सड़क खेतों के सूखे ठूंठों और ओस से चमकती हरी घास के बीच बल खाती चली गयी है। कहीं कहीं सड़क के किनारे सरपत की उदास झाड़ी या बर्च के पेड़ खड़े हैं और उनकी लम्बी निश्चल छाया दलदली रास्ते पर बनी पहियों की लीकों और नन्ही नन्ही हरी घास पर पड़ रही है। गाड़ी के पहिये और घोड़ों की घंटियों की समतल आवाज़ सड़क के ऊपर मंडलाने वाले लवों के संगीत को डुबा नहीं पा रही है। ब्रिच्का से निकलनेवाली कीड़े लगे कपड़ों, धूल और खटास भरी गंध सवेरे की सुगंधमय ताज़गी से दब जाती है। मेरी आत्मा में

हर्षातिरेक से भरी बेचैनी समायी हुई है, हम कुछ करने को छटपटा रहे हैं। सच्चे आनंद की यही तो निशानी है!

सराय में मैं सवेरे की प्रार्थना नहीं कर पाया था। मैं कई दफ़े देख चुका हूं कि जिस दिन किसी कारणवश सवेरे की यह क्रिया भूल जाता हूं ज़रूर कोई न कोई आफ़त आती है। इसलिए मैं सवेरे की कसर पूरी करने की कोशिश कर रहा हूं। टोपी उतारकर रिक्शा के कोने की तरफ़ मुंह करके मैं प्रार्थनाएं दुहराता जाता हूं और कोई देख न ले इसलिए जैकेट के अन्दर ही क्रास का चिन्ह बना लेता हूं। पर हज़ारों तरह की चीज़ें मेरा ध्यान खींच रही हैं, और प्रार्थना की वही पंक्ति प्रायः कई बार मुंह से निकल जाती है।

सड़क के साथ ही बल खाती हुई चलनेवाली पगडंडी पर दूर से धीमी चाल से जाती हुई कुछ आकृतियां दिखाई देती हैं। ये तीर्थयात्री हैं। उनके सिर गंदे रूमालों से ढके हुए हैं, पीठ पर भोजपत्र की छाल की टोकरियां लटक रही हैं, टांगों में मैली, फटी पट्टियां और पैरों में छाल के मजबूत जूते हैं। उनके डण्डे एक साथ, एक ताल पर चल रहे हैं। हमारी ओर ध्यान न देते हुए वे क़तार बनाये चलते चले जाते हैं। कहां जा रहे होंगे ये लोग, और क्यों, मैं मन में सोचता हूं। क्या उनका सफ़र बहुत लम्बा होगा? क्या सड़क पर पड़नेवाला उनका छोटा संकरा साया शीघ्र ही राह में खड़ी सरपत की झाड़ी के साये से मिलकर एक हो जायगा? इतने में उधर से एक चौकड़ी तेज़ी से पास से निकल जाती है। मुसकराते कुतूहल भरे चेहरे जो बालिश्त भर की दूरी से हमें घूर रहे थे दो क्षण में कौंधकर आगे निकल जाते हैं। सहसा विश्वास न होता था कि, ये बिलकुल अजनबी हैं जिनसे हमारी देखादेखी इस जन्म में शायद कुल उन दो क्षणों के लिए ही होनी थी।

इसके बाद पसीने से लथपथ झबरे घोड़ों का एक जोड़ा सड़क के किनारे से सरपट भागता हुआ निकल जाता है। घोड़ों के पटे लगे

हुए हैं और कूल्हे के तस्मे वम के चमड़ों से वंधे हैं। उनके पीछे डाक के घोड़े हांकनेवाला एक घुड़सवार लड़का, भेड़ के ऊन की टोपी तिरछी पहने विशाल वूटों वाली लम्वी टांगों को घोड़े के दोनों ओर डाले, कोई उदास गीत गाता हुआ, उड़ा चला जा रहा है। घोड़े की घंटियां वीच वीच में हल्की आवाज़ से टनटना उठती हैं। उसके चेहरे और हावभाव में ऐसी मस्ती और फक्कड़पन है कि मैं सोचने लगता हूं कि डाक के घोड़े हांकनेवाले से वढ़कर आनन्ददायक काम और नहीं हो सकता—मज़े से घोड़ों को घर पहुंचाते, गाते निकल गये! आगे खड्ड के उस पार, किसी गांव का हरी छत वाला गिरजाघर चमकीले, नीले आसमान की पृष्ठभूमि में अलग खड़ा है। दूसरी ओर, एक छोटा-सा गांव, किसी रईस के घर का लाल कोठा और एक हरा वाग़ है। कौन रहता होगा इस घर में? वच्चे भी होंगे, और मां, वाप और मास्टर साहव? क्यों न वहां गाड़ी ले जाकर उनसे जान-पहचान पैदा करें? इस वीच तीन घोड़ों वाली माल ढोने की गाड़ियों का एक लम्वा क़ाफ़िला आ जाता है और हमें उनके लिए सड़क छोड़ देनी पड़ती है। घोड़े ख़ूव मज़वूत और मोटी मोटी टांगों वाले हैं। "क्या ले जाते हो?" वासीली आगेवाले गाड़ीवान से पूछता है। सीट की जगह उस गाड़ी में तख़्ता लगा हुआ है जिसपर अपने वड़े वड़े पैर लटकाये वैठा गाड़ीवान शून्य दृष्टि से देर तक हम लोगों की ओर देखता है और कोड़े को फटकारते हुए, इतनी दूर निकल जाने के वाद हमारे सवाल का कुछ जवाव देता है जो सुनाई नहीं पड़ता। "क्या लादा है," वासीली दूसरे गाड़ीवान से पूछता है जो गाड़ी के जंगला लगे आगे के भाग में तनी नयी चटाई के नीचे लेटा हुआ है। एक क्षण के लिए चटाई से लाल चेहरे और लाल दाढ़ीवाला एक गोरा-सा सिर झांकता है और हमारे ऊपर तिरस्कारपूर्ण अवज्ञा की एक दृष्टि डालकर फिर छिप जाता है।

मुझे उस समय सहसा वोध होता है कि, ये गाड़ीवान नहीं जानते कि हम कौन हैं और कहां जा रहे हैं।

अपने पर्यवेक्षणों में मैं इतना तल्लीन हो गया कि डेढ़ घंटे तक मील के पत्थरों पर अंकित टेढ़े-मेढ़े अंकों को नहीं देख पाया। लेकिन अब धूप में सिर और पीठ जलने लगी। सड़क पर धूल ज्यादा हो गयी और मेरी सीट के नीचे रखा तिकोने ढक्कनवाला चाय का वक्स अधिक परेशान करने लगा। मैं कई वार इधर से उधर और उधर से इधर हुआ। वड़ी गर्मी लगने लगी और मन उचाट हो गया। मेरा सारा ध्यान मील के पत्थरों और उनमें लिखे अंकों पर केंद्रित हो गया। अगली सराय पर पहुंचने में कितना वक़्त लगेगा, इसके विषय में मन ही मन तरह तरह से हिसाव लगाने लगा। वारह वर्स्ट छत्तीस का एक तिहाई होते हैं और यहां से लिपेत्स्क तक इकतालीस वर्स्ट है यानी हम लोग एक-तिहाई से कुछ अधिक रास्ता तय कर चुके हैं। और इसी तरह हिसाव करना जारी रहता है।

वासीली को, जो कोचवान की वग़ल में वैठा है, ऊंघते देख मैं कहता हूं—"वासीली, मुझे अपनी जगह वैठने दो, तुम वड़े अच्छे हो।" वह राज़ी हो जाता है और हम लोग अपनी जगहें वदल लेते हैं। वह शीघ्र ही खर्राटे लेने लगता है और टांगें फैला दी हैं कि व्रिच्का में किसी और के लिए जगह ही नहीं रह गयी। नयी जगह वड़ी मज़ेदार है। हमारे सामने अपने चारों घोड़े हैं जिनमें प्रत्येक की ख़ूवी-ख़रावी मैं जानता हूं—'नेरुचिन्स्काया,' 'पादरी,' 'वीचवाला लेवाया' और 'हकीम साहव'।

मैंने दवी ज़वान में कोचवान से पूछा—"फ़िलिप, आज क्या वात है कि 'पादरी' को वाहर की तरफ़ न जोतकर अंदर जोता है!"

"'पादरी?'"

"और 'नेरूचिन्स्काया' तो आज ज़ोर ही नहीं लगा रही है," मैंने कहा।

"'पादरी' बाहर की तरफ़ नहीं जोता जाता," फ़िलिप ने मेरी अंतिम टीका की उपेक्षा करते हुए कहा। "वहां वह क्या करेगा? वहां तो ऐसा घोड़ा चाहिए कि—असली दमदार घोड़ा, 'पादरी' उस जगह रहकर भला क्या कर सकता है?"

इन शब्दों के साथ फ़िलिप दाहिने झुककर, पूरी ताक़त से लगाम खींचते हुए बेचारे 'पादरी' की टांग और पूंछ पर विचित्र तरीक़े से—नीचे की ओर से—चाबुक बरसाने लगा। 'पादरी' ने अपना सारा ज़ोर लगा दिया, यहां तक कि ब्रिच्का डगमगाने लगी; फिर भी फ़िलिप का चाबुक चलाना तब तक जारी रहा जब तक उसे थोड़ा सुस्ताने और अपनी टोपी सीधी करने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई यद्यपि वह सीधी थी और सिर पर मज़े से टिकी हुई थी। इस अनुकूल अवसर से लाभ उठाकर मैंने फ़िलिप से अनुरोध किया कि थोड़ी देर मुझे गाड़ी चलाने दे। फ़िलिप ने एक लगाम मुझे थमा दी; फिर दूसरी, और अंत में छहों लगामें मेरे हाथ में दे दीं। मेरी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। मैंने फ़िलिप की हर तफ़सील नक़ल करने की कोशिश की और उससे पूछा कि मैं ठीक हांक रहा हूं या नहीं, पर वह ज़्यादातर असंतुष्ट ही रहा। उसने कहा कि एक घोड़ा बहुत ज़्यादा ज़ोर लगा रहा है और दूसरे ने बिलकुल ढील दे रखी है। यह कहकर उसने लगामें मेरे हाथ से ले लीं।

धूप बढ़ती ही जा रही थी। मंडराते बादलों के छोटे छोटे टुकड़े साबुन के बुलबुलों की तरह और ऊंचे होते जा रहे थे तथा एक होकर गहरा सफ़ेद रंग अख़्तियार कर रहे थे। बग्गी की खिड़की में एक बोतल और छोटी-सी गठरी उठाये एक हाथ बाहर की ओर से अन्दर गया—आश्चर्यजनक फुर्ती के साथ वासीली चलती गाड़ी से कूद पड़ा और हमारे लिए पुए और 'क्वास' ले आया।

सामने सड़क एकबारगी ढालवीं हो गयी और हम सभी गाड़ियों से उतर पड़े। हम लोगों में दौड़ हुई—कौन पहले पुल पर पहुंचता है। वासीली और याकोव ने गाड़ी को पकड़े, रोक दे देकर उसे ढलान पर से उतारा। दोनों उसे इस तरह पकड़े हुए थे मानो गाड़ी के उलटने पर सारा बोझ संभाल लेंगे। इसके बाद मीमी से इजाज़त लेकर कभी वोलोद्या ल्यूबोच्का की जगह और मैं कातेंका की जगह बग्गी में जा बैठते। इन परिवर्तनों से लड़कियों की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता था क्योंकि उनका ख़याल था, और वह ठीक भी था कि ब्रिच्का में ज़्यादा मज़ा है। गर्मी होने पर जब हम जंगल में से गुज़रे तो एक जगह रुक गये और हरी टहनियां काट-काटकर ब्रिच्का में कुंज जैसा बना डाला। जब यह झूमता हुआ कुंज बग्गी की बग़ल से होकर गुज़रा तो ल्यूबोच्का अपनी पतली सुरीली आवाज़ में चीख़ उठी। यही उसकी आदत है—किसी चीज़ द्वारा विस्मयविमुग्ध होने पर वह इसी तरह गला फाड़कर अपनी ख़ुशी जताती है।

लो आ गये हम पड़ाव पर—आज दोपहर इसी गांव में खाना और आराम करना है। दूर से ही आती धुएं, कोलतार और डबल रोटियां पकाने की गंध गांव पहुंचने की सूचना दे देती है। आदमियों की बातचीत, चलने-फिरने और पहियों की आवाज़ सुनायी पड़ रही है। घोड़ों की घंटियों में वह घनघनाहट नहीं रही जो खुले मैदानों में चलते समय होती है। दोनों ओर फूस की छाजन वाले झोंपड़े, काम की हुई लकड़ी की ड्योढ़ियां और लाल-हरी झिलमिलियों वाली छोटी छोटी खिड़कियां जिनमें कहीं किसी औरत का कुतूहलपूर्ण चेहरा झांक रहा होता है, गुज़रने लगती हैं। केवल क़मीज़ पहने किसानों के नन्हे लड़के और लड़कियां आश्चर्य से आंखें बाये और हाथ उठाये जहां की तहां मूर्त्तिवत खड़ी रह जाती हैं, या सड़क की धूल में नन्हे नंगे पैरों से दौड़ती हुई गाड़ी के पीछे बंधे बक्सों पर चढ़ जाने की कोशिश करती हैं। फ़िलिप की धमकियों का उनके ऊपर कोई

असर नहीं होता। सराय वाले, जिनके बाल अदरक के रंग के हैं, हर तरफ़ से गाड़ी की ओर दौड़ते हैं और शब्द और हाथ के इशारों से मुसाफ़िरों को अपनी सराय में ले जाने की कोशिश करते हैं। ठहरो! फाटक चूं-चूं कर उठता है, कमानी फाटक के खम्भों से टकराती है और हम लोग सराय के आंगन में दाखिल हो जाते हैं। चार घंटे की छुट्टी!

दूसरा परिच्छेद

आंधी-पानी

सूरज ढल चला था और उसकी गरम तिरछी किरणों से मेरी गर्दन और गाल बुरी तरह जल रहे थे। ब्रिच्का के किनारे इतने गरम हो गये थे कि उन्हें छूना असंभव था। सड़क से उठकर घनी धूल हवा में छा गयी। नाम को भी हवा होती तो उसे उड़ा ले जाती। बराबर वही दूरी रखे हुए, धूल से भरी, ऊंची बग्घी डगमगाती, झूमती चली जा रही थी। कभी कभी उसके ऊपर कोचवान का कोड़ा, हैट या याकोव की टोपी दिखाई दे जाती थी। समझ में न आता था कि क्या करूं। मेरी बग़ल में वोलोद्या ऊंघ रहा था। उसका चेहरा धूल से काला हो रहा था; फ़िलिप की पीठ हिल रही थी; ब्रिच्का का तिरछा साया निरंतर हमारा पीछा कर रहा था। पर इनमें मेरा मन बहलाने के लिए कुछ न था। मेरा पूरा ध्यान दूर से दिखाई पड़ने वाले मील के पत्थर और बादलों पर केंद्रित था। ये पहले आसमान में बिखरे हुए थे; लेकिन अब जुटकर घना काला रूप धारण कर चुके थे। यह ख़तरनाक था। कभी कभी दूर पर बिजली कड़क उठती थी। इसने अन्य सभी चीज़ों की अपेक्षा सराय पहुंचने की मेरी अधीरता बढ़ा दी। बादल-बिजली से मैं बेतरह घबरा जाया करता था। उनके देखने से अपने ऊपर हुए भय और उदासी का मैं वर्णन नहीं कर सकता।

दस वर्स्ट से नज़दीक कोई गांव न था। लेकिन सहसा मानो शून्य से (क्योंकि हवा का नामोनिशान न था) उठ ग्राने वाला विशाल काला-लाल मेघ तेज़ी से हमारी ओर बढ़ा आ रहा था। सूरज, जो अभी वादलों से ढका न था, उस मलिन पुंज और क्षितिज तक फैली उसकी धारियों को तेज़ किरणों से आलोकित कर रहा था। दूर पर रह-रहकर बिजली कौंध उठती और गड़गड़ाहट की आवाज़ आती थी। आवाज़ पास आती जा रही थी और शीघ्र ही पूरे आकाश में छायी टेढ़ी-मेढ़ी प्रकाश-रेखाओं में परिणत हो गयी। वासीली ने कोचवक्स पर खड़े होकर ब्रिच्का का हुड उठा दिया। कोचवानों ने अपने अंगरखे पहन लिये। जब जब बिजली चमकती वे सिर से टोपी उतारकर क्रास का चिन्ह बनाते। घोड़ों ने कनौती खड़ी की। उनके नथुने फैल गये मानो पास आते तूफ़ान की पूर्वगामी ताज़ा हवा को सूंघ रहे हों। ब्रिच्का धूलभरी सड़क पर डगमगाता हुआ और भी तेज़ भागा। मेरे अंदर एक रहस्यमय भय समा गया। धमनियों में खून के तेज़ दौड़ने की मुझे स्पष्ट सुध थी। थोड़ी ही देर में पहले मेघ ने सूर्य को ढक लिया। उसने आखिरी वार धरती की ओर झांका और लाल क्षितिज पर अंतिम किरण फेंकता हुआ लोप हो गया। हमारे चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य सहसा बदल गया। खेतों और पेड़ों के ऊपर मानो किसी ने बदली का विशादपूर्ण परदा फैला दिया हो। ऐस्पन का झुरमुट मानो भय से कांप रहा था, उसके पत्तों का रंग सफ़ेद हो गया। लाल बादल की पृष्ठभूमि में खड़े वे हवा में हिल रहे थे। ऊंचे वर्च की फुनगियां हिंडोले की तरह पेंग मार रही थीं। सड़क के ऊपर सूखी घास के मुट्ठे हवा में नाच रहे थे। सफ़ेद सीनों वाली अबाबीलें तेज़ी से ब्रिच्का का चक्कर लगाती हुई घोड़ों की छाती के नीचे से निकल जाती थीं, मानो हमें रोकना चाहती हों। डोम कौए उनके पंख अस्त-व्यस्त हुए, हवा के खिलाफ़ तिरछे उड़ रहे थे। हम लोगों ने ऊपर से चमड़े का लबादा खींच लिया था। उसका हवा में फर्राता हुआ किनारा गाड़ी के किनारों से फटाफट

टकरा रहा था, उसके फहराने के कारण नम हवा अंदर घुस जाती थी। ऐसा मालूम होता जैसे विजली की कौंध ब्रिच्का में चमकने लगी है। उसकी दमक बूटीदार किनारे के सफ़ेद कपड़े और कोने में ऊंघते बैठे हुए वोलोद्या पर पड़ीं। ठीक उसी समय सीधे हमारे सिर के ऊपर भयानक कड़क सुनाई पड़ी जो तेज़ होती और फैलती चली गयी। आकाश में एक पेचदार प्रकाश, जिसकी लम्बाई बढ़ती ही जा रही थी प्रगटा, और अंत में वह एक ऐसी भयानक गड़गड़ाहट के साथ खत्म हुआ कि सभी कांप उठे। सबों की सांस बंद हो गयी। इसी को तो लोग कहते हैं—'भगवान का कोप!' इन शब्दों में वास्तव में एक कवित्वपूर्ण चित्र है जिसे हम साधारणतः महसूस नहीं किया करते।

गाड़ी के पहिये तेज़ी से चक्कर काट रहे हैं—तेज़, और तेज़! वासीली और फ़िलिप की पीठ देखकर, जो लगाम को लगातार छटकता जाता है, साफ़ पता चल जाता है कि वे भी भयभीत हो रहे हैं। ब्रिच्का तेज़ी से पहाड़ी की ढाल से नीचे उतरता हुआ लकड़ी के पुल पर—धड़धड़ करता जाने लगता है। मैं डर से निश्चल और निश्चेष्ट बैठा हुआ हूं, कि प्रलय की घड़ी आ पहुंची है।

यह लो। जोत का चमड़ा भी टूट गया। विजली की गड़गड़ाहट रुकने का नाम न लेती थी, पर हमारी गाड़ी को पुल पर ठहर जाना ही पड़ा।

मैंने ब्रिच्का से सिर निकालकर फ़िलिप की मोटी काली उंगलियों को अपना काम करते देखा। उसने धीरे धीरे एक गांठ बांधी है, चमड़े को ताना है और हथेली तथा चाबुक के मुट्ठे से बग़लवाले घोड़े को एक धक्का दिया है। मेरा जी निढाल हो रहा है।

तूफ़ान तेज़ होता जा रहा है। साथ ही भय और उद्विग्नता मेरा कलेजा जकड़ती जा रही है। यह भाव विजली कड़कने से ठीक पहले की भव्य निस्तब्धता के समय अधिक तीव्र हो जाता था। इतना अधिक कि यदि तनाव कहीं पाव घंटा और जारी रहता तो निश्चय ही उत्तेजना से

मेरे हृदय की गति बंद हो जाती। ठीक उसी समय सहसा पुल के नीचे से फटे और मैले-कुचैले कपड़े पहने, सूजे, जड़ चेहरे, नंगे, घुटे, कांपते सिर, और टेढ़ी, स्नायुहीन टांगों वाला मानव-रूपधारी कोई जीव निकला। हाथ की जगह उसके एक लाल, चमकता ठूंठ था जिसे उसने सीधे ब्रिच्का में घुसेड़ दिया। "ईसा के लिए बाबा! लूले की मदद करो बाबा!" उस भिखारी ने कांपती आवाज़ में और हर शब्द के बाद क्रास का चिन्ह बनाते तथा माथा निवाते हुए कहा।

अपनी उस वक़्त की घबराहट मैं बयान नहीं कर सकता – खून सर्द हो गया। डर के मारे मेरे सारे बाल खड़े हो गये। भयस्फीत आंखें भिखमंगे के चेहरे पर गड़ गयीं।

सफ़र के वक़्त दानपुण्य का काम वासीली के ज़िम्मे था। वह उस समय फ़िलिप को बता रहा था कि जोत के चमड़े को कैसे बांधना होगा। सब कुछ ठीक हो जाने और फ़िलिप के लगाम समेटकर गाड़ी पर बैठ जाने के बाद उसने अपनी जेब टटोलनी शुरू की। लेकिन हम ज्यों ही रवाना हुए कि पूरी घाटी बिजली की भयानक कौंध से भर गयी। घोड़े ठिठक गये। साथ ही बादल ज़ोर से, बिना रुके, यों गरज उठे मानों आसमान का गुम्बद फटकर नीचे आया चाहता हो। आंधी और भी तेज़ हो गयी। घोड़ों के अयाल, दुम तथा वासीली का ओवरकोट इतने ज़ोर से फहरा रहे थे मानो छूटकर उड़ जायेंगे। ब्रिच्का की चमड़े की छाजन पर पानी की एक भारी बूंद टप से गिरी। फिर दूसरी, और तीसरी। और इसके बाद सहसा बूंदें ढोल पीतने लगीं। चारों ओर वर्षा की टप टप ध्वनि गूंज उठी। वासीली की कुहनियों की चेष्टा से प्रगट हुआ कि वह बटुआ खोल रहा है। भिखारी, क्रास के चिन्ह बनाता और सलाम करता हुआ, पहिये के बराबर में दौड़ रहा था। लगता था, अब कुचला, तब कुचला। "ईसा के नाम पर बाबा!" अंत में हमारी बग़ल से उड़ता हुआ तांबे का एक सिक्का पीछे गिरा। अभागा भिखमंगा रुक गया। कुछ क्षणों के

लिए सड़क के बीचोंबीच ठिठका-सा खड़ा रहा। आंधी में उसका सारा शरीर हिल रहा था। वर्षा से तर उसके कपड़े क्षीण शरीर में सट गये थे। कुछ देर में वह आंखों से ओझल हो गया।

आंधी के थपेड़ों से बूंदें तिरछी पड़ रही थीं। मूसलाधार बरसात हो रही थी। वासीली के मोटे ऊनी कोट की पीठ से होकर बहता हुआ पानी ब्रिच्का में बिछे चमड़े के कोट पर जमा गदले पानी के गढ़े में इकट्ठा हो रहा था। सड़क की धूल, जिसने पहले गोलियों की शक्ल अख्तियार की थी, अब पतला कीचड़ बन चुकी थी। गाड़ी के पहिये उसमें से छपछपाते उड़े चले जा रहे थे। अब ऊबड़-खाबड़ सड़क के धचकोले कम हो गये थे। लीक में गदले पानी के सोते बह चले थे। बिजली की चमक अधिक विस्तीर्ण और फीकी हो गयी थी। वर्षा की टपाटप में बादलों का गरजना अब उतना डरावना न रहा था।

वर्षा धीमी हो गयी थी। बादल फटने लगे थे। जहां सूरज था, उस स्थान पर कुछ रोशनी दिखाई पड़ी। बादल के सफ़ेद किनारों के बीच नीले आकाश का एक टुकड़ा स्पष्ट नज़र आने लगा। कुछ ही क्षणों में सूर्य की एक सुनहली किरण सड़क के पानी से भरे गढ़ों, वर्षा की सीधी बारीक बूंदों—वे मानों झरनी से होकर गिर रही थीं—और सड़क किनारे की सद्यःस्नान हरी घास पर चमक उठी।

आसमान की दूसरी तरफ़ फैला हुआ काला मेघ अब भी कम भयावना न था। लेकिन मेरा डर खत्म हो चुका था। भय की उत्पीड़कता को बेधती हुई जीवन के प्रति आशा की एक अवर्णनीय उल्लासपूर्ण भावना मन में छा गयी। बाह्य प्रकृति की भांति मेरी आत्मा भी उत्फुल्लता और जीवन प्राप्त कर मुसकुरा उठी।

वासीली ने अपने कोट का कालर उलट दिया और टोपी उतारकर झाड़ने लगा। वोलोद्या ने चमड़े का कोट उतार फेंका। मैं ब्रिच्का से सिर निकालकर अधीरता से ताज़ा, सुगंधित हवा का पान करने लगा। वर्षा

से ताज़ा धुली बग्गी, संदूक़ों का बोझ लादे, बचकोले खाती, हमारे आगे आगे चली जा रही है। घोड़ों की पीठ, कूल्हे और लगाम तथा गाड़ी के टायर, सभी भीगे हुए और धूप में पीतल की वार्निश की तरह चमक रहे हैं। सड़क की एक तरफ़ शरदकालीन गेहूं का असीम खेत फैला हुआ है। बीच में कहीं कहीं छिछले नाले हैं। खेत की गीली मिट्टी और खेत की हरियावल धूप में चमक रहे हैं। वह स्वयं बहुरंगी कालीन की तरह क्षितिज तक बिछा हुआ है। दूसरी तरफ़, ऐस्प का एक नया जंगल है जिसके तले हेज़ल-नट और जंगली चेरी की झाड़ियां हैं। ये झाड़ियां यों दिख रही हैं मानों आनंद की चरमावस्था में डूबी खड़ी हों। उनकी तूफ़ान से धुली शाखाओं से वर्षा की चमकीली बूंदें पिछले साल नीचे की पड़ी सूखी पत्तियों पर टपाटप चू रही हैं। कलगीवाले लवे उल्लासभरा गीत गाते हुए आसमान में ऊंचे उठते और नीचे आते हैं। गीली झाड़ियों में छोटी छोटी चिड़ियां कलरव कर रही हैं। वन में कोयल की कुहू कुहू स्पष्ट सुनाई देती है। वसंत ऋतु के तूफ़ान के बाद जंगल से ऐसी मोहक सुगंध उड़ने लगी थी कि मैं ब्रिच्का में बैठा न रह सका। बर्च, बायला, झड़े पत्तों, कुकुरमुत्तों और जंगली चेरी की मादक गंध वायु में फैल रही थी। मैं ब्रिच्का से कूदकर झाड़ियों की ओर भागा। उनके पत्तों पर पड़ी बूंदें मेरे ऊपर गिर रही थीं, पर उनकी परवाह न कर मैंने जंगली-चेरी की कोपलें तोड़ लीं और उनसे अपने चेहरे को पोंछने लगा। उनकी मनमोहिनी सुगंध ने छनकर नाक में प्रवेश किया।

कीचड़ से लथपथ बूटों और गीले मोज़ों की परवाह न कर मैं पानी में छपकता हुआ बग्गी के पास दौड़ा।

"ल्यूबोच्का! कातेंका!" दोनों को चेरी की टहनियां थमाते हुए मैं चिल्लाया, "देखो तो कितनी सुंदर हैं ये!"

दोनों लड़कियां हांफने और चीख़ने लगीं। मीमी ने डांटा – "भागो, गाड़ी के नीचे आ जाओगे!"

पर मैं चिल्लाया – "सूंघो इन्हें, देखो कितनी ख़ुशबू भरी है इनमें।"

तीसरा परिच्छेद

नये विचार

कातेंका ब्रिच्का में मेरी बग़ल में बैठी थी। सुंदर मस्तक नीचे झुकाये, विचारपूर्ण मुद्रा में वह पहियों के नीचे भागती कीचड़ भरी सड़क को देखे जा रही थी। मैं चुपचाप, टकटकी बांधकर उसे देख रहा था। मुझे उसके गुलाबी चेहरे पर आज पहले पहल एक विषादपूर्ण अवलोचित भाव देखकर अचरज हो रहा था।

"आज हम मास्को पहुंचने ही वाले हैं," मैंने कहा। "तुम क्या सोचती हो, मास्को कैसा होगा?"

"मैं नहीं जानती," उसने अनिच्छापूर्वक कहा।

"पर तुम्हारा क्या ख़्याल है? सेर्पुख़ोव से बड़ा होगा वह?"

"क्या कहा?"

"कुछ नहीं।"

किन्तु उस सहज बुद्धि से जो एक व्यक्ति को दूसरे के मन की बात बता दिया करती है और जो बातचीत का निर्देशक सूत्र बन जाती है, कातेंका समझ गयी कि उसकी उदासीनता ने मुझे तकलीफ़ पहुंचायी है। उसने सिर उठाकर मेरी ओर नज़र फेरी।

"तुम्हारे पिताजी ने तो तुम्हें बताया होगा कि हम लोग तुम्हारी नानी के यहां रहेंगे?"

"हां, नानी चाहती हैं कि हम लोग उन्हीं के साथ रहें।"

"और हम सभी को वहीं रहना होगा?"

"हां। हम लोग कोठे पर घर के आधे भाग में रहेंगे, तुम लोग दूसरे आधे में। और पिताजी बग़लवाले हिस्से में रहेंगे। लेकिन खाना-पीना हम सब का नानी के साथ ही, नीचे हुआ करेगा।"

"अम्मा कहती हैं कि, तुम्हारी नानी बड़ी शान से रहती हैं—और स्वभाव भी उनका अच्छा नहीं है।"

"नहीं तो! बिल्कुल नहीं। वह शुरू में केवल ऐसी लगती हैं। शानशौकत वाली वह जरूर हैं, पर स्वभाव की बुरी नहीं। बल्कि, वह बड़ी नेक और खुशमिज़ाज हैं। उनके नाम-दिवस पर जो जलसा और नाच हुआ था, यदि वहां तुम देखतीं तो तुम्हें मालूम होता।"

"फिर भी मुझे उनसे डर लगता है। इसके अलावा कौन जानता है कि हम लोग..."

वह सहसा रुक गयी, और फिर किसी विचार में डूब गयी।

"क्या बात है," मैंने थोड़ा उद्विग्न होकर पूछा।

"कुछ भी नहीं।"

"तुमने अभी जो कहा था—'कौन जानता है कि ...'"

"और तुमने कहा था—'नानी के घर जो जलसा और नाच हुआ था उसे कहीं देखा होता तुमने।'"

"हां, अफ़सोस कि तुम नहीं थीं वहां। अनगिनत मेहमान इकट्ठे हुए थे। उनमें कई जनरल भी थे। खूब गाना-बजाना हुआ। और मैं भी नाचा।" यकायक मैं वर्णन के बीच में ही रुक गया। "कातेंका! तुम्हारा ध्यान कहां है?"

"सुन तो रही हूं। अभी तुमने कहा कि तुम भी नाचे थे।"

"आज तुम इतनी उदास क्यों हो?"

"हर समय आदमी कैसे खुश रह सकता है?"

"लेकिन हम लोगों के मास्को लौटने के समय से तुम बहुत बदल गयी हो। सच सच कहना," मैंने, एक निश्चयपूर्ण दृष्टि उसकी ओर फेंकते हुए कहा। "आजकल तुम अजीब-सी क्यों हो गयी हो?"

"अजीब-सी हो गयी हूं?" कातेंका ने कहा। उसकी आवाज़ में एक चुलबुलाहट थी जिससे प्रगट होता था कि मेरी उक्ति उसे रोचक लगी है। "नहीं तो, बिल्कुल नहीं।"

"पहले जैसी नहीं रहीं तुम," मैं कहता गया। "पहले हम लोगों में दुराव न था। पहले जो वात हम लोगों के दिल में थी वही तुम्हारे भी, तुम हम लोगों को अपना सम्वन्वी समझती थीं, तुम उसी तरह हम लोगों को प्यार करती थीं जिस तरह हम तुम्हें करते थे। पर अव तुम वहुत चुप चुप रहने लग गई हो और खिंची-सी रहती हो ..."

"नहीं, विल्कुल नहीं ..."

"मुझे अपनी वात कह लेने दो," मैंने टोककर कहा। मैं नाक पर खुजली-सी महसूस कर रहा था जिसका अर्थ यह था कि, आंखों में आंसू भर आनेवाले हैं। वहुत दिनों से हृदय में दवाकर रखे भावों की वांव टूट जाने पर मेरे साथ ऐसा ही हुआ करता था। "तुम हम लोगों से दूर ही दूर रहा करती हो; मीमी के अलावा किसी से वात नहीं करती हो जैसे हम लोग हों ही नहीं।"

"आदमी हमेशा एकसा नहीं रह सकता। कभी न कभी तो उसे वदलना ही पड़ेगा।" कातेन्का ने उत्तर दिया। उसकी आदत थी कि कोई कैफ़ियत न रहने पर हर वात नियति की इंगित के सहारे होती हुई वताती थी।

मुझे याद है, एक वार ल्यूवोच्का से झगड़ा होने पर– ल्यूवोच्का ने उसे मूर्ख कह दिया था–उसने जवाव दिया था–"सभी अक्लमंद कैसे हो सकते हैं। किन्हीं को तो मूर्ख होना ही पड़ेगा।" लेकिन उसका यह जवाव कि कभी न कभी तो आदमी को वदलना ही पड़ेगा, मुझे संतुष्ट न कर सका। इसलिए मैंने प्रश्न जारी रखे।

"लेकिन तुम क्यों वदलोगी?"

"क्यों? हम हमेशा तो साथ रहेंगे नहीं," कातेंका ने, थोड़ा झिझकते और फ़िलिप की पीठ पर दृष्टि अटकाते हुए कहा।

"मेरी अम्मा तुम्हारी मृत अम्मा के साथ इसलिए रह गयी थीं कि दोनों सखियां थीं; लेकिन काउंटेस के साथ–सभी कहते हैं कि वह

बड़ी बदमिज़ाज हैं—वह रह सकेंगी यह कौन कह सकता है। इसके अलावा, यों भी हम लोगों को एक न एक दिन जुदा होना पड़ेगा। तुम लोग अमीर हो, तुम्हारे पेत्रोव्स्कोये की ज़मींदारी है, लेकिन हम ग़रीब लोग हैं, मेरी मां के तो ज़मीन-जायदाद नहीं है।"

'तुम लोग अमीर हो, हम लोग ग़रीब हैं!' ये शब्द, और उनसे सम्बन्धित धारणा मुझे बहुत अजीब लगी। उन दिनों मेरा ख्याल था कि केवल भिखमंगे और गांवों के किसान ग़रीब हुआ करते हैं, रूपवती कात्या के साथ ग़रीबी की धारणा मैं अपनी कल्पना में नहीं बैठा सका। मेरा विचार था कि मीमी और कात्या जिस तरह हमारे साथ रहती आयी हैं वैसे ही रहती जायेंगी, और उनका भी हर चीज़ में हिस्सा होगा। इसके अलावा और क्या हो सकता था। लेकिन अब उनके अकेलेपन और असहायावस्था के सम्बन्ध में मेरे मस्तिष्क में हज़ारों उलटे-सीधे विचार उठने लगे। यह सोचकर कि हम लोग अमीर और ये ग़रीब हैं मैं शर्म से लाल हो गया और मेरी हिम्मत न हुई कि कातेंका से आंख मिला सकूं।

"इसका क्या मतलब," मैंने सोचा, "हम अमीर और ये लोग ग़रीब! फिर यह मतलब इसका क्योंकर हुआ कि हमें जुदा होना ही होगा? ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि हमारे पास जो कुछ है सभी बराबर बराबर बांट लें?" लेकिन मैं समझता था कि यह ऐसी चीज़ न थी जिसके सम्बन्ध में मैं कातेंका से बात कर सकूं। साथ ही एक व्यावहारिक सहज बुद्धि इन तार्किक निष्कर्षों का काट भी करती जा रही थी। वह मुझे बता चुकी थी कि कातेंका का कहना सच है और उसके सामने अपने विचारों की व्याख्या करना अनुपयुक्त होगा।

"क्या सचमुच हम लोगों को छोड़कर चली जाओगी?" मैंने पूछा। "एक-दूसरे से अलग होकर हम किस तरह रह सकेंगे?"

"लेकिन हमारे पास इसका उपाय ही क्या है? मुझे भी दुःख होता है; लेकिन अगर ऐसा हुआ तो मैं जानती हूं मुझे क्या करना होगा।"

"नाटक में काम करोगी! छि:!" मैंने टोककर कहा क्योंकि मैं जानता था कि यह उसकी बहुत दिनों की आकांक्षा थी।

"नहीं। यह तो मैंने छुटपन में कहा था।"

"तो क्या करोगी?"

"मैं साधुनी हो जाऊंगी और मठ में रहा करूंगी। मेरी पोशाक होगी—काला गाउन और मखमली कंटोप।"

यह कहकर वह रोने लगी।

प्यारे पाठको, क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ है कि जीवन की किसी खास मंज़िल पर आकर आपका दृष्टिकोण यकायक बदल गया है—ऐसा हो गया है मानों जिन चीज़ों को अभी तक आप देख रहे थे उनका अचानक रुख पलट गया और आपके सामने उनका एक ऐसा पहलू आ गया जिसके बारे में आपको खबर भी न थी। उस सफ़र में मेरे अंदर पहले-पहल इस तरह का नैतिक परिवर्तन हुआ। मैं उसी दिन से अपनी किशोरावस्था का प्रारम्भ मानता हूं। पहले-पहल हमें महसूस हुआ कि हम—यानी हमारी परिवार—दुनिया में अकेला नहीं है, कि हमीं वह बिंदु नहीं है जिसपर सारी दिलचस्पियां केंद्रित हैं; कि धरतीतल पर दूसरे लोग भी हैं—ऐसे लोग जिनसे हमारा कोई वास्ता नहीं, जिन्हें हमारी परवाह नहीं, और जो यह सोचते ही नहीं कि हम भी कहीं हैं। ऐसी बात नहीं कि मैं इसे पहले नहीं जानता था, पर आज की तरह कभी नहीं। मैंने इसे महसूस नहीं किया था।

कोई विचार जब दृढ़ मत का रूप धारण करता है तो एक निश्चित साधन से ही, दूसरे दिमाग़ों ने उस दृढ़ मत पर पहुंचने में जो मार्ग ग्रहण किया होता है उससे प्रायः सर्वथा भिन्न और अप्रत्याशित। जिस साधन से मैं इन धारणाओं तक पहुंचा वह था कातेंका के साथ यह वार्तालाप जिसने मेरे ऊपर गहरा असर डाला था और जिसने मुझे उसके भविष्य के बारे में विचार में डाल दिया था। उन गांवों और क़स्बों को देखते

हुए जिनसे हमारा क़ाफ़िला गुज़र रहा था और जिनके हर घर में हमारे जैसा ही कोई परिवार रह रहा था; उन बच्चों और औरतों पर नज़र डालते हुए जो क्षणिक कुतूहल से प्रेरित होकर हमारी गाड़ियों की ओर देख लेतीं और फिर सदा-सर्वदा के लिए ग़ायब हो जाती थीं; उन दूकानदारों और किसानों को देखते हुए, जो हमें सलाम करना तो दूर—जैसा पेत्रोव्स्कोये में होता था—हमारी ओर ताकते भी न थे, मेरे मस्तिष्क में पहले-पहल यह प्रश्न उठा—ये जिन्हें हमारी परवाह नहीं है, करते क्या हैं? और इस प्रश्न ने एक और प्रश्न को जन्म दिया—उनकी रोज़ी का क्या ज़रिया है? वे अपने बच्चों को कैसे पालते हैं? उन्हें पढ़ाते-लिखाते हैं, या यों ही मटरगश्ती करने को छोड़ देते हैं? इन्हें सज़ा कैसे देते हैं? आदि, आदि।

चौथा परिच्छेद

मास्को में

मास्को पहुंचने के बाद चीज़ों और व्यक्तियों तथा उनके साथ हमारे सम्बन्ध के बारे में दृष्टिकोण का परिवर्तन मुझे और स्पष्टता से दष्टिगत होने लगा। नानी से पहले-पहल मिलने पर उनका पतला, झुर्रीदार चेहरा और धुंधली आंखें देखकर उनके प्रति सहमे हुए सम्मान और आतंक का पुराना भाव सहानुभूति में बदल गया। जिस समय ल्यूबोच्का के मस्तक पर मुंह रखकर वह यों बिसूरने लगीं मानों उनकी प्यारी बेटी की लाश सामने रखी हो, मेरी सहानुभूति ममता में परिवर्तित हो गयी। हम लोगों से मिलने पर उनके शोक का उमड़ना देखकर मुझे परेशानी-सी होने लगी। मैंने देखा कि अपने आप में हम लोग उनकी दृष्टि में कुछ नहीं हैं, हमारा मोल उनके लिए स्मृति चिन्हों के रूप में था। मुझे ऐसा भास हो रहा था कि हर बार जब वह मेरे गालों को चूमतीं, वह केवल पुंजीभूत विचार की अभिव्यंजना थी—"वह नहीं रही; वह मर गयी; उसे अब फिर न देख पाऊंगी।"

पिताजी, जिनसे मास्को आने के वाद हम लोगों का क़रीव नहीं के वरावर वास्ता पड़ता था, सदा चिंतित रहा करते थे और केवल दोपहर के भोजन के समय हमें दर्शन देते थे। वह उस समय काला कोट या ड्रेस-सूट पहने रहते थे। मेरी आंखों में उनका, उनके रंगीन चौड़े कालरों का, उनके ड्रेसिंग-गाउन, उनके गुमाश्ते, उनके मुहर्रिर, उनके खलिहान या शिकार को जाने का महत्व काफ़ी घट गया था। कार्ल इवानिच को, जिन्हें नानी 'द्यादका' (वच्चों का खवास) कहा करती थीं, आजकल न जाने कहां से, और खुदा जानता है क्यों, अपने वुजुर्गाना गंजे सिर को एक लाल वालों की टोपी से, जिसमें लगभग वीच से मांग निकली हुई थी, ढकने की सूझी थी। वे मुझे अव इतने विचित्र और हास्यास्पद लगने लगे थे कि अचरज होता था कि मैंने पहले इसे क्यों न देखा था। लड़कियों और हम लोगों के वीच भी कोई अदृश्य दीवार-सी खड़ी हो गयी थी। उनके अपने गुप्त भेद थे, हम लोगों के अपने। यदि उन्हें अपने पेटीकोट पर जिसकी लम्वाई दिनोंदिन वढ़ती ही जा रही थी घमंड था तो हमें उन तस्मेदार पतलूनों पर जो अव हमें पहनने को मिलती थीं। और मास्को पहुंचने के वाद के पहले ही रविवार को भोजन के समय मीमी ऐसा फैशनेवुल गाउन पहने और वालों में फ़ीते लगाकर आयी कि हमें फौरन वोध हो गया कि अव हम देहात में नहीं हैं। हम समझ गये कि, यहां हर रंग-रवैया दूसरा ही होगा।

पांचवां परिच्छेद

बड़ा भाई

वोलोद्या से मैं एक साल और कुछ महीने ही छोटा था। हम दोनों साथ वड़े हुए थे और, पढ़ाई हो या खेल, वरावर साथ साथ रहे थे। परिवार में हमारे वीच कभी वड़े और छोटे का भेद नहीं किया

गया था। लेकिन ठीक इसी समय के आसपास जबकी बात मैं लिख रहा हूं, मैं यह महसूस करने लगा कि मैं न अवस्था में, न रुचियों में और न योग्यता में वोलोद्या की बराबरी कर सकता हूं। बल्कि मैं यह भी कल्पना करने लगा कि वोलोद्या को अपने बड़प्पन का बोध है और अभिमान भी। इस विचार ने, जो कदाचित ग़लत रहा हो, मेरे आत्मप्रेम को जगा दिया और वोलोद्या के साथ हर मुठभेड़ में उसे ठेस लगती। वह मुझसे सभी चीज़ों में आगे था, खेल-कूद में, पढ़ने-लिखने में, लड़ाई-झगड़े में, और इस ज्ञान में कि कब कैसा व्यवहार करना चाहिए। इन सबसे मैं मन ही मन उससे दूर होता जा रहा था और एक ऐसी मानसिक यंत्रणा का सामना करना पड़ रहा था जिसे मैं नहीं समझ पाता था। जिस दिन वोलोद्या ने पहले-पहल लिनन की चुन्नटदार क़मीज़ पहनी उस दिन यदि मैंने उससे साफ़ कह दिया होता कि मेरे भी ऐसी क़मीज़ न होने से मुझे बुरा लगता है तो स्थिति मेरे लिए निश्चय ही आसान हो जाती।

तब उसके हर बार अपनी नयी क़मीज़ का कालर ठीक करते समय मुझे यह प्रतीत न होता कि वह केवल मुझे चिढ़ाने के लिए ऐसा कर रहा है।

जो चीज़ मुझे सबसे अधिक परेशान करती थी वह यह कि वोलोद्या, जैसा कि मुझे प्रायः बोध होता था, मेरी मनोभावना को अच्छी तरह समझता था लेकिन उसे छिपाने की कोशिश करता था।

निरंतर साथ रहनेवालों—भाई-भाई, मित्र-मित्र, पति और पत्नी, या मालिक और नौकर के बीच—ख़ासकर जब ये लोग आपस में हर मामले में स्पष्टता नहीं बरतते—प्रायः एक रहस्यपूर्ण, शब्दहीन-सा सम्बन्ध क़ायम हो जाता है जो व्यक्त होता है एक क्षीण-सी मुसकान अथवा किसी अत्यंत साधारण-सी मुद्रा या चितवन में। जब आंखें झिझकती-हिचकिचाती हुई अचानक मिलती हैं तो एक दृष्टि से ही

न जाने कितनी अव्यक्त इच्छाएं, विचार और भय—समझे जाने का भय—अभिव्यंजित हो जाते हैं।

पर सम्भव है कि इस विषय में मैं अपनी अतीव संवेदनशीलता और विश्लेषण की प्रवृत्ति द्वारा धोखे में पड़ गया था; सम्भव है वोलोद्या में वह भावना थी ही नहीं जिसका मैं शिकार था। वह स्वभाव का तीखा, खरा और अस्थिर आवेगों वाला था। वह प्राय: भिन्न भिन्न तरह की चीज़ों की ओर आकृष्ट हो उठता, और उसे अपनी सुध-बुध न रहती।

एक बार उसे चित्रों का शौक़ चर्राया। वह स्वयं चित्रकारी करने लगा। इसके पास जो भी पैसा आता इसी शौक़ पर ख़र्च कर देता। इतना ही नहीं, वह चित्रकारी-शिक्षक से, पिताजी से, नानी से पैसे मांगकर अपना शौक़ पूरा करने लगा। इसके बाद उसे मेज़ सजाने का सामान इकट्ठा करने की धुन सवार हुई, और घर भर का सामान उठाकर उसने अपनी मेज़ सजानी आरम्भ कर दी। फिर उपन्यासों की धुन चढ़ी। इन्हें चुपके से लाकर वह दिन-रात पढ़ा करता। अनजाने ही मैं भी उसके शौक़ों के साथ साथ बह जाया करता था। पर मेरा आत्माभिमान उसके पदचिन्हों पर चलने से मुझे रोकता था। साथ ही बहुत छोटा होने और परनिर्भरता के कारण मैं अपने स्वतंत्र शौक़ भी नहीं चुन सकता था। पर वोलोद्या की एक चीज़ से मैं सबसे अधिक ईर्ष्या करता था—वह था उसका खरा, उदात्त चरित्र। यह सबसे अधिक हम दोनों में झगड़े के समय प्रगट हुआ करती थी। मैं महसूस करता था कि उसका व्यवहार उच्च और सज्जनोचित हो रहा है। पर उसकी नक़ल करना—यह मुझ से नहीं हो सकता था।

एक बार जब कि विचित्र सामान इकट्ठा करने की उसकी धुन अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई थी, मैं उसकी मेज़ के पास गया और ग़लती से एक ख़ाली, बहुरंगी शीशी तोड़ डाली।

"हमारी चीज़ें छूने को तुमसे किसने कहा?" वोलोद्या ने कमरे में प्रवेश करते हुए और अपने चित्र-विचित्र संग्रह की सजावट को बिखरा हुआ पाकर कहा। "और यहां की वह छोटी शीशी क्या हुई? तुम हमेशा..."

"वह ग़लती से गिरकर फूट गयी। कौन-सी बड़ी चीज़ थी!"

"मेहरबानी करके मेरी चीज़ों में हरगिज़ हाथ न लगाया करो!" उसने शीशी के टुकड़ों को जोड़ते हुए और उनपर दुखभरी दृष्टि डालते हुए कहा।

"और मेहरबानी करके तुम भी मेरे ऊपर हुक्म मत चलाया करो," मैंने जवाब दिया। "टूट गयी तो टूट गयी। अब इतना शोर मचाने की क्या ज़रूरत है?"

और मैं बरबस मुसकरा पड़ा, यद्यपि मेरी तनिक भी मुस्कराने की इच्छा न थी।

"हो सकता है तुम्हारे लिए उसका कोई मोल न हो, पर मेरे लिए बहुत है," वोलोद्या कंधों को सिकोड़ते हुए (यह आदत उसने पिताजी से ली थी) कहता गया। "तुम मेरी चीज़ तोड़ डालते हो और ऊपर से हंसते हो। जितने छोटे हो, उतने ही दुष्ट हो!"

"मैं छोटा दुष्ट हूं, पर तुम जितने बड़े हो उतने ही गधे हो!"

"मैं तुमसे लड़ना नहीं चाहता," वोलोद्या ने मुझे एक हल्का-सा झटका देते हुए कहा। "चले जाओ यहां से!"

"खबरदार! जो मुझे धक्का दिया!"

"चले जाओ!"

"खबरदार! कहे देता हूं जो मुझे धक्का दिया!"

वोलोद्या ने मेरा हाथ पकड़ लिया और चाहा कि घसीटकर मेज़ से अलग कर दे। पर मैं ग़ुस्से से आगबबूला हो रहा था। मैंने मेज की टांगें पकड़ ली जिससे चीनी मिट्टी और शीशे के सामानों का वह पूरा संग्रह लड़खड़ाता हुआ फ़र्श पर आ रहा। "यह लो!"

"गंदे, वदमाश कहीं के!" वोलोद्या अपने अनमोल खज़ाने को वचाने की कोशिश करता हुआ चिल्लाया।

"हम लोगों में सदा के लिए विगाड़ हो गया," कमरे से वाहर होते हुए मैंने मन में सोचा। "अव हम दोनों में कभी मेल नहीं हो सकता!"

शाम तक दोनों एक-दूसरे से न वोले। मैं महसूस कर रहा था कि, ग़लती मेरी है और वोलोद्या से आंख मिलाने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। सारे दिन मेरा किसी चीज़ में मन न लगा। इसके विपरीत, वोलोद्या ने मन लगाकर पढ़ा-लिखा और सदा की तरह भोजन के वाद लड़कियों से गपशप किया।

ज्योंही मास्टर साहव की पढ़ाई समाप्त होती थी मैं उठकर वाहर चला जाता था। मेरी आत्मा मुझे कोस रही थी। मुझमें हिम्मत न थी कि कमरे में अकेले रहकर भाई से आंख मिला सकूं। शाम को इतिहास का पाठ समाप्त होते ही मैंने कापी उठायी और दरवाज़े की ओर चला। वोलोद्या के पास से गुज़रते समय यद्यपि मेरी हार्दिक इच्छा उससे माफ़ी मांगकर सुलह कर लेने की थी पर मैंने मुंह वना लिया और चेहरे पर क्रोध का भाव लाने की कोशिश करने लगा। ठीक उसी समय वोलोद्या ने सिर उठाया और हल्की-सी स्निग्ध किन्तु कतिपय व्यंगपूर्ण मुसकुराहट के साथ मुझसे आंखें चार कीं। आंखें मिलते ही मैं समझ गया कि वह मेरे मन का भाव भांप गया है। लेकिन उससे भी प्रवल एक भावना से प्रेरित होकर मैं मुंह फेरकर चलने लगा।

"निकोलेन्का!" उसने विल्कुल सरल और स्वाभाविक स्वर में जिसमें आवेश का नामोनिशान न था, कहा। "हो चुके भाई वहुत नाराज़। मैंने अगर तुम्हें कष्ट पहुंचाया है, तो माफ़ कर दो मुझे।"

यह कहकर उसने मेरी ओर हाथ वढ़ा दिया।

हठात् मेरी छाती में एक तूफ़ान-सा उमड़ने लगा। ऐसा मालूम हुआ कि मेरा गला रुंध रहा है। यह भावना एक क्षण भर ही रही। इसके बाद ही आंखें छलछला आयीं और मन हल्का हो गया।

"मुझे माफ़ कर दो, वोलोद्या!" मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा।

पर वोलोद्या मेरी ओर यों देखता रहा मानों मेरी आंखों में आंसू होने का कारण उसकी समझ में न आ रहा हो।

छठा परिच्छेद

माशा

लेकिन मेरे दृष्टिकोण में हो रहे परिवर्तनों में एक ने मुझे जितना अधिक अचरज में डाला उतना किसी और ने नहीं। यह था घर की एक नौकरानी के प्रति मेरा परिवर्तित दृष्टिकोण। दासी मात्र होने के बदले वह मेरी दृष्टि में अब एक औरत थी, एक ऐसी औरत जिसपर सम्भवतः मेरे दिल का चैन और ख़ुशी निर्भर करती थी।

जब से मैंने होश संभाला था, माशा हमारे घर में काम करती थी, और उसके प्रति मेरे दृष्टिकोण के इस समग्र परिवर्तन से पहले, जिसे मैं आगे बयान करूंगा, मैंने उसकी ओर भूलकर भी ध्यान न दिया था। जिस समय मेरी अवस्था १४ साल की थी माशा २५ की थी। वह देखने में बहुत अच्छी थी। पर उसका नखशिख वर्णन करने में मैं घबराता हूं। मुझे भय होता है कि मेरी कल्पना कहीं उसकी वही मोहिनी छलभरी तस्वीर मेरे सामने खड़ी कर दे जो उसके प्रति आवेग के उन दिनों में मेरे सामने नाचा करती थी। गलती न हो इसलिए मैं इतना ही कहूंगा कि उसका रंग असाधारण गोरा था, शरीर खूब पुष्ट और उभरा हुआ—और वह औरत थी। और मेरी अवस्था थी १४ साल।

उन घड़ियों में जव पाठ की किताव हाथ में लिए आदमी कमरे में चहलकदमी कर रहा होता है, टहलते हुए चुनकर फ़र्श की दरारों पर पैर रखने की कोशिश करता है, या कोई धुन गुनगुनाता रहता है, या मेज़ के किनारे को रोशनाई से रंग रहा होता है, या यंत्रवत किताव की कोई उक्ति दुहरा रहा होता है,—संक्षेप में, जव कि मस्तिष्क ने काम करना वंद कर दिया होता है और कल्पना हावी हो जाती है, ऐसी ही एक घड़ी में मैं पाठ-कक्ष से वाहर निकलकर, निष्प्रयोजन, सीढ़ियों पर जा पहुंचा था।

सीढ़ी के निचले भाग में कोई स्लीपर पहने ऊपर चला आ रहा था। निस्संदेह, मैं जानना चाह रहा था कि आनेवाला कौन है; पर पैरों की आहट अचानक वंद हो गयी और मैंने माशा का स्वर सुना:

"हटो भी! कहीं मार्या इवानोवना आ गयी तो क्या कहेगी?"

"वह नहीं आयेगी," वोलोद्या का फुसफुस स्वर सुनायी पड़ा। और तव एक आहट-सी कानों में आयी जो वता रही थी कि वोलोद्या उसे रोकने की कोशिश कर रहा है।

"ऐ! हटो! शैतान कहीं का!" कहती हुई माशा तेज़ी से मेरी वगल से होकर भागी। उसका रूमाल अस्त-व्यस्त हो रहा था और गोरी गुलगुल गर्दन दिखाई दे रही थी।

इस काण्ड को देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पर शीघ्र ही मेरे आश्चर्य का स्थान वोलोद्या के इस करतव के प्रति सहानुभूति ने ले लिया। मेरे अचरज का कारण उसकी यह हरकत न थी, वल्कि यह कि उसे सूझी क्योंकर कि इस काम में मज़ा है। और अनजाने ही, मैं भी उसका अनुकरण करने की इच्छा करने लगा।

मैं घंटों सीढ़ी के वीच की चौड़ी जगह पर खड़ा होकर विता देता था। मेरा मस्तिष्क उस समय अपना काम वंद कर देता था। और सारा ध्यान ऊपर से आनेवाली साधारण से साधारण आहट पर केंद्रित

रहता था। पर वोलोद्या का अनुकरण करने की मेरी कभी हिम्मत न हुई यद्यपि मैं तन-मन से वही करने की इच्छा रखता था। प्राय: मैं दरवाज़े के पीछे छिपकर, चोर की तरह, नौकरानियों के कमरे की चहल-पहल को ईर्ष्या के साथ सुना करता था। उस समय मैं सोचता था कि यदि मैं भी ऊपर जाकर वोलोद्या की तरह माशा का चुम्बन लेने की कोशिश करूं तो मेरी स्थिति क्या होगी? मेरी चपटी नाक और खड़े बालों पर कहीं वह पूछ बैठे कि क्या चाहते हो, तो क्या जवाब दूंगा? कभी मैं माशा को वोलोद्या से कहते सुनता था—"कैसा आफ़त का परकाला है! क्यों तुम मुझे हमेशा छेड़ते रहते हो? भागो यहां से, बदमाश कहीं के! एक निकोलाई पेत्रोविच है कि कभी मेरे साथ इस तरह की छेड़-छाड़ नहीं करता।" उसे पता न था कि ठीक उसी वक्त निकोलाई पेत्रोविच सीढ़ियों पर बैठा था। वह उस 'शैतान वोलोद्या' की जगह लेने के लिए क्या कुछ करने को तैयार नहीं था?

मैं स्वभाव से शर्मीला था, पर अपनी बदसूरती के ख्याल ने यह शर्मीलापन बढ़ा दिया था। और मुझे दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य के जीवन क्रम में उसकी व्यक्तिगत आकृति से अधिक निर्णयकारी प्रभाव किसी और वस्तु का नहीं पड़ता। और व्यक्तिगत आकृति का उतना नहीं जितना व्यक्तिगत आकृति की आकर्षकता अथवा अनाकर्षकता के प्रति उसकी धारणा का।

मुझमें इतना अधिक आत्मसम्मान था कि मैं अपनी स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता था। अत: मैंने 'अंगूर खट्टे हैं' की उक्ति से काम लिया। अर्थात मैंने अच्छे रूपरंग से, जिसका, मेरी दृष्टि में, वोलोद्या मालिक था और जो मेरी सम्पूर्ण ईर्ष्या का विषय था, प्राप्य हर मज़े को ठुकराने की कोशिश की और अपने मस्तिष्क और कल्पना को गर्वीले एकाकीपन से संतोष प्राप्त करने का प्रयास करने लगा।

सातवां परिच्छेद

छर्रा

"बाप रे, बारूद," मीमी भय से कांपती हुई चिल्लायी। "क्या कर रहे हो तुम लोग? घर में आग लगाकर हम लोगों को खतम करके रहोगे क्या?"

और अत्यन्त कठोर मुद्रा धारण किये, मीमी ने सभी को दूर हट जाने को कहा, लम्बे दृढ़ डग भरते हुए बिखरे 'बारूद' के निकट गयी और असामयिक विस्फोट के खतरे का सामना करती हुई पैर से उसे बुझाने लगी। खतरा जब उसकी राय में मिट गया तब उसने मिखेई को पुकारा और उसे बारूद को बाहर फेंक आने को कहा। बोली कि इससे भी अच्छा होगा कि उसे पानी में डाल दो। यह कहकर गर्व से टोपी संभालती हुई वह बैठकखाने में चली गयीं। "कैसी अच्छी देखभाल इन लड़कों की हो रही है!" वह भुनभुनायी।

जब पिताजी अपने कमरे से आये और उनके साथ हम लोग नानी के कमरे में पहुंचे, मीमी वहां पहले ही से खिड़की के पास बैठी हुई थीं, चेहरे पर भेदपूर्ण अफ़सराना भाव था और गुस्से भरी नज़र से दरवाज़े की ओर देख रही थीं। उसके हाथ में कागज़ में लिपटी कोई चीज़ थी। मैं समझ गया कि छर्रे हैं और नानी को सारा क़िस्सा मालूम हो चुका है।

नानी के कमरे में मीमी के अतिरिक्त नौकरानी गाशा थी जो, जैसा कि उसका तमतमाया हुआ चेहरा बता रहा था, बहुत झल्लायी हुई थी। दूसरे डा० ब्लुमेंथाल थे। वह नाटे कद के चेचकरू आदमी थे जो सिर तथा आंखों से तरह तरह की मुद्राएं बनाकर गाशा को शांत करने की निष्फल कोशिश कर रहे थे।

स्वयं नानी ज़रा आड़ी होकर बैठी थीं और ताश के पत्ते फैलाकर यात्री नाम की पेशेन्स खेल रही थीं। यह इस बात का जाना-माना चिन्ह था कि, आज उनका पारा गर्म है।

"Maman* अच्छी तो हैं? रात नींद तो आयी मज़े से?" पिताजी ने आदर से उनका हाथ चूमते हुए पूछा।

"ख़ूब अच्छी हूं। जानते ही हो कि मैं हमेशा अच्छी रहती हूं," नानी ने ऐसे स्वर में जवाब दिया था जिसका स्पष्ट निर्देश यह था कि, आपका प्रश्न बिल्कुल बेतुका और खिजाने वाला है। "क्या मुझे एक साफ़ रूमाल मिल सकता है?" वह गाशा की ओर मुड़कर बोलीं।

"दिया तो है रूमाल," गाशा ने कुर्सी की बांह पर पड़े एक स्वच्छ श्वेत लिनेन के रूमाल की ओर इशारा करते हुए कहा।

"यह गंदा रूमाल नहीं चाहिए मुझे। कृपा करो जो एक साफ़-सा रूमाल दे दो।"

गाशा आलमारी के पास गयी और एक दराज़ खोला, फिर उसे इतने ज़ोर से बंद किया कि कमरे में रखे शीशे के सारे सामान खड़खड़ा उठे। नानी टेढ़ी भृकुटियों से एक दृष्टि हम लोगों पर फेंककर, ध्यानपूर्वक दासी की चेष्टाएं देखती रहीं। जब वह फिर एक और रूमाल ले आयी जो मुझे लगा वही रूमाल था तो नानी ने कहा:

"मेरी सुंघनी कब तक तैयार कर दोगी?"

"जब वक़्त मिलेगा।"

"क्या कहा?"

"आज कर दूंगी।"

"देख। अगर तुझे नौकरी नहीं करनी थी तो कह सकती थी मुझसे। मैं तुम्हें कभी की छुट्टी दे देती।"

"छुट्टी मिल जाएगी, तो मैं अपना सिर थोड़े ही धुनूंगी," दासी धीमे से बुदबुदायी।

---

* [अम्मा]

डाक्टर ने उस समय उसकी ओर कनखियों से इशारा करना चाहा, पर गाशा ने उसपर ऐसी क्रोधपूर्ण और कठोर दृष्टि से देखा था कि उसने तत्काल नज़र नीचे झुका ली और घड़ी की चाबी को यों देखने लगे मानो उसी में तल्लीन हों।

गाशा जिसका बुदबुदाना जारी था, जब कमरे के बाहर निकल गयी तो नानी ने पिताजी की ओर मुड़कर कहा – "देख रहे हो न – मेरे ही घर में कैसा सलूक होता है मेरे साथ?"

"कहें तो मैं आपकी सुंघनी तैयार कर दूं, maman," पिताजी ने कहा, जो स्पष्टतः गाशा के अप्रत्याशित व्यवहार से हैरान हो रहे थे।

"नहीं, धन्यवाद। वह जानती है कि मेरे मन के लायक सुंघनी वही तैयार कर सकती है। इसी लिए वह इतनी गुस्ताख़ है।" इसके बाद थोड़ा रुककर वह बोलीं:

"पता है तुम्हें कि आज तुम्हारे लड़कों ने घर में आग ही लगा दी थी करीब करीब?"

पिताजी ने आदरपूर्ण जिज्ञासा से नानी को देखा।

"हां, देख लो ज़रा, ये लोग किन चीज़ों से खेलते हैं। दिखाना तो," उन्होंने मीमी की ओर मुड़कर कहा।

पिताजी ने छर्रे को हाथ में ले लिया और अपनी मुस्कान रोक न सके।

"यह तो छर्रा है, maman," उन्होंने कहा। यह कोई ख़तरनाक चीज़ नहीं।"

"धन्यवाद तुम्हें इस शिक्षा के लिए, पर क्या करूं, मेरी सीखने की उम्र अब नहीं है।"

"घबराहट का दौरा है," डाक्टर ने फुसफुसाकर कहा।

और पिताजी फ़ौरन हम लोगों की ओर मुड़े – "कहां से लाये हो

इसे तुम लोग? किसने कहा था इस तरह की चीजों से खेलने को तुम्हें?"

"उनसे क्यों पूछते हो? यह सवाल तुम्हें उनके ख़वास से करना चाहिए।" नानी ने खवास शब्द का विशेष तिरस्कार के साथ उच्चारण करते हुए कहा। "वह देखभाल क्या करता है?"

"वोलोद्या ने बताया है कि कार्ल इवानिच ने ख़ुद ही लड़कों को यह बारूद दिया है," मीमी ने जोड़ा।

"देख ली न उसकी भलमनसाहत," नानी कहती गयीं। "और गया कहां वह। क्या नाम है उस खवास का? बुलाओ तो उसे यहां।"

"मैंने ही उसे एक आदमी से मिलने जाने की छुट्टी दी है," पिताजी बोले।

"इस तरह काम नहीं चल सकता। उसे तो बराबर यहां मौजूद रहना चाहिए। बच्चे तुम्हारे हैं, मेरे नहीं और मुझको तुम्हें सलाह देने का अधिकार नहीं है क्योंकि तुम मुझसे ज्यादा बुद्धिवाले ठहरे," नानी हांकती गयीं, "पर मैं तो समझती हूं कि उनके लिए एक मास्टर रखने की जरूरत है—ऐसा आदमी जो मास्टर हो, खवास गंवार जर्मन नहीं जो उन्हें अभद्र चाल-ढाल और टाइरोली* गानों के अतिरिक्त कुछ नहीं सिखा सकता। मैं पूछती हूं तुमसे, बच्चों का टाइरोली गीत जानना इतना जरूरी है क्या? पर अब कौन परवाह करता है इन चीजों की? अपनी मर्ज़ी के तुम ख़ुद मालिक हो।"

'अब' का अर्थ यह था कि 'जब इनकी मां नहीं रहीं'। इस शब्द के प्रयोग के साथ नानी शोकाकुल स्मृतियों में डूब गयीं। चित्र मढ़ी सुंघनी की डिबिया पर दृष्टि गड़ाकर वह विचारों में मग्न हो गयीं।

पिताजी को स्पष्ट इशारा समझते देर न लगी। वे झट से बोले—

---

* आस्ट्रिया के टाइरोल नामक स्थान के।—सं०

"मैं भी इसके बारे में बहुत दिनों से सोच रहा था। और इसमें आपकी सलाह की भी ज़रूरत थी, maman। क्या St.-Jérôme से जो इन्हें दिन के वक्त पढ़ाने आता ही है, इस के लिए कहूं?"

"तुम बड़ी बजा बात करोगे," नानी ने कहा। उनका असंतुष्ट स्वर तत्काल बदल गया।

"St.-Jérôme कम से कम मास्टर तो है, इतना तो जानता है कि भले घरों के बच्चों को क्या सलीका सिखाना चाहिए। वह ख़वास नहीं जो लड़कों को केवल टहलने ले जा सकता हो।"

"मैं कल उससे बात करूंगा," पिताजी बोले। और सचमुच, इस वार्तालाप के दो दिन बाद कार्ल इवानिच का स्थान उस छैले नौजवान फ़्रांसीसी ने ले लिया।

आठवां परिच्छेद

कार्ल इवानिच का इतिहास

हम लोगों से सदा के लिए विदा होने से एक दिन पहले, शाम काफ़ी हो चुकी थी जब कार्ल इवानिच अपना रूईदार चोग़ा और लाल टोपी पहिने, पलंग के निकट झुककर संदूक में सावधानी से अपना सामान रख रहे थे।

कुछ दिनों से हम लोगों के प्रति कार्ल इवानिच का रुख़ काफ़ी उपेक्षापूर्ण रहने लगा था। ऐसा लगता था कि, वह हम लोगों से बातचीत करने या मिलने से कतराते हैं। इस समय भी, मेरे कमरे में प्रवेश करने पर उन्होंने भौंहें सिकोड़कर एक नज़र मुझे देखा और अपने काम में लग गये। मैं पलंग पर लेट रहा, पर कार्ल इवानिच जिन्होंने पहले इस चीज़ की सख़्त मनाही कर रखी थी—कुछ न बोले! मुझे ख़्याल आया कि अब वह कभी नहीं हमें डांटेंगे या किसी चीज़ के लिए नहीं रोकेंगे, कि अब हमारा उनका नाता टूट चुका है। इस खयाल

ने हमारी आसन्न जुदाई और भी तीव्रता से मुझे याद करा दी। मुझे इस बात का दुख था कि कार्ल इवानिच अब हमें प्यार नहीं करते थे। मैं अपनी यह भावना उनपर व्यक्त करना चाहता था। उनके पास जाकर मैंने कहा—"लाइये, मैं आपकी मदद कर दूं, कार्ल इवानिच।" कार्ल इवानिच ने मेरी तरफ़ देखकर मुंह फेर लिया। पर उस क्षणिक दृष्टि में, जैसा मैंने पहले समझा था, उपेक्षा न थी, उसमें अपार हार्दिक वेदना थी।

"भगवान सब कुछ देखता है, सब कुछ जानता है। उसकी मर्ज़ी यही है तो यही हो।" उन्होंने एक बार बिलकुल सीधा तनकर और ठंडी आह लेते हुए कहा। "मैं ठीक कह रहा हूं, निकोलेन्का," मेरे चेहरे पर सहानुभूति का सच्चा भाव देखकर वह कहते गये। "जन्म से जीवन के अंत तक दुख भोगना ही मेरे भाग्य में बदा है। मुझे भलाई के बदले सदा बुराई ही मिली है। मेरा वास्तविक पुरस्कार ऊपरवाला ही दे सकता है।" उन्होंने आकाश की ओर संकेत करके कहा। "मेरा इतिहास, तुम्हें मालूम नहीं। इस जीवन में क्या कुछ मैंने नहीं सहा है! पर काश तुम उसे जानते होते! मैंने जूते सिये, फ़ौज में सिपाही रहा, फ़ौजी भगोड़ा बना, कारखाने का मालिक रहा, फिर मास्टर हुआ, और आज कुछ भी नहीं हूं। प्रभु-पुत्र ईसा की तरह मेरा भी न ठौर है न ठिकाना।" उन्होंने कहा और आंख मूंदकर कुर्सी में धम से बैठ रहे।

यह जानकर कि कार्ल इवानिच आज उस भावुक मनःस्थिति में हैं जिसमें श्रोता की परवाह किये बिना वे आत्मसन्तोष के लिए अपने अंतर्तम के विचार मुख से व्यक्त करते चले जायंगे, मैं धीरे से पलंग पर बैठ गया और एकटक उनके नेक चेहरे को देखने लगा।

"तुम बच्चे नहीं रहे। अब समझदार हो चुके हो। मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊंगा। बताऊंगा कि इस जीवन में मुझे क्या कुछ नहीं बर्दाश्त करना पड़ा है। किसी दिन, बच्चो, तुम इस बूढ़े दोस्त को याद करोगे जिसने तुम्हें दिलोजान से प्यार किया है।

कार्ल इवानिच ने बग़ल की मेज़ पर कुहनी टेक ली, एक चुटकी सुंघनी नाक में डाली, और आंखें आकाश की ओर करके अपने विशेष, सम स्वर में—उस स्वर में जिसमें वह हमें इबारत लिखाया करते थे—अपनी कहानी सुनाने लगे।

"मैं जन्म से पहले ही दुख लेकर आया था," उन्होंने दीर्घ उच्छ्वास के साथ कहा। और भी अधिक आवेग से उन्होंने उसी वाक्य को जर्मन में दोहराया—„Das Unglück verfolgte mich schon im Schosse meiner Mutter!"

चूंकि कार्ल इवानिच हू-ब-हू उन्हीं शब्दों और उन्हीं स्वरों में मुझे अपनी कहानी पहले भी सुना चुके थे, इसलिए मेरा खयाल है कि मैं उनकी पूरी कहानी उन्हीं के शब्दों में पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर सकूंगा, केवल उनकी रूसी भाषा की ग़लतियां निकालकर। यह मैं आज तक निश्चित नहीं कर सका हूं कि उनकी यह सच्ची कहानी है, या हमारे घर में एकाकी जीवन बिताते समय उनकी कल्पना ने इसे गढ़ लिया था। अथवा उनकी कहानी की घटनायें सच हैं, केवल कल्पना ने उनके ऊपर मुलम्मा चढ़ा दिया है। एक ओर उनके कहने में ऐसी जीवंत भावना और घटना-वर्णन में ऐसी सूत्रबद्धता थी—ये ही सचाई के प्रधान प्रमाण हुआ करते हैं—कि अविश्वास का कोई कारण नहीं रह जाता। दूसरी ओर, कवित्वमय ब्योरों की ऐसी प्रचुरता थी कि संदेह होने लगता था।

"मेरी धमनियों में काउंट सोम्मरब्लैट्ट के वंश का अभिजात रक्त प्रवाहित होता है! In meinen Adern fliesst das edle Blut des Grafen von Sommerblat!" फिर बोले—"विवाह के छः सप्ताह बाद मेरा जन्म हुआ। मेरी मां के पति (मैं उन्हें बप्पा कहा करता था) काउंट सोम्मरब्लैट्ट के यहां रैयत थे। वे मेरी मां का पाप कभी न भूले, न मुझे कभी प्यार ही किया। मेरे एक छोटा भाई जिसका नाम जोहान था और दो बहिनें थीं। पर मैं अपने ही परिवार में एक अजनबी के समान था! Ich war ein

Fremder in meiner eigenen Familie! जब जोहान कोई शरारत करता था तो बप्पा कहते थे–'यह छोकरा कार्ल मुझे कभी चैन से न रहने देगा' और डांट और मार मेरे ऊपर पड़ती थी। जब मेरी बहिनों में झगड़ा होता था तब भी बप्पा कहते थे–'कार्ल कभी किसी की बात नहीं सुन सकता' और फिर डांटा और पीटा जाता था।

"केवल मेरी मां नेक थी जो मुझे प्यार करती थी। वह प्रायः कहती–'कार्ल, इधर तो आ मेरे कमरे में' और वहां सबकी नज़र बचाकर मुझे चूम लेती। 'मेरा बेचारा कार्ल,' वह कहती, 'कोई तुझे नहीं चाहता, पर मैं सारी दुनिया की दौलत अपने बेटे पर वार दूं। देख, बेटा, अपनी मां का कहना सुन। खूब मन लगाकर पढ़ना। सच्चरित्र बनना। तब भगवान का साया कभी तेरे ऊपर से नहीं उठेगा। Trachte nur ein ehrlicher Deutscher zu werden,—sagte sie,—und der liebe Gott wird dich nicht verlassen!" और जो उसने कहा, वही मैंने करने की कोशिश की। जब मैं १४ वर्ष का हुआ और उपासना में सम्मिलित होने के योग्य हो गया तो अम्मा ने बप्पा से कहा–'गुस्ताव! कार्ल बड़ा हो गया है, क्या करना होगा उसका? और बप्पा ने जवाब दिया–'मैं नहीं जानता।' तब अम्मा बोली–'उसे हर्र शुल्टज़ के पास शहर भेज देना चाहिए, वहां वह जूता गांठना सीखेगा।' और बप्पा बोले–'ठीक है,' und mein Vater sagte „gut." ६ वर्ष सात महीने मैं अपने मोची उस्ताद के पास रहा। उस्ताद मुझे खूब मानते थे। वह बोले– 'कार्ल बड़ा होशियार कारीगर है। मैं उसे जल्द ही Geselle * बना दूंगा!' लेकिन कहावत है–मेरे मन कुछ और है, साईं के मन और। १७९६ में अनिवार्य फ़ौजी भर्ती की आज्ञा जारी हुई और १८ से २१ वर्ष की अवस्था वाले सभी लोग जो शरीर से अच्छे थे शहर में बुलाये गये।

"बप्पा और जोहान भी शहर आये और हम लोगों ने कहा कि

---

* [दूकान का सहायक मिस्त्री]

380

पर्ची निकाली जाय कि कौन फ़ौज में जायगा। जोहान के नाम की पर्ची निकल आयी। अब उसे ही फ़ौज में जाना था। मेरे नाम पर सादा निकला अत: मेरे लिए Soldat* बनना आवश्यक न था। बप्पा बोले—'मेरे एक ही बेटा है, वह भी मेरे से अलग हो जायेगा! Ich hatte einen einzigen Sohn und von diesem muss ich mich trennen!"

"मैंने उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—'बप्पा, तुम ऐसा क्यों कहते हो? इधर आओ। मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं।' और बप्पा मेरे साथ गये। वह मेरे साथ गये और हम लोग एक सराय में एक छोटी मेज़ के पास जाकर बैठे। मैंने बेयरा से कहा—'दो बोतल बियर दे जाना,' और बियर हम लोगों के सामने लाकर रख दी गयी। हम दोनों ने बियर पी और छोटे भैया ने भी पी।

"'बप्पा,' मैंने कहा, 'यह न कहो कि तुम्हारे एक ही बेटा था और वह भी चला। मैं तुम्हारे मुंह से ऐसी बात सुनता हूं तो मेरा कलेजा मुंह को आने लगता है। भैया फ़ौज में नहीं जायेगा। कार्ल की यहां पर किसी को जरूरत नहीं। इसलिए कार्ल फ़ौज में भर्ती होगा।'

"'कार्ल! तुम सच्चे आदमी हो,' कहते हुए बप्पा ने मुझे चूम लिया। „Du bist ein braver Bursch!" — sagte mir mein Vater und küsste mich.

"और मैं फ़ौज में भर्ती हो गया।"

नौवां परिच्छेद

कहानी जारी है

"वे भयानक दिन थे, निकोलेंका!" कार्ल इवानिच कहते गये। "नैपोलियन उस समय जीवित था। वह जर्मनी पर कब्ज़ा करना चाहता था और हम लोग खून की आखिरी बूंद तक देकर अपने देश की रक्षा करना

---

* [सिपाही]

चाहते थे! und wir vertheidigten unser Vaterland bis auf den letzten Tropfen Blut!

"मैं उल्म के मोर्चे पर था, आस्टरलिटज़ में था, वैग्रेम में था। ich war bei Wagram!"

"आपने युद्ध में भाग लिया?" मैंने विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखा, "आपने हत्या भी की होगी?"

इस सम्बन्ध में मेरी उद्विग्नता कार्ल इवानिच ने फ़ौरन दूर कर दी। बोले:

"एक बार एक फ़्रांसीसी Grenadir* अपने साथियों से छूटकर सड़क पर गिर पड़ा। मैं बंदूक लेकर उसपर झपटा और उसे ख़त्म ही कर देनेवाला था कि der Franzose warf sein Gewehr und rief pardon.** मैंने उसे छोड़ दिया।

"वैग्रेम में नेपोलियन ने हमें खदेड़ते हुए एक टापू में घेर लिया जहां से भागने का कोई रास्ता न रह गया था। तीन दिनों तक हम लोग खाये-पिये बिना घुटनों तक पानी में खड़े रहे। दुष्ट न हमें भागने दे, न कैद करे। und der Bösewicht Napoleon wollte uns nicht gefangen nehmen und auch nicht freilassen!

"भगवान को धन्यवाद है कि चौथे दिन वे हमें कैदी बनाकर एक क़िले में ले गये। मेरे पास एक नीली पतलून, बहुत अच्छे कपड़े की एक वर्दी, १५ थेलर सिक्के और एक चांदी की घड़ी थी जो बप्पा ने मुझे भेंट की थी। एक फ़्रांसीसी सिपाही ने मुझसे सब छीन लिया। सौभाग्यवश मेरे पास तीन ड्यूकेट सिक्के बच रहे थे। इन्हें अम्मा ने मेरे कोट के अस्तर में सी दिये थे। उनका किसी को पता न चला।

---

*[गोलंदाज़]

**[उसने बंदूक रख दी और 'मुझे मत मारिये' कहकर प्राणों की भीख मांगने लगा]

"मैं किले में अधिक दिनों तक कैद नहीं रहना चाहता था। अतः वहां से भाग निकलने का निश्चय किया। एक दिन कोई बड़ा त्योहार था। मैंने उस सिपाही से जो हमारे पहरे पर था कहा—'सार्जंट साहब, आज त्योहार का दिन है और मैं उसे मनाना चाहता हूं। अगर दो बोतल बढ़िया मदिरा ले आयें तो साथ पिया जाय।' सार्जंट ने कहा—'बहुत अच्छा।' जब वह मदिरा ले आया और हम लोग एक एक गिलास ढाल चुके तो मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा—'सार्जंट साहब, घर में आपके मां और बाप तो होंगे?' वह बोला—'हां, माओयर साहब।' मैं कहता गया—'मेरे मां-बाप ने मुझे आठ साल से नहीं देखा है, उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि, मैं ज़िंदा हूं या मेरी हड्डियां गीली धरती के नीचे कब्र में पड़ी सड़ रही हैं। सार्जंट साहब, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करो। मेरे पास दो ड्यूकैट हैं जो मेरे कोट में टंके हुए हैं। इन्हें ले लीजिए और मुझे जाने दीजिये। मेरा उपकार कीजिये। मेरी अम्मा सारे जीवन भगवान से आपके लिए दुआ करेगी।'

"सार्जंट ने एक गिलास मदिरा और ली और बोला—'माओयर साहब, मैं तुम्हें दिल से चाहता हूं और तुम्हारे ऊपर मुझे दया भी आती है। पर तुम ठहरे कैदी और मैं हूं पहरे पर।' मैंने उसका हाथ दबाकर कहा—'सार्जंट साहब!' ich drückte ihm die Hand und sagte: „Herr Sergeant!"

"और सार्जंट बोला—'तुम ग़रीब आदमी हो। मैं तुम्हारे रुपये नहीं ले सकता। पर मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैं सो जाऊं तो एक ढोल ब्रांडी लेकर सिपाहियों को पिला देना। वे सो जायेंगे, और मैं तुम्हारे ऊपर पहरा नहीं रखूंगा।'

"वह भला आदमी था। मैंने ब्रांडी खरीदी और जब सिपाही लोग सो गये, तो अपना ओवरकोट और बूट चढ़ाया और दरवाज़े से बाहर निकल गया। मैं दीवार फांदने के इरादे से उधर गया, पर उस

पार पानी था और मैं अपने बचे-खुचे कपड़ों को खराब नहीं करना चाहता था। मैं फाटक की ओर चला।

"वहां संतरी कंधे पर बंदूक रखे टहल रहा था। उसने मुझे देखा और हठात् पूछा – «Qui vive?» * मैंने न जवाब दिया। «Qui vive?» वह फिर बोला। और मैं फिर चुप रहा। तीसरी बार जब उसने «Qui vive?» कहा तो मैं भागा। दीवार फांदकर मैं खाई में कूद पड़ा और उसे पार करके दौड़ने लगा। Ich sprang in's Wasser, kletterte auf die andere Seite und machte mich aus dem Staube.

"सारी रात मैं सड़क पर दौड़ता रहा। पर जब पौ फटने का समय हुआ तो पहचाने-जाने के भय से मक्के की खड़ी फ़सल थी उसमें घुस गया। वहां घुटनों के बल बैठ मैंने हाथ जोड़कर भगवान का धन्यवाद किया कि उसने मुझे बचा लिया और निश्चिन्त होकर गहरी नींद में सो रहा। Ich dankte dem allmächtigen Gott für seine Barmherzigkeit und mit beruhigtem Gefühl schlief ich ein.

"रात होने पर मैं उठा और आगे चला। अचानक दो काले घोड़ों वाली माल ढोने की एक जर्मन गाड़ी मेरी बगल में आ पहुंची। गाड़ी में सुंदर पोशाक पहने एक आदमी बैठा पाइप पी रहा था। वह मुझे ग़ौर से देखने लगा। मैंने अपनी चाल धीमी कर दी ताकि गाड़ी आगे निकल जाय, पर जब मैंने चाल धीमी की तो गाड़ी की चाल भी धीमी हो गयी और उस आदमी का घूरना जारी रहा। अब मैं तेज़ चलने लगा, पर गाड़ी भी तेज हो गयी, और वह आदमी था कि उसकी नज़र मेरे ऊपर से हट ही न रही थी। अंत में मैं सड़क के किनारे बैठ गया। वह आदमी भी गाड़ी रोककर मुझे देखने लगा। 'ऐ नौजवान, इस वक्त कहां जा रहा है।' उसने मुझसे पूछा। मैंने कहा – 'फ्रंकफोर्ट जा रहा हूं।' 'तो गाड़ी

---

* [खबरदार, कौन है ?]

में आ जाओ, उसमें जगह है। मैं तुम्हें वहां तक पहुंचा दूंगा। तुम्हारे पास कोई सामान नहीं है क्या? और दाढ़ी तुम्हारी क्यों बढ़ी हुई है? और तुम्हारे कपड़ों में कीचड़ कैसे लगा हुआ है?' मैं गाड़ी में बैठ गया तो उसने पूछना शुरू किया। मैंने जवाब दिया—'मैं गरीब आदमी हूं। किसी के यहां जाकर मज़दूरी करूंगा—और मेरे कपड़ों पर कीच इसलिए हैं कि मैं ठोकर खाकर गिर पड़ा था'—'यह तो सच नहीं कह रहा है तू, नौजवान,' उसने कहा, 'सड़क तो बिल्कुल सूखी है।'

"मेरा मुंह बंद हो गया।

"'मुझसे सब साफ़ साफ़ कह दो,' उस नेक आदमी ने कहा। 'तुम कौन हो? कहां से आ रहे हो? चेहरे से तुम भले आदमी मालूम होते हो। अगर तुमने सच सच कहा तो मैं तुम्हारी मदद करूंगा।'

"और मैंने उसे सब कुछ साफ़ साफ़ कह दिया। सुनकर वह बोला—'बहुत ठीक, मेरे नौजवान दोस्त। तुम मेरे रस्सी के कारखाने में चले चलो। मैं तुम्हें काम, कपड़ा-लत्ता, रुपया-पैसा सब कुछ दूंगा, और तुम मेरे साथ रहना भी।"

"और मैंने कहा—'बहुत अच्छा।'

"हम लोग रस्सी के कारखाने पहुंच गये और उस भले आदमी ने अपनी पत्नी से कहा—'देखो, यह एक नौजवान आदमी है जो अपने देश के लिए लड़ा है और जेल से भागकर आ रहा है। इसके पास न रहने को घर है, न पहनने को कपड़ा और न खाने को रोटी, कुछ भी नहीं है। यह मेरे साथ ही रहेगा। इसे कोई साफ़ जोड़ा कपड़े दो और खाना खिलाओ।'

"मैं डेढ़ साल रस्सी के कारखाने में रहा और मेरा मालिक मुझे इतना चाहने लगा कि जाने देने का नाम नहीं लेता था। उस वक्त मैं ख़ूबसूरत जवान था—हृष्ट-पुष्ट, लम्बा-तगड़ा और नीली आंखों और रोमन

नाक वाला। मेरे मालिक की पत्नी श्रीमती ले० (मैं उसका नाम नहीं लूंगा) जो नौजवान और ख़ूबसूरत औरत थी, मेरे ऊपर आशिक़ हो गयी।

"मुझे देखकर वह बोली—'हर माग्रोयर, तुम्हारी मां तुम्हें क्या कहकर पुकारती थी?' मैंने कहा—„Karlchen"

"तब वह बोली—„Karlchen! यहां आओ मेरी बगल में बैठो।'

"मैं उसकी बगल में बैठ गया और वह बोली—„Karlchen! मेरा बोसा लो।'

"मैंने उसे चूमा, और वह बोली—„Karlchen! मैं तुम्हें इतना चाहती हूं कि अब यह मेरे लिए असह्य हो उठा।' और उसके शरीर में कंपकंपी दौड़ गयी।"

यहां कार्ल इवानिच थोड़ी देर रुक गये, और अपनी नेक नीली पुतलियों को घुमाते और सिर हिलाते हुए मुस्कुराने लगे, जैसा कि कोई मीठी याद आने पर लोग करते हैं।

"हां," उन्होंने आराम कुर्सी में टिककर बैठते हुए और अपना ड्रेसिंग-गाउन समेटते हुए फिर कहना शुरू किया—"इस ज़िंदगी में मैंने बहुत कुछ देखा है—अच्छा भी और बुरा भी; लेकिन मालिक गवाह है," उन्होंने पलंग के ऊपर लटकती, कपड़े की बुनाई की ईसामसीह की तसवीर की ओर उंगली से इशारा करते हुए कहा, "कि कोई यह नहीं कह सकता कि कार्ल इवानिच नमक-हराम है। श्रीमान ले० ने मेरे साथ जो उपकार किया था उसका बदला मैं अपना और उसका मुंह काला करके नहीं दे सकता था, इसलिए मैंने उनके यहां से भाग जाने का फ़ैसला किया। रात होने पर, जब सभी सो गये, मैंने अपने मालिक के नाम एक ख़त लिखकर अपने कमरे की मेज़ पर रख दिया, अपने कपड़े और तीन थेलर लिये और चुपके से सड़क पर निकल आया। किसी ने मुझे नहीं देखा। मैं सड़क थामकर चल दिया।"

दसवां परिच्छेद

कहानी का शेष

"मेरी नौ साल से मां से भेंट नहीं हुई थी और मुझे मालूम न था कि वह जीती भी है या कब्र में जा चुकी है। मैं देश लौट आया। शहर पहुंचकर मैंने लोगों से पूछा कि गुस्ताव माग्रोयर जो काउंट सोम्मरव्लैट्ट का रैयत था, कहां गया। लोगों ने जवाब दिया—'काउंट सोम्मरव्लैट्ट की मौत हो चुकी है और गुस्ताव माग्रोयर बड़ी सड़क पर शराब की दूकान करता है।' मैंने अपनी नयी वास्कट, और बढ़िया कोट (जो मुझे कारखानेवाले ने दिया था) पहना, बालों को अच्छी तरह संवारा और बाप की शराब की दूकान पर आ पहुंचा। मेरी बहिन मैरिएकेन दूकान में बैठी हुई थी। उसने पूछा—'क्या चाहिए आपको?' मैंने कहा—'एक गिलास शराब चाहिए मुझको।' वह बोली—'पिताजी! एक युवक एक गिलास शराब मांग रहा है।' पिताजी ने कहा—'दे दो एक गिलास शराब।' मैं मेज के पास बैठ गया, शराब का गिलास खत्म किया, अपनी पाइप जलायी और बप्पा मैरिएकेन और जोहान को (उस समय वह भी दूकान में आ गया था) देखने लगा। बातचीत होने लगी तो बप्पा ने पूछा—'नौजवान, तुम्हें तो शायद मालूम होगा कि हम लोगों की फ़ौज इन दिनों में कहां है?' मैंने कहा—'मैं खुद फ़ौज से ही आ रहा हूं। वह इन दिनों वियना में है।' बप्पा बोले—'हमारा बेटा भी Soldat था, पर नौ साल से उसने खत नहीं लिखा है। हम लोग यह भी नहीं जानते कि वह ज़िंदा है या मर गया। मेरी पत्नी उसके लिए हमेशा रोती रहती है।' मैंने अपनी पाइप पर एक कश खींचा और कहा—'आपके बेटे का नाम क्या था, और वह कहां फ़ौजी था? हो सकता है कि मैं उसे जानता होऊं।'—'उसका नाम कार्ल माग्रोयर था और वह आस्ट्रियाई टुकड़ी में था,'

पिताजी ने कहा। 'वह तुम्हारी ही तरह लम्बा, खूबसूरत आदमी था,' बहिन मैरिएकेन बोली। 'मैं तुम्हारे कार्ल को जानता हूं,' मैंने कहा। „Amalia!"—sagte auf einmal mein Vater,* 'इधर आना, यहां एक नौजवान आया हुआ है जो हमारे कार्ल को जानता है।' और मेरी प्यारी अम्मा पीछेवाले दरवाज़े से अंदर आयी। मैंने उसे फ़ौरन पहचान लिया। 'तुम हमारे कार्ल को जानते हो?' वह बोली, मेरी ओर देखा और उसके चेहरे का रंग उड़ गया तथा कांपने लगी। 'हां, देखा है,' मैंने कहा, पर यह हिम्मत न हुई कि उससे आंखें चार करता। मेरा कलेजा बल्लियों उछल रहा था। 'मेरा कार्ल बच रहा है,' अम्मा बोली, 'हे भगवान, तुझे हज़ार धन्यवाद है। कहां है मेरा लाल? एक बार भी अगर उसे देख लूं तो शान्ति से मर सकूंगी। लेकिन भगवान की ऐसी मर्ज़ी नहीं।' और वह रोने लगी। अब मैं अधिक न बर्दाश्त कर सका। 'अम्मा, मैं ही तेरा कार्ल हूं,' मैंने कहा और मैंने उसे बाहों में भर लिया।"

कार्ल इवानिच ने आंखें बंद कर लीं। उनके ओंठ हिलने लगे।

„Mutter!—sagte ich,—ich bin ihr Sohn, ich bin ihr Karl! und sie stürzte mir in die Arme," उन्होंने अपने को संभालते और गालों पर बहती हुई आंसू की बड़ी बड़ी बूंदों को पोंछते हुए दुहराया।

"लेकिन भगवान की इच्छा न थी कि मैं जीवन के अंतिम दिन अपने मुल्क में बिताता। दुख भोगना ही मेरे भाग्य में लिखा था। das Unglück vervolgte mich überall!..** मैं केवल तीन महीने देश में रहा। एक एतवार को मैं एक कहवेखाने में बैठकर बियर खरीद रहा था, पाइप पी रहा था, और अपने दोस्तों के साथ राजनीति, बादशाह फ्रांज, नेपोलियन और युद्ध के विषय में चर्चा कर रहा था। हम सभी इन

---

*['अमेलिया!' पिताजी सहसा चिल्ला उठे]

**[दुर्भाग्य ने मेरा पीछा न छोड़ा!..]

विपयों पर अपनी अपनी राय प्रगट कर रहे थे। हम लोगों के पास ही भूरा लम्वा कोट पहने एक विचित्र-सा आदमी गुम-सुम वैठा कॉफ़ी पी रहा और पाइप के कश खींच रहा था। Er rauchte sein Pfeifchen und schwieg still. वाहर संतरी ने जव रात के दस वजने की हांक लगायी तो मैंने टोपी उठायी, पैसे चुकाये और घर चला गया। करीव आधी रात के किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। मैं जाग उठा और पूछा—'कौन है?' आवाज़ आयी—„Macht auf!“* मैंने कहा—'पहले वताओ तुम कौन हो, तव दरवाज़ा खोलूंगा। Ich sagte: „Sagt, wer ihr seid, und ich werde aufmachen.“—„Macht auf im Namen des Gesetzes!“** मैंने दरवाज़ा खोल दिया। वंदूक ताने दो सिपाही दरवाज़े पर खड़े थे और भूरे लवादे वाला अजनवी जो हम लोगों के साथ कहवेखाने में वैठा हुआ था अंदर घुसा। वह खुफ़िया पुलिस का आदमी था। Es war ein Spion!.. 'मेरे साथ चलो,' खुफ़िया पुलिसवाला वोला। 'वहुत अच्छा,' मैंने कहा। मैंने पतलून पहनी, पैरों में वूट डाले और पेटी चढ़ाकर कमरे में घूमने लगा। गुस्से से मैं कांप रहा था। मैंने मन में कहा—'यह दुष्ट आदमी है।' जव मैं दीवार के पास पहुंचा, जहां मेरी तलवार टंगी हुई थी, तो फ़ुर्ती से मैं उसे उतारकर वोला—'तुम खुफ़िया पुलिस के आदमी हो, संभलो! „Du bist ein Spion, vertheidige dich!“ मैंने तलवार का एक वार उसकी वायीं तरफ़, एक दाहिनी तरफ़ और तीसरा सिर पर किया। वह आदमी गिर पड़ा। मैंने फ़ुर्ती से अपना सूटकेस और मनीवैग लिया और खिड़की से वाहर कूद गया! Ich nahm meinen Mantelsack und Beutel und sprang zum Fenster hinaus! Ich kam nach Ems*** वहां मैंने जनरल साज़िन से जान-पहचान कर ली। वे मुझसे

* ['दरवाज़ा खोलो!]

** ['हम सरकारी काम से आये हैं दरवाज़ा खोल दो!']

*** [मैं एम्स चला गया।]

बड़े खुश हुए। उन्होंने राजदूत से कहकर मेरे लिए एक पासपोर्ट ले लिया और वे अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए रूस ले आये। जब जनरल साज़िन की मृत्यु हो गयी तो तुम्हारी अम्मा ने मुझे अपने यहां बुला लिया। उन्होंने कहा–'कार्ल इवानिच। मैं अपने बच्चों को तुम्हारे हाथों में सौंपती हूं। उन्हें प्यार करना और मैं तुम्हें कभी न हटाऊंगी। मैं ऐसा प्रबन्ध करूंगी कि तुम्हारा बुढ़ापा आराम से कट सके।' पर वह चली गयीं, और भूलनेवाले सब कुछ भूल गये। बीस साल की खिदमत के बाद अब मुझे सूखी रोटी के एक टुकड़े के लिए दर-दर की ठोकर खानी पड़ेगी। भगवान सब जानता है। सब देखता है। जब उसी की यह मर्ज़ी है तो इसमें किसी का क्या वश? मुझे केवल तुम लोगों के लिए अफ़सोस होता है, मेरे बच्चो।" कार्ल इवानिच की कहानी शेष हुई और उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपने पास खींचा और मेरा मस्तक चूम लिया।

ग्यारहवां परिच्छेद

कम नम्बर

मातम का एक वर्ष पूरा हो गया। नानी भी शोक के उस धक्के के बाद काफ़ी स्वस्थ हो चुकी थीं। उनके पास मेहमान लोग फिर कभी कभी पहुंचने लगे, विशेषकर बच्चे–हमारी अवस्था के लड़के और लड़कियां।

ल्यूबोच्का के जन्म दिवस पर, जो १३ दिसम्बर को पड़ा, प्रिन्सेस कोर्नाकोवा और उनकी बेटियां, वालाहिना और सोनेच्का, ईलेन्का ग्राप, और ईविन भाइयों में दो सब से छोटे थे, भोजन से पहले आये।

नीचे बैठकखाने से उनकी बातचीत, हंसी किलकारी और दौड़-धूप की आवाज़ें आ रही थीं पर हम लोग सवेरे का पाठ समाप्त किये बिना उनकी खेल-कूद में शरीक न हो सकते थे। पाठ-कक्ष में दीवार पर टंगे

कार्यक्रम में लिखा था—सोमवार: २ से ३ तक इतिहास और भूगोल के मास्टर। इन्हीं इतिहास के मास्टर की हम लोगों को प्रतीक्षा करनी पड़ रही थी। उनसे पढ़ना समाप्त कर और उन्हें नमस्कार कर लेने के वाद ही हम लोगों को छुट्टी मिल सकती थी। दो वजकर २० मिनट हो चुके थे पर मास्टर साहव का पता न था। मैं इस व्यग्रता के साथ सड़क पर दृष्टि गड़ाये हुए था कि वह आज न आयें।

"मैं समझता हूं लेवेदेव आज नहीं आयेंगे," वोलोद्या ने जो स्माराग्दोव की पुस्तक से अपना पाठ याद कर रहा था, सिर उठाकर कहा।

"मैं तो मना रहा हूं कि आज न आयें क्योंकि मुझे कुछ भी याद नहीं है। लेकिन, यह लो, आ ही गये वह," मैंने निराशा के स्वर में कहा।

वोलोद्या उठकर खिड़की के पास आया।

"नहीं, वह नहीं हैं। यह तो कोई और है।" उसने कहा। "हम लोग ढाई वजे तक इंतज़ार करेंगे।" उसने अपनी टांगें फैलाते और सिर खुजलाते हुए कहा (काम के वीच एकाव मिनट सुस्ताते समय वह यही किया करता था)। "अगर ढाई वजे तक नहीं आयेंगे तो हम लोग St.-Jérôme से कहेंगे कि हमें छुट्टी दे दीजिये।"

"आयेंगे ही क्यों वह?" मैंने भी टांगें पसारते और दोनों हाथों से काइदानोव की किताव को सिर के ऊपर भांजते हुए कहा। और कुछ काम न रहने के कारण मैंने किताव खोली और अपना पाठ निकालकर पढ़ने लगा। पाठ लम्वा और कड़ा था। मेरी समझ में उसका एक शव्द भी नहीं आ रहा था। मैंने महसूस किया कि वह याद होने से रहा, विशेषकर इस समय जव कि तवीयत झल्लायी हुई है और मस्तिष्क किसी विषय पर टिकने से इनकार कर रहा है।

इतिहास के हमारे पिछले पाठ के वाद (यह विषय मुझे सव से अधिक नीरस और मग़ज़ खपाने वाला मालूम होता था) लेवेदेव ने

St.-Jérôme से मेरी शिकायत की थी और मेरी कापी पर दो नम्बर दिये थे जो बहुत रद्दी नम्बर माना जाता था। St.-Jérôme ने मुझसे उसी समय कह दिया था कि अगले पाठ में यदि मुझे तीन से कम नम्बर मिले तो कड़ी सजा मिलेगी। अगला पाठ सामने था। मैं भय से कांप रहा था।

मैं उस कठिन सबक़ में इतना डूब गया था कि बग़लवाले कमरे में गैलोश* खोले जाने की आहट ने मुझे चौंका दिया। मैं पीछे घूमा ही था कि मास्टर का चेचकरू चेहरा, जिसे देखने मात्र से मैं घृणा से भर जाता था, और अध्यापकों की खास किस्म के बटन से कसे नीले कोट वाली आकृति देहरी में खड़ी दिखायी दी।

इतमीनान के साथ उन्होंने अपना हैट खिड़की पर और कापियां मेज पर रखीं, अपने कोट के पिछले भागों को सावधानी से अलग किया (मानो यह क्रिया अत्यन्त आवश्यक हो) और अपने स्थान को मुंह से फूंक मारकर झाड़ते हुए बैठ गये।

"हां तो, सज्जनो," एक स्वेदयुक्त हाथ को दूसरे से मलते हुए उन्होंने कहा—"सब से पहले हम लोग एक बार अंतिम पाठ को दुहरा जायें। उसके बाद मैं तुम्हें मध्य युग की आगे की घटनाओं के बारे में बताने की कोशिश करूंगा।"

दूसरे शब्दों में—पिछला पाठ सुनाओ।

वोलोद्या बड़ल्ले से पाठ सुनाने लगा, जो विषय की अच्छी जानकारी का सुफल है। इस बीच मैं यों ही टहलता हुआ सीढ़ियों की ओर चला गया। लेकिन चूंकि नीचे जाना मना था इसलिए स्वभावतः स्वतःचालित ढंग से मैं सीढ़ियों के बीच के चबूतरे पर पहुंच गया। वहां

---

*जूतों पर बर्फ़ आदि से बचने के लिए पहने जाने वाले एक प्रकार के अतिरिक्त जूते।—सं०

दासियों के कमरे के दरवाज़े के पीछे के अपने परिचित स्थान पर खड़ा होकर मैं अंदर झांकने ही वाला था कि मेरे समस्त दुर्भाग्यों की जड़ मीमी अनायास सामने से आ गयीं। "तुम यहां?" उन्होंने डरौनी निगाह से मेरी ओर, फिर दासियों के कमरे के दरवाज़े की ओर और अंत में फिर मेरी ओर देखते हुए कहा।

मैं अपने को दुहरा अपराधी महसूस कर रहा था, क्योंकि एक तो मैं पाठकक्ष से बाहर था और दूसरे, ऐसी जगह था जहां मेरे होने का कोई औचित्य न हो सकता था। इसलिए ज़बान बंद किये, घोर अपराधी की तरह मुंह लटकाये, खड़ा रहा। "यह तो बहुत ही बुरी बात है!" मीमी ने कहा, "तुम कर क्या रहे थे यहां?" मैं फिर भी चुप। "नहीं! यह नहीं चलेगा," उसने सीढ़ी की छड़ पर उल्टी उंगलियां ठोंककर कहा, "मैं काउंटेस से जाकर कहूंगी।"

जब मैं पाठकक्ष में पहुंचा तीन बजने में पांच मिनट बाकी थे। मास्टर वोलोद्या को आगे का पाठ यों बता रहे थे मानो मैं वहां मौजूद ही न हूं। पाठ समाप्त कर वह अपनी कापियां समेटने लगे। वोलोद्या दूसरे कमरे में अपने नम्बर की कापी लाने गया। मैंने यह समझकर संतोष की सांस ली कि पढ़ाई समाप्त हो चुकी है और मेरी बारी के विषय में मास्टर साहब भूल गये हैं।

पर सहसा मास्टर साहब एक कुटिल मुसकान के साथ मेरी ओर घूमे।

"कहिये, अपना पाठ तो याद किया है न आपने?" उन्होंने हाथों को रगड़ते हुए कहा।

"जी," मैंने कहा।

"अच्छा तो सेंट लुइस के जिहाद के बारे में क्या जानते हो?" उन्होंने अपने को कुर्सी के ऊपर संतुलित करते और विचारपूर्ण दृष्टि को अपने पांवों पर गड़ाकर कहा। "पहले यह बताओ कि फ़्रांस के बादशाह ने किन कारणों से क्रास का झण्डा ऊंचा किया था," उन्होंने भौंहों

को उठाते और उंगली दावात की ओर करते हुए कहा। "इसके बाद उनके जिहाद की विशेषताओं के बारे में बताओ।" इस बार उन्होंने अपनी कलाई इस तरह घुमायी मानो कोई चीज़ पकड़ने जा रहे हों। "और अंत में यह बताओ कि इस जिहाद का सामान्यत: योरप के राज्यों पर (यहां उन्होंने मेज़ के बायें भाग पर कापी ठकोरी) और विशेषत: फ़्रांस की बादशाहत पर क्या प्रभाव पड़ा।" मेज़ के दाहिने भाग को ठकोरते हुए और सिर दाहिनी ओर मोड़कर उन्होंने कहा।

मैंने कई बार थूक घोंटा, खांसा, सिर एक तरफ़ झुकाया, और चुप रहा। इसके बाद मेज़ पर पड़ी पंख की एक कलम को हाथ में लेकर उसके पंख नोचने लगा। किन्तु मौन कायम था।

"इधर कलम मुझे दो," मास्टर ने कहा, "पैसे लगे हैं इसमें। हां, बोलो।"

"लू...जी, नहीं बादशाह... सेंट लूईस नेक ... और... बुद्धिमान.. ज़ार... था।"

"क्या कहा?"

"बुद्धिमान ज़ार था। उसने यरुशलम जाने की ठान ली और राज-काज अपनी मां पर छोड़ दिया।"

"क्या नाम था उसका?"

"ब – ब – लान्का"

"क्या कहा, बुलान्का*?"

मैं अपने ओंठों पर ज़बर्दस्ती ही एक मुसकान ले आया।

"हां! और क्या जानते हो?

मेरे पास खोने को अब कुछ शेष न रहा था। इसलिए मैं खांसा, और अंटशंट जो भी जी में आया, बकने लगा। मास्टर साहब चुपचाप मेरे हाथ से ली हुई पंख की कलम से मेज़ से धूल के कण झाड़ते रहे

---

*हल्के लाल रंग का घोड़ा।—सं०

और सामने मेरे कानों के पीछे, किसी चीज़ को टकटकी बांधकर देखते हुए दुहरा रहे थे—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, साहबजादे!" मुझे बोध था कि मुझे कुछ याद-वाद नहीं, कि मुझे जो कहना चाहिए वह नहीं कह रहा हूं। सब से भयंकर बात यह थी कि मास्टर साहब मुझे न टोक रहे थे न मेरी भूल सुधारने की कोशिश कर रहे थे।

"यरुशलम जाने की उसने क्यों ठान ली?" मेरे ही शब्दों को दुहराते हुए उन्होंने कहा।

"चूंकि... इसलिए कि... बात यह थी कि... हुआ यह कि..." और मेरी गाड़ी रुक गयी। आगे एक शब्द न निकला। मुझे प्रतीत हुआ कि कुटिलप्रकृति वाला यह मास्टर यदि एक वर्ष भी यों ही मौन रहकर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से मुझे घूरता रहे तो भी मेरे मुंह से आगे शब्द न निकलेगा।

मास्टर तीन मिनट तक मुझे घूरते रहे। इसके बाद उनके चेहरे पर प्रकाण्ड दुख की मुद्रा प्रगटी और वोलोद्या से जिसने अभी अभी कमरे में प्रवेश किया था बड़ी संजीदा आवाज़ में बोले:

"ज़रा नम्बरों की कापी तो देना!"

वोलोद्या ने कापी दे दी और उसकी बगल में सावधानी से टिकट रख दिया।

मास्टर ने कापी खोली और दावात में सावधानी से कलम डुबाने के बाद वोलोद्या के परचे में पढ़ाई और आचरण के खाते में अपनी सुंदर लिखावट में लिखा—'५'। इसके बाद मेरे नाम के आगे के खाते के ऊपर कुछ देर कलम थामे रहे, फिर एक बार मेरी ओर देखा, स्याही झाड़ी और विचार में डूब गये।

सहसा उनके हाथ में हल्की-सी हरकत हुई जो मुश्किल से देखी जा सकती थी और कागज़ पर एक सुन्दर '१' उतर आया। फिर वैसी ही हरकत हुई और आचरण के खाते में भी एक '१' अंकित हो गया।

सावधानी से नम्बर की कापी बंद करते हुए मास्टर साहब उठे और यों दरवाज़े की ओर बढ़े मानो निराशा, अनुनय और भर्त्सना से भरी मेरी दृष्टि उन्होंने देखी न हो।

"मिख़ाईल इल्लारिओनोविच," मैंने कहा।

"नहीं," मैं क्या कहने जा रहा था, इसे फौरन ताड़ते हुए उन्होंने कहा, "पढ़ाई इस तरह नहीं होती। मैं मुफ़्त की तनख़ाह नहीं लेना चाहता।"

मास्टर साहब ने इतमीनान से अपने गैलोश पहने, ओवरकोट डाला, गले में गुलूबंद बांधा। मानो, हमारे ऊपर जो बीता था उसके बाद किसी और चीज़ का कोई महत्व रह जाता हो! उन्होंने तो ज़रा-सी कलम हिलायी थी, पर मेरे ऊपर आफ़त टूट पड़ी थी।

"पढ़ाई ख़तम हो गयी?" St.-Jérôme ने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा।

"हां।"

"मास्टर तुमसे ख़ुश थे?"

"जी," वोलोद्या बोला।

"कितने नम्बर मिले तुम्हें?"

"पांच।"

"और निकोलस को?"

मैं कुछ न बोला।

"शायद चार," वोलोद्या बोला।

वह जानता था कि कम से कम उस दिन मुझे बचाना बहुत ज़रूरी था अगर सज़ा मिलनी ही है तो कम से कम उस दिन जब कि घर में मेहमान आये हुए थे न मिले।

"अच्छा, महोदय, देखा जायगा," St.-Jérôme ने कहा। ('महोदय' अपनी हर बात की भूमिका में लगाना उनकी आदत थी।) "तैयार हो जाओ, अब हम नीचे चलेंगे।"

बारहवां परिच्छेद

छोटी-सी चाबी

नीचे पहुंचकर हम लोगों ने अपने मेहमानों के साथ दुआ-सलाम की ही थी कि भोजन के लिए चलने की सूचना मिली। पिताजी आज बड़ी उमंग में थे (जुए के खेल में इन दिनों उनका सितारा चमका हुआ था)। ल्यूबोच्का को उन्होंने एक खूबसूरत चांदी का सेट भेंट किया और भोजन करते समय उन्हें याद आया कि उनके कमरे में उसके लिए लाया हुआ मिठाई का एक सुंदर डिब्बा भी रखा है।

"नौकर भेजने की ज़रूरत क्या है? तुम्हीं चले जाओ, कोको," उन्होंने मुझसे कहा। "चाबियां बड़ी मेज़ पर रखी हुई हैं। तुम तो जानते ही हो। उन्हें निकाल लेना और सब से बड़ी चाबी से दाहिनी ओर की दूसरी दराज़ खोलना। उसी में डिब्बा रखा हुआ है और एक कागज़ में कुछ मिठाइयां भी हैं। सब यहीं लेते आओ।"

"और सिगार भी लेता आऊंगा आपकी?" मैंने कहा, क्योंकि मैं जानता था कि भोजन के बाद वह सिगार पिया करते थे।

"हां, ज़रूर। पर दूसरी कोई चीज़ न छूना।" उन्होंने पीछे से पुकारकर कहा।

चाबियां जहां उन्होंने बताया था रखी हुई थीं। उन्हें लेकर मैं दराज़ खोलने ही वाला था कि सहसा मेरे मन में यह जानने का कुतूहल उठा कि पास ही रखी छोटी-सी चाबी किस लिए है।

मेज़ पर रखी तरह तरह की चीज़ों के साथ, किनारे की ओर एक कसीदा किया हुआ हाथ का बैग रखा था जिसमें ताला लगा हुआ था। मैंने सोचा, देखूं, छोटी चाबी उस ताले की तो नहीं है? मेरा प्रयत्न पूर्णतया सफल हुआ, बैग खुल गया और उसके अंदर मैंने कागज़ों का एक पूरा पुलिंदा पाया। कुतूहल ने यह जानने को कि वे कागज़

कया थे, इतनी तीव्रता से प्रेरित किया कि अंतःकरण का स्वर डूब गया। मैं बैग के सामानों की तलाशी लेने लगा।

. . . .

बाल्यावस्था में मनुष्य बड़ों के प्रति अंध आस्था रखता है। मेरे अंदर यह भावना इतनी बलवती थी—विशेषकर पिताजी के प्रति—कि मेरे मस्तिष्क ने उन वस्तुओं से जो मैंने बैग में पायी थीं कोई निष्कर्ष निकालने से इंकार कर दिया। मुझे बोध था कि पिताजी की अपनी एक अलग दुनिया होगी—सुंदर, मेरे लिए अगम्य एवं और दुर्बोध। मुझे यह भी ज्ञान था कि उनके जीवन के रहस्यों को भेदने का मेरा प्रयत्न पवित्र क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश करना होगा।

अतः पिताजी के बैग में मैंने जिन वस्तुओं को देखा, उनकी मेरे ऊपर कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया न हुई। केवल यह अस्पष्ट-सा भाव रह गया कि मैंने ग़लत काम किया है। मैं लज्जित और संकुचित महसूस कर रहा था।

उक्त भावना ने मुझे जल्द से जल्द बैग बंदकर देने को प्रेरित किया, किन्तु वह अविस्मरणीय दिवस मेरा दुर्भाग्य-दिवस था जब मेरे ऊपर एक सिलसिले से मुसीबतों के पहाड़ टूट रहे थे। बैग के ताले में चाबी घुमाकर मैंने उसे ग़लत दिशा में ऐंठ दिया और यह समझकर कि ताला बंद हो गया है चाबी खींच ली। मेरे भय की सीमा न रही जब आधी चाबी अंदर रह गयी और सिरा अलग होकर मेरे हाथ में चला आया। दोनों भागों को जोड़ने के लिए मैं सिर पटककर रह गया—मैं शायद सोच रहा था कि जादू या मंत्र यह क्रिया सम्पन्न कर देगा, पर व्यर्थ। बाध्य होकर मैंने इस लोमहर्षक भावना को आत्मसमर्पण कर दिया कि मैंने एक और अपराध कर डाला है जिसका उसी दिन पिताजी के अपने अध्ययन-कक्ष में आने के साथ भण्डाफोड़ हो जायगा।

एक तो मीमी की शिकायत, दूसरे पढ़ाई में बुरे नम्बर और तीसरे; यह छोटी चाबी! मीमी की शिकायत पर—नानी, बुरे नम्बर के कारण—St.-Jèrôme और चाबी के लिए—पिताजी, तीनों मिलकर मुझे कच्चा चबा जायंगे, और वह भी आज ही शाम के पहले।

"ओह! क्या होगा मेरा? यह क्या कर डाला मैंने?" मैंने अध्ययन-कक्ष के मुलायम गलीचे पर टहलते हुए ऊंचे स्वर में कहा। फिर मिठाइयां और सिगार उठाते हुए मैंने कहा—"चलो, जो होना है वह हो के रहेगा," और बाहर निकल आया।

उपरोक्त उक्ति जो मैंने बचपन में निकोलाई से सुनी थी जीवन की हर संकटपूर्ण घड़ी में मेरी सहायता करती थी। उससे थोड़ी देर के लिए हृदय को ढाढ़स प्राप्त होता था। हॉल में प्रवेश करते समय किंचित उत्तेजित और अस्वाभाविक मनस्थिति में होते हुए भी मैं खुश खुश था।

तेरहवां परिच्छेद

बेवफ़ा

भोजन के बाद छोटे-मोटे खेल आरम्भ हुए और उसमें मैंने मस्त होकर हिस्सा लिया। 'नुक्कड़ में बिल्ली' नामक खेल खेलते समय मैं कोर्नाकोवा की अभिभाविका से जो हम लोगों के साथ ही खेल रही थी, टकरा गया और मेरे पैर से दबकर उसका घाघरा फट गया। अभिभाविका का मुंह बन गया और वह फटे भाग को सीने के लिए दासियों के कमरे में चली गयी। मैंने देखा कि सभी लड़कियों को और खासकर सोनेच्का को उसकी इस दुर्गति पर बड़ा आनंद प्राप्त हुआ था। अतः मैंने उनके हेतु इस आनंद की पुनरावृत्ति करने का निश्चय किया। इस नेक इरादे को लेकर अभिभाविका के लौटते ही मैं उसके चारों ओर कूदने लगा और तब तक कूदता रहा जब तक मुझे उसके घाघरे पर

एक बार फिर पैर रखने का अवसर न मिल गया। घाघरा दुबारा फट गया। सोनेच्का और शाहज़ादियां अपनी हंसी न रोक सकीं और उनकी हंसी से मेरी छाती और भी फूल उठी। किन्तु उसी समय वहां St.-Jérôme जो कहीं से मेरा यह खेल देख रहे थे, आ धमके और भौंहों पर बल डालकर बोले कि ऐसी शरारत उन्हें बिलकुल पसंद नहीं और यदि मैंने अपने को न संभाला तो उत्सव का दिन होते हुए भी मुझे इसका मज़ा चखना पड़ेगा।

किन्तु मेरी मानसिक उत्तेजना उस जुआड़ी जैसी थी जो अपना सब कुछ हार चुका है, जिसे हिसाब करने में भी डर लग रहा है और जो इस मनस्थिति में पहुंच गया है कि आशा हारकर भी केवल इसलिए दांव पर दांव लगाता चला जा रहा है कि मस्तिष्क वास्तविकता का सामना करने से बचा रहे। मैं उद्दण्डता से हंसता हुआ उनके पास से टल गया।

'नुक्कड़ में बिल्ली' खेल समाप्त होने पर हम लोगों ने नया खेल शुरू किया जिसे हम लोग 'लम्बी नाक' कहते थे। आमने-सामने दो कतारों में कुर्सियां रख दी गयीं और पुरुष और स्त्रियां दो दलों में बंटकर बारी बारी से अपना संगी चुनने लगे।

सबसे छोटी शाहज़ादी बारम्बार छोटे ईविन को ही चुनती थी। कातेन्का वोलोद्या या ईलेन्का को अपना साथी बनाती थी। सोनेच्का ने हर बार सेर्योजा को ही पसंद किया और मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब कि सेर्योजा ठीक उसके सामनेवाली सीट पर जा बैठा फिर भी वह तनिक न शर्मायी। वह अपनी मीठी खिलखिलाहट से भरी हंसी हंसती रही और सिर के इशारे से उसे बताया कि वह ठीक चुन गया। मुझे कोई न चुनता था और यह बोध कर कि मैं ही 'अतिरिक्त' अथवा 'बचा-खुचा' था मेरे आत्माभिमान को गहरा धक्का लगा। हर बार वे कहते थे—"कौन बचा? अच्छा, निकोलेंका। हां, तुम ले लो उसे।"

अतः जब मेरी बारी यह बूझने की आती थी कि, मुझे किसने चुना है तब मैं बेधड़क अपनी बहिन या उन कुरूप शाहज़ादियों में किसी एक के पास चला जाता था और, दुर्भाग्यवश, मेरा बूझना कभी ग़लत न निकलता था। सोनेच्का सेर्योजा ईविन में इतनी डूबी हुई थी कि उसके लिए मानो मेरा अस्तित्व ही न रहा हो। मुझे मालूम नहीं कि, किस आधार पर मैंने मन ही मन उसे बेवफ़ा का खिताब दे डाला, क्योंकि यह उसने कभी वादा न किया था कि मुझे ही चुनेगी, सेर्योजा को नहीं। किन्तु मुझे पक्का विश्वास था कि, उसने अत्यंत घृणित आचरण किया है।

खेल ख़त्म होने पर मैंने देखा कि बेवफ़ा, जिसे मैं घृणा करता था तथापि जिसपर से मेरी नज़र हट नहीं रही थी, कोने में सेर्योजा और कातेन्का के साथ कुछ फुसफुसा रही है। उनका रहस्य जानने के लिए मैं दबे पांव जाकर पियानो के पीछे छिप रहा। वहां से जो कुछ देखा वह यह है—कातेन्का एक किमरिखी रुमाल को सिरों से पकड़कर सोनेच्का और सेर्योजा के सिरों के बीच पर्दा-सा किये हुए थी। "नहीं, तुम बाज़ी हार गयी हो, अब तुम्हें दण्ड देना पड़ेगा!" सेर्योजा बोला। सोनेच्का अपराधिनी बनी उसके सामने खड़ी थी। उसके दोनों हाथ नीचे लटक रहे थे और वह लजाकर कह रही थी—"नहीं मैं हारी नहीं हूं। तुम्हीं बताना, कुमारी कैथरिन!" कातेन्का बोली—"मुझसे पूछती ही हो तो मैं लाग-लपेट नहीं कर सकती। तुम हार गयी हो।"

कातेन्का के मुंह से ये शब्द निकले ही थे कि सेर्योजा ने झुककर सोनेच्का के गुलाबी ओठों को चूम लिया। और सोनेच्का हंसने लगी मानो कुछ हुआ ही नहीं, मानो बड़ा मज़ेदार खेल खेला गया है। छिः! बेवफ़ा! छलिया!

चौदहवां परिच्छेद

ग्रहण

सहसा मुझे समूची नारी जाति के प्रति घृणा हो गयी, और सोनेच्का से तो खासकर। मैं यह कहकर अपने को ढाढ़स बंधाने लगा कि, इन खेलों में कुछ नहीं रखा है, ये तो लड़कियों के खेल हैं, और मेरी इच्छा होने लगी कि घर में जोर का एक हंगामा खड़ा कर दूं, कोई असाधारण साहस का ऐसा काम कर डालूं कि सभी अचरज में पड़ जायं। इसका मुझे तत्काल अवसर भी मिल गया।

मीमी से किसी चीज़ के बारे में थोड़ी बातचीत करने के बाद St.-Jérôme कमरे से बाहर चले गये। मैंने सीढ़ियों पर उनके पैरों की आहट सुनी और फिर कोठे पर पाठ-कक्ष की ओर जाने की धमक सुनाई पड़ी। मैं समझ गया कि मीमी ने उन्हें बता दिया है कि पढ़ाई के समय मैं कहां था और वह कापी में मेरे नम्बर देखने गये हैं। उस समय मेरी समझ में St.-Jérôme के जीवन का बस एक लक्ष्य था—किसी प्रकार मुझे दण्डित करना। मैंने कहीं पढ़ा था कि बारह से चौदह साल के बीच के बच्चों में, यानी वे जो किशोरावस्था के संक्रमणकाल में होते हैं अग्निकाण्ड रचाने और कभी कभी तो हत्याकाण्ड करने की विशेष प्रवृत्ति होती है। अपने किशोरावस्था के दिन और खासकर उस दिन की अपनी मानसिक स्थिति को याद करता हूं तो मुझे आसानी से समझ में आने लगता है कि किस प्रकार आदमी बिना उद्देश्य अथवा बिना हानि पहुंचाने की इच्छा के—मात्र कुतूहल, कुछ कर गुजरने की सहज वृत्ति से—भयंकर कुकृत्य कर सकता है। मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब भविष्य ऐसा विकट रूप धारण कर मनुष्य के सामने उपस्थित हो जाता है कि आदमी उसके ऊपर अपनी मानसिक दृष्टि डालने से भी भय खाता है, दिमाग को सोचने से बिलकुल रोके देता

है और अपने को यह कहकर फुसलाने की कोशिश करता है कि भविष्य कभी साकार न होगा और अतीत जैसे कभी था ही नहीं। ऐसे क्षणों में, जब कि बुद्धि संकल्प-शक्ति का प्रत्येक निर्णय पहले से आंकती नहीं और शरीर की वृत्तियां जीवन का एक मात्र प्रेरणास्रोत बन जाती हैं मैं समझ सकता हूं कि एक बालक महज़ अपनी अनुभवहीनता के कारण ऐसी मनस्थिति की ओर प्रवृत्त हो जाता है। ऐसे क्षण में वह अपने घर में जिसमें उसके परम प्रिय भाई-बहिन और माता-पिता सो रहे हैं बिना झिझक या आशंका के, चेहरे पर कुतूहल की मुसकान लिए, अपने हाथों आग लगा दे सकता है। इस क्षणिक विचारशून्यता, अथवा प्रायः मस्तिष्कशून्यता की स्थिति में सत्रह साल का किसान बालक उस बेंच की बग़ल में जिसपर उसका बूढ़ा बाप पेट के बल सो रहा है पड़ी हुई अभी अभी तेज़ की गयी कुल्हाड़ी की धार को देखता हुआ अनायास उसे बाप की गरदन पर चला देता है और जड़ कुतूहल के वशीभूत होकर सोनेवाले की गरदन के घाव से खून की धार का छूटना देखता रहता है। इसी विचारशून्यता और सहज कुतूहल के वशीभूत होकर आदमी खड़े पहाड़ की चोटी पर रुककर किंचित आनंद का अनुभव करता हुआ सोचता है—"नीचे कूद पड़ूं तो?" या भरी पिस्तौल ललाट से सटाकर मन में कहता है—"घोड़ा दबा दूं तो?" या समाज के किसी महामान्य व्यक्ति को देखते हुए सोचता है—"उसके पास जाकर, जो उसकी नाक पकड़कर कहूं—'चलो दोस्त चलें, तो?'"

मैं आंतरिक उत्तेजना और विचारशून्यता की इसी मानसिक स्थिति में था जब St.-Jérôme कोठे से नीचे उतरे और मुझसे बोले कि उस सांझ के आमोद-प्रमोद में भाग लेने का मुझे कोई अधिकार न था क्योंकि, मेरा आचरण बुरा रहा है और पढ़ने-लिखने में भी फ़िसड्डी रहा हूं। मैंने उन्हें मुंह चिढ़ाकर उसका उत्तर दिया और बोला—"मैं नहीं जाऊंगा।"

मेरे इस उत्तर से कुछ क्षणों के लिए तो आश्चर्य और क्रोध के कारण St.-Jérôme के मुंह से एक शब्द न निकला।

«C'est bien»,* गुस्से से मेरी ओर बढ़ते हुए उन्होंने कहा। "कई बार मैं तुम्हें सज़ा देने का वादा कर चुका हूं लेकिन तुम केवल अपनी नानी के कारण बचते रहे हो! अब मैं देखता हूं कि बेंत के बिना तुम्हें सुधारना असम्भव है। आज तुमने सारे काम बेंत खाने लायक किये हैं।"

यह बात उन्होंने इतने ज़ोर से कही थी की सभी ने सुन ली। मुझे लगा कि मेरी धमनियों का सारा रक्त अनायास दौड़कर हृदय-प्रदेश में पहुंच गया है। कलेजा इतने ज़ोर से धकधक करने लगा कि चेहरे का रंग जाता रहा। ओंठ आप से आप कांपने लगे। मेरा चेहरा उस समय अवश्य ही भयानक हो गया होगा क्योंकि St.-Jérôme मेरी आंख से आंख मिलाये बिना तेज़ी से मेरी ओर बढ़े और मेरा हाथ पकड़ लिया। लेकिन उनके हाथ का स्पर्श अनुभव करते ही मैंने क्रोधोन्मत्त होकर झटके से हाथ छुड़ा लिया और अपने बालक शरीर की पूरी शक्ति से उनके ऊपर प्रहार कर दिया।

"क्या हो गया है तुम्हें?" मेरे व्यवहार से स्तम्भित और भयभीत होकर वोलोद्या ने मेरे निकट आते हुए कहा।

"छोड़ दो मुझे," मैं चिल्लाया। मेरी आंखों से आंसुओं का तार बंध गया था। "कोई मुझे प्यार नहीं करता, न कोई मेरा दुख और तकलीफ़ समझता है। तुम सब के सब दुष्ट हो, बुरे आदमी हो।" अंतिम बात मैंने गुस्से से कांपते हुए सभी उपस्थित लोगों की ओर मुड़कर कही। लेकिन इसी बीच St.-Jérôme जिनका चेहरा पीला हो रहा था दृढ़ संकल्प के साथ मेरे पास आये और इसके पूर्व कि मैं अपना बचाव कर सकूं कसकर मेरा हाथ पकड़ लिया और ज़ोरदार झटके के साथ मुझे घसीट

* [अच्छा]

ले चले। गुस्से से मेरा सिर चक्कर खा रहा था। मुझे इतना ही याद है कि जितनी देर मुझमें शक्ति वाकी रही मैं सिर और घुटनों से मुकावला करता रहा। मुझे याद है कि मेरी नाक कई वार किसी के घुटनों से टकरायी, किसी के कोट का कोना मेरे मुंह में चला गया और मेरे चारों ओर किसी की टांगें थीं और इत्र की, जो St.-Jérôme लगाया करते थे, गंध नाक में घुस रही थी।

पांच मिनट के वाद मैं अटारीवाली कोठरी में वंद था। दरवाज़े की कुण्डी चढ़ाते हुए उसने घृणापूर्ण, विजयोन्मत्त स्वर में पुकारा— "वासीली! वेंत तो लाना..."

पंद्रहवां परिच्छेद

चिन्ताधारा

उस समय क्या मैं कल्पना भी कर सकता था कि अपने ऊपर पड़नेवाली उन तमाम मुसीवतों से गुज़रता हुआ वचा रह सकूंगा, कि ऐसा दिन भी आयेगा जव मैं शान्त-चित्त वैठकर उनकी याद ताज़ा करूंगा ?

जव मुझे अपनी सारी करनी याद आयी तो मैं यह सोच भी न सकता था कि मेरा क्या होगा, पर एक धुंधला पूर्वाभास था कि अव मुझे कोई न वचा सकेगा।

आरम्भ में तो मुझे अपने चारों ओर तथा अटारी के नीचे नीरवता का अखण्ड साम्राज्य फैला हुआ जान पड़ा। या, सम्भव है कि आन्तरिक उत्तेजना से अभिभूत होने के कारण मुझे ऐसा लग रहा था। पर धीरे धीरे ध्वनियां स्पष्ट होने लगीं। वासीली कोठे पर आया और खिड़की की सिल पर कोई चीज़ जो सम्भवतः झाड़ू था, फेंककर संदूक पर छाती के वल लेट गया और जंभाई लेने

लगा। नीचे से St.-Jérôme के ज़ोर ज़ोर से बोलने की आवाज़ आयी (वह शायद मेरे ही विषय में बोल रहे थे)। फिर बच्चों की आवाज़ें, हंसी और उनका दौड़ना। और चंद मिनटों में घर का सारा काम अपनी पूर्व गति से होने लगा मानों अटारी की कोठरी में बंद मेरी हालत का किसी को पता न था, या पता था तो परवाह न थी।

मैं रोया नहीं। पर मेरी छाती के ऊपर चट्टान जैसा कोई भारी बोझ सवार था। मेरी विश्रिंखल कल्पना के पट पर विचार और छायाएं नाच रही थीं। किन्तु अपनी दुर्भाग्यावस्था की स्मृति बार बार आकर उन्हें भगा देती थी और मैं अनिश्चय की भूलभुलैया में फिर भटक जाता—यह अनिश्चय कि मेरा क्या होनेवाला है। आतंक और निराशा मुझे दबोच लेती।

सहसा मुझे ख्याल आया कि मेरे प्रति सभी लोगों की अरुचि, यहां तक कि घृणा, का कोई न कोई कारण अवश्य होगा। (उस समय यह मेरा दृढ़ विश्वास था कि नानी से लेकर कोचवान फ़िलिप तक, सभी मुझसे घृणा करते हैं और मेरी दुर्गति से उनका कलेजा ठंडा होता है)। हो सकता है कि मैं अपने मां-बाप की सन्तान और वोलोद्या का भाई नहीं बल्कि कोई दुखिया अनाथ अथवा जन्म के समय मां द्वारा परित्यक्त अज्ञात पिता का पुत्र हूं जिसे इस परिवारवालों ने दया वश पाला-पोसा है। इस बेसिरपैर की भावना ने न केवल मुझे एक प्रकार की विषादपूर्ण सांत्वना प्रदान की, बल्कि उस समय यह मुझे बहुत सम्भाव्य ज्ञात हुई। इस धारणा से कि मैं अपनी करनी के कारण दुर्भाग्य का शिकार नहीं हूं वरन् इसलिए कि दुर्भाग्य मेरा जन्मजात साथी है, कि मेरी और कार्ल इवानिच की अवस्था में एक साम्य है, मुझे आनंद प्राप्त हुआ।

"लेकिन जब इस भेद का मुझे पता चल ही गया तो फिर इसे छिपाने से लाभ?" मैंने मन में कहा। "कल ही मैं पिता के पास जाकर

कहूंगा—'आप मेरे जन्म का भेद व्यर्थ ही मुझसे छिपा रहे हैं, मुझे सब कुछ मालूम हो गया है।' और वह जवाब देंगे—'खैर, तुम्हें बात मालूम ही हो गयी तो क्या करना; मालूम तो होनी ही थी किसी न किसी दिन। तुम मेरे अपने बेटे नहीं हो। मैंने तुम्हें गोद लिया है और यदि तुम मेरे लाड़-प्यार के योग्य सिद्ध हुए तो तुम्हें अपने से कभी अलग न करूंगा।' फिर मैं उनसे कहूंगा—'पिताजी! यद्यपि मुझे आपको यह कहकर पुकारने का अधिकार नहीं है और ऐसा मैं अंतिम बार कर रहा हूं। मैंने आपको हृदय से प्यार किया है और सदा हृदय से प्यार करता रहूंगा। मैं आपका उपकार कभी नहीं भूल सकता, पर अब आपके घर मेरा रहना नहीं हो सकता। यहां कोई नहीं जिसे मेरा ख्याल हो और St.-Jérôme ने तो मुझे बरबाद करने की ही ठान रखी है। अब या तो वह इस घर में रहेगा या मैं, क्योंकि मैं नहीं कह सकता कि कब क्या कर बैठूंगा। मैं उससे इतनी घृणा करता हूं कि कुछ भी कर डालने को तैयार हूं! मैं किसी दिन उसे मार डालूंगा'—जी, मैं सच कहता हूं—'पिताजी मैं किसी दिन उसका खून कर डालूंगा।' पिताजी मुझे समझाने और शान्त करने की कोशिश करेंगे, पर मैं उनसे दो-टूक कह दूंगा—'यह नहीं हो सकता, मेरे दोस्त, मुझे पालकर बड़ा करनेवाले, अब हम एक साथ नहीं रह सकते। अब आपको मुझे जाने ही देना होगा।' और तब मैं उनके गले से लगकर फ़्रांसीसी में कहूंगा—«Oh mon père, oh mon bienfaiteur, donne moi pour la dernière fois ta bénédiction et que la volonté de Dieu soit faite!»* और अटारी की अंधेरी कोठरी में बक्स के ऊपर बैठा हुआ मैं इस विचार के बाद फूटफूटकर रोने लगा। इसके बाद ही सहसा उस शर्मनाक सज़ा की याद आ गयी जो मुझे मिलनेवाली थी। वास्तविकता नग्न रूप में सामने आ खड़ी हुई। सारे सपने हवा हो गये।

---

* [ओ, मेरे पिता, मेरे सच्चे हितैषी, विदा करते हुए मुझे अंतिम आशीर्वाद दो,—प्रभु हमारा साथ दें]

इसके बाद मैंने कल्पना की कि मैं मुक्त हो चुका हूं और घर से दूर, बहुत दूर, पहुंचा हुआ हूं। मैं घुड़सवार सेना में भरती होकर लाम पर चला गया हूं। दुश्मन चारों ओर से मुझे घेरते चले आ रहे हैं। मैं अपनी तलवार भांजता हुआ उन्हें काटता जा रहा हूं—एक, दो, और फिर तीसरा। अंत में खून बहने और थकावट से चूर होकर मैं जमीन पर गिर पड़ता हूं और चिल्लाता हूं—"जिंदाबाद!" फ़ौज के जनरल आते हैं और पूछते हैं—"कहां गया आज हम सबों की रक्षा करनेवाला सूरमा?" लोग इशारे से मुझे दिखाते हैं और वह आकर मेरे गले से लिपट जाते हैं और खुशी के आंसू बहाते हुए चिल्ला उठते हैं—"जिंदाबाद!" धीरे धीरे मेरे घाव भर जाते हैं और अपने हाथ को पट्टी में लटकाये मैं त्वेर्स्कोई के बौलिवार्ड पर टहलने निकलता हूं। मैं अब जनरल हूं! मेरी बादशाह से मुलाक़ात होती है। वह पूछते हैं—"कौन है यह घायल नौजवान?" लोग उन्हें बतलाते हैं, यही मशहूर निकोलाई है जिसने युद्ध में नाम किया था। बादशाह मेरे पास आकर कहते हैं—"मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं। तुम जो चाहो मांग सकते हो।" मैं अदब से झुककर उन्हें सलाम करता हूं और तलवार के सहारे खड़ा होकर कहता हूं—"ऐ बादशाह, मुझे गर्व है कि अपनी मातृभूमि के लिए मेरा रक्त बहा। मैं उसके लिए अपनी जान तक देने को तैयार हूं। तो भी जब आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो मेरी केवल एक इच्छा पूरी कीजिये। मुझे अनुमति प्रदान कीजिये कि मैं अपने शत्रु, इस विदेशी, St.-Jérôme का खातमा कर दूं।" मैं भयावह मुद्रा में St.-Jérôme की ओर बढ़ता हूं और कड़ककर कहता हूं—"होशियार! तूने मेरे साथ बड़ी बुराई की है, à genoux!»* पर हठात् याद आ गयी कि असल St.-Jérôme किसी भी क्षण बेंत लेकर आ धमकेगा, और मैं अपने को मातृभूमि का उद्धारक सेनानायक नहीं वरन् एक दयनीय, रोते हुए जीव के रूप में पाऊंगा।

* [बैठ जा घुटनों के बल!]

मेरे मन में भगवान का ख्याल आ जाता है और मैं उससे धृष्टतापूर्वक पूछता हूं, तू क्यों मुझे दण्ड दे रहा है? "मैं सुबह-शाम नियम से तेरी प्रार्थना करता हूं, फिर तू क्यों सता रहा है मुझे?" मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि धर्म के प्रति मेरी शंकाएं जो किशोरावस्था में मुझे सताया करती थीं उनकी ओर मेरे पहले क़दम उसी समय उठे थे। ऐसी बात नहीं कि मुसीबत के कारण मुझमें शिकायत और शंका का भाव उठा था। वस्तुतः विधाता के अन्याय का विचार जो आध्यात्मिक विश्रिंखलता और सारे दिन के एकान्तवास की उस अवधि में मेरे मन में उदय हुआ था वर्षा से तत्काल भीगी धरती पर पड़नेवाली किसी निकृष्ट बीज की तरह जड़ पकड़ गया। इसके बाद मैंने कल्पना की कि मेरी मृत्यु होनेवाली है और मृत्यु हो जाने के बाद कोठरी खोलने पर मेरे स्थान पर एक निर्जीव शरीर पड़ा पाकर St.-Jérôme की क्या हालत होती है। मुझे नाताल्या साविश्ना की कहानी याद आयी कि आदमी की आत्मा मरने के बाद चालीस दिन तक घर ही पर मंडलाया करती है। मैंने कल्पना की कि मैं अदृश्य रूप में नानी के घर के सभी कमरों में घूमता हुआ ल्यूबोच्का के सच्चे आंसू, नानी का शोक और पिताजी का St.-Jérôme के साथ वार्तालाप होता देख रहा हूं। "बडा अच्छा लड़का था," पिताजी जिनकी आंखों में आंसू भरे हुए हैं, कहते हैं। "हां," St.-Jérôme उत्तर देता है, "पर बहुत शरारती था।"—"मृतात्मा के प्रति तुम्हें आदर भाव रखना चाहिए," पिताजी कहते हैं। "तुम्हीं तो उसकी मृत्यु के कारण हो। तुम्हीं ने उसे डरा दिया था। तू उसे जो अपमानजनक दण्ड देना चाहता था, उसे वह सहन न कर सका। निकल जा मेरे यहां से, दुष्ट कहीं का।"

और St.-Jérôme घुटने टेककर रोते हैं और उनसे माफ़ी मांगते हैं। चालीस दिन समाप्त होने पर मैं उड़कर स्वर्ग पहुंच जाता हूं। वहां मुझे एक विलक्षण सुंदर, श्वेत, पारदर्शी, लम्बी छाया दिखती है और

मैं समझ जाता हूं कि यह अम्मा हैं। और वह श्वेत छाया मुझे घेरकर प्यार करती है, पर मैं बेचैनी महसूस करता हूं मानों मैंने उसे पहचाना ही नहीं है। मैं उससे कहता हूं–"यदि वास्तव में तुम मेरी मां हो तो और खुलकर सामने आओ ताकि मैं तुम्हारी गोद से चिमट सकूं।" और उसका स्वर उत्तर देता है–"यहां सभी इसी रूप में रहते हैं। इससे अधिक मैं तुम्हें नहीं चिमटा सकती। इससे क्या तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो रहा है?" –"अवश्य प्राप्त हो रहा है, पर तुम गुदगुदा क्यों नहीं रही हो मुझे? और मैं तुम्हारे हाथों को चूम क्यों नहीं सकता?"– "इसकी यहां आवश्यकता नहीं। यहां जो कुछ जैसा है, वैसे ही शुभ और सुंदर है," वह कहती है। मुझे भी बोध होता है कि वास्तव में सब कुछ अत्यंत सुंदर है और हम साथ साथ हवा में ऊंचे–और ऊंचे–उड़ जाते हैं। हठात् मैं फिर जाग पड़ा और अपने को अंधेरी कोठरी में बक्स के ऊपर बैठा पाया। मेरे गाल आंसुओं से गीले थे, मस्तिष्क शून्य। केवल "हम साथ हवा में ऊंचे और ऊंचे उड़ रहे हैं"– ये शब्द कानों में गूंज रहे थे। बड़ी देर तक अपनी सारी शक्ति केंद्रित कर मैं परिस्थिति की व्याख्या करने का प्रयत्न करता रहा। किन्तु मेरा मस्तिष्क एक असीम और निःशेष फैलाव पर जिसे पार करना असम्भव था और जिसकी नीरव निर्जनता से दिल बैठा जाता था, आकर रुक जाता था। मैंने चाहा कि स्वर्ग की सैर के सुखद स्वप्न जिनमें वास्तविकता की प्रतीति ने विघ्न डाल दिया था, फिर आ जायं। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने पाया कि पुराने सपनों के देश में अग्रसर होने के मेरे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हो रहे हैं। सबसे अधिक अचरज यह था कि अब उनमें मुझे पहले-सा आनन्द नहीं प्राप्त हो रहा था।

सोलहवां परिच्छेद

पीसे सो खाये

मेरी रात अटारी की अंधेरी कोठरी में वीती। कोई मेरे पास न फटका। अगले दिन सवेरे, अर्थात् रविवार को में पाठकक्ष की वग़ल के एक कमरे में ले जाकर वंद कर दिया गया। मैं आशा करने लगा कि मुझे दिया जानेवाला दण्ड इस कारावास तक ही सीमित रहेगा। मीठी, ताज़ा नींद, खिड़की के शीशे पर पाले से वने घरौंदों पर पड़नेवाली सूर्य की किरणों, और वाहरी चहल-पहल की अंदर आती ध्वनियों ने मेरे मस्तिष्क को शांत और आश्वस्त किया। किन्तु एकाकीपन वड़ा कष्टप्रद था। मैं चाहता था कि घूमूं-फिरूं, किसी से अपनी आत्मा की अनुभूतियों का वयान करूं। किन्तु मेरे पास कोई चिड़िया तक न फड़क रही थी। मेरी स्थिति इस वात से और भी अधिक क्लेशजनक हो रही थी कि मैं St.-Jérôme को कमरे में टहलता हुआ आनन्द से गीत की धुनें गुनगुनाता सुन रहा था। मैं चाहता था कि मेरे कानों में वह घृणोत्पादक ध्वनि न पहुंचे। पर लाचार था। मुझे इसमें रंच-मात्र संदेह न था कि वह केवल मुझे यंत्रणा देने के लिए गीत गुनगुना रहा है।

दो वजे St.-Jérôme और वोलोद्या नीचे चले गये और निकोलाई मेरे लिए भोजन लेकर आया। जव मैंने उससे पूछा कि मेरा अपराध क्या है और मुझे क्या दण्ड मिलनेवाला है तो उसने जवाव दिया–"छि:! चिन्तित मत हो, पीसे विना भी कभी भोजन मिला है?.."

इस उक्ति ने जिसने वाद में कई वार मेरी आंतरिक दृढ़ता क़ायम रखने में सहायता पहुंचायी, मुझे थोड़ी सांत्वना प्रदान की। पर मैं सोचने लगा कि भोजन के लिए केवल सूखी रोटी और पानी न भेजकर पूरा भोजन भेजना, जिसमें अच्छी अच्छी मिठाइयां भी सम्मिलित हैं,

यह निर्देश करता है कि कोठरी में वंद रहना ही मेरी सज़ा न होगी। असली सज़ा कुछ और होगी जो आगे आनेवाली है। अभी तो मुझे केवल इसलिए वंद कर दिया गया है कि दूसरे लड़के मेरी कुसंगत से वच सकें। मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था कि ताला खोलने की आहट आयी और St.-Jérôme ने अधिकारियों जैसी औपचारिक, कठोर मुद्रा के साथ कमरे में प्रवेश किया।

मेरी ओर देखे विना, उन्होंने कहा—"नीचे चलो तुम्हारी नानी तुम्हें वुला रही है।"

वाहर निकलने से पहले मैंने अपनी क़मीज़ का कफ़ जिसमें खड़िये का दाग़ लगा हुआ था साफ़ कर लेना चाहा, पर St.-Jérôme ने कहा कि उसकी आवश्यकता नहीं, जिसका अर्थ यह हुआ कि मेरा इतना अध:पतन हो चुका है कि वाहरी सफ़ाई करना या न करना मेरे लिए समान है।

St.-Jérôme मेरा हाथ पकड़े हुए हाल में आये तो कातेन्का, ल्यूबोच्का और वोलोद्या मुझे इस तरह देखने लगे जैसे हम लोग हर सोमवार को खिड़की से क़ैदियों का ले जाया जाना देखा करते थे। और जब मैं नानी का हाथ चूमने के लिए उनकी कुर्सी की ओर वढ़ा तो उन्होंने मुंह फेरकर हाथ अपनी ओढ़नी में छिपा लिया।

वहुत देर चुप रहने के वाद (इस मौन के वीच उन्होंने मुझे सिर से पैर तक इस ढंग से देखा कि मुझे समझ ही में न आया कि किस ओर ताकूं या अपने हाथों को क्या करूं), वह वोलीं—"तुम्हें मेरे प्यार की वहुत क़द्र है न? मैं तो समझती हूं कि तुम मेरे लिए सच्ची सांत्वना हो।" इसके वाद, प्रत्येक शब्द पर रुकते हुए वोलीं—"St.-Jérôme महाशय जिन्होंने मेरे अनुरोध से तुम लोगों को शिक्षित करने का काम हाथ में लिया था अब मेरे घर एक दिन भी ठहरना नहीं चाहते। और क्यों? केवल तुम्हारे कारण! मैंने तो समझा था कि वह तुम लोगों

की देखरेख करते हैं, तुम्हारे लिए इतनी मेहनत करते हैं तुम लोग उनका उपकार मानोगे," उनका बोलना जारी रहा, और ऐसे स्वर में जिससे प्रगट था कि उन्होंने अपना भाषण पहले से तैयार कर रखा है,—"और तुम उनकी सेवा का मूल्य पाओगे। पर तुमने एक छोटा-सा बालक होकर उनके ऊपर हाथ उठाने की हिम्मत की। शाबाश है, तुम्हें। मुझे भी ऐसा लगने लगा है कि तुम उदारता के व्यवहार के योग्य नहीं हो, कि तुम्हारे लिए दूसरे ही तरीक़े, अनगढ़ तरीक़े ही बरतने चाहिएं। अभी माफ़ी मांगो उनसे," उन्होंने St.-Jérôme की ओर संकेत करते हुए आज्ञा के कर्कश स्वर में कहा। "अभी! सुन रहे हो न?"

मैंने उधर देखा जिधर नानी इशारा कर रही थीं और St.-Jérôme के कोट पर दृष्टि पड़ने के साथ मुंह फेर लिया तथा अपने स्थान पर खड़ा रहा। मेरा कलेजा फिर सर्द होने लगा।

"क्यों? सुना नहीं तुमने? क्या कह रही हूं मैं!"

मैं सिर से पैर तक कांप उठा पर अपनी जगह से हिला नहीं।

"कोको!" नानी, जिन्होंने मेरी आंतरिक यातना शायद देख ली थी, बोलीं। "कोको!" उनके स्वर में आज्ञा की जगह स्नेह था—"मैं तुम्हीं से कह रही हूं!"

"नानी! कुछ भी हो जाय पर उनसे माफ़ी नहीं मांग सकता," मैंने कहा और हठात् चुप हो गया क्योंकि मेरी आंखों में उमड़ती आंसुओं की धारा एक भी शब्द आगे कहने के साथ फूट पड़ती।

"पर मैं कह रही हूं तुम्हें। आज्ञा दे रही हूं। अब।"

"मैं... मैं... नहीं मांगूंगा... नहीं मांग सकता," मैंने हांफकर कहा। और रुके हुए आंसू एकबारगी झझककर फूट पड़े।

«C'est ainsi que vous obéissez à votre seconde mère, c'est ainsi que

vous reconnaissez ses bontés»,* St.-Jérôme ने करुण स्वर में कहा। «à genoux!» **

"हे भगवान! अगर कहीं उसने यह देखा होता," नानी ने मेरी ओर से मुंह फेरते हुए और अपने आंसू पोंछते हुए कहा। "अगर उसने देखा होता—तू जो करता है अच्छा ही करता है। वह होती तो कभी यह बर्दाश्त न कर पाती, कभी नहीं।"

और नानी रोने लगी और उनका रोना और भी तेज़ होने लगा। मैं भी रोया, पर माफ़ी मांगने का मेरा इरादा न था।

«Tranquillisez-vous au nom du ciel, M-me la comtesse», *** St.-Jérôme ने कहा।

पर नानी ने ध्यान न दिया। दोनों हाथों से अपना चेहरा ढक लिया और उनकी सिसकियां हिचकियों और छाती पीटने में परिवर्तित हो गयीं। मीमी और गाशा घबरायी हुई सी दौड़कर कमरे में आयीं और उन्हें मूर्च्छा की दवा सुंघाने लगीं फिर घर में दौड़धूप और फुसफुसाहट की ध्वनियां व्याप्त हो गयीं।

"देख लो। यह सब तुम्हारे लिए कितनी गर्व की बात है।" St.-Jèrôme ने मुझे कोठे पर ले जाते हुए कहा।

"हे भगवान! यह क्या कर डाला मैंने? मेरे जैसा दुष्ट बालक नहीं मिल सकता।"

St.-Jérôme मुझे अपने कमरे में जाकर बैठने को कहकर नानी के पास वापस जाने को गये ही थे कि मैं बिना जाने या समझे कि क्या कर रहा हूं, सड़क पर निकलनेवाली बड़ी सीढ़ी की ओर दौड़ा।

---

* [जो तुम्हारी मां के स्थान पर हैं, उनकी आज्ञा का यही मोल है तुम्हारे लिए? यही बदला तुम उपकार का दोगे?]

** [बैठ जा घुटनों के बल]

*** [भगवान के लिए, शांत होइये। अपने को संभालिये]

मुझे याद नहीं कि मैं घर से भागना चाहता था या कहीं जाकर डूब मरना, याद है तो इतना ही कि हाथों से मुंह को ढके ताकि किसी को देख न सकूं मैं सीढ़ियों से सीधे नीचे भागा।

"कहां जा रहे हो?" हठात् एक परिचित स्वर सुनायी पड़ा। "मैं तुम्हीं को तो ढूंढ़ रहा हूं।"

मैंने बग़ल से निकल जाना चाहा, पर पिताजी ने मेरा हाथ पकड़ लिया और कठोर स्वर में बोले।

"मेहरबानी कर ज़रा मेरे साथ तो आइये। मेरे कमरे में मेरा बैग क्यों छूआ था आपने!" पकड़कर अपने छोटे बैठने के कमरे में ले जाते हुए उन्होंने मुझसे पूछा। "बोलो! बोलते क्यों नहीं," मेरे दोनों कान पकड़ते हुए उन्होंने कहा।

"क्षमा कीजिये," मैंने कहा, "मुझे नहीं मालूम कि मुझे क्या हो गया था।"

"अच्छा! आपको नहीं मालूम कि क्या हो गया था आपको! नहीं मालूम? नहीं मालूम? सच, नहीं मालूम?" उन्होंने हर शब्द के साथ मेरे कान ऐंठते हुए कहा। "फिर कभी बेमतलब की बातों में नाक घुसेड़ोगे? बोलो—फिर कभी? फिर कभी?"

मेरे कान बुरी तरह दुख रहे थे। पर मैं रोया नहीं और इससे मुझे जो नैतिक अनुभूति हुई, वह सुखद थी। पिताजी ने ज्यों ही मेरा कान छोड़ा, मैंने उनका हाथ पकड़ लिया और उसे आंसुओं और चुम्बनों से ढक दिया।

"और मारिये मुझे," मैंने रोते हुए कहा। "मारिये, ज़ोर से मारिये कि चोट लगे। मैं दुष्ट हूं, अभागा हूं।"

"क्या हुआ है तुम्हें आज?" उन्होंने मुझे हल्के से धकेलते हुए कहा।

"नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊंगा," मैंने उनके कोट से चिमटकर कहा। "सभी मुझसे घृणा करते हैं। मैं जानता हूं इसे। लेकिन भगवान के लिए, मेरी बात सुन लीजिये, मेरी रक्षा कीजिये या घर से निकाल दीजिये। मैं उनके साथ अब नहीं रह सकता, वे हर पग पर मुझे अपमानित करते हैं। वे चाहते हैं कि मैं उनके तलवे चाटूं। वे मुझे बेंत लगाना चाहते हैं। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। नन्हा बच्चा नहीं हूं। मुझसे अब नहीं सहा जाता, मैं मर जाऊंगा। मैं अपने हाथों अपनी जान ले लूंगा। उन्होंने नानी से जाकर कह दिया कि, मैं दुष्ट हूं और नानी की तबीयत खराब हो गयी। अब वह मेरे कारण मरने को हो रही हैं। मैं... भगवान के लिए कोड़ों से मेरी पीठ की खाल उधेड़ डालिये! सभी मिलकर मुझे क्यों सता रहे हैं?"

हिचकियों से मेरा दम घुट रहा था। मैं सोफ़े पर बैठ गया और सिर उनकी जांघों पर रखकर यों झझकने लगा मानो मेरे प्राण निकल जायेंगे।

"तू रो क्यों रहा है, बेटा?" पिता ने मेरे ऊपर झुकते हुए स्नेहसिक्त स्वर में कहा।

"वे ज़ालिम हैं, मुझे सताते हैं। मैं मर जाऊंगा। मुझे कोई प्यार नहीं करता।" इसके बाद कंठ रुंध गया और सिसकियों से सारा शरीर कांपने लगा।

पिता ने मुझे गोद में उठा लिया और सोने के कमरे में ले गये। मैं सो गया। जब मेरी नींद टूटी, काफ़ी देर हो चुकी थी। मेरी चारपाई के पास केवल एक मोमबत्ती जल रही थी। कमरे में हमारे पारिवारिक डाक्टर, मीमी, और ल्यूबोच्का बैठे हुए थे। उनके चेहरों से स्पष्ट था कि वे मुझे बहुत अधिक बीमार समझ रहे हैं। पर बारह घंटे की नींद के बाद मैं इतना ताज़ा और हल्का महसूस कर रहा था कि यदि उनके भ्रम को तोड़ने की अनिच्छा न होती तो कूदकर चारपाई से नीचे उतर आता।

सत्रहवां परिच्छेद

घृणा

हां, वह वास्तविक घृणा थी—वह घृणा नहीं जिसका उपन्यासों में वर्णन किया जाता है और जिसमें मुझे विश्वास नहीं, वह घृणा जो कुकृत्यों द्वारा संतोष प्राप्त करती है। यह वह घृणा थी जो किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति जो यों आपके आदर पाने का पात्र है आपके हृदय में अदम्य अप्रीति भर देती है, जो उसके केश, उसकी गर्दन, उसकी चाल, उसका स्वर, उसका हर अवयव, हर चेष्टा आपके लिए घृणोत्पादक बना देती है और साथ ही किसी दुर्बोध शक्ति द्वारा आपको अपनी ओर आकृष्ट भी करती है और उसके प्रत्येक कार्य पर व्यग्रतापूर्ण दृष्टि रखने को बाध्य करती है। St.-Jérôme के प्रति मैं इसी भावना का अनुभव कर रहा था।

St.-Jérôme को हमारे यहां आये हुए डेढ़ साल हो चुका था। आज जब कि ठण्डे दिल से उस आदमी को आंकता हूं तो पाता हूं कि वे एक श्रेष्ठ फ़्रांसीसी थे, किन्तु आद्यंत फ़्रांसीसी। वे मूर्ख न थे, पढ़े-लिखे भी अच्छे खासे थे, और हम लोगों के प्रति अपने कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करते, किन्तु उनके अंदर एक फ़्रांसीसी के सभी लाक्षणिक गुण वर्तमान थे, वे गुण जो रूसी चरित्र के इतने विपरीत होते हैं—आस्थाहीन आत्मपरता, अहंकार, उद्दण्डता और अज्ञानतामूलक आत्म-निश्चय। ये सभी मेरे लिए अत्यंत अरुचिकर थे।

नानी शारीरिक दण्ड के सम्बन्ध में अपने विचार उन्हें बता चुकी थीं। अतएव हमें बेंत से पीटने का उन्हें साहस न था। तो भी वे हम लोगों को, और विशेषकर मुझे निरंतर पीटने की धमकी देते रहते।

फ़्रांसीसी शब्द fouetter (बेंत लगाना) का वे fouatter उच्चारण करते और ऐसे लहजे के साथ करते जिससे पता चलता था कि बेंत

से मेरी चमड़ी उधेड़ने का अवसर पाकर उन्हें अत्यधिक संतोष प्राप्त होगा।

दण्ड की पीड़ा का मुझे कभी भय न लगता था, उसका मुझे अनुभव न था, किन्तु इस विचार मात्र से कि St.-Jérôme मेरे ऊपर हाथ उठायेंगे मैं आंतरिक क्रोध और बेबसी से कांप उठता था।

बहुधा ऐसा हुआ कि कार्ल इवानिच खीझ के क्षणिक आवेग में हम लोगों पर रूलर या अपनी पेटी चला बैठते थे। पर उसकी याद से मुझे रंच मात्र क्षोभ न होता। जब की मैं बात लिख रहा हूं उस समय भी (उस समय मेरी अवस्था १४ वर्ष की थी) यदि कार्ल इवानिच मुझे मार बैठे होते तो मैं पूर्ण शांति के साथ सह लेता। मैं कार्ल इवानिच को प्यार करता था। जब से होश संभाला था तभी से उन्हें देखता आ रहा था और परिवार का अंग समझने का अभ्यस्त हो गया था। किन्तु St.-Jérôme शान में चूर रहनेवाले अहंकारी व्यक्ति थे जिनके प्रति मेरा एकमात्र भाव उस स्वतःस्फूर्त आदर का था जो हर वयस्क व्यक्ति मेरे अंदर प्रेरित किया करता था। कार्ल इवानिच एक हास्यस्पद बूढ़े थे—एक प्रकार के घर के नौकर जिन्हें मैं दिल से प्यार करता, और साथ ही सामाजिक स्थिति की अपनी बालकोचित्त धारणा में अपने से निम्न स्तर पर भी रखता।

इसके विपरीत, St.-Jérôme देखने-सुनने में अच्छे, शिक्षित तरुण छैला थे—सभी के साथ समानता के स्तर पर रहने का प्रयत्न करनेवाले।

कार्ल इवानिच हमें डांटते या दण्ड देते थे तो निर्लिप्तता के साथ। प्रगट था कि वह इसे आवश्यक किन्तु कष्टदायक कर्तव्य समझते थे। इसके विपरीत, St.-Jérôme अपने गुरु के पद का रोब-ग़ालिब करने की कोशिश करते थे। वह जब हमें सज़ा देते थे तो यह स्पष्ट प्रगट होता था कि ऐसा वे हमारी भलाई से अधिक अपने संतोष के निमित्त कर रहे

हैं। वह अपने वड़प्पन के अभिमान में फूले रहते थे। वे फ़ांसीसी भाषा के भारी-भरकम शब्द अंतिम शब्दांश पर ज़ोर देते हुए, accent circonflex के तरीक़े से प्रयोग करते थे जिससे मैं जलभुन जाया करता था। कार्ल इवानिच क्रोध में आने पर हम लोगों को 'कठपुतलों का तमाशा', 'शरारती', या 'स्पेनी मक्खी' कहा करते थे। St.-Jérôme हमें mauvais sujet, vilain, garnement * आदि गालियां देते जिससे मेरे आत्मसम्मान को चोट लगती थी।

कार्ल इवानिच हमें घुटनों के वल कोने में खड़ा करा देते। इससे हमारे शरीर को जो कष्ट होता, उतनी ही हमारी सज़ा होती। पर St.-Jérôme छाती फुलाकर, शान से हाथ पटकते हुए गरजते तथा नाटकीय स्वर में कहते – « à genoux, mauvais sujet ! » ** और हमें सिर नीचा करके, अपने सामने झुकने का हुक्म देते। दण्ड इस अपमान में था।

मुझे सज़ा नहीं मिली और किसी ने उस घटना का कभी ज़िक्र न किया, तो भी उन दो दिनों की वेदनामय अनुभूति – वह निराशा, लज्जा, आतंक और घृणा, कभी नहीं भुलाई जा सकती थी। उस दिन से St.-Jérôme ने मुझे लाइलाज क़रार दिया। अव वे मेरी फ़िक्र न करते थे। पर मैं अव भी उनके प्रति उपेक्षा नहीं कर पाया। आंखें चार होने पर मुझे यह स्पष्ट वोध होता कि मेरी दृष्टि में वहुत स्पष्ट शत्रुता है और मैं झट उदासीनता की मुद्रा वना लेता। पर मुझे ऐसा प्रतीत होता कि, वे मेरे ढोंगी वाने को खूव ताड़ रहे हैं। इस विचार से लज्जित हो मैं मुंह फेर लेता था।

दो शब्दों में इतना ही कहूंगा कि उनसे सम्पर्क मात्र मेरे मन को घृणा से भर देता था। मैं वर्णन नहीं कर सकता उस घृणा की तीव्रता का।

---

* [वदमाश, दुष्ट]

** [वैठ जा घुटनों के वल, वदमाश!]

अठारहवां परिच्छेद

दासियों का कमरा

मैं अधिकाधिक सूनापन अनुभव करने लगा और एकान्त चिन्तन एवं निरीक्षण मेरे मनोरंजन के प्रधान सम्बल बन गये। अपने चिन्तन के विषय के बारे में मैं आगे के किसी परिच्छेद में लिखूंगा, पर मेरे निरीक्षण का प्रधान स्थल दासियों का कमरा था जहां उन दिनों एक प्रेम कहानी चल रही थी जिसने मुझे अत्यंत आकृष्ट और रोमांचित किया था। इस कहानी की नायिका माशा थी। वह वासीली से, जिससे यहां नौकर होने से पहले ही से उसका परिचय था और जिसने उससे विवाह करने का वचन दिया था, प्रेम करती थी। किन्तु प्रारब्ध, जो पांच साल पहले उन्हें विलग करने के बाद नानी के घर में फिर एक जगह लायी थी, उनके बीच निकोलाई (माशा के चाचा) के रूप में विघ्न बनकर खड़ी थी। निकोलाई वासीली को 'बोंबाबसन्त' और 'दुराचारी' कहा करता था। वह उसके साथ माशा के विवाह का नाम भी सुनने को तैयार न था।

इस विघ्न का परिणाम यह हुआ कि वासीली जो अब तक स्थिर चित्त और उदासीन रहा था, माशा के प्रति ऐसे आवेगमय अनुराग का शिकार हो गया जैसा अनुराग गुलाबी कमीज़ पहनने और बालों में पोमेड लगाने वाला एक भू-दास दर्ज़ी ही कर सकता था।

उसका प्रेम प्रदर्शन बड़ा ही विचित्र और बेतुका हुआ करता था। (उदाहरणार्थ, माशा से मिलने पर वह सदा उसे पीड़ा पहुंचाने का प्रयत्न करता था – कभी उसे चिकोटी काट लेता, कभी तमाचा जड़ देता, और कभी इतने ज़ोर से चिमटा लेता कि वह सांस भी न ले सकती)। यह इसी बात से सिद्ध हो जाता था कि जिस दिन निकोलाई ने उसके साथ अपनी भतीजी का ब्याह करने से इनकार कर दिया, उसी दिन से वह शोक के मारे शराब पीने लगा। वह शराबख़ानों में जाकर दंगा-फ़साद

और उपद्रव मचाने लगा। संक्षेप में यही कहेंगे कि उसका आचरण इतना लज्जाजनक हो गया कि कई वार उसे पुलिसवालों के हाथों अपमानपूर्ण दण्ड का भागी होना पड़ा। किन्तु इस आचरण और उसके परिणामों ने माशा की दृष्टि में उसे और सुयोग्य वना दिया। उसका प्रेम और तीव्र हो गया। जिन दिनों वासीली हाजत में था, उन दिनों माशा लगातार विसूरती रही, उसके आंसू न सूखे। वह गाशा को (जो इस दुखियारे जोड़े के प्रेम में वहुत दिलचस्पी लेती थी) रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाती थी। चाचा की डांट और मार की परवाह न कर वह अपने प्रेमी को सांत्वना देने चुपके से थाने भी जा पहुंची।

प्यारे पाठक, जिस समाज का मैं आपको परिचय दे रहा हूं, उसके प्रति तिरस्कार भाव न रखिए। यदि आपकी आत्मा के अंदर प्रेम और सहानुभूति के तार ढीले नहीं पड़ गये हैं, तो उन्हें झंकृत करने वाली ध्वनियां आपको दासियों की कोठरियों में भी मिलेंगी। आपको मेरे पीछे आना रुचे या न रुचे, पर मैं आपको सीढ़ियों पर ले चलूंगा जहां खड़े होकर मैं दासियों के कमरे में जो कुछ होता था, उसे देख सकता था। उसमें एक वेंच रखी हुई है जिसपर इस्तिरी का लोहा, टूटी नाक वाली कूट की गुड़िया, हाथ-मुंह धोने का छोटा वर्तन और कपड़े धोने की नांद है। खिड़की की पटिया पर एक टुकड़ा काला मोम, एक रेशमी लच्छा, एक आधी खायी हुई हरी ककड़ी और एक मिठाई का वक्स विखरे पड़े हैं। उसमें एक वड़ी लाल मेज़ भी है जिसपर कसीदाकारी का काम कर रही कोई दासी वीच ही में छींट में लपेटी एक ईंट से ढंककर उठ गयी है। उसके पीछे मुझे अत्यंत प्रिय लगने वाली गुलावी लिनन की पोशाक पहने और नीला रूमाल वांधे 'वह' वैठी है जो मेरा मन विशेप रूप से आकृप्ट करती है। वह कुछ सी रही है और वीच वीच में सूई से अपना सिर खुजलाती या मोमवत्ती का गुल काटती है। मैं टकटकी लगाये उसे देख रहा और सोचता हूं—"ऐ नीली, चमकीली आंखों, सुनहले केशों के विशाल

जूड़े और पीन पयोधरों वाली, तू कुलीन महिला क्यों न हुई? बैठकखाने में गुलाबी झालर वाली टोपी पहनकर बैठने पर—मीमी जैसी टोपी नहीं, वरन् वैसी जैसी उस दिन मैंने त्वेर्स्कोई बोलेवार्ड में देखी थी—कितनी फबती वह! उसी तरह बैठी वह फ्रेम पर कसीदाकारी करती रहे और मैं आईने में उसका रूप निहारा करूं। वह जो भी कहे मैं करूं—अपने हाथों उसका लबादा और भोजन लाकर दूं।"

और ज़रा उस पियक्कड़ों जैसी सूरत और घृणोत्पादक ढांचे वाले वासीली को तो देखिए। तंग कोट जिसके नीचे से गंदी गुलाबी कमीज़ झांक रही है, पहने खड़ा है। उसके बदन की हर हरकत, उसकी पीठ की हड्डी की हर शिकन मुझे उस गंदी सज़ा के चिन्ह मालूम होते हैं, जो वह भोगकर आया है।

"अरे, वास्या! फिर आ गये तुम," सूई को गद्दे में खोंसते हुए किन्तु अभ्यर्थना के लिए सिर उठाये बिना, माशा बोल उठी।

"हां, आ तो गया हूं! लेकिन तुम्हारा भला क्या बनेगा मेरे आने से?" वासीली ने तड़ाक उत्तर दिया। "अब तो वही इसे किसी प्रकार तय कर दे तो हो! पर मेरी तो कोशिशें बेकार हो चुकी हैं, और सब 'उसके' चलते।"

"चाय पियोगे?" एक अन्य दासी, नादेज्दा ने पूछा।

"बहुत-बहुत शुक्रिया... और तुम्हारा यह डकैत चाचा मुझसे इतनी घृणा क्यों करता है? क्यों? इसलिए कि मेरे पास अपने कपड़े हैं, कि मुझमें अभिमान है, कि मेरा चलने का खास ढंग है। पर मारो गोली इन सब को!" वासीली ने हाथ भांजते हुए कहा।

"मनुष्य को आज्ञाकारी होना चाहिए," माशा ने दांत से तागे को तोड़ते हुए कहा। "पर तुम हो कि .."

"मुझसे अब सहा नहीं जाता, इसी लिए!"

उसी समय नानी के कमरे के दरवाज़े के धमाके के साथ बंद होने की आवाज़ आयी। गाशा भुनभुनाते हुए सीढ़ियों पर आ रही थी।

"अब उन्हें कोई ख़ुश रखे तो कैसे जब उन्हें ख़ुद नहीं पता कि क्या चाहती हैं। हम लोगों का जीवन भी एक शाप है—मेहनत करते-करते थककर चूर हो जाइए। मेरा तो मन करता है—पर हे भगवान! माफ़ करना," वह हाथों को ऊपर करते हुए भुनभुनायी।

"अभिवादन, आगाफ्या मिखाइलोवना," वासीली ने उसकी अभ्यर्थना में उठते हुए कहा।

"भाग यहां से! मुझे नहीं चाहिए तेरा अभिवादन।" उसने कठोरतापूर्वक उसे घूरते हुए कहा। "और तू यहां आता ही क्यों है? दासियों का कमरा मर्दों के आने के लिए नहीं है।"

"मैं तुम्हारा कुशल-समाचार लेने आया था, वासीली ने सहमे स्वर में कहा।

"मुझे शीघ्र ही मौत उठा ले जाने वाली है—यही मेरा कुशल-समाचार है।" आगाफ्या मिखाइलोवना और भी क्रोध से, गला फाड़कर चिल्लायी।

वासीली हंसने लगा।

"हंसता क्यों है। और तुझे तो यहां से निकल जाने को कह दिया है मैंने। देख लो सूरत इसकी! ब्याह करेंगे उससे—जी हां! मुंह क्यों नहीं देख लेता अपना शीशे में? कह दिया न—निकल जा यहां से!"

यह कहते हुए आगाफ्या मिखाइलोवना पैर पटकती हुई अपने कमरे में चली गयी और उसका दरवाज़ा इतने ज़ोर से भिड़ाया कि खिड़कियां खड़खड़ा उठीं।

काफ़ी देर तक परदे की दीवार के पार से उसकी आवाज़ आ रही थी। वह समूची दुनिया और अपनी ज़िंदगी को कोस रही थी, सामान इधर से उधर फेंक रही थी और अपनी पालतू बिल्ली के कान ऐंठ रही

थी। इसके वाद दरवाज़े में ज़रा-सी फांक हुई और करुणाजनक स्वर में चीखती विल्ली दुम के सहारे वाहर लोका दी गयी।

"लगता है चाय पीने के वास्ते किसी और समय आना ही ठीक होगा," वासीली फुसफुसाकर वोला। "फिर आयेंगे जव कोई अच्छा अवसर हो।"

"छोड़ो भी," नादेज्दा ने कनखी मारकर कहा, "मैं जाकर समोवार देख आती हूं।"

"मैं तो अव यह किस्सा खत्म ही कर डालना चाहता हूं," नादेज्दा के वाहर जाते ही वासीली ने माशा के पास वैठते हुए कहा। "या तो मैं सीवा काउन्टेस के पास जाकर साफ़ साफ़ सारा हाल कह दूंगा, या—या कहीं भाग जाऊंगा। चला जाऊंगा दुनिया के उस छोर पर। भगवान कसम!"

"और अकेले कैसे रहूंगी मैं?"

"तुम्हारे ही लिए तो मुझे अफ़सोस होने लगता है। तुम न होतीं तो मैं तो कभी का इस दरवे से उड़ चुका होता। भगवान की कसम खाकर कहता हूं।"

"अपनी कमीज़ साफ़ करने के लिए मुझे क्यों नहीं दे दिया करते?" माशा थोड़ी देर चुप रहकर वोली। "देखो तो, कितनी मैली हो गयी है," उसने कमीज़ का कॉलर हाथ में लेते हुए कहा।

उसी क्षण नीचे से नानी की हल्की घंटी की आवाज़ सुनायी पड़ी और गाशा अपने कमरे से वाहर निकली।

"अव क्या करने आया है तू इसके पास? वदमाश कहीं का!" उसने वासीली को, जो उसे देखते ही फुर्ती से उठ खड़ा हुआ था, दरवाज़े की ओर ठेलते हुए कहा। "तूने ही तो उसकी यह हालत कर दी है और अव भी पीछा नहीं छोड़ रहा है। तुझे उसे रोता देखना अच्छा लगता है, वेशर्म, हैवान कहीं का! निकल जा यहां से! चला जा मेरी आंखों के

सामने से! श्रौर तुझे भी भला इस मर्दूद में क्या दिखाई पड़ा था," वह माशा की ओर मुड़कर बोली। "आज ही न तेरे चाचा ने इसके कारण तुझे पीटा है? लेकिन तू है कि अपनी ज़िद के आगे किसी की नहीं सुनती; तुझे तो बस 'मैं वासीली गुस्कोव को छोड़ किसी से व्याह नहीं करूंगी' की धुन सवार है! मूर्ख कहीं की!"

"मैं तो अब भी वही कहूंगी। लोग मुझे मारते मारते मार भी डालें तो किसी और को प्यार न करूंगी," माशा सहसा चिल्लायी और रो पड़ी।

मैं बड़ी देर तक माशा को टकटकी लगाये देखता रहा। वह बक्स के ऊपर पड़ी हुई थी और रूमाल से अपने आंसू पोंछ रही थी। मैंने वासीली के प्रति अपनी राय बदलने की पूरी कोशिश की, उस दृष्टिकोण का पता पाना चाहा जिससे वह माशा को ऐसा मनमोहक ज्ञात होता था। पर माशा की हृदय-व्यथा के प्रति हार्दिक सहानुभूति रखने के बाद भी मुझे समझ में न आ सका कि, माशा जैसी सुन्दरी (जैसा कि वह मेरी आंखों में लगती थी) क्योंकर वासीली को प्यार कर सकती है।

ऊपर अपने कमरे में जाते हुए मैं मन में सोचने लगा—"जब मैं बड़ा होऊंगा, तब पेत्रोव्स्कोये मेरा हो जायगा और माशा तथा वासीली मेरे भू-दास होंगे। मैं अध्ययनकक्ष में पाइप पीता हुआ बैठा रहूंगा। माशा इस्तिरी का लोहा लेकर रसोई घर की ओर जायगी। मैं कहूंगा—'माशा को मेरे पास भेजो।' वह आयेगी। कमरे में अकेले। हठात्, वासीली भी प्रवेश करेगा और माशा को देखकर कहेगा—'मैं अब कहीं का न रहा।' और माशा रो पड़ेगी। उस समय मैं कहूंगा—'वासीली, मुझे मालूम है कि तुम उसे प्यार करते हो और वह तुम्हारे ऊपर जान देती है। यह लो एक हज़ार रूबल। जाओ उसके साथ व्याह करो। भगवान तुम्हें सुखी करें।' यह कहते हुए मैं बैठकखाने में चला जाऊंगा।"

मनुष्य के मानस एवं कल्पनापटल पर अनगिनत बीते हुए विचार

और भावनाएं कौंवकर आती हैं और विना कोई छाप छोड़े चली जाती हैं। पर इनमें कुछ ऐसी होती हैं जो ऐसी गहरी संवेदनशील लकीर डाल जाती हैं कि उनका विषय न याद रहने पर भी इतना याद रहता है कि वे सुखद थीं। आप उस भावना का असर महसूस करते हैं और उसे फिर प्रत्यक्ष करना चाहते हैं। वासीली के साथ विवाह होने से माशा द्वारा प्राप्त किये जाने वाले सुख के हेतु अपनी भावना की वलि देने के विचार ने ऐसी ही गहरी लकीर मेरी आत्मा में डाली।

उन्नीसवां परिच्छेद

किशोरावस्था

सम्भवतः लोग मेरा विश्वास न करेंगे जब मैं उन्हें बताऊंगा कि किशोरावस्था में मेरे विचार के प्रिय और सबसे अधिक घटित होने वाले विषय क्या थे। कारण कि मेरी उम्र तथा स्थिति से उनका कोई मेल नहीं। किन्तु मेरी राय में मनुष्य की स्थिति और उसके नैतिक कार्यकलाप की विषमता सचाई का सबसे पुष्ट प्रमाण है।

उस वर्ष के दौरान जिसमें मैंने अपने में ही सिमटा, एकाकी नैतिक जीवन व्यतीत किया, मेरे सामने मानव का अदृष्ट, उसका भविष्यत् जीवन तथा आत्मा के अमरत्व सम्बन्धी सारे छाया-प्रश्न उपस्थित हुए। और मेरे दुर्वल, वाल्य मस्तिष्क ने अनुभवहीनता-जनित सम्पूर्ण उत्साह के साथ इन प्रश्नों का, जिनका निरूपण मात्र ही मनुष्य द्वारा प्राप्य मानसिक विकास की चरम सीमा है और जिनका हल पाना उसके भाग्य में नहीं लिखा है, हल निकालने की कोशिश की।

मुझे ऐसा लगता है कि, वुद्धि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर विकास का वही मार्ग तय करती है जो सम्पूर्ण जाति में, कि वे विचार जो विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों की नींव का काम करते हैं मस्तिष्क के अभिन्न गुण हैं

और प्रत्येक मनुष्य को इन दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करने से पहले ही अधिक या थोड़ी स्पष्टता के साथ उनका भान होता है।

ये विचार मेरे मस्तिष्क में इतनी स्पष्टता और ऐसे असाधारण प्रकाश में उपस्थित हुए कि यह सोचते हुए कि मैं ही इन महान और उपयोगी सत्यों का प्रथम अन्वेषक हूं, मैंने उन्हें जीवन पर लागू करने का प्रयत्न भी कर डाला।

एक वार मेरे मन में यह विचार उदय हुआ कि सुख वाह्य अवस्थाओं पर नहीं, वरन् इस वात पर निर्भर करता है कि उसके प्रति हमारा रुख क्या है, कि कष्ट झेलने का अभ्यस्त मनुष्य दुखी नहीं हो सकता। अपने को श्रम का अभ्यस्त वनाने के लिए मैं पांच मिनट तक तातिश्चेव की डिक्शनरी वांहों को तानकर उठाये रहा, यद्यपि इतनी ही देर में मेरी वांह फटने-फटने हो गयी। दूसरी वार मैंने अटारी पर जाकर अपनी नंगी पीठ के ऊपर रस्सी से इतने ज़ोर ज़ोर से कोड़े लगाये कि आंखों में आंसू आ गये।

एक वार सहसा यह सोचकर कि मृत्यु किसी घड़ी, किसी क्षण मेरी जीवन लीला समाप्त कर सकती है, मैंने यह अचरज करते हुए कि लोग आज तक यह रहस्य क्यों नहीं समझ सके थे, निश्चय किया कि मनुष्य केवल वर्तमान का प्रयोग कर और भविष्य के वारे में न सोचकर ही सुख प्राप्त कर सकता है। इस विचार की प्रेरणा से मैं तीन दिनों तक पढ़ने-लिखने की ओर से ध्यान हटाकर विस्तर में पड़ा उपन्यास पढ़ता रहा। और खाने के लिए केवल जिंजरव्रेड* और शहद खाया जिससे मेरे पास जो पैसे थे सभी हाथ से निकल गये।

एक अन्य अवसर पर जवकि मैं व्लैकवोर्ड के सामने खड़ा होकर खड़िया से विभिन्न चित्र वना रहा था, सहसा मेरे मन में विचार आया—सुडौल आकार हमारी आंखों को क्यों भाता है? सुडौलपन है क्या वस्तु?

---

* एक प्रकार का केक।—सं०

यह एक अन्तर्प्रभूत भावना है, मैंने उत्तर दिया। पर उसका आधार क्या है? क्या जीवन की हर वस्तु में सुडौलपन है? इसके विपरीत यह देखिए जीवन को। और मैंने एक अण्डाकार आकृति बनायी। मृत्यु के पश्चात आत्मा अनंत में समा जाती है। और अण्डाकार आकृति की एक तरफ़ से मैंने एक रेखा खींची जो तख्ते के सिरे तक चली गयी थी। किन्तु दूसरी तरफ़ ऐसी रेखा क्यों नहीं है? और वस्तुतः इस बात को सोचिए कि वह अनंत कैसा जिसके केवल एक ही किनारा है? कारण यह है कि इस जीवन के पूर्व भी निश्चित रूप से हमारा अस्तित्व रहा है, यद्यपि उसकी स्मृति हमने खो दी है।

यह तर्क, जो मुझे अत्यंत मौलिक और स्पष्ट लगा और जिसका सूत्र आज मैं कठिनाई से पकड़ पाता हूं, मुझे अत्यंत सुखद ज्ञात हुआ और उसे लिख डालने के विचार से मैंने कागज़ का एक टुकड़ा उठा लिया। किन्तु लिख डालने की प्रक्रिया में विचारों का ऐसा हुजूम दिमाग़ में आया कि मैं मजबूर हो उठकर कमरे में टहलने लगा। जब मैं खिड़की के पास गया, मेरी दृष्टि पानी ढोने वाले घोड़े पर पड़ी जिसे साईस जोत रहा था, और मेरा सारा ध्यान इस प्रश्न को हल करने में केंद्रित हो गया—मुक्त होने पर इस घोड़े की आत्मा किस जानवर अथवा मनुष्य में प्रवेश करेगी? उसी समय वोलोद्या कमरे से गुज़रा। मुझे किसी विचार में उलझा देखकर वह मुसकुराया। वह मुसकुराहट मुझे यह स्पष्ट बोध कराने को पर्याप्त थी कि अभी तक मैं जो कुछ सोच रहा था, सब अनर्गल और महा मूर्खतापूर्ण था।

मैंने पाठकों को अपने लिए स्मरणीय यह घटना केवल इसलिए सुनायी है कि वे मेरे विचारों की प्रकृति समझ सकें। किन्तु समस्त दार्शनिक विचार-प्रवृत्तियों में शंकावाद ने मुझे जितना मोहा, उतना किसी ने नहीं। उसने तो एक बार मुझे पागलपन की सीमावर्ती मानसिक स्थिति में ला दिया। मेरी यह धारणा हो गयी कि समस्त विश्व में मेरे अतिरिक्त किसी

वस्तु या प्राणी का अस्तित्व नहीं है, कि वस्तुएं वस्तु नहीं वरन् प्रतिविम्ब मात्र हैं जो तभी प्रगट होती हैं जब मैं उनकी ओर अपना ध्यान फेरता हूं। जहां उनके विषय में सोचना बंद किया, वहां ये प्रतिविम्ब अंतर्ध्यान हुए।

दो शब्दों में, मैं शेलिंग के इस मत के साथ सहमत हुआ कि वस्तुओं का नहीं, वरन् उनके साथ मेरे सम्बन्ध का अस्तित्व है। ऐसे क्षण आये जब इस सुनिश्चित धारणा के प्रभाव में मैं विक्षिप्तता की ऐसी अवस्था में पहुंच गया था कि शून्यता को, जहां मैं न था वहां पकड़ने के लिए सहसा पीछे घूम जाता।

कैसा दयनीय, नैतिक सक्रियता का कैसा सारहीन उद्गम है मानव मस्तिष्क!

मेरा दुर्बल मस्तिष्क अभेद्य को भेद न सका। किन्तु इस परिश्रम में, जो मेरे बूते से बाहर था, मैं एक एक कर अपने सभी विश्वासों को, जिन्हें अपने जीवन सुख के हेतु मुझे कदापि हाथ न लगाना चाहिए था, खोता चला गया।

इस सारे कठिन नतिक परिश्रम से मुझे प्राप्त हुई केवल मस्तिष्क की एक सूक्ष्मता जिसने मेरी इच्छाशक्ति को दुर्बल कर दिया और मिली निरंतर नैतिक विश्लेषण में रत रहने की एक आदत जिसने भावना के ताज़ेपन तथा समीक्षाशक्ति की स्पष्टता को नष्ट कर दिया।

अमूर्त विचार किसी विशेष क्षण में अपनी आत्मा की अवस्था को समझ सकने और उसे अपनी स्मृति में डाल सकने की मनुष्य के मस्तिष्क की क्षमता के परिणामस्वरूप आकार ग्रहण करते हैं। अमूर्त तर्क करने की मेरी प्रवृत्ति ने मेरे अंदर चेतना-ग्राही शक्तियों को इतने अधिक अस्वाभाविक अंश में विकसित कर दिया कि मैं प्रायः ही सरल से सरल चीज़ को सोचते समय अपने विचारों के अंतहीन विश्लेषण में फंस जाता और विचार-निमग्न करनेवाले प्रश्न को भूल कर सोचने लगता कि मैं क्या सोच

रहा था। जब मैं अपने आप से प्रश्न करता — मैं किस चीज के विषय में सोच रहा हूं? उस समय मेरा उत्तर होता — मैं सोच रहा हूं कि क्या सोच रहा हूं। और अब क्या सोच रहा हूं मैं? मैं सोचता हूं कि मैं सोच रहा हूं कि मैं क्या सोच रहा हूं। और इसी तरह क्रम चलता जाता। तर्कशीलता के कारण मैं तर्क को नहीं देख पाता था।

फिर भी, मेरे दार्शनिक अनुसंधानों ने मेरे अहंकार-भाव को बड़ी तुष्टि प्रदान की। मैं प्रायः कल्पना करता कि मैं एक महान व्यक्ति हूं जो मानव जाति के कल्याण के निमित्त नवीन सत्यों का अनुसंधान कर रहा हूं। उस समय मैं दूसरे साधारण प्राणियों को अपनी योग्यता की गर्वीली चेतना में देखता। किन्तु अचरज की बात यह है कि इन साधारण प्राणियों के सम्पर्क में आने पर मैं उनके सामने झेंपने लगता था। उस समय अपने मन में मैं जितना ही अपने को महान मानता, उतना ही दूसरों के आगे अपनी प्रतिभा की आत्मचेतना प्रदर्शित करने में अक्षम। मैं इतनी भी आदत न डाल सका कि अपने साधारण से साधारण शब्द और चेष्टा पर न झेंपूं।

बीसवां परिच्छेद

वोलोद्या

जी हां। जितना ही मैं अपने जीवन के इस काल का वर्णन करता हुआ आगे बढ़ता हूं, वह मेरे लिए उतना ही कष्टकर और कठिन होता जाता है। इस दौर की स्मृतियों में हार्दिक आवेग के ये क्षण जिन्होंने मेरे प्रारम्भिक जीवन को निरंतर देदीप्यमान बना रखा था, विरले ही दृष्टिगत होते हैं। किशोरावस्था की मरुभूमि को जितनी शीघ्रता से भी सम्भव हो पार कर मैं उस सुखद घड़ी में पहुंच जाना चाहूंगा जब मैत्री की एक सच्ची, स्नेह से ओतप्रोत, महान भावना प्रगटी और मेरे जीवन को दीप्त कर दिया तथा मुझे तरुणाई के मोहकता और कवित्व से भरे नये दौर में खींच लिया।

मैं अपनी स्मृतियों का घड़ी-घड़ी का व्योरा नहीं उपस्थित करूंगा। केवल उस समय से तब तक की प्रधान स्मृतियों का विहंगावलोकन कर जाऊंगा जब कि मेरा संग एक असाधारण व्यक्ति के साथ हुआ जिसने मेरे चरित्र एवं विकास पर निर्णायक एवं अतिशय लाभकर प्रभाव डाला।

वोलोद्या कुछ ही दिनों में विश्वविद्यालय में प्रवेश करेगा। उसे पढ़ाने के वास्ते विशेष अध्यापक आते हैं। जब वह ब्लैकबोर्ड के पास तन कर खड़िया से टप टप आवाज़ करते हुए 'फन्क्शन', 'सिनस' और 'कोआर्डिनेट'* आदि शब्दों का उच्चारण करता है, ऐसे शब्द जो मुझे दुर्लभ ज्ञान की अभिव्यक्ति ज्ञात होते हैं, उस समय मेरे मन में ईर्ष्या और स्वतःस्फूर्त श्रद्धा की भावना जाग उठती है। आखिरकर एक रविवार को भोजन के बाद सभी शिक्षक और दो प्रोफेसर नानी के कमरे में जमा होते हैं और पिताजी तथा कई मेहमानों की उपस्थिति में वे वोलोद्या को विश्वविद्यालय की परीक्षा का अभ्यास कराते हैं। इस बैठक में नानी का हृदय हर्षित करते हुए वह अपने असाधारण ज्ञान का परिचय देता है। मुझ से भी विभिन्न विषयों के ऊपर प्रश्न पूछे जाते हैं, किन्तु मैं बिल्कुल कच्चा साबित होता हूं और अध्यापक गण, प्रगटतः, नानी के आगे मेरे अज्ञान को छिपाने की कोशिश करते हैं जिससे मेरी घबराहट और बढ़ जाती है। पर मेरे ऊपर बहुत कम ही ध्यान दिया जाता है क्योंकि मेरी उम्र अभी पंद्रह ही वर्ष की है और मेरे लिए इम्तहान की तैयारी करने के लिए एक वर्ष और है। वोलोद्या केवल भोजन के लिए नीचे आता है। वह सारा दिन तथा प्रायः शाम का समय भी कोठे पर अध्ययन में बिताता है। इतना पढ़ना उसके लिए अनिवार्य नहीं, पर वह अपनी इच्छा से पढ़ता है। वह बहुत घमण्डी है। 'साधारण पास' से उसे संतोष न होगा। वह 'विशेष योग्यता' की सनद चाहता है।

अंत में इम्तहान का पहला दिन आन पहुंचता है। वोलोद्या पीतल

---

*उच्च गणित के शब्द।–सं०

के बटन वाला अपना नीला कोट पहनता है, सोने की घड़ी बांधता है, पैरों में पैटेंट-लेदर के जूते डालता है। पिताजी की फीटन आकर दरवाज़े पर लग जाती है। निकोलाई पर्दा हटा देता है और वोलोद्या तथा St.-Jérôme गाड़ी में बैठकर विश्वविद्यालय के लिए रवाना हो जाते हैं। लड़कियां, विशेषकर कातेन्का, खिड़की से सुडौल शरीर वाले वोलोद्या को हर्षोत्फुल्ल चेहरे के साथ गाड़ी में बैठते देखती हैं। पिताजी 'भगवान करे,' 'भगवान करे' कहते हैं और नानी जो घिसटती हुई खिड़की पर आ खड़ी हुई हैं, आंखों में आंसू भर कर फीटन के मोड़ पर पहुंचकर आंखों से ओझल हो जाने तक दुआएं देती तथा फुसफुसाहट के स्वर में कुछ कहती हैं।

वोलोद्या लौट आता है। सभी लोग उत्सुकतापूर्वक उसे घेर लेते हैं। "कैसा किया?" "कितने नम्बर मिले?" पर उसका उल्लास से भरा चेहरा स्वयं इन प्रश्नों का उत्तर है। अगले दिन भी वह उसी उद्विग्नता के साथ और सबों की शुभकामनाएं लेकर इम्तहान देने गया और उसी उत्सुकता और हर्ष के साथ लौटने पर उसका स्वागत हुआ। इस तरह नौ दिन बीते। दसवें दिन का, जो अंतिम दिन है, इम्तहान सबसे कड़ा है। उस दिन धार्मिक ज्ञान का पर्चा है। हम लोग खिड़की के पास खड़े होकर अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक अधीरता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। दो बज गये, पर वोलोद्या अभी तक नहीं लौटा।

"हे भगवान! आ गये! वह आ गये," ल्यूबोच्का जो खिड़की के शीशे में अपना चेहरा सटाये हुए थी, चिल्ला उठी।

और सचमुच वोलोद्या फीटन पर St.-Jérôme की बगल में बैठा चला आ रहा था। वह अब अपने नीले कोट और भूरी टोपी में न था बल्कि उसके शरीर पर विद्यार्थियों की वर्दी थी—नीला कशीदा किया हुआ कॉलर, तिकोना हैट और कमर में सोने का काम किया हुआ बेल्ट।

"आह! आज यदि वह जिंदा होती!" नानी वोलोद्या को इस वर्दी में देखकर चिल्लायीं और मूर्छित हो गयीं।

वोलोद्या उल्लसित चेहरे के साथ ड्योढ़ी में दौड़ा और मुझे, ल्यूवोच्का, मीमी और कातेन्का को जिसका चेहरा शर्म से कान तक लाल हो गया था, चूमा। वह खुशी से फूला नहीं समाता है। कितना सजीला लग रहा है वह अपनी वर्दी में! काली मसों पर नीला कॉलर खूब फव रहा है! उसकी कमर लम्बी और पतली है। चाल शानदार। उस स्मरणीय दिवस को सभी नानी के कमरे में भोजन करते हैं। हर चेहरे से खुशी टपक रही है और भोजन के वाद फल खाने के समय खानसामा विनम्रतापूर्ण भव्य किन्तु हर्षित चेहरे के साथ गमछे में लपेटी शैम्पेन की एक वोतल ले आता है। नानी अम्मा की मृत्यु के वाद आज पहले-पहल शैम्पेन पीती हैं। वोलोद्या को मुवारकवाद देने के लिए वह पूरा गिलास खतम कर देती हैं और उसकी ओर देखकर फिर खुशी के आंसू वहाती हैं। वोलोद्या अब आंगन से अपनी अलग सवारी में सैर के लिए निकलता है, अपने ही कमरे में अपने मुलाकातियों को वुलाता है, धूम्रपान करता है, वॉल-डान्स में जाता है। एक वार तो मैंने उसे कुछ अतिथियों के साथ अपने कमरे में शैम्पेन की दो वोतलें पीते देखा। सभी किसी रहस्यमय व्यक्ति की सेहत के जाम पी रहे थे और वहस कर रहे थे कि कौन le fond de la bouteille* प्राप्त करेगा। किन्तु भोजन वह नियमपूर्वक घर पर ही करता है और तीसरे पहर का समय पहले की भांति वैठकखाने में विताता है। और कातेन्का के साथ उसकी किसी रहस्यमय विपय के ऊपर अंतहीन वहस चला करती है। जहां तक मैं उनकी वातचीत सुन पाता हूं – मैं उसमें भाग नहीं लेता – वे केवल अपने पढ़े उपन्यासों के नायक और नायिकाओं, उनके प्रेम और ईर्ष्या के वारे में वातें करते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसी वहस में उन्हें क्या मज़ा आता है, अथवा वे क्यों ऐसी नज़ाकत की हंसी हंसते और इतनी गरमागरम वहसें करते हैं।

---

* [आखिरी वूंद]

सामान्य तौर से मैं इतना ही देखता हूं कि बालपन के साथी की स्वाभाविक मित्रता के अतिरिक्त कातेन्का और वोलोद्या के बीच कोई विचित्र सम्बन्ध वर्तमान है, जो दोनों को हम सब से अलग कर देता है और रहस्यपूर्ण ढंग से उन्हें गूंथ रखता है।

इक्कीसवां परिच्छेद

कातेन्का और ल्यूबोच्का

कातेन्का अब सोलह साल की हो गयी है। वह बड़ी हो गयी। बालपन से तारुण्य के संक्रमण-काल में अंगों का जो निखार तथा चेष्टाओं में शर्मीलापन और बेढंगापन बालिकाओं में पाया जाता है, उसका स्थान एक नव प्रस्फुटित पुष्प की सुडौल ताज़गी और सुषमा ने ले लिया है। लेकिन वह बदली नहीं है —वही चमकीले नीले नयन और मुसकाती दृष्टि, वही छोटी सीधी नाक जो भृकुटियों से मिलकर सीधी रेखा बनाती है और जिसके नथुनों में दृढ़ता है, वही छोटा-सा मुंह जिसपर दमकदार मुसकुराहट खेला करती थी, गुलाबी, पारदर्शी गालों में वे ही खूबसूरत गड्ढे और वे ही छोटे छोटे श्वेत हाथ। किसी कारण से 'सजी-सुडौल लड़की' का विशेषण उसपर सटीक बैठता है। उसमें नयी चीज़ केवल उसका नये ढंग से, वयस्क स्त्रियों की तरह, अपने घने केशों का जूड़ा बांधना और उसकी जवान छाती है जिसपर स्पष्टतः उसे नाज़ था और हया भी।

यद्यपि ल्यूबोच्का का पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा कातेन्का के साथ ही हुई है, वह सभी अर्थों में उससे भिन्न है।

डीलडौल की वह नाटी है। सुखण्डी रोग हो जाने के कारण उसकी टांगें अभी तक टेढ़ी हैं। उसका आकार बेढंगा और बदनुमा है। उसकी आकृति की एकमात्र रूपवती वस्तु उसकी आंखें हैं जो वास्तव में अत्यंत सुंदर हैं—बड़ी-बड़ी श्यामल आंखें, जिनमें भव्यता और सादगी का ऐसा अवर्णनीय,

आकर्षणयुक्त भाव है कि कोई भी आकृष्ट हुए विना नहीं रह सकता। ल्यूबोच्का की हर चीज़ में सादगी और स्वाभाविकता है, जब कि कातेन्का को देखकर ऐसा लगता है कि किसी की नकल करना चाहती है। ल्यूबोच्का की चितवन में हृदय की स्वच्छता झांकती है। प्राय: वह किसी व्यक्ति पर अपनी बड़ी बड़ी काली आंखें गड़ाकर इतनी देर तक ताकती रह जाती है कि बाद में उसे झिड़की सुननी पड़ती है। उसे बताया जाता है कि ऐसा करना शिष्टता के विपरीत है।

दूसरी ओर, कातेन्का है कि अपनी भृकुटियों को नीचा कर लेगी, आंखें सिकोड़ लेगी और कहेगी कि उसे अल्पदृष्टि का रोग है, यद्यपि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि उसकी दृष्टि में कोई त्रुटि नहीं। ल्यूबोच्का जान-पहचान से बाहर के लोगों से हिलना-मिलना पसंद नहीं करती और यदि लोगों की मण्डली में कोई उसका चुम्बन लेने लगता है, तो वह मुंह विचकाकर कहती है कि वह भावुकता नहीं सहन कर सकती। इसके विपरीत, अतिथियों के बीच कातेन्का मीमी के साथ विशेष प्यार जतायेगी, और हॉल में किसी लड़की की बांह में बांह डालकर घूमना पसंद करेगी। ल्यूबोच्का के सदा नाक पर हंसी रहती है। प्राय: खिलखिलाकर हंसते समय वह अपने हाथों को झुलाना और कमरे में दौड़ना आरम्भ कर देगी। इसके विपरीत, कातेन्का हंसेगी तो मुंह को हाथ या रूमाल से ढंक लेगी। ल्यूबोच्का सदा तनकर सीधे बैठती है और टहलने के समय दोनों हाथ बगल में लटकाये रहती है। कातेन्का सिर एक ओर तिरछा किये रहती है और चलते समय हाथों को बांधे रहती है। ल्यूबोच्का को किसी वयस्क से बातचीत करने का अवसर पाकर बड़ी खुशी होती है। वह कहती है कि, मैं अश्ववाहिनी के किसी अफ़सर से विवाह करूंगी। पर कातेन्का कहती है कि, मर्द बड़े गंदे होते हैं, कि वह कभी विवाह न करेगी, और कोई मर्द उससे बात करता है तो बिलकुल भिन्न लड़की हो जाती है मानो उसे किसी चीज़ का डर लगा रहा हो। ल्यूबोच्का हमेशा मीमी

से आजिज़ रहती है क्योंकि वह उसे फीतों और कार्सेट* में इतना कस देती हैं कि "सांस भी नहीं लिया जाता।" वह खाने की शौकीन है। पर कातेन्का प्रायः अपनी अंगिया की नोक में उंगली घुसाकर दिखलाती है कि वह उसे बहुत ढीला हो रहा है। वह बहुत कम खाती है। ल्यूबोच्का चित्रकारी में मानव-मस्तक बनाना पसंद करती है। पर कातेन्का केवल फूलों और तितलियों के चित्र खींचती है। ल्यूबोच्का फील्ड के धुन बहुत सुन्दर बजा लेती है और बीथोवेन के कुछ 'सोनाटे' बजाया करती है। कातेन्का 'वैरिएशन' और 'वाल्ज़' बजाती है, बहुत लम्बा स्वर खींचती है, पियानो पर जोर से उंगली दाबती है और भाथी बिना रुके चलाती है। कोई धुन बजाने से पहले वह तीन बार फुर्ती से उंगली दौड़ा लेती है।

उस समय मेरा ख्याल था कि कातेन्का में वयस्कों से अधिक समानता है और वह मुझे अधिक रुचती थी।

बाईसवां परिच्छेद

पापा

वोलोद्या के विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के बाद से पिताजी अधिक उत्फुल्ल रहा करते थे। अब वे नानी के संग भोजन करने के लिए अधिक आते थे। पर निकोलाई ने मुझे बताया कि उनकी उत्फुल्लता का कारण यह था कि हाल में जुए में उन्होंने बहुत बड़ी रकमें जीती थीं। शाम को क्लब जाने से पहले वह प्रायः हम लोगों से मिलने आते। हम लोग उन्हें घेरकर बैठ जाते और वह पियानो पर बंजरों के गीत गाते और साथ में अपने मुलायम जूतों से ताल देते जाते। (एड़ीदार जूते उन्हें बिल्कुल पसंद न थे। उन्हें वह भूलकर भी न पहनते थे)। उस समय उनकी प्यारी बिटिया ल्यूबोच्का का, जो उनपर जान देती थी,

---

*एक प्रकार की अंगिया। – सं०

हर्षातिरेक में हास्यास्पद ढंग से उछलना देखने योग्य होता था। कभी कभी वह हम लोगों के पाठ-कक्ष में आ जाते और गम्भीर मुद्रा में मेरा पाठ सुनाना सुनते थे। किन्तु ग़लती सुधारने के लिए बीच बीच में वह जो कहते, उससे मुझे साफ़ अंदाज़ लग जाता था कि उन्हें मेरे पाठ्य-विषय का विशेष ज्ञान न था। कभी कभी जब नानी बिना वजह सभी पर बकना-झकना और भुनभुनाना शुरू कर देती थीं, तो वह हम लोगों की ओर कनखी मारकर इशारा करते थे। "आज तो यार खूब डांटे गये," वह पीछे हम लोगों से कहते। हमारी बालोचित्त कल्पना ने पहले उन्हें जिस दुर्गम चोटी पर समझ रखा था, उससे वह मेरी आंखों में कुछ नीचे आ गये थे। मैं आज भी सच्चे प्यार और श्रद्धा की उसी भावना से उनके बड़े विशाल हाथों को चूमता हूं। पर अभी ही मैंने उनपर सोचना और उनके कामों की परख करना आरम्भ कर दिया है। ऐसे समय जो विचार मेरे मन में उठते हैं उनसे मैं सहम जाता हूं। एक घटना को जिसने मेरे मन में ऐसी बहुत-सी भावनाएं उत्पन्न कीं और मेरे लिए भारी नैतिक व्यथा का कारण बनी थी, मैं नहीं भूल सकता।

एक दिन शाम को काफ़ी देर गये वह अपना काला ड्रेस-कोट और सफ़ेद वास्कट पहने वोलोद्या को एक नाच में लिवा ले जाने के लिए बैठकखाने में आये। वोलोद्या अपने कमरे में कपड़े पहन रहा था। नानी अपने शयनकक्ष में थीं और इन्तज़ार कर रही थीं कि कब वोलोद्या आकर अपने कपड़े दिखायेगा। (हर नाच में जाने से पहले वह उसे बुलाकर देखा करती और आशीर्वाद तथा सीख दिया करती थीं)। मीमी और कातेन्का हॉल में जिसमें केवल एक मोमबत्ती जल रही थी, टहल रही थीं। ल्यूबोच्का पियानो पर बैठकर अम्मा की प्यारी धुन, फ़ील्ड का 'द्वितीय कान्सर्ट' बजा रही थी।

अम्मा और ल्यूबोच्का जैसी घनिष्ठ समानता मैंने कभी किन्हीं दो व्यक्तियों में नहीं देखी है। यह समानता न चेहरे में थी, न आकार-

बाद वह ल्यूवोच्का को सीट के पीछे आकर खड़े हो गये, उसके काले केशों को चूमा, और पीछे जाकर फिर घूमने लगे। जब ल्यूवोच्का संगीत समाप्त कर चुकी और उनके पास जाकर पूछा—"आपको पसंद आया?' तब बिना कुछ बोले उन्होंने उसके मस्तक को दोनों हाथों में ले लिया और उसकी भौंहों और आंखों को आर्द्र स्नेह से चूमने लगे, ऐसा आर्द्र स्नेह जैसा मैंने उन्हें पहले कभी प्रदर्शित करते नहीं देखा था।

"ऐं, आप रो रहे हैं?" ल्यूवोच्का ने सहसा उनकी घड़ी के चेन को छोड़ते हुए और विस्मय विस्फारित नयनों को उनके चेहरे पर गड़ाते हुए कहा। "मुझे माफ़ करना, प्यारे पापा। मैं भूल ही गयी थी कि वह अम्मा का संगीत था।"

"नहीं, नहीं मेरी बिटिया, तू उसे ही बजाया कर। बजायेगी न?" उन्होंने आवेग कम्पित स्वर में कहा। "तुझे नहीं पता कि तेरे साथ रो लेने पर मुझे कितनी शान्ति मिलती है।"

उन्होंने उसे फिर चूमा और अपने आवेग पर विजय पाने के निमित्त कंधों को हिलाते हुए, दालान में निकलनेवाले दरवाज़े से होकर वोलोद्या के कमरे में चले गये।

"वोलोद्या, भई जल्दी करो न," वह दालान के बीच ही में रुककर चिल्लाये। उसी क्षण दासी माशा उधर से गुज़री। मालिक को देखकर उसने आंखें नीची कर लीं और चाहा कि कतराकर निकल जाय। पर उन्होंने उसे रोक लिया। "तू तो सचमुच दिनोंदिन और भी खूबसूरत होती जा रही है," उन्होंने उसकी ओर झुककर कहा।

माशा के गाल लाल हो गये और उसने अपना सिर नीचे कर लिया। "जी, जाने दीजिए मुझे," उसने धीमे स्वर में कहा।

"वोलोद्या! तैयार हुए कि नहीं?" पिताजी ने माशा के चले जाने और मेरे ऊपर दृष्टि पड़ते ही, कंधे हिलाते और खांसते हुए कहा।

मैं अपने पिताजी को प्यार करता था। पर मनुष्य के दिमाग़ पर

दिल का काबू नहीं है और उसमें प्रायः ऐसे विचार अपना घर बना लेते हैं जो हार्दिक अनुभूतियों को ठेस पहुंचाने वाले, और उनके लिए अत्यंत दुर्बोध तथा कठोर होते हैं। इन विचारों को जितना ही दूर भगाने की कोशिश करता था, वे उतने ही जोर से आकर मेरे मस्तिष्क को घेर लेते थे।

तेईसवां परिच्छेद

नानी

नानी दिनों दिन दुर्बल होती जा रही थीं। उनके कमरे से घंटी की आवाज, गाशा की भुनभुनाहट और दरवाजों का जोर से भिड़ाया जाना अब अधिक सुनायी पड़ा करते थे। वह अब पहले की तरह पुस्तकालय में अपनी बड़ी आरामकुर्सी पर बैठकर इन लोगों से नहीं मिला करती थीं। अब हम उन्हें शयनकक्ष में झालरदार तकियों वाली ऊंची पलंग पर पाते। अभिवादन करते समय हम उनके हाथ में फीका, पीला, चमकदार सूजन पाते थे। उनके कमरे से वही कष्टदायक गंध उठने लगी थी जिसे पांच वर्ष पहले मैंने अम्मा के कमरे में पाया था। डॉक्टर दिन में तीन बार उन्हें देखने आते और कई बार अपने सहयोगियों के साथ परामर्श किया करते थे। किन्तु नानी के चरित्र में, घर के सभी व्यक्तियों के और विशेषकर पिताजी के प्रति उनके तपाकी व्यवहार में, कोई अंतर न आया था। वह अब भी अपने शब्दों पर उसी तरह तूल देतीं, भौंहें सिकोड़तीं, और ठीक पहले ही की तरह "मेरे प्यारे" कहा करती थीं।

इसके बाद ऐसा हुआ कि कई दिनों तक हम लोगों को उनके पास नहीं जाने दिया गया और एक दिन सवेरे ही पढ़ाई के समय से St-Jérôme ने आकर मुझे ल्यूबोच्का और कातेन्का के साथ घोड़े पर सैर कर आने को कहा। स्ले* पर सवार होते समय मैंने नानी के कमरे की खिड़कियों के सामने

* बर्फ़ पर खींची जानेवाली गाड़ी। —सं०

सड़क पर बहुत-सा पुआल पड़ा और नीले ओवरकोट पहने बहुत से आदमियों को फाटक पर खड़े देखा, पर समझ नहीं सका कि इस असाधारण वेला में हमें सैर के लिए क्यों भेजा जा रहा है। उस पूरी सैर में न जाने क्यों ल्यूबोच्का और मैं उस असाधारण प्रसन्नता की मुद्रा में थे जब कि हर घटना, हर शब्द, और हर चेष्टा हंसी की गुदगुदी पैदा कर देती है।

बक्स लिये एक फेरीवाले ने दौड़कर सड़क पार किया और हम लोग हंस पड़े। एक गाड़ीवाला, घोड़ों को सरपट हांकता और कोड़ा सटकारता हम लोगों के स्ले से आगे निकल गया, और हम लोग फिर कहकहा मारकर हंस पड़े। फिलिप का चाबुक स्ले के बम में फंस गया। उसने घूमकर कहा—"धत्तेरे की," और हम लोग हंसी से लोटपोट हो गये। मीमी ने भौंहों पर बल डालकर हम लोगों की ओर देखा और बोली कि बिना वजह हंसना मूर्खों का काम है। इसपर ल्यूबोच्का ने जिसका हंसी दबाने से चेहरा लाल हो रहा था, मेरी ओर कनखी चलायी। हमारी निगाहें मिलीं और हम लोग ठहाका मारकर इतने ज़ोर से हंस पड़े कि आंखों से आंसू निकल आये। हम भीतर से निकलती हंसी दबा न सके। यह कहकहा ज़रा-सा धीमा पड़ा था कि मैंने ल्यूबोच्का की ओर ताका और एक रहस्यमय सांकेतिक शब्द कहा जो इन दिनों हम लोगों के बीच प्रचलित था और जिसपर सभी हंस पड़ा करते थे; और फिर कहकहा गूंज उठा।

लौटकर घर के दरवाज़े के पास आने पर मैं ल्यूबोच्का की ओर देखकर मुंह बनाने ही जा रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि दरवाज़े से सटकर रखे एक ताबूत के काले ढक्कन पर पड़ी। मैं चौंक पड़ा और मुंह बनाना मुंह पर ही बना रह गया।

« Votre grande mère est morte ! » * St.-Jérôme ने हमारे पास आते

* [तुम्हारी नानी चल बसी]

हुए पीले चेहरे से कहा। जितनी देर तक नानी का शव घर में था मेरे ऊपर मौत का एक डरावना साया फैला हुआ था मानो शव जीवित है और मुझे इस अप्रिय सत्य की याद दिला रहा है कि मुझे भी एक दिन मरना होगा। इस भावना को न जाने क्यों लोग साधारणतः शोक की भावना समझ बैठते हैं। मुझे नानी के लिए दुख न था, और वस्तुतः यद्यपि घर मातम मनाने वाले आगंतुकों से भरा हुआ था, उनमें शायद ही कोई ऐसा रहा होगा जिसे उनके लिए हार्दिक शोक हो। पर एक व्यक्ति अपवाद था, और उसका शोक देखकर मैं अचरज में डूब गया। वह थी दासी गाशा। वह अटारी की कोठरी बंद कर जा बैठी और निरंतर रोती, अपने भाग्य को कोसती और सिर धुनती रही। लोगों के समझाने का उसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ रहा था। वह यही कहती, मालकिन को भगवान ने उठा लिया, अब मुझे भी उठा ले।

मैं फिर कहूंगा कि, असाधारण भावनाओं की अविश्वसनीय दृष्टि–सच्चाई का सबसे विश्वसनीय प्रमाण है।

नानी जाती रही थीं, पर घर में उनके विषय में तरह तरह की बातें याद और चर्चा का विषय बनी हुई थीं। उनका एक विशिष्ट विषय था–उनका वसीयतनामा जो उन्होंने मृत्यु के पहले तैयार कराया था और जिसके लेख की जानकारी केवल उनके उत्तरसाधक प्रिंस इवान इवानोविच को थी। मैंने देखा कि नानी के आदमियों में इस विषय को लेकर काफ़ी उत्तेजना है और अक्सर उनमें मैं यह चर्चा सुना करता था कि कौन किसके हिस्से पड़ेगा। मुझे क़बूल करना पड़ेगा कि इस विचार से कि हमें भी कुछ मिलेगा, हमको अनायास ही ख़ुशी होती थी।

छेसप्ताह के बाद निकोलाई ने जो हमारे घर का दैनिक समाचारपत्र था, मुझे सूचित किया कि नानी अपनी सारी जायदाद ल्यूबोच्का के नाम लिख गयी हैं और विवाह होने तक उसका अभिभावक पिताजी को नहीं वरन् प्रिंस इवान इवानिच को बना गयी हैं।

चौबीसवां परिच्छेद

मैं

विश्वविद्यालय में मेरे प्रवेश के कुछ ही महीने रह गये हैं। मैं खूब डटकर पढ़ाई कर रहा हूं। अब मैं निर्भय होकर मास्टरों के आने की प्रतीक्षा ही नहीं करता, बल्कि पढ़ाई में मुझे मज़ा आता है।

याद किये हुए पाठ को साफ़ साफ़ और ठीक ठीक सुनाने में मुझे आनंद प्राप्त होता है। मैं गणित की विशेषज्ञता के लिए तैयारी कर रहा हूं। यह विषय यदि सच कहूं तो मैंने इसलिए चुना है कि मेरे लिये सिनस, टेन्जेन्ट डिफरेन्शल, इन्टेग्रल, आदि शब्दों में असाधारण आकर्षण है।

मैं डीलडौल में वोलोद्या से कहीं नाटा, सीने का चौड़ा, मांसल, रूप-रंग में सदा की तरह अरूप और इसके कारण सदा की तरह चिंतित रहने वाला हूं। मैं मौलिकता का दिखावा करने की कोशिश करता हूं। पर एक चीज़ से मुझे सांत्वना प्राप्त होती है। पिताजी ने एक बार कहा था कि, मेरी मुखाकृति से बुद्धि की प्रखरता टपकती है और मुझे उनके कहने पर पूरा भरोसा है।

St.-Jérôme मुझसे संतुष्ट हैं और मैं भी अब उनसे नफ़रत नहीं करता। वरन् प्रायः जब वह कहते हैं कि, इतनी प्रखर बुद्धि रहते हुए भी या इतना प्रतिभाशील होते हुए भी बड़ी लज्जा की बात है कि मैं यह या वह नहीं करता, तो मुझे वे अच्छे लगने लगते हैं।

दासियों के कमरे के पास खड़े होकर अंदर झांकना कभी का खत्म हो चुका है। मुझे दरवाज़े के पीछे छिपने में शर्म आती है। इसके अतिरिक्त मैं क़बूल करूंगा कि भली प्रकार जान जाने पर कि माशा वासीली को प्यार करती है मेरा आवेग भी ठण्डा पड़ गया था। वासीली का विवाह हो जाने पर, जिसके लिए उसके अनुरोध करने पर मैंने ही पिताजी से

अनुमति दिलायी थी, मन की बची-खुची निष्फल कामना भी हृदय से विदा हो गयी।

नव विवाहित दम्पत्ति थाल में मिठाइयां लेकर पिताजी को धन्यवाद देने आये। नीले झालर की टोपी पहने माशा जिस समय हम सभी के कंधों को चूमने और किसी न किसी वस्तु के लिए सभी के प्रति आभार प्रगट करने लगी मुझे उस समय केवल एक वस्तु की संज्ञा थी – उसके केशों में लगे सुगंधित गुलाब के पोमेड की। उसके प्रति कोई भावना मैंने नहीं अनुभव की।

पूरे तौर पर कहूं तो मैं अपनी बालोचित दुर्बलताओं से धीरे-धीरे मुक्त होने लगा था। अपवाद केवल एक था। मेरी प्रधान दुर्बलता जो अभी आगे जीवन में मुझे और भी हानि पहुंचानेवाली थी, अर्थात् दार्शनिक तर्क करने की प्रवृत्ति, अब भी थी।

पचीसवां परिच्छेद

वोलोद्या के मित्र

वोलोद्या की मित्रमण्डली में मेरी भूमिका ऐसी थी जिससे मेरे आत्माभिमान को ठेस लगती थी। तो भी उसके मुलाकातियों के कमरे में उपस्थित रहने के समय वहां बैठकर चुपचाप सब कुछ देखते रहना मुझे भाता था।

वोलोद्या के अतिथियों में सबसे अधिक आने-जाने वाले दो व्यक्ति थे – एक दुबकोव जो अंगरक्षक अफ़सर था और दूसरा एक छात्र जिसका नाम था – प्रिंस नेख्ल्यूदोव। दुबकोव नाटा, गठीला, सांवले रंग का था। उसकी उम्र जवानी के आरम्भिक दिनों को पार कर चुकी थी। टांगें उसकी कुछ छोटी-छोटी थीं। पर देखने-सुनने में वह बुरा न था और हमेशा उत्फुल्लवदन रहा करता था। वह उन इने-गिने व्यक्तियों में था

जो अपनी सीमाओं के कारण ही विशेष मन-भावने होते हैं, जो वस्तुओं को विभिन्न पहलुओं से देखने की क्षमता नहीं रखते और जो अपने को निरंतर किसी न किसी वस्तु के पीछे बह जाने दिया करते हैं। ऐसे लोगों के निर्णय सदा एकांगी और ग़लत होते हैं किन्तु सदैव मुक्त-हृदय और मोहक। न जाने क्यों उनका संकीर्ण आत्मवाद भी क्षम्य और आकर्षक ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त दुवकोव में वोलोद्या और मेरे लिए दुहरा आकर्षण था। एक तो उसकी आकृति सिपाहियाना थी; दूसरे, और जो उससे भी बड़ी बात है, वह उस उम्र में था जब मनुष्य नवयुवकों की नजरों में बड़ा ईमानदार (comme il faut) लगता है और जिसे हमारी उम्र के लोग बहुत अधिक पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त दुवकोव वास्तव में un homme comme il faut* था। केवल एक चीज मुझे अच्छी नहीं लगती थी। वोलोद्या उसके सामने कभी कभी ऐसा व्यवहार करता था मानो मेरे निरीह से निरीह कामों पर और सबसे अधिक मेरी कमसिनी पर उसे शर्मिंदगी होती है।

नेख्ल्यूदोव ख़ूबसूरत न था। छोटी छोटी, भूरी आंखें, संकरा, उभरा हुआ ललाट, बेतुके लम्बे हाथ और टांगें—इन्हें सुंदरता के लक्षण नहीं कह सकते। उसकी एक मात्र मनभावनी लगने वाली वस्तु थी—असाधारण ऊंचा डील, चेहरे का कोमल रंग और बहुत ही सुंदर दंत पंक्ति। किन्तु उसकी संकीर्ण, दीप्तिपूर्ण आंखों और मुसकान के ढंग से, जो कठोरता से बालोचित अस्पष्टता में परिणत हो जाया करती थी, उसके चेहरे पर मौलिकता और ओज का एक ऐसा भाव छा जाता कि उससे प्रभावित हुए बिना रहा नहीं जा सकता था।

वह बड़ी लजीली प्रकृति का ज्ञात होता था क्योंकि मामूली से मामूली बात पर भी उसके कानों तक सुर्ख़ी फैल जाती थी। किन्तु उसका

* इन शब्दों का भाव होगा नेक और इमानदार।—सं०

लजीलापन मेरे जैसा न था। जितना ही अधिक वह लाज से लाल होता उतना ही अधिक उसके चेहरे से संकल्प की दृढ़ता टपकने लगती। ऐसा ज्ञात होता कि, अपनी दुर्बलता के कारण वह अपने आप पर कुपित है।

यद्यपि दुबकोव और वोलोद्या से उसकी बड़ी घनिष्ठता ज्ञात होती थी पर वे सर्वथा संयोग से ही साथी बने थे। वे वास्तव में सर्वथा भिन्न थे। वोलोद्या और दुबकोव ऐसी चीजों से घबराते थे जिसका गम्भीर तर्क-वितर्क और आवेग से दूर का भी नाता हो। इसके विपरीत, नेख्ल्यूदोव बड़े जोशीले स्वभाव का था और प्रायः उपहास की परवाह न कर दार्शनिक प्रश्नों और भावों सम्बन्धी बहस में कूद पड़ता था। वोलोद्या और दुब्कोव अपने प्रेम-पात्र के विषय में बात करना पसंद करते थे। अकस्मात उनका यह हाल था कि प्रायः एक ही बार वे कई लोगों, और दोनों एक ही व्यक्ति के प्रेम में पड़ जाते थे। इसके विपरीत, नेख्ल्यूदोव उसके किसी रक्त-केशी लड़की के साथ प्रेम करने के प्रसंग पर हृदय से विगड़ उठता था।

वोलोद्या और दुब्कोव प्रायः अपने नातेदारों का मजाक उड़ाया करते थे। इसके विपरीत, यदि कोई नेख्ल्यूदोव की मौसी के बारे में जिसके प्रति उसे असीम श्रद्धा थी, कोई अनादर की बात कह दे तो वह जामे से बाहर हो जाता था। वोलोद्या और दुब्कोव रात के भोजन के बाद नेख्ल्यूदोव को छोड़ने कहीं जाया करते थे। उसे लोगों ने "नाजुक छोकरी" की उपाधि दे रखी थी।

प्रिंस नेख्ल्यूदोव की बातचीत तथा आकृति से मैं पहले ही दिन प्रभावित हो गया। उसके और अपने स्वभाव में मुझे काफ़ी समानता मिली। किन्तु शायद इस समानता के कारण ही प्रथम साक्षात में उसके प्रति मेरी जो भावना हुई वह किसी भी प्रकार अनुकूल नहीं कही जा सकती।

उसकी तेज दृष्टि, दृढ़ स्वर, गर्वीली आकृति, और सबसे अधिक तो मेरे प्रति उसका सर्वथा उपेक्षा का भाव मुझे बिलकुल नहीं भाये। बातचीत के दौरान मेरी प्रायः यह उत्कट इच्छा होती कि उसकी बात काट दूं और उसे मात देकर उसका घमण्ड चूर कर दूं, यह दिखा दूं कि वह मेरे प्रति उपेक्षा भाव रखता है तो रखा करे लेकिन मैं भी तेज बुद्धि रखता हूं। पर मेरा शर्मीलापन ऐसा करने से मुझे रोके रखता।

छब्बीसवां परिच्छेद

वाद-विवाद

शाम की पढ़ाई के बाद हसब-मामूल जब मैं वोलोद्या के कमरे में गया तो वह सोफ़े पर टांगें चढ़ाये, केहुनी के बल लेटा हुआ एक फ़्रांसीसी उपन्यास पढ़ रहा था। उसने एक क्षण के लिए मुझे देखा और फिर पढ़ने में डूब गया। यह बिल्कुल साधारण और स्वाभाविक चीज थी। फिर भी मेरे चेहरे पर लाली दौड़ गयी। एक क्षण के लिए नजर उठाकर ताकने का अर्थ मुझे यह लगा कि वह पूछ रहा है कि मैं क्यों आया और जल्दी से निगाह नीची कर लेने का मतलब यह है कि उसने उस दृष्टि का अर्थ मुझसे छिपाना चाहा। (साधारण से साधारण चीज़ में भी अर्थ निकालने की मेरी यह प्रवृत्ति इस उम्र में मेरे चरित्र का अंग थी)। मैंने मेज के पास जाकर एक किताब उठा ली, पर उसे पढ़ना आरम्भ करने से पहले यह ख्याल आया कि दिन भर के बाद मुलाकात होने पर भी यदि हमें एक दूसरे से कुछ कहने को नहीं तो यह बड़ी हास्यास्पद बात है।

"आज शाम घर ही पर रहोगे?"

"कह नहीं सकता। क्यों क्या बात है?"

"यों ही पूछ रहा था," मैंने कहा और यह देखते हुए कि

बातचीत की गाड़ी आगे बढ़ा नहीं पा रहा हूं मैं किताब लेकर पढ़ने लगा।

यह विचित्र बात है कि मैं और वोलोद्या अकेले होने पर घंटों एक-दूसरे से कुछ बोले बिना ही बिता देते थे, किन्तु किसी तीसरे आदमी की उपस्थिति मात्र अगर वह आदमी न भी बोले तो—अत्यंत विविधतापूर्ण और रोचक वार्तालाप आरंभ कर देने को पर्याप्त थी। हमें यह मान था कि हम एक दूसरे को पूरा पूरा जानते हैं। और किसी व्यक्ति को पूरा पूरा जानना वास्तविक घनिष्ठता में उसी तरह बाधक होता है जिस तरह किसी को बहुत थोड़ा जानना।

"वोलोद्या घर पर है?" दालान से दुबकोव की आवाज़ आयी।

"हां हां," वोलोद्या ने टांगें उतारते और किताब को मेज पर रखते हुए कहा।

दुबकोव और नेख्ल्यूदोव कोट और हैट चढ़ाये कमरे में दाख़िल हुए।

"नाटक देखने चल रहे हो?"

"नहीं। मुझे वक़्त नहीं है," वोलोद्या ने जवाब दिया। उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी थी।

"क्या ख़ूब कही तुमने भी! अरे, चलो भी यार।"

"इसके अलावा मेरे पास टिकट भी नहीं है।"

"टिकट तो जितने चाहोगे वहीं पर मिल जायेंगे।"

"ठहरो। मैं अभी आया," वोलोद्या ने बात टालते हुए जवाब दिया और कंधों को हिलाकर बाहर निकल गया।

मैं जानता था कि, वोलोद्या की नाटक देखने जाने की पूरी इच्छा है पर पैसे न होने के कारण उसने 'न' कहा है। अब वह ख़ानसामां से अपना अगला भत्ता पाने तक के लिए पांच रूबल उधार मांगने गया था।

"और कूटनीतिज्ञ महोदय, तुम्हारा क्या हाल है," दुबकोव ने मुझ से हाथ मिलाते हुए कहा।

वोलोद्या के मित्र मुझे कूटनीतिज्ञ कहा करते थे क्योंकि एक बार भोजन के वाद नानी ने हम लोगों के भविष्य के वारे में बातें करते हुए कहा था कि वोलोद्या सिपाही वनेगा और मुझे वह काला कोट पहने, और जुल्फदार केश रखे (इन्हें वह इस पेशे में अपरिहार्य समझती थीं) राजदूत वना देखना चाहती है।

"वोलोद्या कहां चला गया?" नेख्ल्यूदोव ने पूछा।

"मैं नहीं जानता," मैंने, इस विचार से शर्म से लाल होते हुए कि सम्भवतः वे वोलोद्या के वाहर जाने का कारण समझ रहे हैं, जवाव दिया।

"मैं समझता हूं कि उसके पास पैसे नहीं हैं। क्यों? तू भी यार पूरा कूटनीतिज्ञ ही है!" उसने मेरी मुसकान को सम्मत्तिसूचक मानते हुए उत्तर दिया। "लेकिन मेरे पास भी पैसे कहां हैं? और तुम दुवकोव, तुम्हारे पास पैसे हैं क्या?"

"देखता हूं," दुवकोव ने मनीवैग निकालते हुए और अपनी नाटी उंगलियों से उसमें पड़े कुछ छोटे सिक्कों को टटोलते हुए जवाव दिया। "यह रहा एक पांच-कोपेक और यह है एक वीस कोपेक–और वस!" उसने हाथ से व्यंग्यपूर्ण नक़ल उतारते हुए कहा।

उसी समय वोलोद्या ने कमरे में प्रवेश किया।

"हां, तो चलेंगे हम लोग?"

"नहीं।"

"तुम भी अजीव आदमी हो!" नेख्ल्यूदोव ने कहा। "कहते क्यों नहीं कि तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं? ऐसा ही है तो तुम मेरा टिकट ले लेना।"

"लेकिन तुम क्या करोगे?"

"वह अपने चचेरी वहिन वाले 'वाक्स' में चला जायगा।" दुव्कोव ने कहा।

"नहीं, मैं तो जाऊंगा ही नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुम जानते ही हो, मुझे 'वाक्स' में बैठना पसंद नहीं।"

"क्यों ?"

"मुझे अच्छा नहीं लगता और क्यों। कुछ अजीब-सा लगता है।"

"फिर वही पुराना राग अलापना शुरू कर दिया। हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसी जगह जहां तुम्हारे जाने से सभी खुश होते हैं वहां तुम्हें अजीब-सा क्यों लगता है? बिल्कुल बेतुकी बातें बोल रहा है, mon cher *"

«Si je suis timide ** पर कर क्या सकता हूं मैं? तुझे तो मैं खूब जानता हूं। ज़िंदगी में तूने कभी कहीं शर्म नहीं खायी है, पर मैं तो ज़रा ज़रा-सी बात पर शर्मा जाता हूं," उसने कहा। और सचमुच यह कहते हुए उसके चेहरे पर शर्म की लाली दौड़ गयी।

«Savez vous d'où vient votre timidité ?.. d'un excés d'amour propre, mon cher», *** दुब्कोव ने कृपालुता के स्वर में कहा।

"क्या कहा – excés d'amour propre »! **** नेख्ल्यूदोव ने, जिसे बात लग गयी थी, कहा। "जी नहीं। इसके विपरीत ऐसा इसलिए होता है कि मुझमें d'amour propre की मात्रा बहुत ही कम है। मुझे सदा यह बोध होने लगता है कि मेरी संगत लोगों को भा नहीं रही है, कि मैं उबा रहा हूं उन्हें..."

"वोलोद्या, कपड़े पहनो," दुबकोव ने उसके कंधों को पकड़ते और उसका कोट खींचते हुए कहा। "इग्नात! अपने मालिक को जल्दी तैयार कर डालो।"

---

* [मेरा प्यारा]

** [लजालू ही सही]

*** [अत्यधिक अहंकार]

**** [जानता है, तेरे लजालूपन का स्रोत क्या है, मेरे यार – अत्यधिक अहंकार]

"इसी लिए मेरे साथ प्रायः ऐसा होता है कि..." नेख्ल्यूदोव कहता चला जा रहा था।

पर दुवकोव का कान अब उधर न था। "आ-ला-ला," उसने गुनगुनाना शुरू किया।

"इस तरह छुटकारा नहीं पा सकते तुम," नेख्ल्यूदोव ने कहा। "मैं तुम्हें सिद्ध कर दिखा दूंगा कि शर्मीलेपन का कारण आत्मप्रेम नहीं है।"

"तुम यह सिद्ध कर दिखा सकते हो बशर्ते कि हम लोगों के साथ चलो।"

"मैंने कह दिया, मैं नहीं जा रहा हूं।"

"अच्छा तो यहीं रहो, और कूटनीतिज्ञ को यह सिद्ध कर दिखाओ। वह हम लोगों के लौटने पर हमें बता देगा।"

"ज़रूर कर दिखाऊंगा," नेख्ल्यूदोव ने बचकाने हठ के साथ कहा। "इसलिए जल्दी करो और वापस आ जाओ।"

"तुम्हारा क्या खयाल है? क्या मैं अहंकारी हूं?" उसने मेरी बग़ल में बैठते हुए कहा।

यद्यपि इस विषय पर मेरी राय बनी हुई थी, पर उसके अप्रत्याशित प्रश्न से मैं ऐसा हक्का-बक्का-सा रह गया कि उत्तर देने में कुछ समय लग गया।

"हां, मेरा तो यही खयाल है," मैंने कहा। यह कहते हुए मुझे बोध हो रहा था कि उसे यह दिखा देने का अवसर हाथ आया कि, मैं मेधावी हूं। यह जानकर मेरी आवाज़ कांपने लगी है और चेहरे पर रंग आने लगा है। "मैं समझता हूं कि हर आदमी अहंकारी होता है और हर काम जो वह करता है, अहंकार के ही वश।"

"तुम क्या सोचते हो अहंकार है क्या?" नेख्ल्यूदोव ने मुसकुराते हुए, जिसमें मेरी समझ से तिरस्कार का पुट था, पूछा।

"अहंकार..." मैंने कहा, "यह विश्वास है कि, मैं औरों से अधिक बुद्धिमान हूं।"

"पर ऐसा विश्वास हर आदमी में क्यों कर हो सकता है?"

"यह ठीक है या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, पर इतना जरूर है कि इसे कोई क़बूल नहीं करता। मुझे ही ले लो–मुझे विश्वास है कि मैं दुनिया भर में किसी से भी ज्यादा बुद्धिमान हूं और मुझे यकीन है कि तुम भी अपने बारे में ऐसा ही सोचते हो।"

"नहीं। कम से कम अपने बारे में तो मैं कह सकता हूं कि मेरी ऐसे लोगों से मुलाकात हुई है जिन्हें मैंने अपने से अधिक बुद्धिमान स्वीकार किया है," नेख़्ल्यूदोव बोला।

"यह असंभव है," मैंने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया।

"सचमुच ऐसा ही समझते हो तुम?" नेख़्ल्यूदोव ने मुझपर दृष्टि गड़ाकर कहा।

और तब अचानक एक ख्याल मेरे दिमाग में आया जिसे मैंने उसी वक़्त व्यक्त कर दिया:

"मैं तुम्हें सिद्ध करके बता दूंगा। हम औरों से अपने को अधिक प्यार क्यों करते हैं? इसलिए कि हम औरों से अपने को बेहतर, प्रेम के अधिक योग्य समझते हैं। यदि हम दूसरों को अपने से श्रेष्ठ समझें तो उन्हें अपने से अधिक प्यार करेंगे, पर ऐसा कभी नहीं होता। यदि ऐसा होता भी है तो भी मैं ठीक कहता हूं।" मैंने ओठों पर आप ही आ जाने वाली आत्मसंतुष्टि की एक मुसकान के साथ कहा।

नेख़्ल्यूदोव एक क्षण मौन रहा।

"मुझे सपने में भी यह ख़याल न आया था कि तुम इतने चतुर होगे," उसने ऐसी मधुर सहृदय मुसकान के साथ कहा कि मैं अनायास खुशी से फूल उठा।

प्रशंसा मनुष्य की भावना ही नहीं उसके मस्तिष्क के ऊपर भी ऐसा

प्रवल प्रभाव डालती है कि उसके सुखद प्रभाव में आकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं और भी सुचतुर हो गया हूं और नये नये विचार असाधारण तेज़ी के साथ मेरे मस्तिष्क में उठने लगे। अहंकार के विषय से उठकर न जाने कव हम लोग प्रेम के विषय पर आ गये। और इस विषय की वहस का ओर-छोर न था। हम लोगों के मत किसी ऐसे श्रोता को जिसे उनमें दिलचस्पी न थी, विलकुल ऊल-जलूल लग सकते थे — वे इतने अस्पष्ट और एकांगी थे — पर हमारे लिए वे उच्च महत्व से भरे हुए थे। हमारी आत्माएं एक लय के ऊपर इस तरह वंधी हुई थीं कि किसी एक के अंदर तार की हल्की से हल्की झंकार उठने से दूसरे में तत्काल प्रतिध्वनि उत्पन्न हो जाती। एक हमारी वहस के दौरान झंकारों की पारस्परिक प्रतिध्वनि में हमें वहुत रस आया। ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारे पास इतना समय नहीं, न ही ऐसे शव्द मिलते हैं कि उन विचारों को एक दूसरे के सम्मुख व्यक्त कर सकें जिन्हें हम कहना चाहते हैं।

सत्ताईसवां परिच्छेद

मित्रता का आरम्भ

उस दिन के वाद से मुझमें और द्मीत्री नेख्ल्यूदोव में एक विचित्र किन्तु सुखद सम्वन्ध कायम हो गया। अजनवियों की उपस्थिति में वह मेरी ओर कम ही ध्यान देता, पर ज्यों ही हम दोनों अकेले होते, किसी शान्त कोने में वातचीत चलने लगती जिसमें न समय का खयाल रह जाता, न आसपास की वस्तुओं का।

हम भावी जीवन की, कला की, सरकारी नौकरी की, विवाह और वच्चों की शिक्षा की वातें करते। यह भूलकर भी हमारे दिमाग़ में न आता कि हम जो कह रहे हैं महज़ ऊल-जलूल और कोरी वकवास है। वह वकवास तो थी मगर ज्ञानपूर्ण और सुललित वकवास थी और तरुणाई में

आदमी ज्ञान को बेशकीमत समझता है और उसमें आस्था रखता है। तरुणावस्था में आत्मा की समस्त शक्तियां भविष्योन्मुख रहती हैं और वह भविष्य आशा के प्रभाव से—उस आशा के प्रभाव से जो अतीत के अनुभव पर नहीं वरन् आनेवाले सुख की काल्पनिक सम्भावनाओं पर आधारित होती है—ऐसे विविध रंगीन और मोहक रूप ग्रहण करता है कि उस उम्र में भावी सुख के सपने भी किसी के साथ बातचीत का विषय बनने पर वास्तविक आनंद देते हैं। हम लोगों की बहस का मुख्य विषय था तत्वज्ञान। तत्वज्ञान की बहस में मुझे वे क्षण बहुत प्यारे लगते थे जब एक विचार के साथ मानों तार से बंधा दूसरा विचार तेज़ी से चला आता, हर दूसरा अपने पहलेवाले से अधिक अमूर्त और अस्पष्ट होता और होते होते वे ऐसे सूक्ष्म हो जाते कि शब्दों की पकड़ में ही न आते। आप सोचते कि कुछ कह रहे हैं और मुंह से कुछ और ही निकल रहा होता। मुझे वे क्षण प्यारे लगते थे जब विचार गगन में ऊंचे तथा और अधिक ऊंचे उड़ते हुए आपको सहसा उनके अनंत और अशेष रूप का भान होता था और मस्तिष्क यह स्वीकार कर लेता था कि आगे बढ़ना असम्भव है।

एक बार कार्निवाल के दिनों में नेख्ल्यूदोव विभिन्न रंगरलियों में इस क़दर डूब गया कि दिन में कई बार मेरे घर आते रहने पर मुझसे एक बार भी न बोला। इससे मुझे इतना क्रोध आया कि वह मुझे फिर एक दम्भी और अरुचिकर व्यक्ति प्रतीत होने लगा। मैं कोई अवसर ढूंढ़ने लगा कि मैं उसे दिखा दूं कि मैं उसकी सोहबत की रत्ती भर परवाह नहीं करता और न उसके प्रति मुझे विशेष मोह है।

उत्सव के बाद पहले ही दिन जब उसने मुझसे बातचीत करनी चाही मैंने उससे कह दिया कि मुझे पढ़ना है, और यह कहकर कोठे पर चला गया। लेकिन वहां जाने के पंद्रह मिनट बाद ही किसी ने पाठ-कक्ष का दरवाज़ा खोला। यह नेख्ल्यूदोव था।

"तुम्हारे पढ़ने में तो हर्ज नहीं डाल रहा हूं?" उसने पूछा।

"नहीं।" मैंने उत्तर दिया यद्यपि वास्तव में मैं यह कहना चाहता था कि मैं व्यस्त हूं।

"तो तुम वोलोद्या के कमरे से चले क्यों आये? हम लोगों में वहुत दिनों से वातें नहीं हुई हैं। और मुझे तो इसकी ऐसी आदत पड़ गयी है कि मुझे कुछ खोया खोया-सा लग रहा है।"

मेरी नाराज़ी छूमंतर हो गयी और द्मीत्री मेरी दृष्टि में फिर पहले जैसा सहृदय और आकर्षक व्यक्ति लगने लगा।

"तुम्हें शायद मेरे उठकर चले आने का कारण मालूम है," मैंने कहा।

"शायद," उसने मेरी वग़ल में वैठते हुए कहा। "मेरा इस विषय में एक अनुमान है पर मैं उसे कह नहीं सकता, हां तुम कह सकते हो," वह वोला।

"मैं ज़रूर कहूंगा। मैं इसलिए उठ आया कि मैं तुम से क्रुद्ध था–क्रुद्ध नहीं, खिन्न था। सच पूछो तो, मुझे हमेशा यह डर लगा रहता है कि तुम मेरी छोटी उम्र के कारण मेरे प्रति तिरस्कारभाव रखोगे।"

"तुम्हें पता है, मैं तुम्हारे संग क्यों इतना हिल-मिल गया हूं," मेरी स्वीकारोक्ति का खुशदिली और समझदारी से भरी मुसकान के साथ जवाव देते हुए उसने कहा। "क्यों मैं अन्य लोगों की अपेक्षा जिनसे मेरा अधिक परिचय और अधिक समानता है, तुम्हें अधिक प्यार करता हूं? मुझे इसका कारण अभी अभी मालूम हुआ है। तुम्हारे अंदर एक अनूठा और अलभ्य गुण है–तुम स्वभाव के खरे हो।"

"हां, मैं हमेशा ऐसी वातें कह देता हूं जिन्हें स्वीकार करने में मुझे शर्म लगती है," मैंने सहमत होते हुए कहा। "पर उन्हीं के सामने जिनपर मुझे विश्वास हो।"

"हां। पर किसी व्यक्ति पर विश्वास करने से पहले उनके साथ सच्ची दोस्ती होनी चाहिए और हम तुम अभी दोस्त नहीं हुए हैं, निकोलस; तुम्हें याद है, हम लोगों ने दोस्ती की विवेचना की थी। सच्चे दोस्त होने के लिए एक दूसरे का विश्वास होना ज़रूरी है।"

"इस विश्वास के लिए मैं तुम से जो कहूंगा वह तुम किसी और से न कहोगे," मैंने कहा। "पर सबसे महत्वपूर्ण और सबसे दिलचस्प विचार तो वे ही हैं जिन्हें हम एक-दूसरे को किसी भी हालत में न बतायेंगे!"

"और ऐसे घृणित विचार!" उसने कहा, "ऐसे विचार कि यदि हमें मालूम हो कि हमें उनकी स्वीकारोक्ति देनी होगी तो उन्हें सोचने की भी मजाल न हो।"

"एक बात मेरे मन में उठती है, निकोलस, जानते हो क्या?" उसने मुस्कराकर कुर्सी से उठते हुए और अपने हाथों को मलते हुए कहा, "आओ, हम इसे कर डालें। तब तुम देखोगे कि यह हम दोनों ही के लिए कितना लाभदायक होता है। आओ हम वचन दें कि, एक दूसरे के सामने सब कुछ खोलकर रखेंगे। हम एक दूसरे को जानेंगे और इसके लिए शर्म न करेंगे। किन्तु इसलिए कि हम किसी बाहरी आदमी से न डरेंगे, आओ एक-दूसरे को वचन दें कि एक-दूसरे के बारे में कभी किसी से कुछ न कहेंगे। आओ, हम इसका प्रण कर लें।"

और हमने यही किया। इसका आगे क्या नतीजा हुआ, यह मैं बाद में बतलाऊंगा।

कार ने लिखा है कि प्यार के सदा दो पक्ष होते हैं—एक प्यार करता है और दूसरा अपने को प्यार करने देता है, एक चुम्बन लेता है, दूसरा अपने गाल पेश करता है। यह बिल्कुल सच है। हमारी मित्रता में मैं चुम्बन लेता था, द्मीत्री अपना गाल पेश करता था, किन्तु वह भी मुझे चूमने को तैयार था। हम एक-दूसरे को समान रूप से प्यार करते

थे क्योंकि हम एक-दूसरे को जानते और क़दर करते थे। किन्तु इससे मेरे ऊपर उसका प्रभाव डालना और मेरा उसे आत्मसमर्पण करना रुका नहीं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि नेख्ल्यूदोव के प्रभाव से मैंने अचेतन रूप से उसके दृष्टिकोण को अपना लिया जिसका सार यह था कि सदाचार के आदर्श और इस विश्वास में कि मनुष्य निरंतर सर्वांगीण आत्मविकास करने के लिए पैदा हुआ है उत्साहपूर्ण आस्था रखना। इस विश्वास के बाद समस्त मानवजाति का आमूल सुधार, समस्त मानवीय विकारों और दुखों का उन्मूलन एक व्यावहारिक वस्तु प्रतीत होने लगा। अपने को सुधारना, सभी गुणों को प्राप्त करना और सुखी होना, बहुत साधारण और सहज ज्ञात होने लगा।

पर भगवान ही कह सकता है कि, किशोरावस्था की ये महती आकांक्षाएं हास्यास्पद थीं अथवा क्या थीं और यदि वे चरितार्थ न हुईं तो दोष किसका था।

युवावस्था



पहला परिच्छेद

जिसे मैं अपनी युवावस्था का आरम्भ मानता हूं



मैं कह चुका हूं कि द्मीत्री के साथ मेरी मित्रता ने मेरे सामने जीवन का एक नया दृष्टिकोण, उसके नवीन लक्ष्य और अर्थ प्रगट किये। इस दृष्टिकोण का सार-तत्व यह था कि नैतिक परिपूर्णता प्राप्त करने का प्रयास ही मानव-नियति है और ऐसी परिपूर्णता सहज, सम्भाव्य और शाश्वत है। किन्तु अभी तक मैं इस विश्वास से उत्पन्न होनेवाले नये विचारों की गवेषणा में ही जुटा था और अपने लिए एक नैतिक और सक्रिय भविष्य के मंसूबे बांधने में मस्त था, जबकि दूसरी ओर, मेरा जीवन-क्रम पहले ही की तरह तुच्छ, ऊटपटांग और निष्क्रिय लीक पर चला जा रहा था।

अपने प्राणप्रिय मित्र ('मेरे अनुपम मीत्या,' जैसा कि प्रायः मैं स्वगत फुसफुसाया करता था) के साथ बातचीत के दौरान जिन पुनीत विचारों की मैं विवेचना किया करता था, वे अभी तक केवल मेरे मस्तिष्क के लिए संतोषप्रद थे, मेरी भावनाओं के लिए नहीं। किन्तु वह समय भी आन पहुंचा जब ये विचार इतनी ताजगी और इतने नैतिक ओज के साथ मेरे मस्तिष्क में आये कि यह सोचकर कि मैंने अभी तक इतना अधिक समय व्यर्थ गंवाया है मैं घबरा उठा और इन विचारों को तत्काल, उसी क्षण,

इस पक्के इरादे के साथ कि उनसे कभी विचलित न हूंगा, जीवन में क्रियान्वित करना चाहा।

मैं उसी समय से अपनी युवावस्था का प्रारम्भ मानता हूं।

उस समय मेरी अवस्था सोलह वर्ष की थी। मास्टर मुझे पढ़ाने के लिए आया करते थे। St.-Jérôme अभी भी मेरी पढ़ाई की देखरेख करते और मैं अनिच्छापूर्वक विश्वविद्यालय की परीक्षा की तैयारी करने को वाध्य किया गया था। पढ़ाई के वाहर मेरा समय एकान्त असम्वद्ध चिंतन और मनन, कसरत (जिसके अंतर्गत मेरा लक्ष्य दुनिया का सवसे शक्तिशाली व्यक्ति वनना था), घर के सभी कमरों में और विशेषकर दासियों के कमरेवाली दालान में निरुद्देश्य घूमने और शीशे में अपने को देखने में वीता करता था। इस अंतिम काम में मुझे सदा निराशा और घृणा हुआ करती थी, और मैं शीशे के सामने से हट जाया करता था। मेरी आकृति तो कुरूप थी ही। साथ ही मुझे अपने आपको किसी तरह सान्त्वना देने के लिए भी कुछ कहने को न मिलता था, जो कि ऐसी स्थिति में अक्सर आदमी दे लेता है। मैं यह भी न कह सकता था, कि मेरे चेहरे से विवेक, शीलता अथवा चारित्रिक महानता टपकती है। उसमें किसी भी प्रकार के भाव न मिलते थे। पूरी वनावट ही विलकुल मामूली और अनगढ़ थी। मेरी छोटी-छोटी भूरी आंखों से प्रतिभा की जगह वुद्धि की जड़ता का परिचय मिलता था— विशेपकर उस समय जव मैं दर्पण के सामने खड़ा होता। उसमें पौरुप तो और भी कम दिखाई देता। डील-डौल में मैं छोटा नहीं था, और उम्र के हिसाव से वहुत वलिष्ट होते हुए भी मेरी आकृति पिलपिली थलथल और व्यक्तित्वशून्य थी। उसमें कोई भी अच्छाई नहीं दिखती थी। उलटे वह गंवारों जैसा लगता था। वल्कि मेरे हाथ और पैर भी गंवारों जैसे वड़े वड़े थे। और यह उन दिनों मुझे और भी अपमानजनक प्रतीत होता था।

दूसरा परिच्छेद

वसंत

जिस साल मैंने विश्वविद्यालय में प्रवेश किया उस वर्ष ईस्टर अप्रैल महीने में इतना पीछे जाकर पड़ा कि इम्तहान की तारीख़ 'फर्वेजाइमोंधो सप्ताह' में रखी गई। और मुझे 'पैशन सप्ताह' में कम्यूनियन लेने के बाद ही परीक्षा की अपनी तैयारी ख़त्म करनी थी।

हिमवर्षा के बाद तीन दिन तक मौसम ख़ुशगवार, सुन्दर और स्वच्छ रहा। कार्ल इवानिच इसे "बाप के पीछे पूत का आना" कहा करते थे। सड़कों पर अब बर्फ़ का टुकड़ा भी दिखाई न देता था और गंदे कीचड़ का स्थान भीगी चमकदार पथरीली सड़क और पानी की तेज बहनेवाली छोटी छोटी धाराओं ने ले लिया था। छप्परों से लटकती बर्फ़ की अंतिम बूंदें पिघल रही थीं। घर के सामने के बग़ीचे में पेड़ों में कलियां फूट रही थीं। आंगन का रास्ता सूखा था। अस्तबल के पास, गोबर के पाले से जमे ढेर के उस पार तथा बाहरी सायबान के आस-पास के पत्थरों के बीच, काई जैसी घास ताजा होने लगी थी। यह वसंत का वह काल था जो मनुष्य की आत्मा पर अत्यंत प्रबल प्रभाव डालता है—जबकि सूर्य स्वच्छ, सम्पूर्ण और देदीप्यमान, किन्तु गर्म नहीं हुआ करता, छोटी छोटी जल धाराएं और बर्फ़ से खुली जगहें मानो हवा में ताजगी फूंक रही होती हैं, और नर्म नीले आसमान पर लम्बे पारदर्शी बादलों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं खिंची होती हैं। मैं कारण तो नहीं जानता पर मेरा विचार है कि वसंत ऋतु के उदय के इस प्रथम काल का प्रभाव बड़े नगरों में अधिक सबल और प्रत्यक्ष होता है। वहां आदमी प्रत्यक्ष को कम देखता है और अप्रत्यक्ष का अनुमान अधिक लगाता है। मैं खिड़की के पास खड़ा, ब्लैकबोर्ड के ऊपर बीजगणित का एक लम्बा समीकरण हल कर रहा था। खिड़की के दोहरे चौखटों में से पाठ-कक्ष के फ़र्श पर (जहां मेरा मन बिल्कुल

न लगता था) प्रातः सूर्य की बारीक कणों से भरी किरणें पड़ रही थीं। मेरे एक हाथ में फ़्रैंकर की बीजगणित की एक मुड़ी-चिमुड़ी प्रति और दूसरे में खड़िया का एक छोटा-सा टुकड़ा था जिसकी सफ़ेदी से मेरे दोनों हाथ, चेहरा और कोट की आस्तीन पुत चुकी थीं। निकोलाई अपने कपड़ों के ऊपर ऐप्रन डाले और आस्तीन चढ़ाये बाग़ की ओर खुलने वाली खिड़कियों का मसाला और कीलें उखाड़ रहा था। उसके काम और उसके शोर से मेरा ध्यान बंट गया। इसके अतिरिक्त, मेरा मिज़ाज यों ही बेतरह खीझा हुआ और क्षुब्ध था। आज कोई काम मुझसे बन ही न पा रहा था। सवाल के शुरू में ही मैंने ग़लती कर दी थी, नतीजा यह था कि उसे फिर से करना पड़ रहा था। दो बार खड़िया हाथ से गिर चुकी थी। मुझे यह भी भान था कि मेरे हाथ और चेहरा गंदा हो रहा है। झाड़न न जाने कहां रखा गया था। निकोलाई के काम से होनेवाली आवाज़ से मेरा चिड़चिड़ापन बढ़ता ही जा रहा था। ऐसा लग रहा था, कि ग़ुस्से से उबल पड़ूं, या किसी का मुंह नोच लूं। खड़िया और बीजगणित की किताब मैंने फेंक दीं और कमरे में टहलने लगा। उसी समय याद आयी कि आज अपराधों की स्वीकारोक्ति के लिए पादरी के यहां जाने का दिन है और आज मुझे कोई बुरा काम न करना चाहिए। फ़ौरन मेरा मिज़ाज बदल गया। मैं सीधा और शरीफ़ बन गया और निकोलाई के पास गया।

"लाओ मैं भी तुम्हारी कुछ मदद कर दूं, निकोलाई," मैंने स्वर में अधिक से अधिक कोमलता लाने का प्रयत्न करते हुए कहा। इस विचार ने कि मेरा आचरण अच्छा हो रहा है, कि मैं अपनी खिझलाहट को वश में करना चाहता हूं और किसी की सहायता कर रहा हूं, मेरी मानसिक अवस्था में और कोमलता ला दी।

मसाला काटकर कीलें हटा ली गयीं। पर इसके बाद निकोलाई जब बड़े चौखटे को उखाड़ने के लिए ज़ोर लगाने लगा तो वह नहीं निकला।

मैंने मन में तर्क किया—"यदि हम दोनों के साथ ज़ोर लगाने से चौखटा फ़ौरन उखड़ आये तो इसका अर्थ यह होगा कि आज और पढ़ना मेरे लिए पाप है, अतः मैं नहीं पढ़ूंगा।" चौखटा एक ओर से उठ आया और निकाल लिया गया।

"इसे कहां ले जाना है?" मैंने कहा।

"आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं, मैं ख़ुद ले जाऊंगा," निकोलाई ने कहा। स्पष्टतः उसे मेरा जोश देखकर अचरज हो रहा था और बात उसे पसंद नहीं आ रही थी। "मैं इन्हें अटारीवाली कोठरी में नम्बर लगाकर रख देता हूं।"

"मैं नम्बर लगा दूंगा," मैंने चौखटे को उठाते हुए कहा।

मेरे मन में आया कि अटारी यदि दो वर्स्ट दूर हो और चौखटा दुगना भारी तो मुझे अधिक संतोष होगा। निकोलाई की मदद करता हुआ मैं अपने को थका डालना चाहता था। जब मैं कमरे में वापस आया पटियां और नमक के शंकु* खिड़की के पत्थर पर बाक़ायदा सजाकर रखे हुए थे और निकोलाई बालू और बेहोश मक्खियों को झाड़कर खुली खिड़की से बाहर फेंक चुका था। ताज़ा, मीठी हवा कमरे में भर गयी थी। साथ ही नगर की कोलाहलपूर्ण गुंजार और पक्षियों का कलरव भी सुनाई पड़ने लगा था।

प्रत्येक वस्तु प्रकाश से नहायी हुई थी। कमरे में प्रफुल्लता फैल रही थी। मंद समीर मेरे 'बीजगणित' और निकोलाई के बालों के साथ

---

*जाड़ों में शीत और बर्फ़ से बचने के लिए मसाले और कीलों के ज़रिये खिड़कियां दोहरे चौखटों से मुहरबंद कर दी जाती हैं। दोहरी खिड़कियों के बीच नमी सोखने के लिए नमक के शंकु रख दिये जाते हैं। ख़ूबसूरती के लिए पटियां या छोटी छोटी ईंटें भी लगा दी जाती हैं।—सं०

खेल रहा था। मैं खिड़की के पास जाकर उसके दासे पर बैठ गया और बाग़ की ओर बाहर झुककर सोच में डूब गया।

अनायास ही कोई नवीन, अत्यधिक प्रबल और सुखद भावना मेरी आत्मा में प्रवेश कर गयी। भीगी धरती जिससे जहां-तहां हरी दूब अपनी पीली डंडियों के साथ झांक रही थी, धूप में चमकते पानी के सोते और उनमें चक्कर खाते हुए बहनेवाले मिट्टी के लोंदे और लकड़ी के टुकड़े, बकाइन की लाल लाल टहनियां जिनपर कलियां फूट रही थीं, ठीक खिड़की के नीचे झूम रही थीं, झाड़ी में चिड़ियों का उद्विग्नता से चहकता हुआ झुरमुट, बर्फ़ में भीगने से मटमैली पड़ी हुई बाड़, और, प्रधानतः सुगंधित हवा और प्रफुल्ल सूर्य—ये सभी, साफ़-साफ़, किसी नवीन और अत्यंत सुन्दर वस्तु का संदेश सुना रहे थे जो मैं समझ रहा था, जिसे मैं उन शब्दों में तो नहीं दुहरा सकता जिनमें वह मुझसे कहा गया था पर जैसा कि मैंने उसे सुना वैसा ही दुहराने का प्रयत्न करूंगा। सभी चीज़ें मुझे सौंदर्य, सुख और सदाचार का संदेश दे रही थीं। वे कह रही थीं कि, ये सभी मेरे लिए सुगम और सम्भव हैं, कि एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता, कि सौंदर्य, सुख और सदाचार वस्तुतः एक हैं। "यह बात मैंने पहले क्यों न समझी थी? कैसी दुर्बुद्धि थी मेरी अब तक? कितना सुख प्राप्त किया होता मैंने अब तक और कितना सुख मैं आगे प्राप्त कर सकूंगा!" मैंने मन में कहा। "अब मुझे शीघ्र ही बिलकुल नया आदमी बन जाना है। जितना शीघ्र सम्भव हो, बल्कि अभी मेरे जीवन का नया ढंग आरम्भ हो जाना चाहिए।" किन्तु यह सब कुछ सोचने के बावजूद मैं बड़ी देर तक खिड़की पर सपनों में डूबा, हाथ पर हाथ धरे, बैठा रहा। क्या कभी आपके साथ ऐसा हुआ है कि ग्रीष्मऋतु में दिन के वक्त जबकि बदली छायी हुई है और मौसम उदास है आप सो गये हैं और सूर्यास्त के समय जब आपकी आंखें खुली हैं तो आपकी दृष्टि अचानक चौड़ी वर्गाकार खिड़की के उस पार, हवा से परदे के नीचे जो हवा से

फूलकर बार बार अपने डण्डे से टकरा रहा है, लिन्डन वृक्षों की कतार पर पड़ी हो, जो वर्षा से भीगी, जिसके किनारे सूर्य की लाली में लाल हो रहे हों, किनारे तथा चमकीली तिरछी किरणों से प्रकाशित बाग़ की नम रविशों पर पड़ी है, आपके कानों में अचानक बाग़ में चिड़ियों का आनन्द से चहचहाना पड़ा हो; आपने सूर्य की रोशनी से पारदर्शी बनकर पतंगों को खुली खिड़की के बाहर मंडराते देखा हो; वर्षा के बाद हवा में आनेवाली ताज़गी और सुगंध के प्रति आपकी संज्ञा जगी है और आप सोचने लगे हैं, "छि:! कैसी ख़ूबसूरत शाम मैंने सोकर गंवा दी!" और बाग़ में जाकर ज़िंदगी का मज़ा लूटने के लिए आप उछलकर पलंग से नीचे आ गये हैं। यदि आपके साथ ऐसा हुआ है तो उसे ही उस प्रबल आवेग का नमूना मानिए जो उस समय मेरे मन में उठा था।

तीसरा परिच्छेद

चिन्तन

"आज मुझे अपने अपराधों को स्वीकार करने के लिए पादरी के पास जाना है। आज मैं अपने सारे पाप धो डालूंगा," मैंने मन में कहा। "और आगे फिर कोई पाप न करूंगा।" (यहां मैंने अपने उन सभी पापों को याद किया जिनकी याद मुझे सबसे अधिक सताया करती थी)। मैं हर इतवार को बिना नागा, गिरजाघर जाया करूंगा और वहां से आकर पूरा एक घंटा बाइबिल का पाठ करूंगा। इसके बाद विश्वविद्यालय में प्रवेश करने पर मुझे जो २५ रूबल प्रतिमास मिला करेंगे उसमें से ढाई रूबल, (यानी दसवां भाग) बिना नागा ग़रीबों को इस ढंग से दूंगा कि कोई जान न सकेगा—और यह भी मैं भिखमंगों को नहीं बल्कि ग़रीबों को, किसी यतीम या बूढ़े आदमी को जिसे कोई न जानता हो, ढूंढ़कर दूंगा।

"मेरा अपना एक कमरा होगा (सम्भवतः St.-Jérôme वाला) और मैं खुद उसकी देखभाल करूंगा और उसे बिल्कुल साफ़-सुथरा रखूंगा। और मैं नौकर से कोई काम न लूंगा, क्योंकि वह भी मेरी ही तरह मनुष्य है। मैं पैदल विश्वविद्यालय जाया करूंगा (यदि मुझे वहां जाने के लिए खास द्राश्की मिलेगी तो मैं उसे बेचकर उसके पैसे भी ग़रीबों को दे दूंगा) और मैं सारा काम अत्यंत नियमित रूप से करूंगा (यह "सारा काम" क्या है, इसकी मुझे उस समय कोई धारणा न थी, किन्तु इतना मुझे स्पष्ट बोध था कि यह 'सब कुछ' एक बुद्धिमत्तापूर्ण, नैतिक और अनिन्द्य जीवन है)। मैं कालेज के लेक्चर तैयार करूंगा, बल्कि यह कि विषयों को पहले ही से पढ़ रखूंगा ताकि पहले पाठ्यक्रम में अव्वल रहूं, और बाकायदा एक निबन्ध लिखूंगा। दूसरे पाठ्यक्रम का मुझे सब कुछ पहले से मालूम रहेगा और सम्भवतः मुझे सीधे तीसरे पाठ्यक्रम में ही बिठा देंगे। इस प्रकार अठारह साल की उम्र में ही मैं दो दो स्वर्ण-पदक प्राप्त स्नातक हो जाऊंगा। इसके बाद एम. ए., फिर डाक्टरेट, और इस प्रकार मैं रूस का, शायद समूचे यूरोप का, अग्रगण्य विद्वान हो जाऊंगा। और इसके बाद?" मैंने अपने आपसे पूछा। किन्तु यहां मुझे याद आ गया कि ये सब सपने हैं, अहंकार और पाप है और इसको भी मुझे आज ही शाम को पादरी के सामने स्वीकार करना पड़ेगा। और मैं फिर अपनी चिन्तनधारा के आदि पर पहुंच गया। "अपने पाठ की तैयारी के लिए मैं पैदल ही वोरोब्योवी गोरी* जाऊंगा। वहां किसी पेड़ के नीचे अपने लिए जगह चुनकर बैठ जाऊंगा और पाठ याद करूंगा। कभी कभी अपने साथ खाने के लिए पेदोत्ती की दूकान से पनीर या समोसे या अन्य कोई चीज़ ले जाया करूंगा।

---

* मास्को के दक्षिण-पश्चिम में मस्क्वा नदी के दायें हाथ छोटी छोटी पहाड़ियां हैं जिन्हें उस समय रूसी भाषा में 'वोरोब्योवी गोरी' कहते थे। – सं०

वहां थोड़ा आराम करूंगा, फिर कोई अच्छी-सी किताब पढ़ूंगा, या दृश्यों के चित्र बनाऊंगा या कोई बाजा बजाऊंगा (बांसुरी तो मुझे सीखनी ही होगी)। तब 'वह' भी टहलने के लिए 'बोरोव्योवी गोरी' आयेगी और किसी दिन मेरे पास आकर मुझसे पूछेगी कि मैं कौन हूं। और तब मैं उसकी ओर विषाद भरी आंखें डालकर कहूंगा कि मैं एक पादरी का बेटा हूं और मुझे यहां आकर एकाकी, बिलकुल एकाकी बैठने में ही सुख मिलता है। तब वह मेरे हाथ में अपना हाथ डालकर कुछ कहेगी और मेरी बग़ल में बैठ जायगी। इस प्रकार हम दोनों नित्य वहां जायेंगे और हम लोगों में मित्रता हो जायगी, और मैं उसका चुम्बन लूंगा। नहीं, नहीं, यह तो अनुचित कार्य होगा। मैं तो आज दिन से किसी औरत की ओर आंख भी न उठाऊंगा। मैं भूलकर भी दासियों के कमरे में न जाऊंगा, बल्कि उधर का रास्ता ही छोड़ दूंगा। तीन साल में मेरे ऊपर कोई अभिभावक न होगा और तब मैं विवाह करूंगा। निश्चय ही मैं नित्य अधिक से अधिक कसरत करूंगा ताकि बीस वर्ष की उम्र आने पर मैं रैप्पो से भी अधिक बलिष्ठ हो जाऊं। पहले दिन दोनों भुजाएं तानकर दस सेर वज़न पांच मिनट तक उठाये रखूंगा। दूसरे दिन साढ़े दस सेर, तीसरे दिन ग्यारह सेर। और इसी तरह बढ़ाता जाऊंगा ताकि अंत में दोनों हाथ में चार-चार पूड[*] वज़न उठा सकूं। इस प्रकार मैं अपनी जान पहचान के सभी व्यक्तियों से अधिक बलिष्ठ हो जाऊंगा। फिर यदि किसी ने मेरा अपमान करने की हिम्मत की या 'उनके' बारे में कुछ ऐसी-वैसी बात मुंह से निकाली तो उसको छाती पर से पकड़कर ज़मीन से हाथ भर उठा लूंगा ताकि वह मेरा बाहुबल देख ले और इसके बाद उसे छोड़ दूंगा। पर यह भी तो अनुचित काम होगा। हटाओ भी, मैं उसे कोई नुक़सान थोड़े ही पहुंचाऊंगा। मैं तो केवल उसे दिखा दूंगा कि ..."

---

[*] एक पूड सोलह किलोग्राम के बराबर है।—सं०

मेरी युवावस्था के सपने उतने ही बचकाने थे जितने बाल्यावस्था और किशोरावस्था के। किन्तु इसके लिए मेरी भर्त्सना करने की आवश्यकता नहीं। मुझे तो पूरा विश्वास है कि यदि मैं भरापूरा बुढ़ापा देखूं और उस वक्त तक अपनी कहानी जारी रखूं तो भी मैं—७० साल का एक वृद्ध—वैसे ही बेढंगे बचकाने सपने देखता पाया जाऊंगा जैसे आज देखा करता हूं। मैं अपने सपनों में किसी सुंदरी मारिया को, अपने को—पोपले मुंहवाले मुझ बुड्ढे को—उसी तरह प्यार करता देखूंगा जिस तरह उसने माज़ेप्पा* को किया था। मैं देखूंगा कि मेरा मंद बुद्धि बेटा किन्हीं असाधारण परिस्थितियों के कारण अचानक राजमंत्री बन गया है; अथवा, मुझे अनायास ही करोड़ों का गुप्त धन मिल गया है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई मनुष्य या मनुष्य की कोई अवस्था ऐसी नहीं जो सपने देखने की हितकर, सांत्वनादायिनी क्षमता से वंचित हो। किन्तु केवल एक गुण—कि वे सभी असंभव अथवा जादू के देश से सम्बद्ध होते हैं—छोड़कर उनमें अन्य कोई समानता नहीं। प्रत्येक मनुष्य और मानवजीवन की प्रत्येक अवस्था के सपने अपना विलग और विशिष्ट चरित्र रखते हैं। अपने जीवन के उस काल में जिसे मैं किशोरावस्था की इति और युवावस्था का आदि मानता हूं चार आवेग मेरे स्वप्नों की आधारशिला थे: एक तो 'उसके' प्रति प्यार। यह एक काल्पनिक नारी थी जिसके विषय में मैं सदा इसी भांति सोचा करता था और जिससे कहीं और किसी क्षण साक्षात्कार हो जाने की मैं आशा बांधे हुए था। 'वह' कुछ कुछ सोनेच्का कुछ कुछ वासीली की पत्नी माशा जबकि वह नांद के पास कपड़े धो रही होती, और कुछ कुछ श्वेत ग्रीवा में मोतियों का हार पहने उस स्त्री के समान थी जिसे बहुत दिन पहले मैंने नाट्यशाला में अपने 'बाक्स' की बग़लवाले 'बाक्स' में बैठे देखा था। दूसरा आवेग था, प्यार के प्यार का। मैं चाहता था कि सभी मुझे जानें और प्यार

---

* पुश्किन की कविता "पोल्तावा" का एक प्रसंग।—सं०

करें। मैं चाहता था कि मैं अपना नाम, निकोलाई इर्तेन्येव, ऊंची आवाज़ में बोलूं और यह नाम सुनते ही सभी चौंककर मेरे पास इकट्ठे हो जायं—'अरे! यही है वह आदमी।' और किसी वस्तु के लिए वे सभी मेरे प्रति अनुगृहीत हों। तीसरा आवेग था, किसी असाधारण, स्वर्णिम आनंद की आशा—ऐसा महान और स्थायी आनंद जो आनंद नहीं वरन् पागलपन की सीमारेखा को छूनेवाला आनंदातिरेक हो। मेरे मन में यह बात इस तरह बैठ गयी थी कि मैं किसी असाधारण परिस्थिति द्वारा शीघ्र ही दुनिया का सबसे महान और सबसे नामी आदमी बन जानेवाला हूं कि निरंतर एक मोहिनी आशा के झूले झूला करता था। मुझे सदा प्रतीत होता था कि वह असाधारण परिस्थिति आरम्भ होने ही वाली है और कोई मनुष्य जो कुछ भी चाह सकता है मैं वह सभी प्राप्त करने वाला हूं। और यह सोचते हुए कि वह चीज़ वहां जहां इत्तफ़ाक से मैं अभी मौजूद नहीं हूं शुरू हो चुकी है, मैं हमेशा कभी इस दिशा और कभी उस दिशा की दौड़ लगाते फिरता था। चौथा और प्रधान आवेग था, अपने से अरुचि और पश्चात्ताप। किन्तु यह ऐसा पश्चात्ताप था जो आनेवाले स्वर्णिम सुख की आशा के साथ इस प्रकार मिश्रित था कि उसमें अफ़सोस जैसी कोई वस्तु न थी। अतीत से पल्ला छुड़ाना, हर काम नये सिरे से करना, जो थीं ऐसी सभी वस्तुओं को भुला देना, और जीवन के सारे सम्बन्धों समेत जीवन को पुनः आरम्भ करना—यह मुझे इतना सहज और स्वाभाविक ज्ञात होता था कि अतीत का न मुझपर बोझ था न वह मेरे पांवों की बेड़ी। बल्कि मुझे अतीत से घृणा करने, उसे वास्तविक से अधिक मलिन रंगों में देखने में, आनंद प्राप्त होता था। जितनी ही अधिक काली अतीत की मण्डलाकार स्मृतियां थीं उतनी ही विमलता और चमकीलेपन के साथ वर्तमान का विमल और चमकीला बिंदु तथा भविष्य के इन्द्रधनुषी रंग सामने आते थे। विकास के मेरे उस सोपान में पश्चात्ताप का यह स्वर और पूर्णता प्राप्त करने की यह आवेगयुक्त इच्छा मेरी प्रधान आत्मिक भावना थी। और यहीं

स्वर था जिसने अपने, लोगों के, और ईश्वर की दुनिया के प्रति मेरे विचारों के लिए नये सिद्धांत प्रदान किये। ऐ सहृदय सांत्वनादायी स्वर! तू ही आगे के मेरे जीवन में – उन दुखपूर्ण दिनों में जब आत्मा जीवन के झूठ और विकारों के आगे चुपके से आत्मसमर्पण कर दिया करती – प्रायः ही हठात् सिर उठाकर हर असत्य का प्रतिवाद करता, अतीत का परदाफ़ाश कर देता, वर्तमान के चमकीले स्थल की ओर संकेत कर उसे प्यार करवाता और भविष्य के लिए कल्याण और सुख का आश्वासन देता। ओ! मंगलमय, सांत्वनादायी स्वर! क्या एक ऐसा भी दिन आयेगा जब तू शांत हो जायगा?

चौथा परिच्छेद

हमारा पारिवारिक मण्डल

उस वसंत में पिताजी शायद ही कभी घर पर हुआ करते थे। पर जब होते, बड़ी मस्ती में होते। वे प्यानो पर अपनी प्रिय धुनें बजाते, शरारत भरे चेहरे से हम लोगों की ओर देखते, मीमी और हम सभी की चुटकियां लेते। मीमी के बारे में एक दिन उन्होंने कहा कि, जोर्जिया का छोटा ज़ार उसे घोड़े पर घूमते देख उसके ऊपर आशिक हो गया है और पादरियों के पास तलाक़ की अर्ज़ी भेजी है। मेरे बारे में बोले कि, मैं वियेना में राजदूत का सहायक सचिव बना दिया गया हूं। यह सूचना उन्होंने बहुत संजीदा चेहरा बनाकर दी थी। कातेन्का को वह मकड़ों से डराया करते थे क्योंकि वह उनसे बहुत डरती थी। हमारे मित्र दुब्कोव और नेख्ल्यूदोव से वे बड़े प्रेम से मिलते और हमें तथा इन आगंतुकों को निरंतर अगले साल की अपनी योजनाएं बताया करते थे। ये योजनाएं अगले ही दिन बदल जातीं और उनमें विरोधाभास प्रगट होने लगता था। फिर भी वे इतनी आकर्षक थीं कि हम बड़ी उत्सुकता से उन्हें सुना करते थे। ल्यूबोच्का तो इकटक उनके मुंह की ओर देखती और उनकी बातें

सुनती रहती थी ताकि कहीं एक शब्द भी न छूट जाय। कभी उनकी योजना हमें मास्को में विश्वविद्यालय में छोड़ ल्यूबोच्का के साथ दो साल इटली जाकर रहने की होती। कभी वह क्रीमिया के दक्षिणी तट पर एक ज़मींदारी ख़रीदने और गर्मियों में वहीं जाकर रहने की बात करते; और कभी सपरिवार पीटर्सबर्ग में जा बसने के मनसूबे बांधते। पिताजी की इस असाधारण प्रफुल्लता के अतिरिक्त उनमें एक और परिवर्तन आया था जिससे मुझे बहुत आश्चर्य होता था। उन्होंने अपने लिए नये फ़ैशन के कुछ कपड़े सिलवाये थे—ज़ैतूनी रंग का कोट, जूते के तस्मे वाली फ़ैशनेबुल पतलून और लम्बा ओवरकोट जो उन्हें ख़ूब फबता था। बाहर जाने के समय वह ख़ूब अच्छे अच्छे सेन्ट और ख़ुशबू लगा लेते थे; ख़ासकर एक महिला के यहां जिनका ज़िक्र आने पर मीमी आह भरती उसके चेहरे पर एक ऐसा भाव आ जाता जिसका अर्थ होता—"आह! ये अनाथ! कैसा विपद अनुराग है। अच्छा हुआ कि 'वह' इसे देखने के पहले ही चल दी," आदि। मुझे निकोलाई से पता चला (पिताजी तो अपने जुए-बाज़ी के सम्बन्ध में हमें कभी कुछ बताते न थे), कि उस साल के जाड़ों में पिताजी ने जुए में ख़ूब रुपये जीते हैं। उन्होंने एक बहुत ही बड़ी रक़म जीतकर उसे पूरी की पूरी बैंक में जमाकर दी है और अब इस वसंत भर फिर नहीं खेलना चाहते। कदाचित इसी लिए वे जल्दी से जल्दी देहात चले जाना चाहते थे क्योंकि उन्हें यहां ठहरने में अपने को रोक न सकने का भय था। उन्होंने यहां तक निश्चय कर लिया कि मेरे विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की प्रतीक्षा किये बिना ही ईस्टर के फ़ौरन ही बाद लड़कियों को साथ लेकर पेत्रोव्स्कोये चले जायंगे। मैं और वोलोद्या भी बाद में वहीं आ जायंगे।

जाड़े भर और यहां तक कि वसंत ऋतु आ जाने तक वोलोद्या दुबकोव के साथ अभिन्न बना रहा। किन्तु द्मीत्री के प्रति वह थोड़ा सर्द हो गया था। जहां तक मैं उनकी बातों से समझ सका, उनके मनोरंजन

के प्रधान साधन थे—लगातार शैम्पेन पीना, स्लेज पर चढ़कर उन नौजवान महिलाओं की खिड़कियों के नीचे से निकलना जिन्हें दोनों ही प्यार करते थे और बाल-नाच के आयोजनों में—बच्चों के बॉल-नृत्यों में नहीं बल्कि असली बॉल-नृत्यों में—युगल नाच नाचना।

इस अंतिम वस्तु ने मेरे और वोलोद्या के बीच, हमारे पारस्परिक प्यार के बावजूद, कुछ दुराव ला दिया। हमें ऐसा प्रतीत होता था कि एक लड़के के जिसे अब भी मास्टर पढ़ाने आते हैं और एक वयस्क व्यक्ति के जो भव्य बॉल-नृत्यों में भाग लेता है इतना अधिक अंतर है कि वे एक दूसरे से घुलकर बातें नहीं कर सकते। कातेन्का वयस्क हो चुकी थी। वह अब बहुत से उपन्यास पढ़ा करती थी। यह ख्याल कि उसकी शीघ्र ही शादी हो सकती है, अब मुझे मज़ाक नहीं मालूम होता था। पर यद्यपि वोलोद्या भी वयस्क हो गया था वे मिलते-जुलते न थे बल्कि एक-दूसरे के प्रति तिरस्कार भाव रखते से ज्ञात होते थे। आम तौर से घर रहने पर कातेन्का को उपन्यास पढ़ना छोड़ दूसरा कोई काम न था और वह अधिकांश समय ऊबी हुई सी रहती थी। किन्तु जब पुरुष लोग घर पर आते तो वह चुलबुली और आकर्षक बन जाती। वह उनकी ओर इतनी तरह के आंखों के इशारे करती कि मैं सब का अर्थ ही न समझ पाता था। बाद में जाकर जब उसने मुझे बताया, कि केवल एक प्रकार का हाव-भाव—आंखों का हाव-भाव—लड़कियों के लिए अनुमोदित है तभी मैं आंखों के उन विचित्र, अस्वाभाविक इशारों का जिन से दूसरों को कोई अचरज नहीं होता था मतलब समझ सका। ल्यूबोच्का भी लम्बी पोशाकें पहनने लगी थी जिनमें उसकी भद्दे आकार की टांगें लगभग छिप जाती थीं। पर वह पहले ही की तरह रोने-स्वभाव की थी। अब उसका अरमान घुड़सवार सेना के किसी अफ़सर से विवाह करने का न होकर किसी गायक अथवा वादक से ब्याह करने का था। तदनुसार उसने अधिक परिश्रम के साथ संगीत का अभ्यास करना आरम्भ कर दिया था। St.-Jérôme

ने यह जानते हुए कि हमारे घर में अब उन्हें केवल मेरी परीक्षा समाप्त होने तक टिकना है, किसी काउन्ट के यहां नौकरी ढूंढ़ ली थी। नयी जगह पा जाने के बाद वे हमारे घर को कुछ अवहेलनाभाव से देखने लगे थे। वह घर पर बहुत ही कम रहते थे। उन्होंने सिगरेट पीनी शुरू कर दी थी जो उन दिनों फ़ैशन की चरम सीमा थी, और निरंतर सीटी बजाकर रसीली धुनें गुनगुनाया करते थे। मीमी का स्वभाव दिनोदिन और कड़वा होता जा रहा था। हम लोगों के वयस्क होने के साथ मानो उन्होंने हम लोगों से भले की उम्मीद करना ही छोड़ दिया था।

भोजन के समय नीचे आने पर मैंने केवल मीमी, कातेन्का, ल्यूबोच्का और St.-Jérôme को भोजन के कमरे में मौजूद पाया। पिताजी कहीं बाहर गये हुए थे। वोलोद्या अपने साथियों के साथ अपने कमरे में इम्तहान की तैयारी कर रहा था और वहीं खाना लाने का हुक्म दिया था। इधर मीमी ही, जिनका हममें से कोई आदर नहीं करता था, मेज़ की प्रधान जगह पर बैठने लगी थी; भोजन के समय का पुराना आनंद बहुत कुछ जाता रहा था। अम्मा और नानी के दिनों में भोजन एक प्रकार का समारोह था जब परिवार के लोग दिन के एक निश्चित समय पर एक जगह मिला करते थे और जो दिन को दो आधों में बांटता था। अब तो हम कभी देर से और कभी दूसरे परोसन के समय पहुंचते, साधारण गिलासों से ही हल्की शराबें पीते (इसकी शुरुआत St.-Jérôme ने की थी), कुर्सी में पोड़े रहते, भोजन की समाप्ति से पहले मेज़ से उठ जाते, और इसी तरह के नियमोल्लंघन किया करते थे। तबसे भोजन पहले जैसी आनंदयुक्त दैनिक पारिवारिक विधि न रहा था।

पेत्रोव्स्कोये के उन पुराने दिनों में सब लोग मुंह-हाथ धो ताज़ा हो और भोजन के लिए कपड़े बदलकर दो बजे बैठकखाने में पहुंच जाया करते थे। वहां पहुंचकर वे हंसी खेल में बातें करते हुए खाने का इंतज़ार करते। ज्यों ही खानसामा के भण्डारघर की घड़ी दो का घंटा देने के लिए

झनझनाना शुरू करती फ्रोका बांह पर तौलिया डाले, निःशब्द, मर्यादित एवं गम्भीर मुद्रा के साथ कमरे में प्रवेश करता। "खाना तैयार है," वह ज़ोर से, संजीदा स्वर में ऐलान करता। और सभी संतुष्ट, प्रसन्न चेहरों के साथ भोजनगृह के लिए रवाना हो जाते थे—आगे आगे बड़े लोग, उनके पीछे बच्चे। कलफ़ की हुई घघरियों की खरखराहट या जूतों की चरमराहट के साथ सभी अपनी अपनी जगहों में बैठ जाते और धीमे धीमे स्वर में बातें करते।

फिर मास्को में, सभी नानी के आ जाने की प्रतीक्षा करते, मंद स्वर में बातें करते हुए मेज़ के सामने खड़े हो जाया करते। गव्रीलो पहले ही उन्हें भोजन तैयार होने की खबर देने जा चुका होता था। अचानक दरवाज़ा खुलता और कपड़ों की हल्की सरसराहट और पैरों की आहट सुनायी देती नानी अपने कमरे से एक विचित्र काढ़ी टोपी पहने, मुसकुराती अथवा चिड़चिड़ी मुद्रा में (यह उस दिन के उनके स्वास्थ्य की अवस्था पर निर्भर था) बाहर आतीं। गव्रीलो उनकी कुर्सी की ओर दौड़ता। दूसरी कुर्सियां भी ज़मीन पर रगड़ी जाती और रीढ़ में एक प्रकार की ठण्डी कंपकपी दौड़ जाती (यह भूख की पूर्व-सूचना थी)। हम कुछ नम, कलफ़ किये तौलिये संभाल लेते। पावरोटी का दो-एक ग्रास मुंह में डालते और अधीर, आनन्दपूर्ण लालसा के साथ मेज़ के नीचे हाथों को रगड़ते हुए, हम शोरबे के भाप फेंकते कटोरे की ओर देखते थे। खानसामां हर आदमी का पद, उम्र और नानी का कौन कितना प्रियपात्र है, इसका ख्याल रखते हुए शोरबा ढालता था।

अब भोजन के आने पर मुझे वैसी प्रसन्नता या अधीरता की अनुभूति न होती थी।

इस समय मीमी, St.-Jérôme और लड़कियों के बीच हमारे रूसी भाषा के मास्टर के बदशक्ल जूतों और प्रिन्सज़ कोर्नाकोवा की झालरदार पोशाक की चर्चा चली हुई थी। इस तरह की बातचीत के

प्रति मुझे वास्तविक घृणा थी जिसे मैं ल्यूबोच्का और कातेन्का के सामने तो छिपाने की भी कोशिश नहीं करता था। किन्तु इस समय मेरा हृदय नवीन, पावन सद्भावनाओं से इतना ओत-प्रोत था कि इस तरह की बातचीत मुझे विचलित न कर सकी। मैं आज शिष्टता की मूर्ति बना हुआ था। वे लोग जो कुछ कहते, उसे मैं एक विशिष्ट, सौजन्यपूर्ण मुसकान के साथ सुनता। मैंने बड़ी नम्रता से क्वास का गिलास बढ़ाने को कहा। St.-Jérôme ने भोजन के पहले मेरे मुंह से निकले एक शब्द को सुधारते हुए जब बताया कि je puis * कहने के बदले je peux ** कहना बेहतर होता है तो मैं उनसे तत्काल सहमत हुआ। तो भी मैं स्वीकार करूंगा कि यह देखकर कि कोई मेरी विनम्रता और सुशीलता पर विशेष ध्यान नहीं दे रहा है मेरे मन में विराग उठा। भोजन के बाद ल्यूबोच्का ने मुझे एक कागज़ दिखाया जिसमें उसने अपने सारे पापों को लिख रखा था! मैंने कहा, कि यह तो अच्छा ही किया है तुमने, पर मनुष्य को अपने पाप वास्तव में अपनी आत्मा पर अंकित करने चाहियें तथा तुमने जो किया है वह असल चीज़ नहीं है।

"क्यों," उसने पूछा।

"कोई बात नहीं। यह भी एक तरह से ठीक ही है। तुम मेरी बात नहीं समझोगी।" और मैं कोठे पर अपने कमरे में चला गया। St.-Jérôme से मैंने कहा कि पढ़ने जा रहा हूं। किन्तु वास्तव में मैं स्वीकारोक्ति की विधि के पहले के डेढ़ घंटों में पूरे जीवन के लिए अपने कर्तव्यों और कामों की एक सूची तैयार करना तथा एक कागज़ पर जीवन के अपने उद्देश्य और वे नियम जिनपर अविचल रहकर चलूंगा, लिख डालना चाहता था।

---

* [मैं कर सकूंगा]

** [मैं कर पाऊंगा]

पांचवां परिच्छेद

नियम

मैंने कागज़ का एक टुकड़ा ले लिया। सबसे पहले मैं अगले वर्ष के लिए अपने कामों और कर्तव्यों की सूची तैयार कर लेना चाहता था। पर कागज़ में लाइनें लगाने की ज़रूरत थी। रूलर नहीं मिल सका तो मैंने इस काम के लिए लैटिन शब्दकोष का प्रयोग किया। कागज़ पर शब्दकोष रखकर जब मैंने कलम से रेखा खींची तो देखा कि वहां स्याही के धब्बे फैल गये। इसके अलावा, शब्दकोष कागज़ की चौड़ाई पर छोटा पड़ता था, अतएव लकीर अंत में जाकर टेढ़ी हो गयी। मैंने दूसरा कागज़ निकाला और शब्दकोष को खिसकाते हुए जैसे-तैसे उसपर रेखाएं खींच डालीं। अपने कर्तव्यों को तीन कोटियों में विभक्त करते हुए – अपने प्रति, पड़ोसी के प्रति और ईश्वर के प्रति – मैंने पहली कोटि को लिखना शुरू किया। किन्तु उसकी सूची इतनी लम्बी निकली, और उसके अंदर इतने उपविभाजन थे कि 'जीवन के नियम' शीर्षक देने के बाद ही आगे बढ़ना आवश्यक प्रतीत हुआ। मैंने कागज़ के ६ पन्ने लिए और उन्हें कापी की तरह सीकर ऊपर लिखा 'जीवन के नियम'। ये शब्द कुछ ऐसे टेढ़े-मेढ़े बन पड़े थे कि मैं बड़ी देर तक उन्हें फिर से लिखने की बात सोचता रहा। फटी-चिथी सूची और आकारहीन शीर्षक को देखता हुआ, मैं बड़ी देर तक विचार में डूबा रहा। मेरी आत्मा में जो वस्तुएं इतनी सुंदर और विमल हैं, वे कागज़ पर उतरने पर इतनी घिनौनी क्यों लगती हैं? और जीवन में भी जिस समय मैं अपनी सोची हुई किसी बात पर अमल करना चाहता हूं उस समय ऐसा ही क्यों होता है?

"पादरी साहब आ गये हैं। नीचे चलकर उनके आदेश सुन लीजिए," निकोलाई ने आकर सूचना दी।

मैंने कापी मेज़ में छिपा दी, आईना देखा और बालों को ऊपर की तरफ़ ब्रुश किया (मेरी राय में इससे मेरे चेहरे पर मननशीलता की छाप आ जाती थी) और मुलाक़ातवाले कमरे में पहुंचा जहां एक ढकी मेज़ पर प्रतिमाएं और जलती मोमबत्तियां सजायी गयी थीं। मेरे वहां पहुंचने के साथ ही पिताजी ने भी दूसरे दरवाज़े से प्रवेश किया। पादरी साहब ने उन्हें आशीर्वाद दिया। वह श्वेत केश और शुष्क, झुर्रीदार चेहरेवाले मठवासी सन्त उदास थे। पिताजी ने उनके छोटे, चौड़े और सूखे हाथ को चूमा। मैंने भी वही किया।

"वोलोद्या को बुलाना," पिताजी ने "कहा। कहां गया वह? हां, वह विश्वविद्यालय में दीक्षा ले रहा है।"

"वह प्रिंस के साथ पढ़ रहा है," कातेन्का ने कहा और यह कहकर ल्यूबोच्का की ओर ताका। ल्यूबोच्का न जाने क्यों लजा गयी और कुछ दुखने का बहाना कर कमरे के बाहर निकल गयी। मैं भी उसके पीछे पीछे गया। बैठकखाने में पहुंचकर वह रुक गयी और काग़ज़ पर कुछ और लिखा।

"तुमने इसी बीच कोई नया पाप कर डाला क्या?" मैंने पूछा।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं," उसने झेंपते हुए कहा।

उसी समय मुझे बग़ल के कमरे में द्मीत्री की आवाज़ सुनायी पड़ी जो वोलोद्या से विदा ले रहा था।

"तुम्हें हर बात में प्रलोभन नज़र आता है।" कातेन्का ने कमरे में प्रवेश करते हुए ल्यूबोच्का से कहा।

मेरी समझ में न आया कि मेरी बहिन को क्या हो गया था। वह इतनी परेशान थी कि उसकी आंखों में आंसू भर आये थे। और उसकी परेशानी बढ़कर अपने और कातेन्का के प्रति, जो स्पष्टतः उसे छेड़ रही थी, क्रोध में परिणत हो गयी।

"कोई भी देख सकता है कि तुम 'बाहर की' हो।" ('बाहर की' कहने से अधिक बड़ा अपमान कातेन्का का नहीं किया जा सकता था।

और इसलिए ल्यूबोच्का ने जानबूझकर उसके प्रति इस शब्द का प्रयोग किया था।) "यहां धर्म-कर्म का काम होने जा रहा है और तुम हो कि ठीक ऐसे समय मेरा मन बिगाड़ दिया। तुम्हें जान लेना चाहिए कि मैं इसे मज़ाक नहीं समझती," वह रोष भरे स्वर में कहती गयी।

"निकोलेन्का! तू जानता है क्या लिखा है इसने कागज़ पर?" कातेन्का ने 'बाहरी' शब्द से चिढ़कर कहा, "इसने लिखा है ..."

"मैं नहीं जानती थी, कि तू इतने दुष्ट स्वभाव की होगी," ल्यूबोच्का ने हम लोगों के पास से हटते हुए क्रोध से कहा। "इसी ने जानकर मुझसे पाप करवाया और वह भी ऐसे अवसर पर। मैं भी क्या तेरे दिल पर जो बीता करती है उसपर तुझे छेड़ा करती हूं?"

छठवां परिच्छेद

स्वीकारोक्ति

मन को व्याकुल करनेवाले इन्हीं विचारों को लिए हुए मैं फिर मुलाकातवाले कमरे में आया जहां सभी इकट्ठे थे। पादरी साहब स्वीकारोक्ति के पूर्व की प्रार्थना के लिए उठे। चारों ओर फैली शान्ति के बीच ज्यों ही उस संत का निर्मोही भावपूर्ण स्वर गूंज उठा और विशेषकर जब उन्होंने हमें ये शब्द कहे—"बिना संकोच, बिना छिपाये और बिना घटाये अपने सभी पापों को स्वीकार करो, तुम्हारी आत्मा प्रभु के समक्ष पावन हो जायगी। किन्तु यदि तुमने कुछ भी छिपाया तो तुम्हारे ऊपर दुगुना अपराध चढ़ेगा।" पिछले सवेरे के मेरे धार्मिक आवेग जिन्होंने आगे आनेवाली विधि के विचार से मुझे झकझोरा था ताज़ा हो गये। एक प्रकार से अपनी इस मानसिक स्थिति में मुझे रस प्राप्त हो रहा था। मैं अन्य सभी विचारों को रोककर तथा किसी वस्तु से डरने का प्रयत्न करते हुए इस स्थिति को यथावत रखना चाहता था।

पिताजी सब से पहले स्वीकारोक्ति के लिए गये। उन्हें वहां काफ़ी समय लगा। इस बीच हम लोग मुलाकातवाले कमरे में चुप बैठे रहे अथवा अस्फुट स्वर में कौन पहले जायगा इसे तय करते रहे। इसके बाद पादरी की प्रार्थना करने का स्वर फिर दरवाज़े के उस पार सुनाई पड़ा और इसके बाद ही पिताजी के पैरों की आहट आयी। दरवाज़ा चरमराया, और वह अपनी आदत के अनुसार खांसते और एक कंधे को दूसरे से ऊंचा किये, बाहर निकले। उन्होंने हम लोगों की ओर न देखा।

"ल्यूबोच्का, अब तू जा और देख, सब कुछ कह देना। तू ही तो हमारी सबसे बड़ी पापिनी है," पिताजी ने उसके गाल चिकोटते हुए मज़ाक किया।

ल्यूबोच्का के चेहरे का रंग चढ़ता और उतरता रहा। उसने अपने पेशबंद से सूची निकाली, फिर छिपा ली। उसका सिर दोनों कंधों में इस तरह सिकुड़ा हुआ था मानों ऊपर से मार पड़नेवाली हो। इस प्रकार वह दरवाज़े में घुसी। वह देर तक न ठहरी पर बाहर निकलने पर उसके कंधे सिसकियों से कांप रहे थ।

अंत में, सुंदरी कातेन्का के बाद, जो मुसकराती हुई बाहर आयी थी, मेरी बारी आयी। उस अर्ध-प्रकाशमान कमरे में मैं आतंक की वही बोझिल भावना लेकर घुसा। बल्कि मैं उस आतंक को जानबूझकर बढ़ा देना चाहता था। पादरी उपासना की मेज़ के सामने खड़े थे। उन्होंने धीरे से मेरी ओर सिर घुमाया।

मैं पांच मिनट से अधिक नानी के कमरे में नहीं ठहरा हूंगा। किन्तु बाहर निकला तो अत्यंत प्रसन्न था। मेरी उस समय की धारणा के अनुसार मैं पूर्णतः शुद्ध, नैतिक रूप से परिवर्तित नया आदमी बनकर निकला था। अपने चारों ओर के पुराने सामान – वे ही कमरे, वे ही कुर्सी-मेज़, और मेरा वही चेहरा (मैं चाहता था कि जैसे मेरा आंतरिक कायापलट

हो गया है वैसे ही वाह्य रूप भी वदल जाता)—मुझे अप्रिय जान पड़े। फिर भी, और उनके वावजूद, मैं सोने जाने के समय तक वड़ी ही प्रमुदित मानसिक अवस्था में रहा।

मैं ऊंघता हुआ कल्पनालोक में अपने सारे पापों का जिनसे मुझे मुक्ति प्राप्त हुई थी, लेखा ले ही रहा था, कि अचानक एक शर्मनाक गुनाह की जिसे मैंने स्वीकारोक्ति के समय नहीं वताया था, याद आ गयी। स्वीकारोक्ति के पहले की प्रार्थना के शब्द मेरे कानों में गूंज उठे और लगे लगातार मानसपटल पर हथौड़े मारने। उसी क्षण मेरी शांति जाती रही। "और यदि तुमने कुछ भी छिपाया तो तुम्हारे ऊपर दुगुना अपराव चढ़ेगा"—ये शब्द वार-वार मेरे मन में गूंजने लगे। मैं तो इतना वड़ा पापी निकला कि कोई दण्ड पर्याप्त न होगा मेरे लिए। वड़ी देर वेचैनी से करवटें वदलते हुए मैं ईश्वर का दण्ड पाने की प्रतीक्षा करता रहा। वल्कि मैं किसी भी क्षण मृत्यु के आ जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। इससे मेरे मस्तिष्क पर ऐसा भयानक आतंक छा गया था कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। किन्तु सहसा यह सुखद सूझ आयी कि पी फटते ही पैदल या गाड़ी से मठ चला जाऊंगा और वहां फिर अपरावों की स्वीकारोक्ति कर लूंगा। तव चैन आया।

सातवां परिच्छेद

मठ की यात्रा

उस रात इस डर के मारे कि कहीं ज्यादा देर तक सोया न रह जाऊं मैं कई वार उठा। ६ वजते-वजते मैं विस्तर छोड़कर खड़ा हो गया। अभी खिड़कियों के वाहर प्रकाश न हुआ था। मैंने अपने कपड़े और जूते पहने। ये पलंग के पास विना व्रुश किये ही विखरे पड़े थे, क्योंकि निकोलाई के उन्हें आकर ले जाने का अभी समय न हुआ था।

विना मुंह-हाथ धोये या सवेरे की प्रार्थना किये मैं जीवन में पहली बार घर से अकेले बाहर निकला।

सड़क के उस पार, हरी छत वाले बड़े मकान के पीछे ठंडी उषा की लाली प्रगटी। वसंत ऋतु के प्रातःकालीन तेज़ पाले ने कीचड़ और नालों को जमा दिया था। वे पैरों के नीचे चकनाचूर हो रहे थे जिससे आवाज़ निकल रही थी। मेरा मुंह और हाथ ठिठुरे जा रहे थे।

सड़क पर एक भी घोड़ा-गाड़ी न दिखाई दी यद्यपि मैं यही सोचकर निकला था कि एक घोड़ा-गाड़ी ले लूंगा और झटपट जाकर मठ से लौट आऊंगा। कुछ माल ढोनेवाली गाड़ियां आर्बात के ऊपर धीरे-धीरे चली जा रही थीं। दो राज-मिस्त्री आपस में बातें करते हुए पटरी पर चले जा रहे थे। कुछ हजार क़दम आगे जाने के बाद टोकरे लेकर बाजार जाते हुए मर्द और औरतें या पानी लानेवाले पीपे उठाये हुए दिखाई पड़ने लगे। नुक्कड़ पर एक समोसे बेचनेवाला आ बैठा था। कालाच* बनानेवाले की एक दूकान खुली हुई थी। और 'आर्बात्स्की दरवाजे' के पास मुझे एक बूढ़ा गाड़ीवान दिखाई दिया जो अपनी नीली, टूटी पुरानी द्रास्की में ही सो रहा था। शायद नींद में ही उसने मेरी बात का जवाब दिया कि मठ जाने और वापस आने के बीस कोपेक लगेंगे, किन्तु इसके बाद सहसा जाग बैठा। मैं गाड़ी में बैठने ही वाला था कि उसने लगाम के सिरे से घोड़ों को सटकारा और गाड़ी हांक दी। मुझसे उसने इतना ही कहा—"घोड़े को दाना देना है। सवारी नहीं ले सकता, साहब।"

मैंने कहा, चालीस कोपेक दूंगा और इस प्रकार उसे किसी तरह रोका। उसने लगाम खींच ली और ध्यान से मेरी ओर देखकर बोला—"आ जाइए, साहब।" मुझे यह डर लगने लगा था कि कहीं वह किसी सुनसान गली में ले जाकर मुझे मार न डाले। उसके फटे कोट के कालर को पकड़कर, जिसमें से कुबड़ी पीठ के ऊपर बैठी झुर्रीदार गर्दन करुणाजनक

---

* एक प्रकार की पावरोटी।—सं०

ढंग से झांक रही थी, मैं नीली, वक्राकार और डगमगाती सीट पर बैठ गया। गाड़ी घड़घड़ाती हुई वोज़्दवीजेन्का की ओर चल दी। रास्ते में मैंने देखा कि द्राश्की की पीठ पर कोचवान के उस हरे कपड़े के टुकड़े सटे हुए हैं जिसका कोचवान का कोट था। न जाने क्यों इससे मैं आश्वस्त हुआ। मेरा यह भय दूर हो गया, कि वह किसी सुनसान गली में ले जाकर मेरा सब कुछ छीन लेगा।

जिस समय हम मठ पहुंचे सूरज ऊपर चढ़ रहा था। गिरजाघरों के गुम्बद उसकी किरणों से जगमगा रहे थे। छांहवाली जगहों में अब भी पाला जमा हुआ था, पर सड़क पर छोटी छोटी, गंदी नालियां तेज़ी से बह चली थीं। घोड़ा गली हुई कीचड़ में पैर छपकाता हुआ चला जा रहा था। मठ के अहाते में पहुंचकर पहले ही आदमी से जो मुझे दिखाई दिया मैंने पादरी का पता पूछा।

"वह है उनकी कोठरी," मठ के उस साधु ने जो वहीं जा रहे थे एक क्षण के लिए रुककर एक छोटे-से मकान की ओर जिसके सामने एक बहुत छोटी-सी बरसाती थी, इशारा किया।

"बहुत बहुत धन्यवाद," मैंने कहा।

तब मैं आश्चर्य करने लगा कि मठ के ये साधु (जो उस समय गिरजाघर से निकले आ रहे थे) मेरे विषय में क्या सोच रहे होंगे क्योंकि सभी मेरी ओर देख रहे थे। न मैं वयस्क था न बालक। मैंने हाथ-मुंह भी न धोया था, बालों में कंघा नहीं पड़ा था; कपड़े गंदे थे और जूते बिना पालिश के तथा कीचड़ से सने। अवश्य ही वे मुझे किसी खास कोटि के लोगों में रख रहे होंगे, क्योंकि सभी मुझे घूर रहे थे। इसी बीच मैं नौजवान पादरी की बतायी दिशा में चलता गया।

मुझे घनी, सफ़ेद दाढ़ी वाला, काले-वस्त्र पहने, एक बूढ़ा कोठरी को जानेवाले संकरे रास्ते में मिला। उसने पूछा—"क्या चाहिए?"

एक क्षण के लिए मन में आया कि कह दूं—"कुछ भी नहीं"

और भागकर गाड़ी में बैठ रहूं तथा घर लौट जाऊं। किन्तु बुड्ढे की चढ़ी भौंहों के बावजूद उसके प्रति विश्वास जगता था। मैंने कहा कि मुझे अमुक पादरी से मिलना है और उनका नाम बताया।

"आ जाओ, नौजवान, मैं तुम्हें रास्ता बता देता हूं," उन्होंने वापस घूमते और, प्रगटतः, मेरे आने का उद्देश्य समझते हुए कहा। "पिता प्रातःकाल की प्रार्थना कर रहे हैं। वह अभी आ जायेंगे।"

उन्होंने दरवाजा खोला और मुझे स्वच्छ दालान और सामने के कमरे से ले जाते हुए, फ़र्श पर बिछे साफ़ कपड़े के ऊपर से होकर कोठरी में ले गये।

"थोड़ी देर यहीं ठहरो," उन्होंने मेरे ऊपर नेक और आश्वस्तकारी दृष्टि डालते हुए कहा और बाहर चले गये।

मैंने अपने को जिस कमरे में बैठा पाया था वह बहुत ही छोटा किन्तु बड़ी स्वच्छता से सजाया हुआ था। उसके सामान में एक छोटी-सी मेज़ थी जो मोमजामे से ढकी थी और दो दोहरे पल्ले वाली खिड़कियों के बीच रखी हुई थी। मेज़ के ऊपर दो फूलदानों में जेरानियम के फूल सजे हुए थे। एक प्रतिमाओं को सहारा देने का स्टैंड था। प्रतिमाओं के सामने एक लेम्प लटक रहा था। मेज़ के अलावा, एक बाहों वाली और दो साधारण कुर्सियां थीं। कोने में एक घड़ी लटक रही थी जिसके मुख-पट्ट पर रंगीन फूल बने हुए थे। जंजीर से लटकते उसके पीतल के वज़न आधे खुले हुए थे। बीच की आधी विभाजक दीवार में कीलों से पादरियों के दो चोगे लटक रहे थे। सम्भवतः उसी के पीछे पलंग था। दीवार के ऊपर, चूना पुते लकड़ी के तख्ते खड़े कर विभाजन को छत तक पहुंचा दिया गया था। खिड़कियां एक दीवार की ओर खुलती थीं जो लगभग दो गज़ की दूरी पर रही होंगी। उनके और दीवार के बीच बकाइन की एक छोटी-सी झाड़ी थी। बाहर की कोई आवाज़ इस कमरे के अंदर नहीं प्रवेश कर सकती थी; अतः घड़ी की नियमित टिक-टिक ध्वनि सन्नाटे में ज़ोर से

गूंज रही थी। इस एकांत कोने में पहुंचते ही मेरे सारे पुराने विचार और स्मृतियां सहसा मस्तिष्क से लोप हो गयीं मानों वे कभी रही ही न हों वहां। और मैं एक अवर्णनीय, सुखद चिन्तनधारा में डूब गया। नानकीन के पादरियों के चोगे जिनका रंग प्राय: उड़ चुका था और किनारे फट गये थे, किताबों की काले चमड़े की घिसी जिल्दें और पीतल के बकलस, फूलदान में रखे पौधों का मटमैला हरा रंग, सावधानी से सींची गयी मिट्टी और धुली पत्तियां, घड़ी के लटकन की निरंतर नीरस टिक-टिक ध्वनि – ये स्पष्ट स्वर मुझे एक नये, अज्ञात जीवन का संदेश दे रहे थे, शांति, उपासना और निःशब्द आनन्द का एकांत जीवन।

"महीने बीतते जाते हैं, साल पर साल चले जाते हैं, लेकिन इनका एकाकी, शांत जीवन-क्रम चलता चला जाता है। उन्हें यह ज्ञान है कि प्रभु की दृष्टि में उनका अंतःकरण निर्मल है और वह उनकी प्रार्थनाएं सुनता है," मैंने सोचा। आधे घंटे तक मैं कुर्सी पर बैठा रहा। हिलना-डुलना तो दूर रहा, मैं ज़ोर से सांस भी नहीं लेना चाहता था ताकि ध्वनियों की वह लय, जिससे मैं एक सुखद संदेश पा रहा था, टूट न जाये। और घड़ी का लटकन पहले की तरह टिक-टिक करता चला जा रहा था – दाहिनी ओर ज़ोर से, बायीं ओर कुछ धीमे।

आठवां परिच्छेद

दूसरी स्वीकारोक्ति

पादरी के पैरों की आहट ने मेरी चिन्तनधारा भंग कर दी।

"आइये," उन्होंने अपने श्वेत केशों को हाथ से संवारते हुए कहा। "क्या सेवा कर सकता हूं मैं आपकी।"

मैंने उन्हें आशीर्वाद देने को कहा और उनके छोटे पीले हाथ को विशेष सन्तोष के साथ चूमा।

जब मैंने उन्हें अपनी अर्ज़ सुनायी तो वे बिना कुछ जवाब दिये प्रतिमा के पास गये और मेरी स्वीकारोक्ति सुनने लगे।

मैंने शर्म को पीकर अंतर्तम की सारी बातें उनके सामने खोल दीं और स्वीकारोक्ति समाप्त हुई। अब उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखा और शांत, स्निग्ध स्वर में बोले—"मेरे बेटे! स्वर्ग स्थित पिता का वरदहस्त तुम्हारे ऊपर हो। प्रभु तुम्हें निरंतर अधिकाधिक विश्वास, शांति और विनम्रता प्रदान करे। आमीन।"

मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। आनन्दातिरेक से गला भर आया। बारीक कपड़े के बने उनके चोग़े को चूमकर मैंने सिर ऊपर उठाया। पादरी का चेहरा बिलकुल शांत था।

मुझे बोध हुआ कि मैं भावावेश के रस से सराबोर हो रहा हूं। भय होने लगा कि यह रसयुक्त चेतना कहीं विलीन न हो जाय; अतः मैंने जल्दी से पादरी से विदा ली और ध्यान बंट न जाय इसलिए बिना इधर या उधर ताके, अहाते से बाहर निकल आया और धचकोले खाती चलनेवाली रंगबिरंगी द्राश्की में सवार हो गया। किन्तु उसके धचकोलों और बग़ल से गुज़रनेवाली वस्तुओं ने शीघ्र ही वह रसयुक्त चेतना समाप्त कर दी। मैं अब सोच रहा था कि पादरी ने मेरे विषय में क्या धारणा बनायी होगी। वह सोच रहे होंगे, कि ऐसा उदात्त युवक जीवन में उन्हें नहीं मिला है, न मिलेगा, वस्तुतः उसकी जोड़ के आदमी हैं ही नहीं। मुझे इसका दृढ़ निश्चय था और इस निश्चय ने मेरे अंदर प्रफुल्लता की ऐसी भावना भर दी जिसे किसी को बतलाना आवश्यक था।

किसी से बात करने की ज़रूरत मैं बड़ी उग्रता के साथ महसूस कर रहा था। पर वहां कोचवान के अतिरिक्त कोई न था। अतः मैं उसी की ओर मुड़ा।

"क्यों, ज्यादा देर लग गयी थी मुझे?" मैंने पूछा।

"ज़्यादा तो नहीं लगी होगी। पर घोड़े को दाना देने का समय कब का बीत चुका है। मैं रात को गाड़ी हांकता हूं न," उसने जवाब दिया। प्रगट था, कि धूप निकल आने से वह कुछ अधिक प्रसन्न मुद्रा में है।

"मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं बस एक ही मिनट ठहरा वहां," मैंने कहा। "जानते हो मैं मठ में क्यों गया था?" अपनी सीट को कोचवान के नज़दीकवाले निचले भाग की ओर बदलते हुए मैंने पूछा।

"मुझे इससे क्या वास्ता? हम लोगों का तो काम है कि जहां सवारी ने हुक्म दिया, वहीं उसे पहुंचा दिया," उसने उत्तर दिया।

"यह तो ठीक है। फिर भी तुम्हारा क्या ख्याल है?" मैंने हठ किया।

"कोई मर गया होगा और आप शायद उसकी कब्र के लिए जगह खरीदने गये थे?"

"नहीं, नहीं, मेरे दोस्त। नहीं, तुम्हें मालूम है, मैं क्यों गया था?"

"जी, मैं कैसे जान सकता हूं?" उसने दुहराया।

उसके स्वर में ऐसी भलमन्साहत थी कि मैंने उसे अपनी यात्रा का कारण कह सुनाने का फ़ैसला कर लिया। बल्कि उसकी ज्ञानोन्नति के लिए उसे अपनी भावना को भी वर्णित करने का निश्चय किया।

"अगर चाहो तो मैं तुम्हें बता सकता हूं। बात यह थी कि ..."

और मैंने उसे सब कुछ बतला दिया। वे सुंदर भावनाएं भी वर्णित कर डालीं जिनकी मुझे अनुभूति हुई थी। आज भी उसकी याद करने में लजा जाता हूं।

"जी, हां," उसने संशययुक्त स्वर में कहा।

और उसके बाद वह बड़ी देर तक मौन और निश्चल रहा। केवल बीच बीच में अपने कोट के पीछे का निचला भाग, जो भारी बूटों वाले पांव को ऊपर नीचे करते रहने के कारण बार बार खिसक जाया करता

था, ठीक कर लेता था। मैं कल्पना करने लगा कि वह भी मेरे बारे में वही सोच रहा है जो पादरी ने सोचा है ... बड़ी महान आत्मा है इस नौजवान के अंदर, इसके जोड़ का दूसरा आदमी न होगा दुनिया में। किन्तु उसने सहसा मेरी ओर मुड़कर कहा:

"ये सब चीजें, मालिक, आप जैसे बड़े आदमियों के लिए ही हैं।"

"क्या?" मैंने पूछा।

"यही कि ये सब बड़े आदमियों के लिए ही हैं।"

"नहीं, इसने मुझे समझा नहीं," मैंने सोचा, पर घर पहुंच जाने तक मैंने उससे कुछ न कहा।

श्रद्धा और भक्ति की यह भावना सारा रास्ता तो न रही पर उस अनुभूति ने एक आत्मसंतोष प्रदान किया। यह आत्मसंतोष धूप से जगमगाती सड़कों को रंगबिरंगे लोगों से भरी देखने के बाद भी कायम रहा। किन्तु घर पहुंचते ही वह छूमन्तर हो गया। मेरे पास गाड़ीवान को देने के लिए चालीस कोपेक न थे। खानसामां गब्रीलो से तो कुछ मिलने से रहा, क्योंकि उसका यों ही मेरे ऊपर बहुत उधार हो गया था। पैसों की खोज में दो बार मुझे आंगन में आते जाते देख कोचवान अवश्य कारण समझ गया, क्योंकि वह द्राश्की से नीचे उतर आया। कुछ देर पहले की भलमन्साहत की उसकी मुद्रा अब बदल गयी थी। वह सुना-सुनाकर कहने लगा कि, सवारी करने को तो लोग ठाठ से बैठ लेते हैं पर पैसे देने की बारी आयी कि लगे कोचवान को चकमा देने की कोशिश करने!

घर पर सभी अभी तक सो रहे थे। अतः सिवा नौकरों के और किसी से मैं चालीस कोपेक उधार नहीं पा सकता था। अंत में दर्बानी ने मेरे बार बार इज्जत की कसम खाने पर, (उसका चेहरा साफ़ बता रहा था कि उसे इन कसमों पर एतबार न था) केवल मुझपर विशेष स्नेह के कारण और उस उपकार को याद कर जो मैंने उसके साथ किया था

मेरी ओर से गाड़ीवाले को पैसे दे दिये। जब मैं गिरजाघर जाने की तैयारी करने लगा ताकि वहां सभी के साथ दीक्षा ले सकूं तो पता चला कि मेरे नये कपड़े नहीं आये हैं। मैं आपे से बाहर हो गया। दूसरा सूट पहनकर, एक विचित्र मानसिक उथल-पुथल में अपनी समस्त उच्च भावनाओं के प्रति पूर्ण अविश्वास से भरा हुआ, मैं गिरजाघर गया।

नौवां परिच्छेद

मैंने परीक्षा की तैयारी कैसे की

ईस्टर के बाद वाले शुक्रवार को पिता, मेरी बहिन, मीमी और कातेन्का गांव चले गये। नानी के विशाल मकान में अब केवल वोलोद्या, मैं और St.-Jérôme रह गये थे। स्वीकारोक्ति तथा मठ जाने के दिन की मेरी मानसिक स्थिति सर्वथा विलीन हो चुकी थी। अब केवल उसकी एक धीमी किन्तु मधुर स्मृति मात्र शेष रह गयी थी। पर वह भी स्वच्छंदतापूर्ण जीवन की नयी अनुभूतियों में दबती जा रही थी।

"जीवन के नियम" वाली कापी अन्य टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से भरी कापियों के ढेर में डाल दी गयी थी। जीवन की सभी प्रकार की परिस्थितियों के योग्य नियम निर्धारित करने की सम्भावना और सदा उन्हीं से निर्देशित होने का विचार मुझे सुखद लगता था और बहुत आसान होने के साथ बहुत शानदार भी मालूम होता था। मेरा पूरा इरादा भी उन्हें जीवन में उतारने का था। किन्तु मैं शायद यह भूल गया कि मुझे तत्काल ऐसा करना चाहिए और उसे अनिश्चित समय के लिए टालता चला गया। किन्तु एक चीज से मुझे बड़ी खुशी होती थी—अब जो विचार मेरे मन में उठते वे नियमों और कर्तव्यों के मेरे वर्गीकरण में बड़ी आसानी से बैठ जाते थे। पड़ोसी के प्रति कर्तव्य, अपने प्रति कर्तव्य, ईश्वर के प्रति कर्तव्य, इन तीन में से किसी न किसी कोटि में वह अवश्य ही फ़िट हो

जाता था। "ठीक है, इन्हें और आगे आनेवाले ऐसे ही नये विचारों को कागज़ पर लिख लूंगा," मैंने मन में कहा। अब मैं अपने से प्रायः यह प्रश्न करता–मैं अधिक अच्छा और अधिक अनुकूल कब था, तब जबकि मुझे मानव मस्तिष्क की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास था, या अब जबकि विकास की क्षमता खो चुका हूं और मानव मस्तिष्क की शक्ति और महत्व के प्रति विश्वास उठ चुका है? इस प्रश्न का मैं कोई सारपूर्ण उत्तर नहीं दे पाता।

स्वच्छंदता की संज्ञा, और 'किसी' सुखद घटना की, जिनका मैं पहले संकेत कर चुका हूं, उत्फुल्लतापूर्ण प्रतीक्षा इन दोनों ने मुझे इस सीमा तक उत्तेजित कर रखा था कि मैं अपने ऊपर लगाम लगा ही नहीं पाता था। दरअसल इम्तहान की मेरी तैयारी अच्छी न हुई। अपने को इस परिस्थिति में रखिए: आप सुबह पाठ-कक्ष में तैयारी में लगे हुए हैं और यह जानते हैं कि आपको डटकर पढ़ाई करनी है क्योंकि कल ही उस विषय की परीक्षा है जिसके दो पूरे प्रश्न आपने अभी तक तैयार नहीं किये हैं। उसी समय सहसा खिड़की से वसंत की सुगंध का एक झोंका आता है। आपको उस समय यह भान होता है कि कोई पुरानी स्मृति है जो जरूर जागेगी। आपके हाथ अपने आप शिथिल हो जाते हैं; पांव आप ही आप उठते हैं और आप इधर से उधर टहलने लगते हैं। ऐसा लगता है कि माथे के भीतर कोई कब्ज़ा दबा दिया गया है और पूर्ण मशीन चालू हो गयी है। आपका मन प्रमुदित हो उठता है और जगमग करते विचार आपके मस्तिष्क में इतनी तेज़ी से दौड़ने लगते हैं कि आप केवल उनकी जगमगाहट ही पकड़ पाते हैं। इस तरह न जाने कब घंटा या दो घंटे गुज़र गये, इसकी भी आपको खबर न हुई। या दूसरी अवस्था ले लीजिए–आप किताब लेकर बैठे हैं और किसी क़दर अपना ध्यान किताब के ऊपर साधे हुए हैं। उसी समय सहसा दालान में आपको किसी स्त्री की पदचाप और उसके वस्त्रों की सरसराहट सुनाई पड़ती है और सब कुछ दिमाग़ से निकल

जाता है। वैठे रहना भी तव मुहाल हो जाता है यद्यपि आप वखूवी जानते हैं कि जानेवाली नानी की वुढ़िया दासी गाशा के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकती। पर दिमाग़ कहता है–"कौन जाने 'वही' आयी हो। शायद यही 'वह' प्रत्याशित प्रारम्भ है और आप मौक़ा चूक रहे हैं।" आप लपककर दालान में जाते हैं और देखते हैं कि सचमुच गाशा ही थी। फिर भी आप वड़ी देर तक अपने मस्तिष्क को नियंत्रित नहीं कर सकते–क्योंकि अंदरूनी कव्ज़ा दवा दिया जा चुका है और मस्तिष्क में भयानक अस्तव्यस्तता फैल चुकी है। तीसरी अवस्था ले लीजिए: आप अपने कमरे में अकेले वैठे हैं। केवल एक मोमवत्ती जल रही है। आप एक क्षण के लिए किताव छोड़कर वत्ती काटने या कुर्सी में आराम का आसन वदलने के लिए उठते हैं। चारों ओर, दरवाज़ों और कोनों में, अंधेरा छाया हुआ है; सारा घर सन्नाटे में डूवा हुआ है। पर यह उठना क्या हुआ कि अव आपके लिए यह असम्भव हो गया कि रुककर इस सन्नाटे पर न कान लगायें या खुले दरवाज़े के अंधकार को टकटकी वांधकर देखने न लग जायं और देर, वहुत देर तक, इसी मुद्रा में मूर्ति की तरह अविचल न वने रहें, अथवा नीचे उतरकर सभी खाली कमरों में चक्कर न लगा आयें। प्रायः ऐसा भी हुआ है, कि मैं चुपचाप, विना किसी को खवर हुए हाल में वैठा गाशा को एक उंगली से प्यानो पर 'वुलवुल' की धुन वजाते सुनता रहा और गाशा अकेली केवल एक मोमवत्ती के प्रकाश में उस विशाल कमरे में वैठी वेखवर गाती रही। और कभी रात को जव चन्द्रमा चमक रहा है, मैं वरवस पलंग पर से उठ खड़ा हुआ और वाग़ की ओर की खिड़की पर लेटकर शापोश्निकोव के मकान की प्रकाशमान छत, अपने क्षेत्रीय गिरजाघर की सुंदर वुर्जो और वाग़ की रविशों पर किनारे की वाड़ की छाया देखता रह गया। मैं इतनी अधिक देर तक यह दृश्य देखता रह जाता हूं कि अगले दिन दस वजे से पहले नींद नहीं खुली।

अतः यदि मास्टरों का पढ़ाने के लिए नियमित आना-जाना न होता, या St.-Jérôme कभी-कभी अनिच्छापूर्वक मेरी अहं भावना को न कुरेदते और सबसे अधिक तो यदि अपने मित्र नेख्लूदोव की नजरों में एक योग्य युवक बनने, अर्थात इम्तहान में अच्छे नम्बर से पास करने (जो उसके कथनानुसार अत्यंत महत्वपूर्ण था) की प्रेरणा न होती तो निश्चय ही वसंत ऋतु और स्वच्छन्दता के प्रभाव से मैं पिछले सारे पाठ भूल जाता और किसी भी तरह इम्तहान पास नहीं कर सकता था।

दसवां परिच्छेद

इतिहास की परीक्षा

१६ अप्रैल को, St.-Jérôme की संरक्षकता में, मैंने पहले पहल विश्वविद्यालय के विशाल हाल में प्रवेश किया। हम वहां अपनी फैशनदार फ़िटन पर सवार होकर पहुंचे। मैंने जीवन में पहली बार ड्रेस-कोट पहना था और मेरी पूरी पोशाक – कमीज़ से लेकर पायताबे तक – बिल्कुल नयी और सर्वोत्तम कपड़े की सिली हुई थी। जिस समय दरबान ने ओवरकोट उतारने में मेरी मदद की और मैं अपनी शानदार पोशाक के साथ पूरे निखार में खड़ा हुआ उस समय मुझे अपनी तड़क-भड़क पर झेंप मालूम होने लगी। किन्तु पालिश किये हुए फ़र्शवाले जगमगाते हॉल में जाते ही मेरी दृष्टि कालेज-छात्रों की वर्दी और ड्रेस-कोट पहने सैकड़ों नौजवानों और हॉल के दूसरे छोर पर बैठे भव्य अध्यापकों पर पड़ी। छात्रगण डेस्कों के बीच स्वच्छंदता से टहल रहे थे अथवा विशाल बांहोंवाली कुर्सियों पर बैठे थे। उनमें से कुछ ने मेरी ओर एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि डाली। वहां का दृश्य देखकर मेरा यह भ्रम कि सभी की दृष्टि मेरे ही ऊपर टंग जाएगी, टूट गया। घर पर अथवा हॉल की बगलवाले कमरे में प्रवेश करते समय तक मेरे चेहरे पर यह भाव था, कि यह सब रूप-सिंगार मैंने अपनी

इच्छा से नहीं बनाया है। लेकिन अब यह दूसरे ही भाव में परिणत हो गया। अब मेरे मुंह पर अत्यधिक सहमे होने, बल्कि एक हद तक उदासी का भाव था। वस्तुतः मैं बिलकुल दूसरे छोर पर चला गया। एक अत्यंत कुरूप, भद्दी पोशाक वाले सज्जन को जो अभी बूढ़े तो न हुए थे पर उनके बाल लगभग बिलकुल श्वेत हो गये थे, औरों से पीछे की बेंच पर बैठे देखकर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैं फ़ौरन उनकी बग़ल में जा बैठा और वहीं से परीक्षार्थियों को देखने और उनके सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करने लगा। वहां अनगिनत और रंग-बिरंगे चेहरे थे। पर मेरी उस समय की धारणा अनुसार सभी तीन वर्गों में बांटे जा सकते थे।

पहले वर्ग में मेरे जैसे वे लोग थे जो अपने मास्टरों और मां-बाप के साथ परीक्षा में बैठने आये थे। ऐसों में मुझे सुपरिचित फ्रॉस्ट के साथ छोटा ईविन और अपने बूढ़े पिता के साथ ईलेन्का ग्राप दिखाई पड़ा। सभी की ठुड्डियों पर नये रोयें थे और शरीर पर ठाठदार पोशाक। वे अपने साथ लायी किताबों और कापियों को खोले बग़ैर, शांत बैठे थे और अध्यापकों तथा परीक्षकों की मेज़ की ओर सहमी-सहमी दृष्टि से देख रहे थे। दूसरे वर्ग के परीक्षार्थियों में हाई-स्कूल के छात्रों की पोशाक पहने हुए लोग थे। इनमें अधिकांश ने शेव करना आरम्भ कर दिया था। उनमें अधिकांश एक-दूसरे से परिचित थे। वे ज़ोर ज़ोर से आपस में बातें कर रहे थे, अध्यापकों के नाम और उनके पितृ नाम के साथ उनकी चर्चा करते थे, सवाल तैयार कर रहे थे, और एक दूसरे से कापियों का विनिमय कर रहे थे। वे डेस्क के ऊपर चढ़कर समोसे और सैण्डविच उठा लेते और सिर को ज़रा-सा डेस्क की सतह तक झुकाकर खा डालते थे। अंतिम वर्ग ऐसे परीक्षार्थियों का था जो काफ़ी उम्र वाले थे। इनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। इनमें कुछ ड्रेस-कोट में थे पर अधिकतर सर्टाउट* पहने हुए थे। उनके

* एक प्रकार का मर्दाना ओवरकोट। – सं०

कपड़ों में तड़क-भड़क न थी। जिस आदमी ने मुझसे घटिया पोशाक पहने होने के कारण मुझे आश्वस्त किया था, वह अंतिम श्रेणी में आता था। केहुनियों के बल झुककर कोई पुस्तक पढ़ने के साथ-साथ अपने सफ़ेद बिखरे बालों में उंगलियां फेरते हुए उसने केवल एक बार मेरे ऊपर सरसरी निगाह डाली थी और वह निगाह मैत्रीपूर्ण न थी। उसकी आंखें चमकीली और नाक-भौंह चढ़ी हुई थी। मैं और नज़दीक न आ जाऊं इसलिए उसने मेरी ओर अपनी केहुनी बढ़ा दी। इसके विपरीत स्कूल के छात्र बिल्कुल बेतकल्लुफ़ थे और मैं उनसे थोड़ा घबरा रहा था। एक ने मेरे हाथ में एक किताब थमाते हुए कहा–"इसे आगेवाले हज़रत को बढ़ा देना जी।" दूसरे ने मेरे पास से गुज़रते हुए कहा–"माफ़ करना, दोस्त।" तीसरे ने डेस्क के ऊपर चढ़ते हुए मेरे कंधे पर यों हाथ टेका मानों वह बेंच हो। यह सब कुछ मुझे अशिष्ट और अप्रिय मालूम हो रहा था। मैं अपने को स्कूल के छात्रों से ऊंचा समझता था और सोच रहा था कि इन्हें मेरे साथ इस तरह बेतकल्लुफ़ी से पेश आने का कोई अधिकार नहीं। अंत में नाम पुकारे जाने लगे। स्कूलवाले नाम पुकारने पर बेधड़क चले जाते थे। उनमें से अधिकांश ने इम्तहान अच्छा दिया और हंसते हुए लौटे। हमारे समूह वाले कहीं अधिक घबराये हुए थे और ऐसा मालूम हुआ, कि उन्होंने प्रश्नों के उत्तर बहुत अच्छे नहीं दिये। अधिक उम्रवालों में कुछ ने बहुत अच्छा जवाब दिया और कुछ ने बहुत ख़राब। सेम्योनोव का नाम पुकारे जाने पर सफ़ेद बालों और चमकती आंखों वाला, मेरा पड़ोसी उठा। मुझे भद्दे ढंग से रगड़ने और मेरे पांव के ऊपर पांव रखते हुए, वह परीक्षक की मेज़ के पास गया। अध्यापकों के चेहरों से स्पष्ट था कि उसने अच्छी तरह और आत्मविश्वास के साथ प्रश्नों के उत्तर दिये थे। अपनी जगह पर लौटकर उसने चुपके से कापियां उठायीं और यह जानने की कोशिश किये बिना ही कि उसे क्या नम्बर मिले

हैं, बाहर चला गया। नाम पुकारने की आवाज़ पर मैं कई बार मन ही मन कांप चुका था। पर मेरी बारी अभी नहीं आयी थी। सूची वर्णमाला के अनुसार थी और 'के' से कई नाम पुकारे जा चुके थे। सहसा अध्यापकों के कोने में से कोई चिल्लाया—"इकोनिन और तेन्येव!" मेरी पीठ और बालों में रोमांच की एक लहर दौड़ गयी।

"किसका नाम पुकारा गया है? वर्तिन्येव कौन है," मेरे चारों ओर सभी कहने लगे।

"इकोनिन! जाओ, तुम्हारे पुकार हुई है। पर यह वर्तिन्येव या मोर्देन्येव कौन है?" मेरे पीछे खड़े एक लम्बे स्वस्थ लाल गालों वाले स्कूल के छात्र ने कहा।

"तुम्हीं को पुकारा है," St.-Jérôme ने कहा।

"मेरा नाम इर्तेन्येव," मैंने लाल चेहरे वाले स्कूल के छात्र से कहा। "क्या इर्तेन्येव का नाम पुकारा गया है?"

"हां, कर क्या रहे हो तुम? जाते क्यों नहीं? वाह रे, क्या बनठन के आया है!" अंतिम बात उसने ज़्यादा ज़ोर से नहीं कही थी पर इतने काफ़ी ज़ोर से कि बेंच से उठते हुए मैंने सुन लिया।

मेरे आगे इकोनिन जा रहा था। वह २५ वर्ष का लम्बा नौजवान था जिसे मैंने ज़्यादा उम्र वाले परीक्षार्थियों की कोटि में रखा था। उसने एक कसा हुआ जैतूनी कोट पहन रखा था। गले में साटन का नीला रूमाल बंधा हुआ था जिसके पीछे की ओर उसके लम्बे, हल्के, किसानों जैसे कटे बाल लटक रहे थे।* जिस समय मैं डेस्क पर बैठा हुआ था उसी समय उसकी आकृति ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। वह चेहरे-मोहरे का अच्छा था और बातें बहुत करता था। उसमें सबसे विचित्र चीज़ जो मुझे लगी वह थे वे विचित्र, रक्ताभ बाल जो उसने अपने गले पर उगा

* चारों ओर से वर्गाकार कटे हुए।—सं०

रखे थे। उससे भी अधिक विचित्र थी उसकी वास्कट के बटन खोलकर कमीज़ के नीचे निरंतर छाती खुजलाने की आदत।

जिस मेज़ पर मैं और इकोनिन गये तीन अध्यापक बैठे हुए थे। उनमें से किसी ने हमारे अभिवादन का उत्तर नहीं दिया। सबसे कम उम्रवाले अध्यापक ताश के पत्तों की तरह परीक्षार्थियों के टिकट मिला रहा था। दूसरे अध्यापक जिनके कोट में सितारा टंका हुआ था, एक स्कूल के छात्र को घूर रहे थे जो सम्राट् कार्ल महान के सम्बन्ध में धड़ल्ले से कुछ सुना रहा था और हर शब्द के साथ एक 'आखिरकार' जोड़ता जाता था। तीसरे ने जो बूढ़े थे, चश्मे के ऊपर से हम लोगों को देखा और टिकटों की ओर इशारा किया। मुझे ऐसा लगा कि उनकी दृष्टि मेरे और इकोनिन के ऊपर संयुक्त रूप से टंगी हुई थी और कोई चीज़ थी (सम्भवतः इकोनिन की लाल दाढ़ी) जो उन्हें हममें बुरी लग रही थी, क्योंकि दुबारा उसी तरह हमारी ओर देखते हुए उन्होंने हमें जल्दी से अपने टिकट ले लेने के लिए अधीरतापूर्वक सिर से संकेत किया। मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ क्योंकि एक तो किसी ने हमारे अभिवादन का जवाब नहीं दिया था और दूसरे स्पष्टतः वे मुझे और इकोनिन को एक ही श्रेणी में, परीक्षार्थी की एक श्रेणी में, रख रहे थे और इकोनिन की लाल दाढ़ी के कारण मुझ से चिढ़े हुए थे। मैंने बिना घबराए एक टिकट उठा लिया और जवाब देने को तैयार हुआ पर अध्यापक ने अपनी दृष्टि इकोनिन की ओर घुमा दी। मैंने टिकट को पढ़ा। मैं उन प्रश्नों को जानता था और शांतिपूर्वक अपनी बारी आने की प्रतीक्षा करते हुए चारों ओर जो कुछ हो रहा था उसे देखने लगा। इकोनिन बिल्कुल ही नहीं घबराया था। बल्कि वह आवश्यकता से अधिक निर्भीकता का परिचय दे रहा था क्योंकि टिकट लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए वह मेज़ की एक ओर झुका, अपने लाल बालों को झटकाया और फुर्ती से

टिकट में लिखे प्रश्न पढ़ लिये। वह जवाब देने के लिए मुंह खोलने ही जा रहा था कि सितारेवाले अध्यापक ने स्कूल के छात्र को शाबाश देकर विदा किया और, उसकी ओर देखा। इकोनिन को मानो कुछ याद आ गया और वह थम गया। कोई दो मिनट तक वहां सन्नाटा छाया रहा।

"हां तो?" चश्मे वाले अध्यापक ने कहा।

"बोलो भी। तुम्हीं अकेले नहीं हो यहां। बोलो, जवाब देना चाहते हो या नहीं?" नौजवान अध्यापक ने कहा, पर इकोनिन ने उसकी ओर ताका तक नहीं। वह बिना एक शब्द बोले, टिकट को घूरता रहा। चश्मे वाले अध्यापक ने उसे चश्मे के अंदर से, चश्मे के ऊपर से और फिर बिना चश्मे के देख लिया, क्योंकि इतने में उन्होंने चश्मा उतारा, उसे सावधानी से पोंछा और फिर लगा लिया था। लेकिन इकोनिन था कि चुप। सहसा उसके चेहरे पर मुसकान की रेखा प्रगटी, उसने अपने लम्बे बालों को पीछे की ओर संवारा, फिर सीधा मुंह मेज़ की ओर किया, टिकट रखा, बारी बारी से सभी अध्यापकों को, फिर मुझे देखा और एक बार हाथ हिलाकर चहलकदमी करता हुआ अपनी बेंच को लौट गया। अध्यापक एक-दूसरे का मुंह देखने लगे।

"वाह। चले थे अपने ही खर्च से पढ़ने," नौजवान अध्यापक ने कहा।

मैं मेज़ के और नज़दीक बढ़ गया। पर अध्यापकगण धीमे स्वर आपस में इस तरह बातें कर रहे थे मानो मेरी उपस्थिति की उन्हें खबर भी नहीं। उस समय मुझे पक्का विश्वास हो गया, कि तीनों अध्यापक इस प्रश्न को लेकर उलझे हुए हैं, कि मैं इम्तहान पास करूंगा या नहीं तथा मुझे अच्छे नम्बर आयेंगे कि नहीं किन्तु अपनी पद-मर्यादा के विचार से वे ऐसा बन रहे हैं मानो उन्हें इसकी परवाह नहीं और उन्होंने मुझे देखा ही नहीं है।

जब चश्मे वाले अध्यापक उत्तर देने का आवाहन करते हुए उपेक्षा-भाव से मेरी ओर मुड़े तो मैंने अपनी आंखें उनकी आंखों में डाल दीं। उनकी तरफ़ से मैं शर्मा रहा था कि मेरे साथ उन्होंने इस तरह बनने की कोशिश की थी और जवाब आरम्भ करने में थोड़ा हिचकिचाया। पर बाद में मामला आसान होता गया और चूंकि प्रश्न रूसी इतिहास का था जो मुझे खूब याद था मैंने बड़ी शान से जवाब दिया। मुझमें इतना अधिक आत्मविश्वास आ गया कि अध्यापकों पर यह रोब डालने के लिए कि मैं इकोनिन न था और उसकी तरह मुझे घबरा देना असम्भव था मैंने कहा कि, मैं एक और टिकट निकालने को तैयार हूं। पर अध्यापक ने सिर हिलाकर कहा—"बस काफ़ी हो गया, महाशय," और अपने रजिस्टर में कुछ लिख लिया। बेंच पर पहुंचने के फ़ौरन ही बाद मुझे स्कूल के छात्रों ने (जो न जाने कैसे सब कुछ जान जाते थे) बताया कि मुझे पूरे नम्बर मिले हैं।

ग्यारहवां परिच्छेद

गणित की परीक्षा

इसके बाद की परीक्षाओं के दौरान मैंने ग्राप, जिसे मैं अपनी जान-पहचान के अयोग्य समझता था, और ईविन के अतिरिक्त जो न जाने क्यों मुझसे दूर ही दूर रहा करता था, कई नये लोगों ने दोस्ती कर ली। कुछ से मेरी सलाम-बंदगी चलने लगी थी। इकोनिन तो मुझे देखकर बहुत खुश हो जाता था। उसने मुझे चुपके से बताया कि इतिहास में उसका फिर से इम्तहान होगा, कि इतिहास का अध्यापक उससे पिछले इम्तहान के वक्त से ही खार खाये हुए था क्योंकि उसने उसे उस बार भी हड़बड़ी में डाल दिया था। सेम्योनोव जो मेरी ही तरह गणित विभाग में जाना चाहता था, सभी से शर्मीला हुआ करता था। इम्तहान

के लगभग आख़िरी दिनों तक वह केहुनी के बल झुका, अपने सफ़ेद बालों में हाथ फेरता हुआ, अकेला ही मौन बैठे रहा करता था। उसने बड़ी शान से इम्तहान पास किया। वह दूसरे नम्बर पर आया और स्कूल का एक लड़का औवल। औवल आनेवाला लड़का लम्बा, दुबला था। उसके बाल काले रंग के थे। उसकी गर्दन में एक काला रूमाल लिपटा रहता और ललाट पर मुंहासे थे। उसके हाथ पतले और लाल थे, उंगलियां असाधारण लम्बी, और नाखून इस तरह कटे हुए कि उसकी उंगलियों का सिर तागे में लपेटा हुआ सा दिखता था। ये सब कुछ मुझे बहुत ही शानदार मालूम होते थे, स्कूल के औवल लड़के के सर्वथा उपयुक्त। वह सभी से एक ही ढंग से पेश आता था। यहां तक कि मेरे साथ भी उसकी जान-पहचान हो गयी। मुझे ऐसा भान होता था कि उसके हाव-भाव, ओठों की चेष्टाओं और काली आंखों में कोई असाधारण और आकर्षक गुण है।

गणित की परीक्षा में मैं कुछ देर पहले पहुंच गया था। मैं विषय को खूब अच्छी तरह जानता था, किन्तु बीजगणित के दो प्रश्न थे जिन्हें मैंने किसी तरह अपने शिक्षकों से छिपा रखा था और जिनके बारे में मैं कुछ न जानता था। वे थे, समवाय का सिद्धांत और न्यूटन का बाइनोमियल थ्योरम। मैं पीछे की डेस्क पर बैठकर इन दोनों अछूते प्रश्नों को देख रहा था। किन्तु एक तो मुझे कोलाहल के बीच काम करने की आदत न थी, दूसरे मेरा ख्याल था कि काफ़ी समय भी नहीं बच रहा है। अतएव मैं जो पढ़ रहा था उसके दिमाग़ में घुसने में कठिनाई हो रही थी।

"यह बैठा है, इधर, नेख्ल्यूदोव!" पीछे वोलोद्या का परिचित स्वर सुनाई पड़ा।

मैंने पीछे मुड़कर देखा। मेरा भाई और द्मीत्री कोट के बटन खोले और हाथ से मेरी ओर इशारा करते बेंच के बीच से गुज़रते हुए मेरे

पास आ रहे थे। स्पष्ट था कि वे दूसरे वर्ष के विद्यार्थी थे, विश्वविद्यालय से उतने ही सुपरिचित जितने अपने घर से। उनके बटन-खुले कोट से ही नये प्रवेश करनेवालों के प्रति उपेक्षा का भाव झलकता था और हम लोगों में उनके प्रति ईर्ष्या और आदर जगाता था। यह सोचते हुए कि आसपास के सभी लोग देख रहे होंगे कि मेरी जान-पहचान द्वितीय वर्ष के दो विद्यार्थियों से है मैंने गर्व अनुभव किया। मैं जल्दी से उनसे मिलने को उठ खड़ा हुआ।

वोलोद्या से थोड़ी अपनी शान जताये बिना न रहा गया। वह बोला :

"धत्तेरे की! बेचारे का अभी तक इम्तहान नहीं हुआ। क्यों?"

"नहीं।"

"पढ़ क्या रहे हो तुम? क्या तैयार नहीं किया है?"

"किया तो है। केवल दो सवालों में थोड़ी कसर रह गयी है। मेरी समझ ही में नहीं आते वे।"

"कौन, यह?" वोलोद्या बोला और लगा न्यूटन का बाइनोमियल थ्योरम समझाने। पर वह हड़बड़ी में और भी अस्पष्ट ढंग से बता रहा था। उसकी दृष्टि मेरी आंखों पर पड़ी जिसमें उनके ज्ञान के प्रति संशय का भाव था। तब वह द्मीत्री की ओर मुड़ा पर उनके चेहरे पर भी वही भाव देखकर झेंप गया। फिर भी वह कुछ न कुछ समझाता चला ही गया, जो मेरे पल्ले नहीं पड़ रहा था।

"ज़रा ठहर, वोलोद्या! मुझे बतलाने दे। शायद कहीं जगह मिल जायगा," द्मीत्री ने अध्यापकों के स्थान की ओर नजर डालते हुए कहा और मेरी बग़ल में बैठ गया।

मैंने तत्काल देख लिया कि मेरा मित्र उन शेखी और धृष्टताओं से भरी दिमागी हालत में था जिसमें अपने से संतुष्ट रहने पर वह होता हुआ करता था और जो मुझे उसके अंदर सबसे प्रिय लगती थी।

गणित में उसकी अच्छी गति थी और बड़ी स्पष्टता के साथ सब कुछ बता रहा था। ऐसे शानदार ढंग से उसने सवाल समझा दिया कि आज तक याद है। पर ज्यों ही उसने खत्म किया, St.-Jérôme ने ज़ोर से फुसफुसाकर कहा – «A vous, Nicolas!»* और मैं फ़ौरन उठकर इकोनिन के पीछे चल दिया। दूसरे सवाल पर दृष्टि तक डालने का मुझे मौक़ा न मिल सका। मैं मेज़ के पास गया जहां दो अध्यापक बैठे हुए थे और एक स्कूल का छात्र ब्लैकबोर्ड के सामने खड़ा था। छात्र ने निर्भीकता से कोई सूत्र कह सुनाया और खड़िया को ठप से बोर्ड पर तोड़ता हुआ लिखता चला गया, यद्यपि अध्यापक पहले ही – "बस, काफ़ी है" कह चुके थे। उन्होंने हम लोगों को अपने टिकट उठाने का आदेश दिया। कटे हुए परचों के नरम नरम ढेर से कांपती हुई उंगलियों से टिकट खींचते हुए मैंने मन में सोचा – "कहीं समवायक सिद्धांत आ गया तो!" इकोनिन ने टिकट चुना नहीं। उसने उसी साहसपूर्ण अंदाज़ में और पिछले इम्तहान के दिन की तरह पूरे शरीर को बग़ल में झुकाते हुए सबसे ऊपरवाला टिकट उठा लिया।

"मैं किस्मत का सांड़ हूं," उसने अस्फुट स्वर में कहा।

मैंने अपना टिकट देखा।

हे भगवान! यह तो वही समवाय का सिद्धांत निकला।

"तुम्हें क्या मिला?" इकोनिन ने पूछा।

मैंने दिखा दिया।

"मैं जानता हूं इसे!"

"अदला-बदली करोगे?"

"नहीं, आज तबीयत नहीं चाहती इसे छूने की" इकोनिन फुसफुसाकर इतना ही कह पाया था कि अध्यापक ने उसे तख़्ते के पास बुला लिया।

---

*[निकोलस, तुम!]

"अब गया," मैंने मन में कहा। "शान से इम्तहान पास करने के सपने चूर हुए। अब तो मारे शर्म के मुंह दिखाने लायक भी न रहा। इकोनिन से भी बुरा हाल होने जा रहा है हमारा!" किन्तु सहसा इकोनिन मेरी तरफ़ मुड़ा और अध्यापक के देखते हुए मेरे हाथ वाला टिकट छीन लिया और मुझे अपना दे दिया। मैंने उसका टिकट देखा। वह न्यूटन का बाइनोमियल थ्योरम था।

अध्यापक बूढ़ा न था और उसके चेहरे से खुशमिजाजी और समझदारी टपकती थी। यह भाव उसके ललाट के अत्यधिक उठे निचले भाग से विशेष पुष्ट होता था।

"यह क्या कर रहे हो, साहबो? टिकट बदल रहे हो?"

"नहीं, इन्होंने अपना टिकट जरा देखने को दिया था, प्रोफ़ेसर साहब!" इकोनिन ने झट बात बनायी। और 'प्रोफ़ेसर साहब' जो उसने कहा, यह आज भी उसके मुंह से निकला अंतिम शब्द था। मेरी बग़ल से गुज़रकर वह अपनी जगह पर लौट गया। जाते हुए उसने अध्यापकों और मेरे ऊपर दृष्टि फेंकी और ऐसे भाव से कंधे हिलाये मानो कह रहा है—"क्या रखा है इन बातों में।" (बाद में मुझे पता चला कि परीक्षा में बैठने का यह उसका तीसरा साल था)

सवाल मेरा ताज़ा लगाया हुआ था। अतः मैंने उसका, जैसा कि अध्यापक ने बताया, जरूरत से ज्यादा बढ़िया जवाब दिया। मुझे पूरे नम्बर मिले।

बारहवां परिच्छेद

लैटिन की परीक्षा

लैटिन का इम्तहान आने तक तो सब कुछ मजे मजे में रहा। गर्दन में रूमाल बांधनेवाला स्कूल का छात्र अभी तक सबसे आगे था, सेम्योनोव दूसरा, और मैं तीसरा। मुझे तो थोड़ा घमंड पनपने

भी होने लगा था। मैं सोच रहा था, कि इतना कम-उम्र होते हुए भी मैं कुछ हूं।

इम्तहान के पहले ही दिन से लैटिन के अध्यापक के विषय में एक आतंक-सा छाया हुआ था। लोग कह रहे थे, कि आदमी नहीं—जानवर है, उसे लड़कों को, विशेषकर अपने खर्च से पढ़ने वाले लड़कों को, फ़ेल करने में मज़ा आता है और वह लैटिन या ग्रीक के अलावा कुछ बोलता ही नहीं। St.-Jérôme ने जो मुझे लैटिन पढ़ाते थे, हिम्मत बंधायी और मुझे भी प्रतीत हुआ कि चूंकि मैं सिसेरो तथा होरेस के अनेक पद्य बिना शब्दकोश के अनुवाद कर सकता हूं और ज़ुम्प्त को भी अच्छी तरह पढ़ रखा है, मेरी तैयारी दूसरों से बुरी नहीं है। लेकिन मामले ने कुछ और ही रुख लिया। उस दिन सवेरे ही से मुझसे पहले जानेवालों के फ़ेल होने की कहानियां सुनने को मिल रही थीं। एक को सिफ़र मिला था, दूसरे को बस एक नम्बर। तीसरे को बुरी तरह डांट पड़ी थी और उसे निकालने तक की बारी आ गयी थी। केवल सेम्योनोव और अौवल आनेवाला स्कूल के छात्र जैसी शान्ति से गये थे वैसी ही शान से वापस आये। उन्हें पूरे नम्बर मिले थे। जिस समय इकोनिन के साथ मेरी पुकार हुई और मैं छोटी-सी मेज़ पर अकेले बैठे खूंखार अध्यापक के नज़दीक गया उस समय मेरा दिल न जाने कैसे पहले ही से कह रहा था, कि आज बुरी बीतने वाली है। अध्यापक नाटे, पतले, पीले से आदमी थे। उनके लम्बे बाल तेल से चुपड़े हुए और चेहरा विचारपूर्ण था।

उन्होंने इकोनिन को सिसेरो के भाषणों की एक प्रति दी और अनुवाद करने को कहा।

मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि वह अध्यापक की मदद से पढ़ तो रहा ही था, अनुवाद भी उन्हीं की मदद से कर रहा था। अध्यापक महोदय उसे बताते जा रहे थे। ऐसे कमज़ोर प्रतिद्वंदी के मुकाबले में मुझे अपनी श्रेष्ठता का गुमान था। जिस समय पदच्छेद

का प्रश्न आया और इकोनिन पहले की भांति सहमा मौन हो गया, मैं तिरस्कारपूर्ण मुस्कान न रोक सका। मैंने सोचा था कि अध्यापक उस समझदारी से भरी और व्यंग्यात्मक मुसकान से प्रसन्न होंगे। किन्तु उसका उलटा ही असर हुआ।

"अच्छा! तुम हंस रहे हो। इसका मतलब यह, कि तुम इस सवाल को ज्यादा अच्छी तरह जानते हो," उन्होंने टूटी-फूटी रूसी में कहा। "अच्छा देख ही लें कितने गहरे पानी में हो। बताओ तो इसका जवाब।"

मुझे बाद में पता चला कि लैटिन के अध्यापक इकोनिन के संरक्षक थे। बल्कि इकोनिन उन्हीं के घर पर रहता था। मैंने इकोनिन से पूछे वाक्य-रचना सम्बन्धी प्रश्न का झटपट जवाब दे डाला। पर अध्यापक महोदय चेहरे पर मुर्दनी का भाव ले आये और मेरी ओर से मुंह फेर लिया।

"बहुत अच्छा, साहब। बारी आ रही है आपकी भी। तब पता चलेगा कि कितना जानते हो!" उन्होंने मेरी ओर देखे बिना कहा और इकोनिन को सवाल समझाने लगे।

"तुम जा सकते हो," उन्होंने कहा, और मैंने देखा, कि रजिस्टर में इकोनिन के नाम के आगे चार नम्बर लिखे थे।

मैंने मन में कहा—"लोग जितना कहते थे उतने तो अध्यापक महोदय सख्त नहीं हैं।" इकोनिन के जाने के बाद पांच मिनट तक, जो मुझे पांच घंटों के समान लगे, वे किताबें और टिकट संभालते रहे। फिर नाक पोंछी, कुर्सी सीधी की, उसपर पीछे की ओर झुके, और कमरे के चारों ओर चारों दिशाओं, केवल मुझे छोड़कर, दृष्टि डाली। किन्तु यह सारा आडम्बर भी शायद उन्हें काफ़ी नहीं मालूम हुआ। इस बार वह किताब खोलकर उसे पढ़ने का बहाना करने लगे, मानो मैं वहां था ही नहीं। मैं थोड़ा आगे बढ़कर खांसा।

"ओ, अच्छा, तुम भी हो यहां। ठीक है। कुछ अनुवाद तो करो," कहते हुए उन्होंने मेरी ओर एक किताब बढ़ा दी। "नहीं, यह लो," यह कहकर उन्होंने होरेस की एक प्रति के पन्ने उलटे और उसमें से एक ऐसा टुकड़ा निकालकर दिया जिसका, मेरी समझ में, दुनिया में कोई भी अनुवाद नहीं कर पाता।

"यह मैंने नहीं तैयार किया है," मैंने कहा।

"तो, तुम जो रटकर आये हो, वही सुनाना चाहते हो क्या? बहुत अच्छा। नहीं, इसका अनुवाद करो तो।"

मैंने किसी तरह उसका भाव समझा। पर प्रत्येक बार मेरी जिज्ञासा की दृष्टि पर अध्यापक सिर हिला देते थे ठण्डी सांस भरते हुए कहते "नहीं।" अंत में उन्होंने किताब ऐसी घबराहट भरी जल्दी में बंद की कि उनकी उंगली पिच गयी। गुस्से से उसे बाहर निकालकर उन्होंने एक व्याकरण का सवाल दिया और कुर्सी में पीछे उठंगकर द्वेषपूर्ण मौन धारण कर लिया। मैं जवाब देने ही वाला था पर उनके चेहरे का भाव देख मेरी जीभ में ताला लग गया। अब जो भी कहता ग़लत मालूम होता था।

"नहीं, नहीं, यह नहीं," वह सहसा अपने भद्दे लहजे में बोल उठे, फुर्ती से कुर्सी में जगह बदली मेज़ पर केहुनी टेकी और बायें हाथ की पतली उंगली में पड़ी सोने की ढीली अंगूठी से खेलते रहे। "जी नहीं जनाब, विश्वविद्यालय की पढ़ाई को खेल समझने से काम नहीं चल सकता। आप लोग समझते हैं कि बस नीले कालर वाली पोशाक पहन ली और कुछ अटर-पटर सीख लिया तो छात्र बन गये। नहीं जनाब, अपने विषय को भली प्रकार जानो। इसके बिना कुछ नहीं बनने का।" और इसी तरह वह बकते गये।

टूटी-फूटी भाषा में किये इस पूरे भाषण के दौरान, मैं उनकी आंखों की ओर जो फ़र्श पर गड़ी हुई थीं टकटकी लगाकर देखता रहा। पहले तो यह ख्याल कि अब मैं तीसरा नहीं होऊंगा मुझे तंग करता

रहा। फिर यह ख्याल आया कि शायद इम्तहान पास ही न कर सकूं। और अंत में इस अन्याय का, अहं पर चोट खाने का और अकारण ही अपमानित किये जाने का भाव भी उठने लगा। इसके अतिरिक्त मन में अध्यापक के प्रति नफ़रत-सी उठी क्योंकि वह मेरी राय में comme il faut * न थे (ऐसा मैंने उनके छोटे, मजबूत और गोल नाखूनों को देखकर आंका था)। इसने मुझपर और भी प्रभाव डाला और मेरी भावनाओं को विषाक्त कर दिया। उन्होंने मेरे ऊपर दृष्टि डाली। मेरे कांपते ओंठों और आंसू से भरी आंखों को देख उन्होंने अवश्य ही इस भावावेग को नम्बर बढ़ाने की याचना समझी होगी और मानो मुझपर रहम करते हुए (और यह एक अन्य अध्यापक के सामने जो उस समय वहां आ गये थे) वे बोले:

"अच्छी बात है, जनाब, आपकी कमसिनी का ख्याल करके और इस उम्मीद के साथ कि विश्वविद्यालय में आप इस तरह ग़ैरसंजीदगी न बरतेंगे, मैं आपको पास भर के नम्बर दिये देता हूं गोकि आप इसके लायक नहीं हैं।"

एक अजनबी अध्यापक की उपस्थिति में, जो मेरी ओर इस तरह देख रहे थे मानो कह रहे हों "हां नौजवान, देख लिया न तुमने!" कही गयी इस अंतिम उक्ति ने मुझे पूरी तरह परेशान कर दिया। क्षण भर के लिए मेरी आंखों के सामने कुहासा-सा छा गया। भयावह अध्यापक अपनी मेज़ के साथ कहीं बहुत दूर बैठे दिखाई दिये और एक क्रूर-सा विचार भयानक एकांगी स्पष्टता के साथ मेरे मस्तिष्क में उठा—"अगर कहीं... अगर कहीं, तो क्या होगा?" पर किसी कारण से मैंने ऐसा किया नहीं। इसके विपरीत मैंने संभवतः, विशेष शिष्टाचार के साथ, दोनों अध्यापकों को सलाम किया और हल्के से

---

* [नेक और ईमानदार व्यक्ति]

मुसकराता हुआ—वही मुसकान जो इकोनिन ने प्रदर्शित की थी—मेज़ के पास से चल दिया।

इस अन्याय का मेरे ऊपर इतना गहरा असर हुआ कि यदि मेरा वश चलता तो आगे की परीक्षा न देता। मेरा सारा अहंकार जाता रहा (क्योंकि अब तीसरा स्थान पाने की कोई आशा न रही थी) और शेष परीक्षाएं मैंने बिना विशेष प्रयास के और बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के दीं। मेरा औसत फिर भी चार से कुछ ऊपर था। किन्तु इसमें मुझे तनिक भी दिलचस्पी न थी। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया और अपने को स्पष्टता के साथ यह सिद्ध भी कर बताया कि अव्वल होने की कोशिश अनुचित है तथा वास्तव में mauvais genre * है। वोलोद्या की तरह न बहुत अच्छे, न बहुत खराब होना ही ठीक है। मैंने विश्वविद्यालय में भी इसी उक्ति पर चलने का इरादा कर लिया यद्यपि इस विषय पर पहले पहल मेरे और मेरे मित्र द्मीत्री के बीच मतभेद हुआ।

इस समय मुझे केवल अपनी पोशाक, तिकोने हैट, अपनी खास द्राश्की, अपना खास कमरा और सबसे अधिक अपनी आज़ादी की ही फ़िक्र थी।

तेरहवां परिच्छेद

मैं बड़ा हो गया

और इन भावनाओं में जादू था।

अंतिम दिन। ८ मई को धार्मिक ज्ञान की परीक्षा थी। उस दिन घर लौटकर मैंने देखा कि, रोज़ानोव की दूकान से दर्ज़ी का सहायक आया हुआ है। उसे मैं जानता था क्योंकि वह मेरी वर्दी और खुले गले का चमकीले काले कपड़े का कोट फ़िट कराने आ चुका था और कोट

* [बुरी रुचि]

के कालर पर खड़िया से निशान लगाकर ले गया था। वह काग़ज़ में लपेटकर चमकीले क़लई के बटनों वाली तैयार पोशाक ले आया था।

मैंने पोशाक पहन ली और वह मुझे बहुत ख़ूबसूरत जंची (यद्यपि St.-Jérôme का कहना था कि पीठ पर वह थोड़ी ढीली थी)। पहनकर एक आत्मसंतुष्ट मुसकान के साथ, जो आप ही आप मेरे चेहरे पर फैल रही थी, मैं वोलोद्या की खोज में नीचे गया। घर के नौकर और नौकरानियां बाहरवाले कमरे और दालान से मुझे देख रहे थे। इसका मुझे पूरा पता था। पर मैंने यह दिखाने की कोशिश की कि मुझे कुछ मालूम नहीं। खानसामां गावरीलो पीछे से लपकता हुआ हाल में मेरे पास आया। उसने मुझे विश्वविद्यालय-प्रवेश पर बधाई दी, पिताजी के आदेशानुसार २५ रूबल के चार नोट दिये और पिताजी की ही हिदायत के मुताबिक़ मुझे बतलाया, कि कोचवान कुज़्मा, एक द्राश्की और 'सुंदर' नाम का भूरा घोड़ा आज से खास मेरी सेवा में रहेंगे। इन प्रायः अप्रत्याशित आनंद से मैं इतना उल्लसित हो उठा कि गावरीलो के सामने उदासीनता का अपना दिखावा न रख सका। घबराहट में जो सबसे पहले सूझे वे शब्द मुंह से निकल गये। मैंने कहा—"'सुंदर' बड़ा अच्छा घोड़ा है।" बाहरवाले कमरे और दालान के दरवाज़ों से बाहर झांकते सिरों को देखकर मैं अपने पर क़ाबू न रख सका और अपने नये कोट और चमकीले पीतल के बटनों में हॉल से निकल भागा। वोलोद्या के कमरे में घुसने के साथ ही मुझे दुबकोव और नेख़्ल्यूदोव की आवाज़ें सुनाई दीं। वे बधाई देने और मेरे विश्वविद्यालय-प्रवेश के उपलक्ष में कहीं बाहर जाकर भोजन करने और शैम्पेन पीने का प्रस्ताव लाये थे। द्मीत्री ने कहा कि शैंपेन की उसे चाह न थी, तो भी उस दिन हमारे साथ जाकर हम दोनों की दोस्ती के उपलक्ष में वह ज़रूर पियेगा। दुबकोव ने घोषणा की, कि मैं कर्नल जैसा लगता हूं। वोलोद्या ने मुझे बधाई न दी; रूखे स्वर में सिर्फ़ इतना कहा, कि अब परसों हम दोनों देहात के लिए रवाना हो सकेंगे।

ऐसा मालूम हुआ कि वह मेरे विश्वविद्यालय-प्रवेश से प्रसन्न तो था किन्तु साथ ही मेरा भी अपनी तरह वड़ा हो जाना उसे अरुचिकर प्रतीत हो रहा था। St.-Jérôme भी घर आये हुए थे। उन्होंने तपाक के साथ कहा, मेरा कर्तव्य पूरा हो चुका है, पता नहीं मैंने अपना कर्तव्य कैसा निवाहा है पर जहां तक वन पड़ा अच्छा ही करने की कोशिश की है। उन्होंने कहा कि अगले दिन वे अपने काउन्ट के पास चले जायंगे। मुझे जो कुछ भी कहा जा रहा था उसके जवाव में मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध एक मधुभरी, प्रमुदित, किंचित मूढ़तापूर्ण आत्मसंतोपयुक्त मुसकान लिये खड़ा था। मैंने देखा कि वे लोग जवाव में भी इसी तरह मुसकराते थे।

तो यह थी मेरी स्थिति जिसे अव मास्टर पाठ घोटाने न आया करेंगे, जिसकी अपनी अलग द्राश्की होगी, जिसका छात्रों की सूची में नाम है और कमर की पेटी में कटार लटक रही है। अव तो संतरी भी कभी कभी मुझे सलाम किया करेंगे। मैं वड़ा हो गया था, और मेरे ख्याल के मुताविक, खुश था।

हम लोगों ने 'यार'* में जाकर पांच वजे भोजन करने का निश्चय किया। पर वोलोद्या दुवकोव के साथ कहीं चला गया। द्मीत्री भी अपने पुराने तरीक़े के मुताविक यह कहते हुए कि खाने के पहले उसे एक ज़रूरी काम है कहीं खिसक गया। मेरे पास पूरे दो घंटे का समय रह गया था जिसमें मैं जो चाहूं करूं। मैं वड़ी देर तक सभी कमरों में, कभी कोट के सारे वटन लगाये, कभी सारे वटन खोले और कभी केवल ऊपरवाला वटन लगाये, आइनों में अपने को निहारता घूमता रहा। अपना हर रूप मुझे वहुत शानदार जंच रहा था। अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन करते हुए मुझे संकोच हो रहा था, फिर भी इसके वाद अस्तवल जाकर 'सुन्दर', कुज़मा और अपनी द्राश्की को देखने की इच्छा मैं न

---

* यार—होटल विशेप का नाम।—सं०

रोक सका। वापस आकर मैं फिर आईने में अपने को निहारने, जेब में रखे रूबलों को गिनने और लगातार उसी तरह की आनन्दित मुसकान लिये कमरों में घूमने लगा। लेकिन मैं एक घंटे में ही ऊब गया, अथवा अफ़सोस होने लगा कि उस भव्य वेष में वहां मुझे कोई देखनेवाला नहीं। मेरा मन कुछ करने, सक्रिय होने के लिए छटपटाने लगा। परिणामस्वरूप, मैंने द्रास्की जोतने का हुक्म दिया और तय किया कि 'कुज़नेत्स्की मोस्त' जाकर कुछ खरीदारी करनी चाहिए।

मुझे याद आया कि वोलोद्या ने विश्वविद्यालय में प्रवेश करने पर विक्टर एडम घोड़ों के कुछ लियोग्राफ़, तम्बाकू और पाइप खरीदे थे और मुझे भी वही करना लाज़िमी मालूम हुआ।

मैं गाड़ी में बैठकर कुज़नेत्स्की मोस्त पहुंचा। सूरज की चमकती किरणें मेरे बटनों, हैट के झब्बे और कटार पर पड़ रही थीं। चारों ओर से लोगों की निगाहें मेरे ऊपर पड़ रही थीं। मैं दात्सियारो की तस्वीरों की दूकान के पास आकर रुका। चारों ओर नज़र डालने के बाद मैं उसके अंदर दाख़िल हुआ। मैं विक्टर एडम के घोड़े नहीं खरीदना चाहता था क्योंकि मुझे डर था कि ऐसा करने से लोग मुझे वोलोद्या की नक़ल करनेवाला कहेंगे। उस विनम्र दूकानदार को परेशान करने में मुझे संकोच मालूम हो रहा था। अतः जल्दी से अपने लिए कोई सामान चुन लेने की उतावली में मैंने खिड़की में रखे एक स्त्री के सिर का भीगे रंग का चित्र ले लिया और उसके लिए बीस रूबल दे डाले। किन्तु बीस रूबल देने के बाद भी मेरा मन मुझे धिक्कार रहा था कि मैंने इस बढ़िया पोशाकवाले दूकानदार को एक मामूली-सी चीज़ लेकर तकलीफ़ दी। मुझे ऐसा लगा कि दोनों मुझे एक साधारण ग्राहक समझ रहे हैं। इसलिए, उन्हें यह जताने के लिए कि मैं किस कोटि का आदमी हूं मैंने अपना ध्यान शीशे के नीचे पड़ी चांदी की एक छोटी-सी चीज़ की ओर

फेरा। यह मालूम कर कि वह १८ रूबल क़ीमत का एक porte-crayon * है, मैंने उसे भी लपेट देने का हुक्म दिया। उसका दाम चुकाने और यह पूछ लेने के बाद कि अच्छी पाइप और बढ़िया तम्बाकू वग़ल की तम्बाकू की दूकान में मिलेगी मैंने दोनों दूकानदारों को विनम्रता से सलाम किया और तस्वीर को वग़ल में दबाये सड़क पर निकल आया। पड़ोस की दूकान में जिसकी तख्ती पर सिगार पीते हुए एक हब्शी का चित्र बना हुआ था, मैंने (किसी की नक़ल न करने की प्रेरणा से) जूकोव मार्का तम्बाकू के बदले सुल्तान मार्का खरीदा। इसके अलावा एक तुर्की पाइप और दो चुबूक** – एक लिन्डन की लकड़ी का और दूसरा रोज़वुड का, खरीदे। दूकान से निकलकर अपनी द्राश्की के पास जाते हुए मैंने सेम्योनोव को लम्बे डग भरते पटरी पर जाते देखा। वह साधारण पोशाक पहने, सिर झुकाये, चला जा रहा था। उसने मुझे पहचाना नहीं, इससे मुझे क्षोभ हुआ। मैंने ज़ोर से कहा – "गाड़ी हांको," और द्राश्की में बैठकर उसके पास जा पहुंचा।

"अच्छे तो हैं?" मैंने उससे कहा।

"नमस्कार," उसने पांव आगे बढ़ाते हुए जवाब दिया।

"वर्दी क्यों नहीं पहन रखी है आपने?" मैंने पूछा।

सेम्योनोव रुका, भौंहें सिकोड़ीं और सफ़ेद दांत बाहर किये मानो सूरज की ओर ताकने से उसे तकलीफ़ हो रही है। किन्तु वास्तव में वह मेरी द्राश्की और वर्दी के प्रति उपेक्षाभाव प्रगट करना चाहता था। उसने मौन होकर मेरी ओर ताका, और आगे बढ़ गया।

कुज़्नेत्स्की मोस्त से मैं त्वेर्स्काया की मिठाइयों की दूकान पर गया। वहां मैंने यह दिखावा करने की कोशिश की कि मेरी दिलचस्पी – दूकान

---

* [क़लमदान]

** चुबूक – लम्बी उकड़नी पाइप। – सं०

में रखे अखबारों में है पर वास्तव में अपने को रोक न सका और लगा केक पर केक उड़ाने। कुछ लोग अपने अपने अखबार की आड़ से कुतूहलपूर्वक मुझे घूर रहे थे। इस कारण मुझे बहुत संकोच मालूम हो रहा था। फिर भी दूकान में रखे सभी क़िस्म के केकों का एक-एक नमूना चखते हुए मैं धड़ाधड़ आठ केक निगल गया।

घर पहुंचने के बाद मुझे पेट में थोड़ी जलन मालूम हुई पर उसकी परवाह न कर अपनी खरीदारी के सामानों का निरीक्षण करने लगा। तस्वीर मुझे इतनी बुरी लगी कि, वोलोद्या की तरह उसे मढ़ाकर अपने कमरे में लगाना तो दूर, मैंने उसे दराज़ में ऐसी जगह छिपा दिया जहां किसी की दृष्टि न पड़े। घर आने पर मुझे porte crayon भी नहीं जंचा। पर मैंने उसे मेज़ पर रख दिया और यह कहकर अपने को तसल्ली दी कि वह चांदी का, कीमती और विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी वस्तु है।

जहां तक धूम्रपान वाले सामानों का सवाल था, मैंने फ़ौरन उनकी परीक्षा कर डालने का निश्चय किया।

चौथाई पाउंड की एक पुड़िया खोल, अपने तुर्की पाइप में रक्ताभ और पीताभ, बारीक सुल्तान मार्का तम्बाकू भर लिया। उसके ऊपर कोयले का एक अंगारा रख और पाइप की नली को तीसरी और चौथी उंगलियों के बीच थाम (हाथों की यह भंगिमा मुझे बड़ी शानदार लगी) मैं धुआं खींचने लगा।

तम्बाकू की गन्ध तो बहुत सोंधी लग रही थी पर स्वाद कड़वा था और धुएं में मेरी सांस अटक गयी। फिर भी मैं काफ़ी देर तक ज़बर्दस्ती धुआं खींचता और उसे छल्लों के रूप में बाहर फेंकने की कोशिश करता रहा। पूरा कमरा शीघ्र ही नीले रंग के धुएं के बादलों से भर गया। पाइप बुलबुले छोड़ने और गर्म तम्बाकू उछालने लगा। मुझे मुंह में कड़वाहट और सिर में चक्कर आने लगा। मैंने चाहा कि

अपने को पाइप पीते हुए आइने में देखूं और उठा। पर यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि मेरे पांव लड़खड़ा रहे थे। सारा कमरा नाच रहा था और आईने में, जहां तक मैं किसी प्रकार पहुंच गया था, मेरा चेहरा सफ़ेद चादर की तरह दिखाई दे रहा था। बड़ी कठिनाई से मैं पास के सोफ़े में धम से बैठ रहा। उस समय मैं इतना बीमार और कमज़ोर महसूस कर रहा था कि मैंने सोचा कि पाइप पीना मेरे लिए घातक सिद्ध हुआ है और मैं मर रहा हूं। मैं बेतरह घबरा गया और चाहा कि किसी को बुलाकर डाक्टर के यहां भेजूं।

किन्तु आतंक की यह अवस्था अधिक देर तक न रही। मैं शीघ्र ही समझ गया कि असली कारण क्या था। बड़ी देर तक कमज़ोर महसूस करता हुआ, सिर में भयानक दर्द लिये तथा चौथाई पाउंड की उस पुड़िया पर बने 'बोस्तान्जोग्लो' के मार्का के निशान, पाइप और पाइप पीने के अन्य उपकरणों को भोंडी दृष्टि से देखता हुआ सोफ़े के ऊपर पड़ा रहा। मिठाइयों वाले के यहां के केक के अवशेष फर्श पर बिखरे हुए थे। अपने प्रति मेरा भ्रम टूट गया था। मैं सोच रहा था—"दूसरों की तरह मैं पाइप नहीं पी सकता। निश्चय ही अभी बड़ा नहीं हुआ हूं। स्पष्टतः मेरी किस्मत में औरों की तरह बिचली और तीसरी उंगलियों के बीच पाइप थामे धुएं को निगलते, अपने हल्के रंग की मूछों के ऊपर से धुआं फेंकते हुए पाइप पीना नहीं बदा है।"

पांच बजे जब द्मीत्री मुझे लिवाने आया, उसने मुझको इसी दुःखद स्थिति में पड़ा पाया। लेकिन एक गिलास पानी पी लेने के बाद मैं प्रायः स्वस्थ और उसके साथ बाहर जाने को तैयार हो गया।

मेरे धूम्रपान के अवशेषों को देखते हुए उसने पूछा—"तुम्हें पाइप पीने की क्योंकर सूझी? बिल्कुल बेकार चीज़ है—केवल पैसे की बरबादी! मैंने तो प्रण कर रखा है कि कभी नहीं पियूंगा। लेकिन चलो, जल्दी करो, अभी दुबकोव को भी लिवाने जाना है।"

वोलोद्या और दुवकोव का धंधा

द्मीत्री ने ज्यों ही कमरे में प्रवेश किया, उसके चेहरे, चलने के ढंग और विशेष मुद्रा से (जव वह खीजा होता तो वह आंखें मटकाता और सिर को विचित्र ढंग से झटकता) मैं फ़ौरन समझ गया कि वह उस वेरुखी और हठीली मानसिक अवस्था में है जो उसके अपने आपसे असंतुष्ट होने पर प्रगट हुआ करती थी और जिसके आने पर उसके प्रति मेरे आवेग पर ठंडा पानी पड़ जाता था। इधर मैंने अपने मित्र के चरित्र को परखना शुरू कर दिया था। पर इससे हम लोगों की दोस्ती में कोई अंतर नहीं आया था। उसमें अभी इतना तारुण्य और दृढ़ता थी कि जिस कोण से भी मैं द्मीत्री को देखता उसकी उत्कृष्टता ही दिखाई पड़ती। उसके भीतर दो अलग अलग व्यक्ति थे और मेरी आंखों में दोनों ही वड़े शानदार थे। एक जिससे मुझे हार्दिक प्रेम था, शिष्ट, भला, शरीफ़, खुशमिजाज और अपने इन मिलनसार गुणों को जानता था। जव वह इस दिमाग़ी हालत में होता तो उसकी सम्पूर्ण आकृति, उसकी वोली और प्रत्येक चेष्टा मानो पुकारकर कहती थी—"मैं नेक हूं, भला हूं। जैसा कि तुम सभी देख सकते हो—मैं नेक भलामानस होना पसंद करता हूं।" दूसरा जिसे मैंने अव समझना और जिसकी भव्यता के आगे माथा नवाना आरम्भ कर दिया था—वेरुखी से भरा हुआ, अपने और दूसरों के प्रति रूखा, अभिमानी, कट्टरता की हद को छूने वाला धार्मिक और किताबी ढंग से नैतिक था। इस समय वह यही दूसरा व्यक्ति था।

खरापन हमारे पारस्परिक सम्वन्ध की अनिवार्य शर्त थी। अतः द्राश्की में सवार होने के वाद ही मैंने उससे कह दिया, कि आज के दिन जो मेरे लिए इतनी खुशी का है तुम्हें इस तरह वेरुखी और वदमिजाजी में देखकर मुझे वहुत तकलीफ़ हो रही है।

"अवश्य ही तुम्हें किसी बात की चिन्ता है। मुझको बताते क्यों नहीं कि क्या बात है?"

"निकोलेन्का," उसने खूब सोच-समझ कर अपना सिर झटके से एक ओर घुमाते हुए, गाल विचकाते हुए कहा। "चूंकि मैं वचन-बद्ध हूं कि तुमसे कुछ भी न छिपाऊंगा, इसलिए तुम्हें शक नहीं करना चाहिए कि मैं तुमसे कुछ भेद रख रहा हूं। आदमी हमेशा एक ही दिमाग़ी हालत में नहीं रह सकता, और यदि किसी चीज़ ने मुझे चिन्ता में डाल दिया है तो मैं अपने आपको भी नहीं बतला सकता कि वह क्या है।"

"कितना अनूठा, खरा और महान चरित्र है!" मैंने मन में सोचा और उससे फिर कुछ नहीं कहा।

दुबकोव के घर पहुंचने तक बाकी रास्ते हम लोगों में कोई बातचीत न हुई। दुबकोव का आवासस्थान असाधारण रूप से सुंदर था, या हो सकता है कि मुझे उस समय वह ऐसा ही लगा हो। हर ओर कालीन, तस्वीरें, परदे, रंगीन सजावट, प्रतिकृतियां, और वक्राकार कुर्सियां सजी हुई थीं। दीवारों पर बंदूक, पिस्तौल, तम्बाकू की थैलियां और पेपर-मेशी के बने जानवरों के सिर लटक रहे थे। इस अध्ययन कक्ष को देखते ही मैं समझ गया कि वोलोद्या ने अपने कमरे को सजाने में किसकी नक़ल की थी। वोलोद्या और दुबकोव ताश खेल रहे थे। एक आदमी जिसे मैं नहीं जानता था (और जिसके मसकीन रवैये से पता चलता था कि उसमें कोई विशेषता नहीं है।) मेज़ के पास बैठकर बड़े ध्यान से खेल देख रहा था। दुबकोव ने रेशमी ड्रेसिंग-गाउन और मुलायम जूते पहन रखे थे। वोलोद्या केवल कमीज़ पहने उसके सामने के सोफ़ा पर बैठा हुआ था। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और हम लोगों के प्रवेश करने पर उसने एक उड़ती हुई असंतोषपूर्ण दृष्टि इधर फेंकी। स्पष्ट था कि वह खेल में बुरी तरह व्यस्त था। मुझे देखकर उसका चेहरा और भी लाल हो गया।

"चलो, तुम्हारी बांटने की बारी है," उसने दुबकोव से कहा। मैं ताड़ गया कि मेरा यह जानना कि वह ताश खेलता है, उसे बुरा लगा था। किन्तु उसकी निगाह में घबराहट न थी। वह मानो कह रहा था:

"खेल रहा हूं तो? तुमको इसमें अचरज इसलिए मालूम होता है कि तुम अभी बच्चे हो। पर इसमें कोई हानि नहीं। मेरी उम्रवालों के लिए तो यह ज़रूरी है।"

मैंने फ़ौरन इसे महसूस किया और समझ भी गया।

पर पत्ते बांटने के बदले दुबकोव उठा, हम लोगों से हाथ मिलाया और पाइप पीने को कहा जिसे हमने अस्वीकार कर दिया।

"तो आ गये हमारे कूटनीतिज्ञ महोदय – आज के हमारे हीरो!" दुबकोव ने कहा, "तुम तो यार हू-ब-हू कर्नल जैसे लगते हो।"

"हूं," मैंने अस्फुट स्वर में कहा। मैं महसूस कर रहा था, कि वही मूढ़तापूर्ण अत्मसंतुष्ट मुसकुराहट मेरे चेहरे पर फैल गयी है।

दुबकोव के समक्ष मैं उस संभ्रम के साथ खड़ा था जो एक सोलह वर्ष का बालक एक सताईस वर्षीय सैनिक के सामने, जिसे सभी बुजुर्ग लोग एक रोबीला नौजवान मानते हों, जो नाचता और लाजवाब फ़्रांसीसी बोलता हो और जो मेरी अल्पवयस्कता को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए भी प्रत्यक्ष अपनी भावना को छिपाने की कोशिश करता हो, महसूस कर सकता है।

किन्तु उसके प्रति पूर्णतया आदर होते हुए भी न जाने क्यों मैंने अपने सम्पूर्ण परिचय-काल में उससे आंखें मिलाने में कठिनाई और संकोच अनुभव किया। उसके बाद से मैंने यह पाया है कि तीन वर्ग के लोग हैं जिनसे आंखें मिलाने में मुझे कठिनाई होती है – एक तो जो मुझसे घटिया हैं दूसरे जो मुझसे बहुत बेहतर हैं और तीसरे वे जिनसे उन चीज़ों की जिसे हम दोनों ही जानते हैं चर्चा करने का मैं संकल्प नहीं कर पाता हूं और जिनकी न वे ही मुझसे कभी चर्चा करते हैं। मैं नहीं जानता कि दुबकोव

मुझसे बेहतर था या बदतर, पर एक बात निश्चित थी—वह प्रायः झूठ बोला करता था और बिना इसे स्वीकार किये। मैंने उसकी यह कमज़ोरी पकड़ी थी, पर कभी इसे कहने की हिम्मत नहीं कर सका था।

"आओ, एक बाज़ी और हो जाय," वोलोद्या ने पिताजी की तरह एक कंधा हिलाते और पत्तों को फेंटते हुए कहा।

"बाबा, तुमसे तो पल्ला छुड़ाना मुश्किल है," दुबकोव ने कहा। "फिर खेल लेंगे। अच्छा, आओ। एक बाज़ी और खेल लेते हैं।"

जब वे खेल रहे थे, मैंने उनके हाथों को देखा। वोलोद्या का हाथ बड़ा और सुंदर था। वह अंगूठा अलग रखता था और ताश को पकड़ते समय बाक़ी उंगलियां ठीक पिताजी की तरह मोड़े रहता था। मुझे एक बार तो यह शक हुआ वह जानबूझकर—अपने को अधिक वयस्क दिखाने के लिए—ऐसा कर रहा है। पर उसके चेहरे को देखने के बाद पता चला कि वास्तव में उसका पूरा ध्यान खेल पर था। इसके विपरीत, दुबकोव के हाथ छोटे छोटे, मांसल और अंदर की ओर मुड़े हुए थे। उसकी उंगलियां बहुत ही नाज़ुक और कलापूर्ण थीं—बिलकुल वैसे हाथ जिनमें अंगूठियां खूब फबती ँ और जसा दस्तकारों तथा लालित्य-प्रेमियों के हुआ करते हैं।

वोलोद्या बाज़ी हार गया था क्योंकि जो सज्जन उसके पत्ते देख रहे थे उन्होंने कहा, कि किस्मत व्लादीमिर पेत्रोविच का आज बिल्कुल साथ नहीं दे रही है। दुबकोव ने अपनी पाकेट-बुक निकाली और उसमें कुछ लिखने के बाद उसे वोलोद्या को दिखाते हुए बोला—"ठीक है न?"

"हां," वोलोद्या ने दिखावटी विरुचि के साथ उसे देखकर कहा। "अब चला जाय।"

वोलोद्या ने दुबकोव को गाड़ी में बैठाया और द्मीत्री ने मुझे अपनी फ़िटन में ले लिया।

"ये लोग क्या खेलते हैं?" मैंने द्मीत्री से पूछा।

"पिकेट। यह वोड़म खेल है। और यही क्यों, जुआ खेलना ही मूर्खता का काम है।"

"क्या वड़ी रकमों के दांव लगाते हैं ये लोग?"

"नहीं, वहुत वड़ी नहीं। फिर भी यह वुरा काम है।"

"और तुम नहीं खेलते?"

"नहीं, मैं वचनवद्ध हूं कि उसके नज़दीक भी न जाऊंगा। दुवकोव जो मिल जाता है, उसी को पकड़ लेता है और आम तौर से उसी की जीत होती है।"

"लेकिन यह तो अनुचित करता है वह," मैंने कहा। "वोलोद्या को शायद उसके जैसा खेलना आता भी नहीं।"

"ठीक है। यह अनुचित है। पर उसमें वैसी कोई वहुत वड़ी वुराई भी नहीं है। दुवकोव को ताश पसंद है, और खेलता भी अच्छा है, फिर भी वह लाजवाव आदमी है।"

"पर मुझे तो यह ख्याल भी न था ..."

"नहीं, तुम्हें उसके वारे में वुरा ख्याल न लाना चाहिए अपने मन में, क्योंकि सचमुच वह वहुत ही भला आदमी है। और मैं उसे वहुत चाहता हूं और चाहता रहूंगा – उसकी कमज़ोरियों के वावजूद।"

न जाने क्यों (सम्भवतः इसलिए कि द्मीत्री ने ज़रूरत से अधिक जोश के साथ दुवकोव की हिमायत की थी) मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके हृदय से दुवकोव के प्रति स्नेह और आदर का भाव खत्म हो चुका है किन्तु अपने हठी स्वभाव के कारण वह इसे स्वीकार न करेगा, सोचेगा कि ऐसा करने पर चंचल स्वभाव वाला कहकर उसकी आलोचना की जायगी। वह उन लोगों में से था जो किसी को एक वार मित्र वनाकर उसे जीवन भर प्यार करते हैं। इसलिए नहीं कि उनके हृदय में उस

मित्र के प्रति बराबर ही प्यार बना रहता है बल्कि केवल इसलिए कि एक बार किसी को चाहकर (भले ही ग़लती के कारण ऐसा किया हो) उसे चाहना बंद कर देना वे अपनी आन के खिलाफ़ समझते हैं।

पंद्रहवां परिच्छेद

मेरे पास होने की ख़ुशी मनायी गयी

'यार' में दुबकोव और वोलोद्या प्रत्येक व्यक्ति को नाम से जानते थे और मालिक से नौकर तक सभी उनके प्रति विशेष आदर से पेश आते थे। हमें फ़ौरन एक अलग कमरे में ले जाकर बैठाया गया और बहुत ही स्वादिष्ट भोजन हमारे सामने लाकर रख दिया गया। इसे फ़्रांसीसी भोज्य पदार्थों की सूची से दुबकोव ने चुना था। एक ठण्डी शैम्पेन की बोतल, जिसे मैं जितनी अरुचि के साथ हो सकता था, देखता रहा था, पहले से तैयार रखी थी। भोजन हंसते-खेलते बल्कि बड़े ही आनन्द के साथ बीता यद्यपि दुबकोव, जैसा कि उसका नियम था, ऐसी घटनाओं की कहानियां सुनाता रहा जिनका न सिर था न पैर और जिनके झूठ सच का भी कोई पता न चलता था। उसकी कहानियों में एक कहानी उसकी नानी के बारे में थी। उन्होंने पलीतेवाली बंदूक से तीन डाकुओं को, जिन्होंने उनके ऊपर हमला किया था, मार डाला था। (पलीते की बंदूक का नाम आने पर मैंने शर्मा कर आंखें नीची कर लीं और मुंह फेर लिया)। भोजन की बातचीत के समय वोलोद्या का यह हाल था कि मेरे ओंठ खुलते तो वह बेतरह घबरा उठता था। (यह अनावश्यक था क्योंकि जहां तक मुझे याद है मैंने कोई ऐसी टीका नहीं की जिसपर उसे झेंपने की ज़रूरत होती)। जब शैम्पेन लायी गयी सभी ने मुझे बधाई दी और "मेज़ के आर-पार" दुबकोव और द्मीत्री के साथ हाथ मिलाते हुए मैंने शराब पी। इसके बाद हमने एक-दूसरे का चुम्बन लिया जिसके बाद हम एक-दूसरे को 'तू'

कहकर पुकारने के अधिकारी हो गये। मुझे नहीं मालूम था कि शैम्पेन किसकी ओर से आ रही है (बाद में मुझे बताया गया कि वह मिल-जुलकर ख़रीदी गयी थी) और मैं अपने पैसों से, जिन्हें मैं जेब में हाथ डालकर बराबर उंगलियों से टटोल रहा था, अपने मित्रों की ख़ातिरदारी करना चाहता था। अतः मैंने चुपके से दस रूबल का एक नोट निकाल कर वेटर को बुलाया और उसे नोट देते हुए धीरे से फुसफुसाकर, पर इतनी काफ़ी स्पष्टता के साथ कि सभी सुन लें, शम्पेन का एक अद्धा और ले आने को कहा। वोलोद्या का चेहरा लाल हो गया। वह इतने ज़ोर से अपने कंधे झटकने और मेरे तथा और दूसरों की ओर घबराहट की निगाहों से देखने लगा कि मैं फ़ौरन समझ गया कि मुझसे कोई बड़ी भूल हो गयी है। ख़ैर, बोतल आयी और हम सबने आनन्दपूर्वक पान किया। हमारी मण्डली ख़ूब जम गयी थी। दुबकोव बिना रुके अपनी गप्पें सुनाता चला जा रहा था। वोलोद्या ने भी कुछ मज़ाकिया कहानियां सुनायीं और इतने अच्छे ढंग से सुनायीं कि सुनने से पहले मैं उसके इस गुण पर विश्वास नहीं कर सकता था। हम ख़ूब हंसे। दुबकोव और वोलोद्या के विनोद की शैली यह थी कि वे कोई सर्वविदित चुटकुला लेकर उसकी नक़ल करने और उसे अतिरंजित करके पेश करते। चुटकुले में एक पूछता है—"आप विदेश हो आये हैं?" दूसरा जवाब देता है—"नहीं, पर मेरा भाई बहुत अच्छी वायोलिन बजाता है"। इस तरह के मज़ाकिया चुटकुले सुनाने में उन्हें अपूर्व कौशल प्राप्त था। "नहीं, पर मेरा भाई वायोलिन बजाता है" को उन्होंने "नहीं, न मेरा भाई वायोलिन ही बजाता है," बना दिया था। एक सवाल करता, दूसरा इसी ढंग के जवाब देता था। कभी कभी वे बिना सवाल के ही दो बिलकुल बेतुकी चीज़ें जोड़ देते थे। और इतनी संजीदगी के साथ कि हम हंसते-हंसते लोटपोट हो जाते। मैं भी इस खेल का कौशल समझने लगा था और मैंने भी एक मज़ाकिया चुटकुला छेड़ना चाहा। पर उस समय उनके चेहरे पर

एक अजीब घबराहट-सी छा गयी और सब मेरे बोलते समय मेरी ओर न देखने की कोशिश करने लगे। मेरा चुटकुला ठप पड़ गया। दुबकोव बोला–"यह कुछ बना नहीं, कूटनीतिज्ञ भैया!" किन्तु पेट में शैम्पेन और इन वयस्कों की संगत का सौभाग्य, इसने मेरा मन इतना उल्लासित कर रखा था कि इस टीका से मुझे तकलीफ़ न हुई। केवल द्मीत्री हम लोगों के बराबर ही पीने के बावजूद भी शांत और संजीदा बना रहा। इससे हंसी मज़ाक की वह मजलिस मर्यादित बनी रही।

"अच्छा, सज्जनो अब एक बात है," दुबकोव बोला, "भोजन के बाद कूटनीतिज्ञ महाशय की थोड़ी संभाल करने की ज़रूरत है। हम लोग चची जान के यहां चलें तो, कैसा हो? वहां इसका ठिकाना किया जा सकता है।"

"नेख़्ल्यूदोव नहीं जायेगा, मगर," वोलोद्या बोला।

"हां, वह कैसे जा सकता है। वह तो पूरा महात्मा है। कबाब में कांटा," दुबकोव ने उसकी ओर मुड़कर कहा। "चलो न हमारे साथ? चलके देखो चची कितनी चटपटी है!"

"मैं हरगिज़ नहीं जा सकता, और न इसे ही जाने दूंगा," द्मीत्री ने तमतमाये चेहरे के साथ कहा।

"किसे? कूटनीतिज्ञ को? क्यों भैया कूटनीतिज्ञ, जायगा तू? हां, हां, देखा, चची का नाम लेते ही इसका चेहरा खिल उठा है।"

"मेरा यह कहने का मतलब नहीं कि मैं उसे रोक लूंगा," द्मीत्री ने अपनी सीट से उठते और मेरी ओर देखे बिना कमरे में टहलते हुए कहा। "पर न जाने की सलाह मैं उसे अवश्य दूंगा और चाहूंगा भी कि वह न जाय। वह बच्चा नहीं रहा। और जाना ही होगा तो तुम्हारे बिना भी, अकेले भी जा सकता है। लेकिन तुम्हें डूब मरना चाहिए, दुबकोव। एक तो तुम जो कर रहे हो वह यों ही अच्छा काम नहीं, उसपर तुम दूसरों को भी उसमें धकेलना चाहते हो।"

"हर्ज ही क्या है इसमें," दुबकोव ने वोलोद्या की ओर कनखी चलाते हुए कहा। "मैं तुम लोगों को अपनी चची के यहां चलकर प्याली चाय का न्योता देना चाहता हूं। कौनसी बुरी बात हो गयी इसमें? हां, अगर तुम्हें हमारे साथ जाना पसंद नहीं तो वोलोद्या और हम अकेले ही चले जायंगे। चल रहा है न तू, वोलोद्या?"

"हूं," वोलोद्या ने स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहा। "हम लोग वहां जायंगे और वहां से लौटकर मेरे कमरे में फिर पिकेट जमायेंगे।"

"अच्छा, तुम जाना चाहते हो इन लोगों के साथ कि नहीं?" द्मीत्री ने मेरे पास आकर कहा।

"नहीं," मैंने सोफ़े पर एक ओर खिसककर उसके लिए जगह बनाते हुए कहा। "मेरी यों भी जाने की इच्छा नहीं है, और जब तुम मना करते हो तब तो हरगिज़ नहीं जाऊंगा।"

"नहीं," मैंने ठहरकर फिर कहा। "दिल पर हाथ रखकर मैं नहीं कह सकता कि मेरी इच्छा नहीं है उनके साथ जाने की; फिर भी मुझे खुशी है कि मैं नहीं जा रहा।"

"बिल्कुल ठीक," उसने कहा, "आज़ादी के साथ और अपने ढंग से रहो, दूसरों के इशारों पर न नाचो। यही सबसे बड़ी चीज़ है।"

इस छोटे-से झगड़े से हमारा मज़ा किरकिरा न हुआ, बल्कि और रंग आ गया। द्मीत्री ने एक नेक काम किया था और इसका उसकी चेतना पर इतना प्रबल प्रभाव पड़ा (मैंने बाद में कई बार परखा था कि अच्छा काम करने पर उसपर इसी तरह का प्रभाव हुआ करता था) कि वह अनायास सौम्यता की मूर्ति बन गया। (उसका यह रूप मुझे सबसे अधिक प्रिय था)। मुझे जाने से रोक सकने पर वह अपने आपसे बहुत संतुष्ट था। वह असाधारण रूप से उत्फुल्ल हो गया, शैम्पेन की एक और बोतल लाने का हुक्म दिया (यह उसके नियम के विपरीत था), एक अजनबी को कमरे में बुलाकर उसे जाम पर जाम पिलाये, और Gaudeamus igitur *

---

* लैटिन भाषा में छात्रों का एक गीत।—सं०

गायी, सबको गाने में शरीक होने का अनुरोध किया और प्रस्ताव किया कि गाड़ी से सोकोल्निकी चलना चाहिए, जिसपर दुबकोव ने कहा कि ऐसा करना भावुकता होगी।

आओ, आज मौज करें," द्मीत्री ने मुसकुराकर कहा, "इसके विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के उपलक्ष में आज मैं पहले पहल नशा करूंगा। और उपाय ही क्या है? बिल्कुल मजबूरी है।" यह मस्ती द्मीत्री को अनोखे ढंग से फब रही थी। वह उस मास्टर या सहृदय पिता की तरह लग रहा था जो अपने बच्चों से संतुष्ट है और उन्हें खुश करना चाहता है और साथ ही यह भी दिखाना चाहता है कि वह अपने खास बुजुर्गाना अंदाज़ में मस्ती प्रगट कर सकता है। फिर भी उसकी इस अप्रत्याशित मस्ती ने मेरे ऊपर संक्रामक प्रभाव डाला। इसका एक खास कारण यह भी था कि हम सभी एक एक अद्धा चढ़ा चुके थे।

अपने आपसे अत्यधिक प्रसन्नता की इसी अवस्था में हमने दुबकोव की दी हुई सिगरेट पीने के लिए बड़े कमरे में प्रवेश किया।

अपनी सीट से उठते समय मैंने महसूस किया कि मेरे सिर में कुछ चक्कर जैसा आ रहा है और हाथ-पांव तभी स्वाभाविक अवस्था में रह पाते थे जब सारा ध्यान उनके ऊपर केंद्रित रखूं। नहीं तो पैर ज़रा एक ओर को पड़ जाते थे और हाथ मुद्राएं दिखाने लगता था। मैंने सारा ध्यान अपने अवयवों पर केंद्रित किया। हाथों को उठाकर कोट के बटन लगाने और केशों को संवारने की (यह करते हुए मेरी केहुनियां विचित्र ढंग से ऊंची उठी जा रही थीं) आज्ञा दी। पैरों को मैंने दरवाज़े तक पहुंचाने का हुक्म दिया और यह हुक्म वे बजा भी लाये पर या तो बहुत जोर से या हल्के पड़ते हुए और बायां पैर तो बराबर पंजों के भार पर खड़ा रहा। "कहां चलें?" किसी ने पीछे से पुकारकर कहा। मैं समझ गया कि वह वोलोद्या की आवाज़ थी और यह सोचकर कि मैंने ठीक समझा था संतोष हुआ। जवाब में मैं केवल मुसकुरा दिया और आगे बढ़ता गया।

सोलहवां परिच्छेद

झगड़ा

बड़े कमरे में एक छोटी मेज़ के पास एक ठिंगने, हृष्ट-पुष्ट सज्जन, जिनकी मूंछें लाल थीं, बैठे खाना खा रहे थे। उनकी बगल में एक लम्बा, सांवला, बिना मूंछों वाला आदमी बैठा हुआ था। वे फ़्रांसीसी में बातें कर रहे थे। उनकी निगाहें मेरे ऊपर पड़ीं तो मैं जरा अप्रतिभ हो गया। तो भी उनकी मेज़ पर रखी मोमबत्ती से मैंने अपनी सिगरेट जलाने का फैसला किया। उनकी आंखों से आंखें बचाते हुए मैं मेज़ के पास गया और अपनी सिगरेट बत्ती से लगायी। जब वह अच्छी तरह जल उठी, मेरी दृष्टि बरबस भोजन कर रहे सज्जन की ओर चली गयी। मैंने देखा कि उनकी भूरी आंखें मेरे ऊपर गड़ी हुई हैं और उनमें नाराज़ी का भाव है। मैं पलटने ही वाला था कि उनकी लाल लाल मूंछें हिलीं और उन्होंने फ़्रांसीसी में कहा—"मैं जब खा रहा हूं उस वक्त किसी का सिगरेट पीना मुझे पसंद नहीं, जनाब!"

मैंने अस्फुट स्वर में कुछ उत्तर दिया।

"जी हां, कहा मैंने न कि मैं नहीं पसंद करता," मूंछ वाले महाशय कठोर स्वर में और एक दृष्टि, बिना मूंछ वाले सज्जन की ओर इस प्रकार डालकर मानो कह रहे हों कि देखो इन हज़रत से कैसे निपटता हूं, बोलते चले गये—"और न मुझे ऐसों की उद्दण्डता पसंद है जो आकर आपके मुंह पर सिगरेट का धुआं फेंकने लगते हैं। जी नहीं, बिल्कुल नहीं पसंद है।" मैं फ़ौरन समझ गया, कि वह मुझे डांट रहा है लेकिन शुरू में मुझे ऐसा लगा कि मुझसे बड़ी भूल हो गयी है।

"मुझे ख्याल न था कि आपको तकलीफ़ होगी," मैंने कहा।

"और आपको क्या यह ख्याल था कि आप बदतमीज हैं! नहीं? पर मुझे था!" उसने गरजकर कहा।

"आपको मेरे ऊपर इस तरह गरजने का क्या अधिकार है?" मैंने यह महसूस करते हुए कि वह मुझे अपमानित कर रहा है और स्वयं तैश में आते हुए कहा।

"यही अधिकार है कि मैं अपने सामने किसी को उद्दण्डता नहीं दिखाने दिया करता। और तुम्हारे जैसे छोकरों को तो मैं चुटकियों में सवक़ सिखा देता हूं। आपका नाम और घरवार का पता क्या है, जनाव?"

मैं गुस्से से आगवबूला हो गया। मेरे ओंठ कांपने लगे, सांस रुक-रुककर आने लगी। फिर भी मुझे ऐसा लग रहा था कि ग़लती मेरी ही थी। सम्भवतः इसका कारण यह था, कि मैंने वहुत ज्यादा शैम्पेन चढ़ा ली थी। मैंने उन सज्जन को खरी-खोटी नहीं सुनायीं, वल्कि मेरे ओंठों ने वड़ी ही दीनता के साथ अपना नाम और ठिकाना वता दिया।

"और मेरा नाम है कोल्पिकोव। समझ गये, न, महाशय आप! तकलीफ़ तो आपको होगी मगर आइन्दा मुझसे ज़रा कायदे से वातें कीजिएगा। फिर किसी दिन वंदे से मुलाकात होगी। (vousaurez de mes nouvelles)" और यह कहकर उसने वातचीत जो पूरी की पूरी फ़्रांसीसी में हुई थी खत्म की।

मैंने अपनी आवाज़ में अधिक दृढ़ता लाने की कोशिश करते हुए, इतना ही कहा—"मुझे वड़ी ख़ुशी होगी।" यह कहकर मैं पीछे मुड़ा और सिगरेट लिये जो इस वीच वुझ गयी थी अपने कमरे में वापस लौट गया।

मैंने इस घटना के वारे में अपने भाई या मित्र, किसी से कुछ नहीं कहा (इसकी वजह यह भी थी कि वे उस समय गरमागरम वहस में मशग़ूल थे) और चुपचाप एक कोने में वैठकर उस विचित्र वाक़या पर ग़ौर करने लगा। "आप वदतमीज़ हैं" (un mal élevé, Monsieur) ये शब्द मेरे कानों में गूंज रहे थे जिससे मेरा गुस्सा वढ़ता ही जा रहा था। मेरा नशा हिरन हो चुका था। इस घटना में अपनी भूमिका पर नज़र डालते हुए यकायक हथौड़े की चोट की तरह यह ख्याल मेरे मन में आया कि मैंने कायरों जैसा व्यवहार किया है। "उसे इस तरह मुझे डांटने

का अधिकार क्या था? इतना कह देना क्या उसके लिए काफ़ी न था – मेरी हरकत से उसे असुविधा हुई थी। ग़लती उसी की थी। ऐसी हालत में जब उसने मुझे बदतमीज़ कहा उस वक्त मैंने भी क्यों नहीं उसे जवाब दिया: 'बदतमीज तो महाशय वे लोग होते हैं जो औरों के साथ बदतमीज़ी से पेश आते हैं।' या डांट ही क्यों न दिया मैंने – 'ज़बान बंद करो!' ऐसा करने पर मज़ा आ जाता। मैंने उसे द्वंद्व युद्ध के लिए क्यों नहीं ललकारा? नहीं, मैंने यह सब कुछ ठीक नहीं किया, बल्कि कायरों की तरह बेइज़्ज़ती करवा ली।" "आप बदतमीज़ हैं!" – ये शब्द लगातार हथौड़े की चोट की तरह मेरे दिमाग़ में आ रहे थे। "नहीं, नहीं, यों नहीं छोड़ देना होगा उसे।" मैंने मन में सोचा और, इस दृढ़निश्चय के साथ कि उन्हें जाकर सेर की पसेरी सुनाऊंगा, या ज़रूरत हुई तो सिर पर चिराग़दान दे मारूंगा, मैं उठा। अंतिम संकल्प से मुझे बहुत अधिक मानसिक संतोष हुआ। फिर भी जिस समय मैंने बड़े कमरे में पैर रखा मेरा कलेजा धड़क रहा था। सौभाग्यवश कोल्पिकोव वहां मौजूद न था। केवल एक बेटर मेज़ साफ़ कर रहा था। मैंने चाहा कि बेटर से सारी घटना बयान कर दूं और उसे बता दूं कि ग़लती मेरी न थी, पर न जाने क्या सोचकर मैंने यह इरादा बदल दिया और फिर अपने कमरे में अत्यंत उदास चित्त से लौट आया।

"कूटनीतिज्ञ के साथ आज माजरा क्या है?" दुबकोव ने कहा। "मेरा यार शायद आज यूरोप के भाग्य का निपटारा कर रहा है।"

"छोड़ दो मुझे," मैंने नाराज़ होकर कहा और मुंह फेर लिया। और तब कमरे में टहलते हुए मैं न जाने क्यों यह सोचने लगा कि दुबकोव अच्छा आदमी नहीं है। "और उसका हर वक्त का मज़ाक करना तथा 'कूटनीतिज्ञ' कहकर पुकारना, इसमें भी दोस्ताना भाव नहीं है। इसे केवल वोलोद्या से रुपये जीतना और अपनी किन्हीं चची जान के घर जाना ही आता है। और इसमें मज़ेदार क्या है? वह बोलता भी है तो

सरासर झूठ या कुटिलता से भरी बातें। और दूसरों की हंसी उड़ाना तो उसका पेशा ही है। बिलकुल नालायक़ आदमी है। नालायक ही नहीं, बिल्कुल बुरा आदमी है।" पांच मिनट तक मैं इसी तरह की बातें सोचता रहा। दुबकोव के प्रति मेरा द्वेषभाव बढ़ता जा रहा था। जहां तक दुबकोव का सवाल है, उसे मानो मेरी परवाह ही न थी। इससे मैं और जलभुनकर खाक हो गया। मुझे वोलोद्या और दुबकोव पर भी इसलिए ग़ुस्सा आने लगा कि वे उससे बातें कर रहे थे।

"जानते हो, दोस्तो! कूटनीतिज्ञ के ऊपर थोड़ा ठण्डा पानी डालना होगा," उसने सहसा मेरी ओर दृष्टि फेंकते हुए कहा। उस दृष्टि में मुझे चिढ़ाने का भाव और कुटिल मुसकुराहट दिखाई दी। "इसकी तबीयत ठीक नहीं लगती है। मैं कहता हूं, इसकी तबीयत ठीक नहीं।"

"तुम्हीं को पानी में ग़ोते देने की ज़रूरत है। तुम्हारी ही हालत ठीक नहीं।" मैंने उलटकर, कड़वी मुसकान के साथ जवाब दिया। मैं यह भी भूल गया कि मैंने उसे तू कहकर पुकारा है।

इस जवाब से दुबकोव ज़रूर हैरान हुआ होगा, पर उसने उपेक्षा से मेरी तरफ़ से मुंह फेर लिया और वोलोद्या तथा द्मीत्री से बातें करने लगा।

मैं भी बातचीत में शामिल होने की कोशिश करता किन्तु मैंने महसूस किया कि मन के भीतर की भावना छिपा न सकूंगा। अतएव फिर अपने कोने में जा बैठा। विदा होने समय तक मैं वहीं बैठा रहा।

बिल चुकाने के बाद जब हम अपने ओवरकोट पहन रहे थे, दुबकोव ने द्मीत्री से कहा—"ओरेस्टीस और प्यालेडीस किधर को जायंगे? घर को, प्रेम-प्यार की बातें करने? हम लोग तो, भई, चची जान के यहां चले। तुम लोगों की कसीली दोस्ती से वह ज्यादा मज़ेदार है।"

"ख़बरदार! जो हम लोगों के बारे में इस तरह की बातें कीं और हमारी हंसी उड़ायी!" मैं उसके पास जाकर हाथों को पटकते हुए गरज

उठा। "जिन भावनाओं को तुम नहीं समझ सकते उनपर हंसने का तुम्हें अधिकार? मैं उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता! बंद करो अपनी ज़बान!" मैं गरजता गया और आगे क्या कहूं, यह न जान पाने के कारण उत्तेजना से हांफता हुआ चुप हो गया। दुबकोव पहले तो अचकचा गया, इसके बाद उसने मुसकुराने और बात को मजाक में फेर देने की कोशिश की, लेकिन उस समय मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब अंत में वह सचमुच डर गया और डरकर नज़र नीची कर ली।

"मैं आपके या आपकी भावनाओं के ऊपर हंस नहीं रहा हूं। मेरी तो इस तरह बोलने की आदत ही है।" उसने बहाना बनाते हुए कहा।

"नहीं, यह आदत नहीं चल सकती," मैंने चिल्लाकर कहा। लेकिन उसी क्षण मुझे अपने ऊपर ग्लानि महसूस हुई और दुबकोव पर जिसके ख़ूबसूरत और परेशान चेहरे से वास्तविक पश्चाताप टपक रहा था, तरस आने लगा।

"क्या हो गया है तुम्हें?" वोलोद्या और द्मीत्री ने एक साथ पूछा। "कोई तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता था।"

"हां, हां। ज़रूर इनका यही इरादा था।"

"तुम्हारे भाई साहब बड़े ख़तरनाक क़िस्म के आदमी हैं।" दुबकोव ने बाहर जाते हुए, ताकि मेरा जवाब वह सुन न सके, कहा।

शायद मैं उसके पीछे दौड़ता तथा कुछ और उद्दण्डतापूर्ण बातें कहता। लेकिन उसी क्षण उस वेटर ने जो कोल्पिकोव काण्ड के समय मौजूद था, मेरा कोट लाकर दिया। मैं फ़ौरन ठण्डा पड़ गया और केवल गुस्से का इतना ही अभिनय जारी रखा जिससे मेरा सहसा ठण्डा पड़ जाना द्मीत्री को विचित्र न लगे। अगले दिन वोलोद्या के कमरे में मेरी और दुबकोव की मुलाकात हुई। कल की घटना की हम लोगों में से किसी ने चर्चा न की, पर एक-दूसरे को 'आप' ही कहते रहे। नज़र मिलाना अब हम लोगों के लिए पहले से अधिक कठिन था।

कोल्पिकोव के साथ, जिसने न उस दिन और न उसके बाद ही कभी फिर de ses nouvelles * दिया, मेरे झगड़े की याद कई वर्षों तक मेरे दिल को कचोटती रही। उसके द्वारा अपने अपमान की जिसका मैं बदला न ले सका था याद आने पर मेरे कलेजे में शूल बेंधने लगता था। ऐसे समय आत्मसंतोष के साथ यह याद करता कि दुबकोव से तो मैं मर्दानगी से पेश आया था, और इस प्रकार अपने को तसल्ली दे लेता। एक लम्बा अर्सा बीत जाने के बाद ही मैं उस दिन की समूची घटना को नयी रोशनी में देख पाया। अब कोल्पिकोव के साथ का अपना झगड़ा एक मज़ाक-सा लगता है, और खुशमिजाज तथा मस्त तबीयतवाले दुबकोव को अकारण चोट पहुंचाने पर पछतावा आता है।

उसी दिन मैंने जब द्मीत्री को कोल्पिकोव के साथ अपनी मुठभेड़ की कहानी सुनायी और उसका हुलिया बयान किया तो उसे बड़ा अचरज हुआ।

"अरे, यह तो वही आदमी है," उसने कहा। "कहो तो भला? यह कोल्पिकोव एक नम्बर का आवारा और जुएबाज़ है। सबसे बड़ी बात तो यह है—वह बहुत बड़ा कायर है। एक बार किसी का तमाचा खाकर भी उससे न लड़ने के कारण उसके साथियों ने उसे फ़ौज से निकाल बाहर किया। तुम्हारे सामने इतनी बहादुरी उसने कहां से दिखा डाली?" यह प्रश्न उसने मेरी ओर देखते हुए एक सहृदय मुसकान के साथ कहा। "उसने 'बदतमीज़' से ज्यादा तो कुछ नहीं कहा?"

"नहीं," मैंने कहा। मेरा चेहरा शर्म से लाल हो गया।

"यह तो बहुत ही बुरी बात है। पर, खैर, कोई हर्ज नहीं है।" द्मीत्री ने तसल्ली देते हुए कहा।

इस घटना के काफ़ी दिनों बाद, शांतचित्त होकर इसपर विचार करने पर मैं इस परिणाम पर पहुंचा, कि कोल्पिकोव ने सम्भवतः कई वर्ष

---

*[अपने बारे में पता]

पहले खाये चांटे का उस दाढ़ी-मूंछ सफाचट, सांवले आदमी के सामने मौक़ा देखकर मुझसे बदला उतारा था। ठीक उस तरह जिस तरह मैंने उसकी 'बदतमीज़' गाली का बदला फ़ौरन निर्दोष दुबकोव के ऊपर उतारा।

सत्तरहवां परिच्छेद

मैं कुछ लोगों से मिलने चला

अगले दिन नींद खुलते ही मुझे सबसे पहले कोल्पिकोव काण्ड की याद आयी। मैं आप ही बुदबुदाता और कमरे में दौड़ता रहा। लेकिन कर क्या सकता था? इसके अलावा मास्को में यह मेरा अंतिम दिन था और पिताजी मुझे कुछ लोगों से मिल आने की आज्ञा दे गये थे। उन्होंने खुद ही उन लोगों की एक सूची तैयार की थी। हम लोगों के सम्बन्ध में पिताजी की चिन्ता का विषय सदाचार अथवा पढ़ाई-लिखाई से अधिक लोगों से दुनियावी मेल-जोल बढ़ाना था। कागज़ पर अपनी तेज़ नुकीली लिखावट में उन्होंने लिखा था–"(१) प्रिन्स इवान इवानिच के यहां, ज़रूर ज़रूर; (२) ईविन परिवार के यहां, ज़रूर ज़रूर; (३) प्रिन्स मिखाईलो के यहां; (४) प्रिन्सेस नेख्ल्यूदोवा और श्रीमती वालाखिना के यहां, यदि सम्भव हो। और, कहने की ज़रूरत नहीं, विश्वविद्यालय के प्रबंधकर्ता, अध्यक्ष और अध्यापकों के यहां।"

द्मीत्री ने सूची के अंतिम नाम वालों के यहां जाने से मुझे रोका। उसने कहा कि उन लोगों के यहां जाना अनावश्यक ही नहीं अनुचित भी होगा। पर बाकी सभी लोगों से तो आज ही मिल आना था। इनमें पहले दो के, जिनके आगे 'ज़रूर ज़रूर' लिखा हुआ था, नाम से ही मुझे विशेष घबराहट हो रही थी। प्रिन्स इवान इवानिच प्रधान जनरल, बूढ़े-बुज़ुर्ग, धनिक और एकाकी व्यक्ति थे। और मैं था सोलह वर्ष की उम्र वाला एक मामूली विद्यार्थी। इतने बड़े आदमी से मैं सम्मुख किस

तरह वातचीत करूंगा? और मुझे पूर्वाभास हो रहा था कि उस वातचीत का परिणाम भी मुझे यश का भागी न वनायेगा। ईविन-परिवार भी अमीर था। उनके वाप एक वहुत वड़े अफ़सर थे। वे नानी के जीवन काल में केवल एक वार हमारे घर आये थे। नानी की मृत्यु के वाद से सव से छोटा ईविन हम लोगों से कतराने लगा था। वह अधिक ग्राम में रहा करता था। सवसे वड़े भाई के वारे में मैंने सुना था कि उसने कानून का इम्तहान पास कर लिया था और सेंट-पीतर्सवर्ग में उसकी नियुक्ति हो गयी थी। दूसरा (सेर्गेई) भी, जिसका किसी ज़माने में मैं आराधक था, सेंट-पीतर्सवर्ग में था। वह वाल-अनुचर दस्ते में भारी भरकम, मोटा-ताज़ा फ़ौजी अफ़सर था।

युवावस्था में न केवल मैं उन लोगों से जो अपने को मुझसे ऊपर समझते थे, मिलना-जुलना नापसंद करता था वल्कि उनसे मुलाकात हो जाना मेरे लिए असह्य रूप से कष्टकर था, क्योंकि सदा अपमानित होने का डर लगा रहता था। साथ ही ऐसे लोगों को अपनी स्वाधीनता जताने में मेरी पूरी दिमाग़ी कसरत हो जाया करती थी। किन्तु चूंकि पिताजी की सूची के अंतिम नामों से मैं नहीं मिलने जा रहा था, इसलिए मैंने सोचा कि पहलेवालों से मिलकर स्थिति सुलझी हुई रखना आवश्यक है। मेरे कपड़े, कटार और टोप कुर्सी पर रखे हुए थे और उन्हें निहारता हुआ मैं कमरे में चहलकदमी कर रहा था। इसके वाद मैं चलने की तैयारी कर ही रहा था कि वूढ़ा ग्राप मुझे ववाई देने के लिए आ पहुंचा। साथ में वह ईलेन्का को भी लाया था। वूढ़ा ग्राप रूसीकृत जर्मन था। वह ज़रूरत से ज़्यादा मसकेवाज़ और चापलूस था और अक्सर पीकर नशे में टर्र रहता था। आम तौर से हमारे यहां वह कुछ मांगने के लिए ही आया करता था। कभी कभी पिताजी उसे अपने अध्ययन-कक्ष में वैठा लिया करते थे, पर उन्होंने उसे कभी भोजन में सम्मिलित होने को नहीं कहा। उसकी दीनता और सदा कुछ न कुछ याचना करने की आदत के साथ

एक प्रकार की खुशमिज़ाजी और हमारे घर के साथ पुरानी घनिष्ठता-सी थी। सभी लोग उसका इस घर से इतना हिला हुआ होना एक गुण मानते थे। पर न जाने क्यों मुझे वह कभी पसंद न आया, और जब भी वह बोलता मुझे उसके लिए शर्म आने लगती थी।

इन मेहमानों का आगमन मुझे बहुत बुरा लगा और अपना मनोभाव मैंने छिपाने की कोशिश भी न की। ईलेन्का को नीची निगाह से देखने और ऐसा करना उचित समझने का मैं इस कदर आदी हो गया था कि मुझे यह भी बुरा लगता था कि वह मेरी ही तरह एक छात्र है। मुझे ऐसा भी भान होता कि इस समानता के कारण वह मेरी उपस्थिति में झेंपा करता था। मैंने उपेक्षा के साथ अभिवादन किया और बैठने को न पूछा। यह सोचकर कि वे मेरे बिना कहे ही बैठ सकते हैं, मुझे शर्म आ रही थी। साथ ही मैंने गाड़ी तैयार करने को कहा। ईलेन्का बड़ा ही सहृदय, आन वाला और चतुर युवक था। पर वह जिसे कहते हैं कि झक्की मिज़ाज वाला आदमी था। बिना वजह उसके ऊपर कोई न कोई झक सवार रहा करती थी—कभी रोने की, कभी हंसने की और कभी बात बात में बुरा मान जाने की। इस समय वह सम्भवतः इस अंतिम मानसिक अवस्था में था। वह मौन था, केवल कुपित दृष्टि से मेरी और अपने पिता की ओर देख रहा था। केवल उससे कुछ कहे जाने पर ही एक परवश, चंपी हुई मुसकान चेहरे पर आ जाती थी, वह मुसकान जिसकी आड़ में अपनी भावनाओं को, विशेषकर पिता के व्यवहार से होनेवाली ग्लानि को, जो हम लोगों की उपस्थिति में वह अनिवार्य रूप से बोध करता था, छिपाने का आदी हो गया था।

मैं कपड़े पहन रहा था। बूढ़ा धीरे धीरे और आदरपूर्वक नानी की दी हुई चांदी की सुंघनीदानी को अपनी मोटी उंगलियों के बीच घुमाता मेरे पीछे घिसट रहा था। वह कह रहा था—"जानते हो निकोलाई पेत्रोविच! ज्योंही मेरे बेटे ने बताया कि तुमने बड़े अच्छे नम्बरों से इम्तहान पास

किया है, मैं फ़ौरन तुम्हें बधाई देने चल दिया। मैं तो पहले से ही जानता था कि तुम पढ़ने में बड़े तेज़ हो। मैंने तो तुम्हें गोद खिलाया है और भगवान साक्षी है कि तुम्हारे घरवालों को मैं अपने नातेदारों जैसा समझता रहा हूं। मेरा ईलेन्का भी कहने लगा कि चलकर भेंट कर आना चाहिए। वह भी अभी से तुम लोगों को चाहने लगा है।"

इस बीच ईलेन्का खिड़की के पास यों मौन बैठा था मानो मेरे तिकोने हैट को देखने में डूबा हुआ हो और क्षुब्ध होकर अस्फुट स्वर में स्वगत कुछ कह रहा था।

"अब एक बात तुमसे पूछना चाहता हूं, निकोलाई पेत्रोविच," बूढ़ा कहता गया। "मेरा ईलेन्का भी अच्छे नम्बर लेकर पास हुआ कि नहीं? वह कह रहा था कि वह और तुम दोनों एक ही दर्जे में रहोगे। तुम उसके ऊपर ध्यान रखना और ज़रूरत होने पर उसे सलाह देते रहना।"

"हां, इन्होंने तो इम्तहान में बहुत अच्छा किया है।" मैंने ईलेन्का की ओर दृष्टि डालते हुए जवाब दिया। वह मेरी दृष्टि से शर्मा गया और बुदबुदाना बंद कर दिया।

"क्या वह आज का दिन तुम्हारे संग में बिता सकता है?" बूढ़े ने सहमी सहमी मुसकान के साथ पूछा मानो वह मुझसे बहुत डरता हो। पर मैं जिधर जाता वह इस तरह पीछे लगा रहता कि उसके मुंह से आनेवाली शराब और तम्बाकू की गंध ने मेरा एक क्षण के लिए भी साथ न छोड़ा। मुझे उसपर झल्लाहट हो रही थी क्योंकि उसने एक तो अपने पुत्र के प्रति मुझे एक बेतुकी स्थिति में डाल दिया था और दूसरे एक ज़रूरी काम – कपड़े पहनने में – बाधा दे रहा था। लेकिन सब से अधिक तो ब्रांडी की तेज़ बू से जी भिन्ना उठा था। मैंने बेरुखाई के साथ कहा कि, ईलेन्का के सत्संग का आनन्द नहीं उठा सकूंगा क्योंकि दिन भर मुझे बाहर रहना है।

"पिताजी, आपको तो अपनी बहिन के यहां जाना था न?" ईलेन्का ने मुसकुराते पर बिना मेरी ओर देखे हुए कहा। "और मुझे भी एक

जरूरी काम था।" मैं और भी खीझ उठा। साथ ही मुझे तरस भी आया और अपनी अस्वीकृति की धार कुछ कुन्द करने के लिए मैंने उन्हें बताया कि, मैं घर इसलिए न रहूंगा कि मुझे प्रिन्स इवान इवानिच, प्रिन्सेस कोर्नाकोवा और ईविन के यहां जाना है, जो बहुत बड़े अफसर हैं, और सम्भवत: खाना मैं प्रिन्सेस नेख्ल्यूदोवा के यहां खाऊंगा। मैंने सोचा कि यह जान जाने पर कि मैं कितने बड़े बड़े आदमियों से मिलने जा रहा हूं वे मेरा समय मांगने का अनौचित्य समझ जायेंगे। वे चलने को हुए तो मैंने ईलेन्का से फिर कभी आने को कहा। किन्तु वह केवल अस्फुट स्वर में कुछ बुदबुदाया और अपनी दबी मुसकान मुसकुराया। प्रगट था कि वह फिर मेरे दरवाजे आने से रहा।

उनके चले जाने पर मैं लोगों से मिलने के अपने दौरे पर निकला। वोलोद्या से मैंने सवेरे ही अपने साथ चलने को कहा था। मैंने कहा कि अकेले मुझे शर्म लगेगी, पर उसने यह कहकर जाने से इनकार कर दिया कि साथ जाना भावुकता का प्रदर्शन होगा—लोग समझेंगे कि दो प्यारे भाई खूबसूरत गाड़ी सजाकर साथ निकले हैं।

अठारहवां परिच्छेद

वालाखिन परिवार

अत: मैं अकेला ही रवाना हुआ। मेरे रास्ते में पहले पहल सिवत्सेव व्राज्हेक मोहल्ले में वालाखिन परिवार का घर पड़ता था। तीन साल से मैंने सोनेच्का को नहीं देखा था और उसके प्रति मेरी प्रेमाग्नि तो न जाने कब की ठण्डी पड़ चुकी थी। फिर भी मेरी आत्मा के किसी कोने में बचपन के उस बीते प्रेम की एक सजीव और हृदयग्राही स्मृति शेष थी। इन तीन वर्षों में कई बार उसकी याद इतने प्रबल और स्पष्ट रूप से ताजा हो उठी थी कि मेरी आंखों में आंसू आ गये और ऐसा बोध हुआ कि मेरे

दिल में प्रेम की आग फिर भड़क उठी है। किन्तु यह भावना कुछ मिनटों से अधिक न रही और दूसरा दौरा वहुत दिनों के वाद आया।

मुझे पता था कि सोनेच्का और उसकी मां दो वर्ष विदेश में रही थीं। कहते हैं कि वहीं वे एक वार गाड़ी दुर्घटना में ग्रस्त हो गयी थीं जिसमें सोनेच्का को चेहरे में शीशा गड़ जाने से वुरी तरह चोट आयी थी और उसके रूप में वट्टा लग गया था। गाड़ी में उनके घर जाते समय मेरी आंखों के सामने भूतपूर्व सोनेच्का का मुखमण्डल खड़ा हो गया। मैं कल्पना करने लगा कि अव वह कैसी लगती होगी। मेरा ख्याल था कि दो वर्ष विदेश में रहने के वाद वह वहुत लम्वी हो गयी होगी और उसका शरीर सुडौल, गम्भीर और गरिमा युक्त, तथा साथ ही अत्यंत आकर्षक हो गया होगा। मेरी कल्पना ने घाव के दाग़ से विरूप मुखमण्डल चित्रांकित करने से इनकार कर दिया। उलटे, उस सच्चे प्रेमी की कहीं सुनी हुई कहानी याद आयी जिसने अपनी प्रेमिका के चेचक से कुरूप हो जाने के वाद भी अपने प्रेम में फ़र्क नहीं आने दिया था। कहानी याद कर मैंने अपने को सोनेच्का के प्रेमपाश में आवद्ध होने की कल्पना की ताकि घाव के दाग़ के वावजूद उसके प्रति वफ़ादार रहने का श्रेय प्राप्त कर सकूं। वस्तुतः, जिस समय मेरी गाड़ी वालाखिन परिवार के घर के सामने आकर लगी मैं सोनेच्का के प्रेम में गिरफ़्तार तो न था पर प्रेम की पुरानी स्मृतियों को मथकर ताज़ा कर चुकने के कारण गिरफ़्तार होने को भलीभांति तैयार अवश्य था। मैं इसके लिए अत्यंत इच्छुक भी था। इसका एक विशेष कारण यह था कि अपने अन्य मित्रों को प्रेम करते देखकर मुझे वहुत दिनों से अपने फिसड्डी रह जाने पर शर्म आया करती थी।

वालाखिन परिवार एक छोटे, साफ़-सुथरे लकड़ी के मकान में, जिसमें जाने का रास्ता एक आंगन से होकर था, रहता था। घंटी की आवाज़ पर – घंटी उन दिनों मास्को में एक विरल वस्तु थी – एक वहुत ही छोटे पर साफ़-सुथरे कपड़े पहने हुए वालक ने आकर दरवाज़ा खोला। या तो वह मेरी

वात का मतलव नहीं समझा या मुझे वताना न चाहता था कि घरवाले इस समय अंदर थे या नहीं। मुझे अंधेरे कमरे में छोड़कर वह गलियारे में जो उससे भी ज्यादा अंधेरा था, भागा।

मैं काफ़ी देर तक वहीं अंधेरे में खड़ा रहा। उस कमरे में गलियारे वाले दरवाज़े को छोड़कर एक वंद दरवाज़ा था। एक ओर तो मैं उस घर के अंधकारमय स्वरूप पर अचरज कर रहा था और दूसरी ओर यह भी सोच रहा था कि विदेशों में रह आनेवाले सम्भवतः इसी तरह रहा करते हैं। पांच मिनट के वाद उसी लड़के ने हॉल की ओर वाला दरवाज़ा अंदर से खोला और मुझे वैठकखाने में, जिसकी सजावट में स्वच्छता थी पर अमीरी नहीं, ले गया। मेरे प्रवेश करने के साथ ही सोनेच्का भी आ पहुंची।

वह सत्रह वर्ष की थी, क़द में ठिंगनी, वहुत दुवली, और चेहरे पर एक प्रकार का अस्वस्थ पीलापन लिये हुए। उसके चेहरे पर दाग़ का कोई निशान नहीं दिखायी दे रहा था और उसकी आकर्षक, वड़ी वड़ी आंखें तथा चमकीली, मृदुल और उत्फुल्ल मुसकान वही थी जिसे मैंने वालपन में देखा और प्यार किया था। मैंने उसे इस रूप में देखने की आशा न की थी, अतः रास्ते भर जो भावपूर्ण उक्तियां सोचता आया था उन्हें मिलते ही उसे अर्पित न कर सका। उसने अंग्रेज़ों की तरह मुझ से हाथ मिलाया (यह भी द्वार की घंटी की तरह ही विरल वस्तु थी) और सोफ़ा पर अपनी वग़ल में वैठाया।

"कितनी खुशी हो रही है तुम्हें देखकर, मेरे प्रिय निकोलस," उसने खुशी के उसी सच्चे भाव से मेरे चेहरे को देखते हुए कहा जो उसके शब्दों में व्यक्त हो रहा था। मैंने देखा कि "मेरे प्रिय निकोलस" उसने दोस्ताना लहजे में कहा था, संरक्षकता जताने के लहजे में नहीं। मुझे वहुत अचरज हो रहा था कि विदेशों में रह आने के वाद वह क्योंकर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सरल, मृदुल और चालढाल में स्वाभाविक हो गयी है। ग़ौर से देखने पर मुझे उसकी नाक के निकट और ललाट

पर दो छोटे छोटे घाव के दाग दिखाई पड़े; किन्तु उसकी अनूठी आंखें और मुसकान हू-ब-हू वैसी ही थीं जैसी कि मैंने उन्हें जाना था। वे उसी तरह चमक रही थीं।

"कितने बदल गये हो तुम!" उसने कहा। "अब तो बिल्कुल बड़े हो गये हो। और मैं—मेरे बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"तुम तो पहचान में ही नहीं आती हो," मैंने कहा, यद्यपि उस समय भी मैं यही सोच रहा था कि कहीं भी, लाखों में उसकी पहचान हो सकती है। मैंने फिर अपने को मस्ती की उसी मानसिक स्थिति में पाया जिसमें उसके साथ पांच वर्ष पहले नानी के यहां के बाल-नृत्य में 'दादा' नाच नाचा था।

"क्यों मैं बहुत अधिक कुरूप हो गयी हूं?" उसने सिर हिलाते हुए पूछा।

"नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। तुम थोड़ा बढ़ ज़रूर गयी हो, उम्र में पहले से अधिक," मैंने झट जवाब दिया। "पर इसके विपरीत तुम पहले से और भी अधिक..."

"खैर, छोड़ो। तुम्हें हम लोगों का साथ नाचना याद है और हमारा खेल खेलना, सें जेरोम, श्रीमती दोरात" (श्रीमती दोरात तो कोई न थीं जिन्हें मैं जानता रहा हूं। स्पष्ट था कि बचपन की स्मृतियों में वह बह गयी थी और नामों का घपला हो रहा था)। "आह, कैसे शानदार दिन थे वे!" वह कहती गयी और वही मुसकान, जो मेरी स्मृतिवाली मुसकान से भी अधिक मोहक थी, और वे ही आंखें मेरे सामने समुज्वल रूप में उपस्थित थीं। जिस समय वह बोल रही थी, उस समय मैं उस स्थिति के प्रति सचेत हुआ जिसमें उस क्षण मैं था। मैंने मन में तय किया कि, इस समय उसके प्रेम में हूं। ज्यों ही मैंने यह निश्चय किया उसी क्षण मेरी मस्ती हवा हो गयी, आंखों के सामने एक कुहासा-सा छा गया, ऐसा कुहासा जिसने उसकी आंखों और मुसकान पर भी परदा डाल दिया।

मुझे न जाने क्यों लाज सताने लगी, जबान बंद हो गयी और चेहरे पर लाली दौड़ गयी।

"अब तो वक्त ही दूसरा आ गया है," उसने ठंडी आह लेते और भौंहों को थोड़ा उठाते हुए कहा। "हर चीज़ पहले जैसी न रही, और हर चीज़ क्या, हमी पहले जैसे न रहे। है न, निकोलस?"

मैं उत्तर न दे सका। केवल मौन, टकटकी बांधे उसे देखता रहा।

"उस समय के ईविन और कोर्नाकोव कहां हैं इस वक़्त? तुम्हें याद है उनकी?" वह मेरे लाज से लाल और भयभीत चेहरे को कुतूहल के साथ देखती हुई कहती गयी। "बड़े शानदार दिन थे वे।"

फिर भी मेरे मुंह से कुछ जवाब न निकला।

उसी समय श्रीमती वालाखिना आ गयीं और उनके आ जाने से थोड़ी देर के लिए परेशानी की उस स्थिति से मैं उबरा। मैंने उठकर उन्हें सलाम किया। मेरी वाक्शक्ति लौट आयी। दूसरी ओर, मां के आने के साथ सोनेच्का में एक विचित्र परिवर्तन आ गया। उसकी सारी उत्फुल्लता और सहृदयता अनायास छूमंतर हो गयी। यहां तक कि उसकी मुसकान भी बदल गयी। और सहसा वह, मेरी कल्पना की विदेशों में रहकर लौटी हुई तरुणी हो गयी। अंतर था तो केवल लम्बाई में। यह परिवर्तन सर्वथा अकारण ज्ञात होता था क्योंकि उसकी मां के बोलने में पहले जैसी ही मृदुलता थी और हर चेष्टा में पहले ही जैसी शिष्टता और सौजन्य। श्रीमती वालाखिना बांहवाली एक बड़ी कुर्सी पर बैठ गयीं और हाथ से मुझे अपने पास ही की एक जगह पर बैठने का इशारा किया। उन्होंने अंग्रेजी में अपनी पुत्री से कुछ कहा जिसे सुनकर सोनेच्का फ़ौरन कमरे से बाहर चली गयी। उसके जाने से मुझे राहत मिली। वालाखिना ने मुझसे मेरे सम्बन्धियों, भाई और पिताजी का कुशलक्षेम पूछा और इसके बाद उन्हें जो शोक सहना पड़ा था, अर्थात् पति की मृत्यु, उसके विषय में बोलने लगीं। अंत में यह देखकर कि मुझसे

और कुछ कहना नहीं रह गया है, वह मौन होकर मेरी ओर देखने लगीं मानो कह रही हों कि "अब अगर आप विदा हों तो ठीक होगा"। पर मेरा अजीब-सा हाल हो रहा था। सोनेच्का अपनी बुनाई लेकर वापस आ गयी थी और कमरे के एक कोने में बैठी हुई थी। मुझे ऐसा लग रहा था कि, उसकी दृष्टि मेरे ही ऊपर टंगी हुई है। जिस समय वालाखिना अपने पति की मृत्यु के बारे में बोल रही थीं, मुझे फिर याद आ गया कि मैं प्रेमपाश में आबद्ध हूं और यह भी सोचा कि शायद वह इसे भांप गयी है। इसके बाद तो मेरे ऊपर लजीलेपन का एक और इतना जबर्दस्त दौरा आया कि मैं अपना एक अंग भी स्वाभाविक ढंग से नहीं हिला सकता था। मैं जानता था कि उठकर विदा मांगने में मुझे सोचना पड़ेगा कि पैर किस जगह रखूं, सिर और हाथ किस प्रकार हिलाऊं। दो शब्दों में, मेरी बिल्कुल वही हालत हो रही थी जो पिछली शाम को आधी बोतल शैम्पेन पीने के बाद हुई थी। मुझे यह पूर्वाभास हो रहा था कि यह सब करने में मैं अपने को नियंत्रित न कर पाऊंगा और इसलिए मैं उठ न सकूंगा। और वास्तव में मैं नहीं उठ सका। वालाखिना सम्भवतः मेरा सुर्ख चेहरा और पूर्ण निश्चलता देखकर अचरज में पड़ गयीं। पर मैंने सोच लिया था कि मूर्खों की भांति बैठे रहना बेहतर है बनिस्बत भद्दे ढंग से उठकर विदाई लेने का जोखिम उठाना। मैं इसी तरह बड़ी देर तक बैठा यह आशा करता रहा कि कोई अप्रत्याशित परिस्थिति मुझे उबार लेगी। यह अप्रत्याशित परिस्थिति प्रगट हुई एक अति साधारण युवक के रूप में। उसने घर के एक पूर्ण परिचित व्यक्ति की भांति प्रवेश करते हुए शिष्टाचार के साथ मुझे अभिवादन किया। वालाखिना यह कहती हुई उठ खड़ी हुईं कि अपने homme d'affaires* के साथ कुछ बातचीत करनी है और मेरी तरफ़ अचरज की निगाहों से देखा जो मानो कह रही थीं—"यदि तुम अपना सारा जीवन यहां इसी तरह बैठे हुए

---

* [मैनेजर]

काट देना चाहते हो तो करो यही, मैं तुम्हें भगाऊंगी नहीं।" मैंने उठने के लिए अपना सारा जोर लगा दिया और उठ खड़ा हुआ, पर मेरी अवस्था ऐसी न थी कि उन लोगों को सलाम भी कर सकता। जब मैं बाहर निकलने लगा तो मां तथा बेटी की दयापूर्ण निगाहें मेरे ऊपर थीं और मैं एक कुर्सी से जो मेरे रास्ते में न थी, टकरा गया। मैं इसलिए उससे टकरा गया था कि मेरा सारा ध्यान अपने पैरों तले बिछे क़ालीन पर भहरा न पड़ने के प्रयास में केंद्रित था। किन्तु खुली हवा में पहुंच जाने और बड़ी देर तक कुलबुलाने तथा इतने जोर से बुड़बुड़ाने के बाद कि कुज्मा तक कई बार पूछ बैठा—"जी, हुजूर!"—यह भावना ग़ायब हो गयी। अब मैं सोनेच्का के प्रति अपने प्रेम और अपनी मां के प्रति उसके रुख पर, जो मुझे विचित्र लगा था, शांत चित्त से सोचने लगा। बाद में जब मैंने पिताजी को अपनी प्रतिक्रिया बतायी और श्रीमती वालाखिना और उनकी पुत्री के आपस में न पटने की बात कही, तो वह बोले:

"हां, उसने अपनी कृपणता के कारण बेचारी लड़की को तबाह कर रखा है। सचमुच बड़ा आश्चर्यजनक व्यापार है।" यह उन्होंने ऐसे भावावेश के साथ कहा कि उसका स्रोत उन महिला का रिश्तेदार होना ही नहीं हो सकता था। "पहले वह बड़े ही कोमल और स्निग्ध स्वभाव की थीं! समझ में नहीं आता कि ऐसा परिवर्तन कहां से आ गया है उनमें। तुमने वहां उनके किसी सेक्रेटरी को देखा था क्या? रूसी महिला सेक्रेटरी रखे, भला यह कौनसा फ़ैशन है?" वह गुस्से से टहलते हुए बोले।

"हां था तो एक आदमी," मैंने कहा।

"देखने-सुनने में तो कम से कम अच्छा है वह?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"अजीब-सी बात है। कुछ समझ में नहीं आता," पिताजी ने खांसते और खिझलाहट के साथ कंधों को हिलाते हुए कहा।

"और यहां मैं भी प्रेम के फंदे में गिरफ़्तार हूं," मैंने बग्घी में जाते हुए सोचा।

उन्नीसवां परिच्छेद

कोर्नाकोव परिवार

इसके बाद हमारे रास्ते में कोर्नाकोवों का घर पड़ता था। वे अर्वात मोहल्ले के एक बड़े मकान की पहली मंज़िल में रहते थे। सीढ़ी बड़ी टीमटाम की और साफ़-सुथरी थी, पर उसमें अमीरी न थी। उसपर मामूली क़ालीन बिछा था जो पालिश किये हुए पीतल के छड़ों से दबा हुआ था। लेकिन न फूल-पत्ते थे, न आईने। मैं जिस हॉल से गुज़रकर बैठकखाने में पहुंचा, उसका चमकीला पालिश किया हुआ फर्श भी संजीदा, ठण्डा और सफ़ाई से सजाया हुआ था। सभी वस्तुएं चमक रही थीं और टिकाऊ मालूम होती थीं यद्यपि वे नयी बिल्कुल न थीं। पर कहीं भी चित्र, परदे या किसी अन्य प्रकार की सजावट न दिखाई दी। कुछ शाहज़ादियां बैठकखाने में बैठी हुई थीं। वे ऐसी सधी और शिथिल मुद्राओं में बैठी हुई थीं कि यह प्रगट हो जाता था कि जिस समय किसी मेहमान के आ पहुंचने की आशंका न होती होगी, उस समय वे वैसे कभी न बैठती होंगी।

"अम्मा अभी आ जाती हैं," सबसे बड़ी ने आकर मेरे पास बैठते हुए कहा। लगभग पाव घंटे उस शाहज़ादी ने मुझे सहज स्वाभाविक बातचीत में उलझाये रखा और इतनी होशियारी से कि बातचीत का क्रम एक क्षण के लिए भी टूटने न पाया। पर यह स्पष्ट था कि वह मेरा मनोरंजन कर रही थी। अतः वह मुझे पसंद न आया। अन्य बातों के साथ उसने मुझे यह भी बताया कि, उसका भाई स्तेपान जिसे वे एतिएन कहते थे और जो सैनिक अफसरों के शिक्षालय में भरती कर दिया गया था, अफसर के ओहदे पर तरक्की पा चुका है। अपने भाई की चर्चा करते और यह कहते समय कि अम्मा की इच्छा के विरोध में वह घुड़सवार अफसरों में भरती हो गया है, वह चेहरे पर भयभीत होने का भाव धारण कर लेती थी। और अन्य शाहज़ादियां भी जो मौन बैठी

हुई थीं, वैसा ही भयभीत भाव धारण कर लेती थीं। जिस समय नानी की मृत्यु का प्रसंग आया, उसने शोक का भाव धारण कर लिया, और अन्य छोटी शाहज़ादियों ने भी शोक का भाव धारण कर लिया। मेरे St-Jèrôme पर हाथ चलाने और घसीटकर वहां से ले जाये जाने की घटना की याद करते समय वह हंसी और अपने भद्दे दांत बाहर कर दिये। और बाकी शाहज़ादियां भी हंसीं और अपने भद्दे दांत बाहर कर दिये।

प्रिन्सेस ने कमरे में प्रवेश किया। उनमें कुछ भी न बदला था—वही सूखी-सी नाटी औरत, बेचैन आंखें, और किसी से बातें करते समय किसी दूसरे की ओर देखने की आदत। उसने मुझे पकड़ लिया और मेरे चूमने के लिए अपने हाथ बढ़ा दिये। यदि वह इस तरह अपना हाथ न बढ़ातीं तो मैंने न जाना होता कि उसे चूमना आवश्यक है।

"कितनी खुशी हो रही है तुम्हें देखकर!" उन्होंने अपने पुराने बातूनीपन के साथ, अपनी लड़कियों की ओर देखते हुए कहा। "देखो तो भला बिल्कुल अपनी अम्मा जैसा लगता है! है न, लिसे?"

लिसे ने सहमति प्रगट की; यद्यपि मैं निश्चयपूर्वक जानता था कि अम्मा के साथ मेरी तनिक भी समानता न थी।

"और कितने बड़े हो गये हो तुम! मेरा एतिएन भी, तुम्हें तो याद होगी ही उसकी, वह तुम्हारा मौसेरे भाई का मौसेरा भाई लगा, हां मौसेरा ही तो—अरे तुम बताना लिसे क्या लगा वह? मेरी मां थीं वार्वारा द्मीत्रिएवना, द्मीत्री निकोलायेविच की बेटी, और तुम्हारी नानी थीं नाताल्या निकोलायेवना।"

"तब तो यह हमारे मौसेरे के मौसेरे के मौसेरे हुए, अम्मा," बड़ी शाहज़ादी ने कहा।

"तुम तो सब घोलमट्ठा किये दे रही हो," प्रिन्सेस ने नाराज होकर कहा। मौसेरे के मौसेरे का मौसेरा कैसे हुआ यह, ये तो issns de germains* हैं।

---

*[मौसेरी बहिनों के लड़के]

यही तो तुम्हारा और ववुआ एतिएन का रिश्ता हुआ। जानते हो वह अफ़सर हो गया है! लेकिन एक अर्थ में यह ठीक नहीं। बहुत ज्यादा आज़ादी मिल गयी है उसे। तुम नौजवानों की अभी वागडोर लगाकर रखने की उम्र है। नहीं, दो-टूक बात कहने की वजह से तुम्हें नाराज़ न होना चाहिए अपनी बूढ़ी मौसी से। मैंने एतिएन का कठोर अनुशासन के साथ लालन-पालन किया है, और मैं समझती हूं कि यही ठीक तरीका भी है।"

"हां, हम लोगों का यही रिश्ता होता है।" वह कहती गयीं। प्रिन्स इवान इवानिच मेरे मामा हुए और तुम्हारी मां के भी मामा। इस तरह हम लोग मौसेरी वहिनें हुईं—मौसेरी की मौसेरी नहीं। हां, यही तो हुआ। अरे हां, प्रिन्स इवान के यहां हो आये या नहीं?"

मैंने कहा कि अभी गया तो नहीं हूं पर जाऊंगा।

"ऐं, क्या कहते हो तुम?" वह फ़ौरन बोलीं। "वहां तो तुम्हें सबसे पहले जाना चाहिए था। तुम जानते नहीं हो कि प्रिन्स इवान तुम्हारे लिए बाप की तरह हैं। उनकी अपनी कोई संतान नहीं है इस लिए तुम और हमारे बच्चे, ये ही तो उनके उत्तराधिकारी होंगे। तुम्हें उनकी उम्र का, ओहदे का तथा और भी सारी चीजों का ध्यान रखते हुए उनकी पूरी इज्ज़त करनी चाहिए। मैं जानती हूं, आज की पीढ़ी के तुम नौजवानों को नाते-रिश्ते की कोई परवाह नहीं होती और बूढ़े-बुज़ुर्गों से तुम लोग कतराते हो, लेकिन अपनी बूढ़ी मौसी की बात तुम्हें कान देनी चाहिए क्योंकि तुम जानते हो मेरा तुम्हारी अम्मा और तुम्हारी नानी से कितना अपनापा था। मैं उनकी बड़ी इज्ज़त करती थी। तुम्हें उनके यहां ज़रूर जाना चाहिए। ज़रूर, ज़रूर।

मैंने कहा कि मैं ज़रूर जाऊंगा, और अब चूंकि, मेरी राय के अनुसार, मैं काफ़ी देर तक ठहर चुका था, इसलिए चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। पर उन्होंने मुझे रोक लिया।

"नहीं, नहीं, एक मिनट और रुको। लिसे, तुम्हारे पिताजी कहां हैं? बुलाना उन्हें जरा। तुम्हें देखकर बड़ी खुशी होगी उन्हें," उन्होंने मेरी ओर मुड़कर कहा।

दो मिनट बाद सचमुच प्रिन्स मिखाइलो ने कमरे में प्रवेश किया। वह नाटे, बलिष्ट आदमी थे। उन्होंने बड़ी लापरवाही से कपड़े पहन रखे थे, दाढ़ी बढ़ी हुई और चेहरे पर उदासीनता का एक ऐसा भाव जो जड़ता की सीमा-रेखा को छूता था। उनके मुझे देखकर खुश होने का सवाल ही न था। कम से कम उन्होंने ऐसा कोई मत व्यक्त नहीं किया। लेकिन प्रिन्सेस ने, जिनसे वे स्पष्टतः बहुत डरते थे, उनसे कहा:

"वाल्देमार (स्पष्ट है कि, वह मेरा नाम बिल्कुल भूल गयी थीं) बिल्कुल अपनी मां जैसा है, क्यों?" और यह कहते हुए उन्होंने आंख से कुछ ऐसा इशारा किया जिसका प्रिन्स अवश्य ही मतलब समझ गये, क्योंकि वह मेरे पास आये बिलकुल उदासीन, बल्कि असंतुष्ट भाव से, अपना दाढ़ी बढ़ा हुआ गाल मेरे सामने कर दिया जिसे मुझे मजबूरन चूमना पड़ा।

"तुम्हारे जाने का समय हो गया और अभी तक कपड़े नहीं बदले तुमने?" प्रिन्सेस उनसे क्षुब्ध स्वर में कहने लगीं। स्पष्टतः, घर के लोगों से बात करने का उनका यही साधारण ढंग था। "तुम चाहते हो कि लोगों की तुम्हारे बारे में बुरी धारणा हो जाय। तुम फिर लोगों को अपने से विमुख करना चाहते हो!"

"अभी, अभी–तैयार हुआ, प्रिये," प्रिन्स मिखाइलो ने कहा, और विदा हो गये। मैंने भी सलाम किया और वहां से चलता बना।

मैंने आज पहले-पहल सुना कि हम लोग प्रिन्स इवान इवानिच के उत्तराधिकारी थे। और इस समाचार से मुझे अचरज हुआ जो खुशगवार न था।

ईविन परिवार

पर उनके यहां जाना आवश्यक और अपरिहार्य था। इसे सोच कर मेरी परेशानी बढ़ती जा रही थी। किन्तु मेरे रास्ते में पहले ईविन परिवार का घर पड़ता था। वे त्वेस्कोंई बौलेवार्ड पर एक आलीशान मकान में रहते थे। उनके घर के फाटक पर एक डंडधारी दरबान खड़ा रहा करता था। जिस समय मेरी गाड़ी उनके घर के पास पहुंची मैं घबराने लगा था।

मैंने दरबान से पूछा कि, घर के लोग अंदर हैं या नहीं।

"हुजूर किसे मिलना चाहते हैं? जनरल साहब के बेटे घर पर हैं।" उसने कहा।

"और जनरल साहब?"

"पूछता हूं। किसका नाम बतलाना होगा?" दरबान ने पूछा, और घंटी बजायी।

सीढ़ियों पर किसी अर्दली के पांव दिखाई पड़े। सहसा मेरे ऊपर एक ऐसी घबराहट और बदहवासी छा गयी कि मैंने अर्दली से कहा कि जनरल साहब को खबर नहीं देना, मैं पहले जनरल साहब के बेटे के पास जाऊंगा। उन बड़ी सीढ़ियों पर चढ़ते हुए ऊपर जाने पर मुझे ऐसा भास हुआ कि मैं बेतरह छोटा हो गया हूं (अलंकार की भाषा में नहीं, वास्तव में)। ऐसा ही मुझे उस समय भी भास हुआ था जब मेरी द्राश्की उस विशाल फाटक पर पहुंच रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि द्राश्की, घोड़ा और कोचवान सभी बौने हो गये हैं। जिस समय मैंने कमरे में प्रवेश किया जनरल साहब के बेटे एक सोफ़ा के ऊपर खर्राटे ले रहे थे। खुली हुई एक किताब सामने रखी थी। उनके मास्टर, हर्र फ़ास्ट ने, जो अभी तक इसी घर में थे, फुर्तीले कदमों से मेरे पीछे-

पीछे कमरे में प्रवेश किया और शिष्य को उठा दिया। ईविन ने मुझे देखकर विशेष प्रसन्नता नहीं प्रगट की और मैंने ध्यान से देखा कि मुझसे बातें करते समय उसकी दृष्टि मेरी भौंहों पर टिकी हुई थी। यद्यपि वह नम्रता का अवतार बना हुआ था, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह उसी प्रकार मेरी खातिरदारी कर रहा था जिस प्रकार शाहज़ादी ने की थी और मेरे प्रति उसे खास खिंचाव न था और न मेरे परिचय की आवश्यकता, क्योंकि सम्भवतः उसकी एक अलग मित्र मण्डली पहले से मौजूद थी। यह सब मैंने मुख्यतः इसलिए कल्पना की कि वह मेरी भौंहों पर दृष्टि गड़ाये हुए था। दो शब्दों में, मेरे प्रति उसका रुख़ (इसे स्वीकार करना कड़वी घूंट है) लगभग वही था जो मेरा ईलेन्का के प्रति था। मुझे खीझ होने लगी। मैं उसकी हर चितवन को लक्ष्य कर रहा था और जब उसकी और फ़ास्ट की आंखें मिलीं तब मैंने उन निगाहों में अंकित प्रश्न की यों व्याख्या की—"ये हज़रत आज मिलने क्यों आये हैं?"

थोड़ी देर मुझसे बातें करने के बाद ईविन ने कहा कि पिताजी घर ही पर हैं और मैं साथ चलकर उनसे मुलाकात कर सकता हूं।

"मैं अभी कपड़े बदल लेता हूं," उसने कहा और दूसरे कमरे में चला गया यद्यपि वह पूरे कपड़े—नया कोट और सफ़ेद वास्कट—पहने हुए था। कुछ मिनटों में वह अपनी वर्दी, जिसके बटन कसकर लगे हुए थे, पहनकर बाहर आया और हम लोग साथ-साथ नीचे चले। लोगों से मिलने-जुलने के कमरे, जिनसे होकर हम लोग गुज़रे, बड़े ही आलीशान और शानदार ढंग से सजे हुए थे। चारों ओर संगमर्मर, सोने का मुलम्मा, मलमल में लिपटी चीजें और आईने लगे हुए थे। जिस समय हम लोग बैठकख़ाने के पीछेवाले कमरे में पहुंचे, ईविना ने भी उसी समय एक अन्य द्वार से उसमें प्रवेश किया। उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक, एक रिश्तेदार की तरह, हमारा स्वागत किया, अपनी बग़ल में बैठाया और दिलचस्पी के साथ घर भर का कुशल-समाचार पूछने लगीं।

श्रीमती ईविना, जिनकी इससे पहले मुझे दो वार केवल झांकी मात्र मिली थी, आज अधिक ग़ौर से देखने पर वहुत ही अच्छी लगीं। वह लम्बी, पतली और वहुत गोरी महिला थीं। उनके चेहरे पर सदा विपाद और थकान का सा भाव रहता था। उनकी मुसकान विपादपूर्ण पर अत्यंत सहृदय थी। उनकी आंखें वड़ी, थकी हुई, और विल्कुल सीधी न थीं जिससे उनके चेहरे का भाव और भी विपादयुक्त और आकर्षक हो जाता था। वह झुककर नहीं वैठी हुई थीं, पर उनका सारा शरीर शिथिल और सभी चेष्टाओं में व्यथा और थकान की आभा थी। वह विपादयुक्त स्वर में वोलती थीं और उनका स्वर तथा 'र' और 'ल' कहते समय उनकी हलकी तुतलाहट वड़ी कर्णप्रिय थी। मेरे रिश्तेदारों के सम्वन्ध में मेरे जवाव स्पष्टतः उन्हें एक प्रकार की उदासीभरी दिलचस्पी प्रदान कर रहे थे। ऐसा भास होता था मानो मेरे उत्तर सुनते समय उन्हें किन्हीं वेहतर दिनों की याद आ रही है। उनका वेटा कहीं चला गया। वह दो मिनट मौन होकर मुझे देखती रहीं और तव अनायास ही रो पड़ीं। मैं चुपचाप उनके सामने वैठा रहा। मेरी समझ ही में न आया कि क्या करना चाहिए। वह मेरी ओर देखे विना रोती रहीं। पहले तो मुझे दुख हुआ उनकी अवस्था पर; फिर सोचा—"इन्हें चुप कराऊं कि नहीं, और कराऊं तो कैसे?" अंत में झल्लाहट हुई कि ऐसी विचित्र स्थिति में उन्होंने मुझे क्यों डाला है। "क्या मेरा चेहरा ऐसा दयनीय है?" मैंने मन में कहा। "या यह जांचने के लिए कि ऐसी स्थिति में मैं क्या करता हूं, वह जानवूझकर ऐसा तो नहीं कर रही हैं?"

"अभी विदा मांगना ठीक न होगा। ऐसा लगेगा कि मैं उनकी आर्द्रता देखकर भाग खड़ा हुआ," मैं मन में सोचता रहा। अपनी उपस्थिति की याद दिलाने के लिए मैंने कुर्सी पर आसन वदला।

"ओह, मैं भी कैसी नासमझ हूं!" उन्होंने मेरी ओर देखते और मुसकराने की चेष्टा करते हुए कहा। "आदमी को कभी कभी बिना वजह ही रुलाई आ जाती है।"

वह सोफ़े पर अपना रूमाल खोजने लगीं, और हठात् और ज़ोर से रो पड़ीं।

"छि:! मैं भी कैसी हूं? तुम्हारे सामने यों रो रही हूं। तुम्हारी मां से मेरा बड़ा प्रेम था। हम दोनों अभिन्न सखियां थीं और..."

रूमाल मिल गया, और उससे मुंह ढककर वह रोती रहीं। मेरी स्थिति फिर विचित्र हो गयी और देर तक ऐसी ही रही। मुझे खीझ भी आती थी, पर अधिक दया आ रही थी। उनके आंसू सच्चे थे। मैं सोचता रहा कि, वह मेरी मां के लिए उतना नहीं रो रही हैं जितना इसलिए कि कभी उन्होंने बड़े सुखपूर्ण दिन बिताये थे और आज किसी कारण कष्ट में थीं। मैं नहीं कह सकता कि इसका किस तरह अंत होता यदि छोटे ईविन ने आकर न कहा होता कि बड़े ईविन उन्हें बुला रहे थे। वह उठीं और जानेवाली ही थीं कि बड़े ईविन स्वयं कमरे में आ गये। वह नाटे, तगड़े, पके बालों वाले सज्जन थे–भौंहें घनी और काली, छोटे कटे बिल्कुल सफ़ेद बाल, और आकृति में बड़ी दृढ़ता और कठोरता।

मैंने उठकर अभिवादन किया। किन्तु बड़े ईविन ने जिनके कोट पर तीन सितारे बने हुए थे, मेरे अभिवादन का जवाब देना तो दूर मेरी ओर ताका तक नहीं। फलतः मुझे सहसा ऐसा लगा कि मैं इंसान नहीं वरन् कोई उपेक्षणीय जड़ पदार्थ हूं, जैसे कुर्सी या खिड़की। और यदि इंसान हूं भी तो कुर्सी या खिड़की जैसा।

"तुमने अभी तक काउन्टेस को पत्र नहीं लिखा न, मिशे,"

उन्होंने अपनी पत्नी से फ़्रांसीसी में, उपेक्षापूर्ण किन्तु दृढ़ चेहरे के भाव के साथ कहा।

"अच्छा विदा, इर्तेन्येव," श्रीमती ईविना ने सहसा कुछ अभिमानपूर्ण मुद्रा में सिर झुकाते और अपने बेटे की तरह मेरी भौंहों पर दृष्टि गड़ाते हुए कहा। मैंने फिर उन्हें और उनके पति को सलाम किया और फिर भी मेरे सलाम ने बड़े ईविन पर ऐसा ही प्रभाव डाला मानो वह किसी खिड़की का खोलना या बंद करना मात्र रहा हो। पर विद्यार्थी ईविन मेरे साथ दरवाज़े तक आया। रास्ते में उसने बताया कि उसकी पीतर्सबर्ग विश्वविद्यालय को बदली होनेवाली है क्योंकि उसके पिताजी की वहां नियुक्ति हुई है। यह सूचना देते हुए उसने एक बड़े महत्वपूर्ण पद का नाम लिया।

"पिताजी खुश हों या नाखुश," मैंने गाड़ी में बैठते हुए अपने मन में कहा, "लेकिन मैं अब इस घर की देहरी पर फिर पांव नहीं रखूंगा। यहां एक साहबा तो रोनी बेग़म हैं जो मुझे देखकर यों रो रही थीं मानो मैं कोई अभागा-अनाथ हूं। और दूसरा था कि पूरा गधा जिसने मेरे सलाम का भी जवाब न दिया। मैं भी बता दूंगा बच्चू को..." किस तरह बता दूंगा, यह मैं भी नहीं जानता था, पर उस समय यही शब्द मेरे मुंह से निकले।

मुझे प्रायः ही पिताजी का उपदेश सुनना पड़ा। वे कहते थे कि इस परिचय को मुझे कोशिश करके बढ़ाना चाहिए, समझाते थे कि ईविन जैसी उच्च स्थिति के आदमी का मेरे जैसे एक बालक के प्रति उपेक्षाभाव होना स्वाभाविक था। पर मैं बहुत दिनों तक अपने इरादे पर अटल रहा।

इक्कीसवां परिच्छेद

प्रिन्स इवान इवानिच

"अब एक और जगह जाना बाक़ी रह गया है—निकित्स्काया में," मैंने कुज्मा से कहा और हमारी गाड़ी खड़खड़ाती हुई प्रिन्स इवान इवानिच के घर की ओर चल पड़ी।

लोगों से मिल आने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद मैं अभ्यास से आत्म-निर्भर बन चुका था। अतः प्रिन्स के यहां जाते समय मेरा दिमाग़ काफ़ी शांत था। किन्तु इसी समय अचानक मुझे प्रिन्सेस कोर्नाकोवा के शब्द याद आ गये कि, मैं उनका उत्तराधिकारी हूं। इसके अतिरिक्त, मैंने फाटक पर दो गाड़ियां खड़ी देखीं। फिर क्या था, मुझे शर्मीलेपन का नया दौरा हो आया।

ऐसा भास हुआ कि मेरे लिए दरवाज़ा खोलनेवाला बूढ़ा दरबान, मेरा कोट उतारने वाला अर्दली, बैठकखाने में बैठी तीन महिलाएं और दो सज्जन और विशेषकर स्वयं प्रिन्स इवान इवानिच, जो सादा कोट पहने सोफ़ा पर बैठे हुए थे—ये सभी के सभी मुझे उत्तराधिकारी जानकर मेरी ओर दुर्भावना की दृष्टि से देख रहे हैं। प्रिन्स मुझसे बड़े प्रेमभाव से मिले, मुझे चूमा, अर्थात्, एक क्षण के लिए अपने मुलायम, सूखे, ठण्डे ओंठ मेरे गाल पर रखे, मेरे तात्कालिक काम और भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में प्रश्न किये, मुझसे मज़ाक किया, पूछा कि नानी के नाम-दिवस की तरह अब भी कविताएं करता हूं या नहीं और बोले कि भोजन करके जाना होगा। किन्तु जितना ही अधिक सौजन्यता के साथ वे मुझसे पेश आ रहे थे उतना ही मुझे प्रतीत होता था कि उत्तराधिकारी होने के कारण मेरे प्रति अपनी अरुचि छिपाने के लिए ही वे मुझे इतना अधिक दुलार-पुचकार रहे हैं। उनकी एक आदत थी, जिसका कारण नक़ली दांतों से उनके मुंह का भरा हुआ होना था। कुछ कहने के बाद,

एक हल्की ग्रावाज़ करते हुए अपना ऊपरी ओठ नाक की ओर उठा लेते थे, मानों ओंठ को नथुने में घुसा लेना चाहते हों। और इस समय जब भी वे ऐसा करते थे मुझे लगता था मानो वे स्वगत कह रहे हैं—"बालक! बालक। तेरे बतलाने की ज़रूरत नहीं—मैं जानता हूं कि तू मेरा उत्तराधिकारी है, उत्तराधिकारी," और इसी तरह और भी बहुत कुछ।

बचपन में हम लोग प्रिन्स इवान इवानिच को 'नाना' कहा करते थे। किन्तु अब उनका उत्तराधिकारी होने की वजह से मैं यह शब्द ज़बान पर भी न ला सकता था। और उन्हें 'योर एक्सेलेन्सी' कहकर पुकारना भी, जैसा कि आगन्तुकों में एक व्यक्ति कर रहा था, उपहासजनक था। अतः पूरे वार्तालाप में मैंने उन्हें कुछ भी कहकर न पुकारने की कोशिश की। किन्तु मुझे सबसे अधिक परेशानी बूढ़ी प्रिन्सेस के कारण हो रही थी जो भी प्रिन्स के उत्तराधिकारियों में थीं और उसी घर में रहा करती थीं। भोजन के समय मैं उन्ही की बग़ल में बैठा हुआ था। पूरे भोजन के दौरान मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि, प्रिन्सेस मुझसे इसलिए नहीं बोल रही हैं कि अपनी तरह मेरे भी प्रिन्स का एक उत्तराधिकारी होने के कारण उन्हें मुझसे घृणा है और स्वयं प्रिन्स मेज़ के उस भाग की तरफ़ जिधर हम लोग थे, इसलिए ध्यान नहीं दे रहे हैं कि हम लोग—प्रिन्सेस और मैं—उनके उत्तराधिकारी और समान रूप से उनकी घृणा के पात्र हैं।

"हां, तुम विश्वास न करोगे कि सब कुछ मेरे लिए कितना अरुचिकर था," उसी शाम को मैंने द्मीत्री से उत्तराधिकारी होने की स्थिति से अपनी घृणा के (यह भावना मुझे बड़ी सुखद लग रही थी) विषय में डींग हांकने की इच्छा से कहा। "आज पूरे दो घंटे प्रिन्स के साथ बिताना मेरे लिए बड़ा ही अरुचिकर हो गया था। वे बड़े शानदार आदमी हैं और मेरे प्रति उनका व्यवहार बहुत ही सौजन्यपूर्ण था।" (यह मैंने अपने मित्र पर और बातों के साथ इस बात का रोब जमाने के लिए कहा था कि प्रिन्स के यहां कुछ अपमानित होने के कारण मैं

अरुचि की ये बातें नहीं कर रहा था)। "किन्तु यह भावना ही कि वे मुझे उसी नीची दृष्टि से देखने लगेंगे जिस दृष्टि से प्रिन्सेस को देखते हैं जो उनके घर में रहती हैं और उनके प्रति खुशामदी टट्टुओं जैसा व्यवहार करती हैं, मेरे लिए भयानक है। बूढ़ा बड़ा शानदार आदमी है—बहुत नेक और बर्ताव का भला। पर प्रिन्सेस के साथ उनका सलूक बड़ा कष्टकर है। धन ऐसी ही बुरी चीज़ है—आदमी आदमी का सम्बन्ध बिगाड़ देती है।

"मैं तो सोचता हूं कि एक बार जाकर प्रिन्स से खरी-खरी बातें कर आऊं," मैंने कहा। "उनसे कहूंगा कि, एक व्यक्ति के नाते मैं हृदय से आपका आदर करता हूं, किन्तु आपकी विरासत की भूख मुझे नहीं है और मेरी आपसे प्रार्थना है कि मेरे लिए अपनी जायदाद का एक टुकड़ा भी न छोड़ें; इसी शर्त पर मैं आपके घर आ-जा सकता हूं।"

मेरे ऐसा कहने पर द्मीत्री हंसा नहीं, बल्कि विचारों में डूब गया और कई मिनटों तक मौन रहने के बाद मुझसे बोला:

"एक बात जानते हो? तुम ग़लती पर हो। या तो तुम्हें यह मान कर चलना ही न चाहिए कि लोगों की तुम्हारे प्रति वही भावना है जैसी तुम्हारी प्रिन्सेस के प्रति। अगर इसे मान कर चलो भी तो मानने की क्रिया को थोड़ा और आगे ले चलो—यानी, तुम जानते हो कि लोग तुम्हारे बारे में क्या भावना रखते हैं, किन्तु वैसे विचार तुम से कोसों दूर हैं, तुम उनसे घृणा करते हो, और कभी उनके अनुसार काम न करोगे। अब मान लो कि वे मान लेते हैं कि तुम ऐसा मान लेते हो—पर, संक्षेप में कहें, तो यही अच्छा है कि कुछ माना ही न जाये।" अंतिम वाक्य उसने इस संज्ञा के साथ कहा था जैसे वह अपनी चिन्तनधारा में उलझा जा रहा है।

मेरे मित्र ने बिल्कुल ठीक कहा था। बाद में जाकर, बहुत बाद में, जीवन के अपने अनुभव से मुझे विश्वास हो गया कि बहुत सारी ऐसी बातें जो उच्चादर्शयुक्त हैं उनका औरों की दृष्टि से आपके [illegible]

में छिपा रहना ही श्रेयस्कर है, उन्हें सोचना हानिप्रद है और उससे भी अधिक हानिप्रद है उन्हें मुंह से निकालना। और मैंने भी सीखा कि उच्चादर्श कम ही कभी ऊंचे कार्यों में परिणत होते हैं। मुझे पक्का विश्वास है कि नेक इरादे की घोषणा कर देना ही एक ऐसी चीज़ है जो उस नेक इरादे को अमल में लाना अधिक मुश्किल बल्कि आम तौर से नामुमकिन बना देती है। किन्तु तरुणाई के उच्चादर्शयुक्त, आत्मसंतुष्ट आवेगों पर प्रतिबन्ध ही कौन लगा सकता है? उनकी तो बस बाद में याद आती है और तब उनके लिए आदमी अफ़सोस करता है जैसे ऐसे फूल के लिए जो अधिक देर तक खिला नहीं रहा—जिसे खिलने से पहले ही तोड़ लिया गया और अब जिसे हम मुरझाया और कुचला हुआ भूमि पर पा रहे हैं।

स्वयं मैंने अभी अभी द्मीत्री से यह कहने के बाद कि धन मनुष्यों के सम्बन्ध बिगाड़ देता है, अपने सारे रूबल तरह तरह की तसवीरों और पाइप की नलियों के खरीदने में खर्च कर डालने के कारण उससे पचीस रूबल उधार मांगे। ये रूबल उसने अगले दिन मेरे देहात रवाना होने से पहले लाकर दे देने का वादा किया। और सचमुच मैं उसके बहुत दिनों बाद तक उसका कर्ज़दार बना रहा।

बाईसवां परिच्छेद

मित्र के साथ अंतरंग वार्तालाप

यह वार्तालाप कुन्त्सेवो जाते समय रास्ते में फिटन में बैठे बैठे हुआ। द्मीत्री ने मुझे सुबह उसकी मां के यहां जाने से रोका था। पर मध्यान्ह भोजन के बाद वह मुझे शाम, बल्कि रात भी देहात के अपने घर पर जहां उसके परिवारवाले रहते थे, बिताने के लिए लिवाने आया। शहर से हम लोग बाहर निकल आये। गंदी, चित्रविचित्र गलियों और

पटरियों की असह्य तथा कानों को बहरा कर देने वाली आवाज़ें पीछे छूट गयीं। और उनकी जगह ले ली दूर तक फैले खुले खेतों, धूल भरी सड़क पर गाड़ी के पहियों की हल्की बड़बड़ाहट, वसंत की सुगंधित वायु और चारों दिशाओं में व्याप्त उन्मुक्तता की भावना ने। अब मेरी चेतना कुछ संभली जो इन विविध प्रभावों, नये अनुभवों और दो दिनों से मिली स्वतंत्रता से पैदा हुई हैरानी में खो गई थी। द्मीत्री सौम्य और सहृदय था। उसने न गले का रूमाल ठीक किया, न आंखें मटकायीं, न पलकें सिकोड़ीं। मैं अपनी उच्चादर्शयुक्त भावनाओं से उसे अवगत कराने के बाद यह सोचकर आत्मसंतुष्ट था कि उनके कारण वह कोल्पिकोव के साथ हुई शर्मनाक घटना के लिए मुझे क्षमा कर चुका है और अब मुझे घृणा की दृष्टि से नहीं देखता होगा। और हम मैत्रीपूर्ण ढंग से बहुत सारे ऐसे अंतरंग विषयों पर वार्तालाप करते रहे जिनकी गहरे से गहरे मित्र भी बहुधा एक दूसरे से चर्चा नहीं करते। द्मीत्री ने मुझे अपने परिवार के बारे में बताया जिससे अभी तक मेरा परिचय नहीं हुआ था—उसकी मां, मौसी, बहिन के बारे में और उस व्यक्ति के बारे में जिसे वोलोद्या और दुबकोव उसकी प्रेमिका समझते थे और जिसे उन्होंने 'नन्ही रक्तकेशी' का नाम दे रखा था। अपनी मां के विषय में वह एक सुस्थिर गर्वपूर्ण प्रशंसा के स्वर में बोल रहा था मानो उस सम्बन्ध में की जानेवाली आपत्तियों को पहले ही से रोक देना चाहता हो। मौसी के विषय में उसने उत्साहपूर्वक तो बातें कीं किन्तु कुछ कुछ अनुकम्पा के स्वर में। बहिन के विषय में उसने अधिक कुछ न कहा और ऐसा ज्ञात हुआ कि उसके विषय में मुझसे बातें करने में उसे लाज लग रही थी। किन्तु 'नन्ही रक्तकेशी' की बारी आने पर उसमें बड़ी स्फूर्ति आ गयी। उसका असली नाम ल्युबोव सेर्गेयेवना था और वह एक अधिक वयसवाली कुंवारी थी जो दूर दराज के रिश्तेदार की हैसियत से नेख्ल्यूदोव के घर में रहती थी।

"कमाल की लड़की है वह," शर्म से लाल होते हुए पर साथ ही मेरी आंखों से आंखें मिलाकर उसने कहा, "वह युवती नहीं रही, वल्कि वयस्का कही जा सकती है और खूवसूरत तो विल्कुल भी नहीं है। पर रूप को प्यार करना मूर्खता की हद है। मेरी तो समझ ही में नहीं आती ऐसी मतिहीनता। (वह यों वोल रहा था मानो अभी अभी एक सर्वथा नये सत्य की खोज की हो)। किन्तु उसकी आत्मा, उसका हृदय, उसके सिद्धांत ऐसे सुंदर हैं कि मुझे पूरा यक़ीन है कि आजकल के ज़माने में तुम्हें वैसी दूसरी लड़की नहीं मिलेगी।" (मुझे पता नहीं कि द्मीत्री ने प्रत्येक अच्छी वस्तु को आजकल के ज़माने में विरल कहने की आदत कहां से पायी थी। पर वह प्रायः इन शब्दों को दुहराया करता था और ये उसके मुंह में जंचते भी खूव थे।)

"मुझे भय केवल इस वात का है," अपनी भर्त्सना द्वारा रूप पर आसक्त होने जैसी मूर्खता करनेवालों का काम तमाम करने के वाद उसने शांतचित्त होकर कहना जारी रखा, "मुझे भय है कि तुम्हें उसे समझने और उसे जानने में कुछ समय लगेगा। वह वड़ी सरल और संकोची है। अपने सुंदर और आश्चर्यजनक गुणों का दिखावा करने की उसकी आदत नहीं है। अम्मा को ही ले लो—जैसा कि तुम देखोगे, वे वड़ी नेक तीक्ष्ण वुद्धिवाली स्त्री हैं, पर वर्षों से ल्युवोव सेर्गेयेवना को जानने के वावजूद भी वे उसे समझ नहीं सकी हैं, न समझना चाहती हैं। अभी कल ही रात की वात है—तुम्हें वता ही दूं कि जव तुमने पूछा था उस समय मैं इतना उदास क्यों था। परसों ल्युवोव सेर्गेयेवना ने मुझसे अपने साथ इवान याकोवलेविच के यहां चलने को कहा। इवान याकोवलेविच का नाम तो तुमने जरूर ही सुना होगा। लोग कहते हैं वे पागल हैं, पर वास्तव में असाधारण आदमी है वह। तुम्हें वता दूं कि ल्युवोव सेर्गेयेवना वड़ी धार्मिक प्रवृत्तिवाली है और इवान याकोवलेविच को भली प्रकार समझती है। वह प्रायः उनके पास जाती है, उनसे वातें करती और

अपने कमाये पैसे उन्हें ग़रीबों-मुहताजों में बांटने के लिए दे आती है। बड़ी विलक्षण औरत है वह, जैसा कि तुम स्वयं देख लोगे। तो, मैं उसके साथ इवान याकोवलेविच के यहां गया और मैं उसका आभारी हूं कि उसकी वजह से ऐसे असाधारण आदमी से भेंट हुई। पर अम्मा इन बातों को समझ नहीं पातीं। वे समझती हैं कि यह सब कोरा अंधविश्वास है। कल रात जीवन में पहले पहल मां से मेरा झगड़ा हो गया और काफ़ी गर्मागर्मी हो गयी," उसने चिहुककर गर्दन हिलाते हुए कहा मानो झगड़े के समय की अनुभूति ताजा हो गयी हो।

"पर तुम क्या सोचते हो? यानी, तुम्हारे ख्याल से इसका नतीजा क्या होगा? या तुम कभी उससे यह भी सलाह करते हो कि आगे क्या होगा, तुम्हारे प्रेम और मित्रता का निष्कर्ष क्या निकलेगा?" मैंने उसका ध्यान अप्रिय स्मृतियों से हटाने के लिए प्रश्न किया।

"तुम्हारा मतलब कि मैं उससे व्याह करने की बात सोचता हूं या नहीं?" उसने फिर लाज से लाल होते हुए पर मेरी आंखों से आंखें मिलाकर पूछा।

"ठीक ही तो है," मैंने मन ही मन अपने को आश्वस्त करते हुए सोचा। "हम दोनों ही बड़े हो चुके हैं—हम दोनों मित्र इस समय इस फ़िटन पर अपने भविष्य के सम्बन्ध में विवेचना करते चले जा रहे हैं। कोई भी छिपकर हमें देखने और हमारी बातें सुनने में रस पायेगा।"

"क्यों नहीं?" मुझसे 'हां' में जवाब पाने पर वह कहता गया। "मेरा उद्देश्य—और हर स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति का उद्देश्य—जहां तक सम्भव हो, सुखी और नेक बनना है। और अपने पैरों पर खड़ा होने के बाद मैं समझता हूं कि उसका संग पाकर, यदि उसकी अनुमति हुई तो—मैं अधिक सुखी और अधिक नेक बन सकता हूं। किसी विश्व-सुन्दरी का संग पाने से भी अधिक।"

इस तरह बातचीत करते हुए हमें यह पता न चला कि हम

कुन्त्सेवो पहुंच गये थे और आकाश में पानी-बूंदी का रंग छा गया था। सूरज दाहिनी ओर कून्त्सेवो उद्यान के प्राचीन वृक्षों के ऊपर खड़ा था। उसका रक्तवर्ण, जगमगाता गोला, श्वेत और किंचित प्रकाशमान वादलों से आधा ढंका हुआ था। वाकी आधे से प्रखर किरणें छितरा रही थीं। उद्यान के पुराने वृक्ष, जिनकी घनी हरी, निश्चल फुनगियां नीले गगन की प्रकाशमान दरार में चमक रही थीं, इन किरणों से असाधारण रूप से चमक रहे थे। आकाश के इस पार्श्व की आभा और प्रकाश क्षितिज में दृष्टिगत होने वाले नये वर्च-वृक्षों के ऊपर छाये नील लोहित मेघों के ठीक उल्टे लग रहे थे।

दाहिनी ओर थोड़ा हटकर, झाड़ियों और वृक्षों के पीछे, ग्रीष्म-कालीन ग्रामीण घरों की बहुरंगी छतें दिखाई देने लगी थीं। कुछ सूर्य की जगमग किरणों को प्रतिविम्वित कर रही थीं और कुछ पर आकाश के दूसरे भाग की विषादपूर्ण उदासी छायी हुई थी। नीचे, वायीं ओर, निश्चल नीलवर्ण पुष्कर चमक रहा था। उसके चारों ओर पीली हरी नरकट की झाड़ियां उगी हुई थीं। वे उसकी मलिन और उभरी हुई सी सतह की पृष्ठभूमि में कृष्णाभ ज्ञात हो रहे थे। पुष्कर के उस पार, पहाड़ी की दिशा में आधे दूर तक काला, अनजुता खेत फैला हुआ था। उसके वीचोवीच हरियाली की एक सीधी रेखा दूर तक चली गयी थी। वह अब वरस पड़ने तव वरस पड़ने जैसे सीसे के रंग के क्षितिज पर जा टंगी थी। मुलायम सड़क के दोनों तरफ़ जिसपर फिटन समान गति से लुढ़कती जा रही थी, रई का घना, हरा खेत चमक रहा था। उसमें अभी ही जहां-तहां डंठल फूटने लगे थे। हवा पूर्णतः शान्त थी। उससे ताज़गी फैल रही थी। वृक्षों, पत्तों और रई की हरियाली निश्चल तथा असाधारण रूप से स्वच्छ और विमल थी। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रत्येक पत्ते, घास के प्रत्येक हरे तिनके का अपना अलग स्वतंत्र, सुखी और व्यक्तिगत जीवन है। सड़क के किनारे मैंने मटमैली पगडण्डी देखी

जो हरी रई के खेतों के बीच बल खाती चली गयी थी। रई का खेत एक चौथाई उग आया था। न जाने क्यों इस पगडण्डी को देखने के बाद मेरे मन में अपने गांव की स्मृति साकार हो उठी। और गांव की याद आने के साथ, भावनाओं के किसी विचित्र संयोग से मेरे मन में सोनेच्का की और यह कि मैं सोनेच्का से प्रेम करता हूं स्मृति सजीव हो उठी।

द्मीत्री के साथ तमाम दोस्ती के बावजूद और इसके बावजूद कि उसकी सच्चाई मुझे सुखद लग रही थी, मैं अब ल्युबोव सेर्गेयेवना के सम्बन्ध में उसकी भावनाओं और आकांक्षाओं की कहानी सुनने का इच्छुक न था। मैं यह सोचने लगा कि उसे सोनेच्का के प्रति मेरे प्रेम के विषय में जानना चाहिए जो मेरी समझ में अधिक उच्च कोटि का प्रेम था। फिर भी न जाने क्यों मैं अपनी भावनाएं उसे सीधे सीधे बताने का निश्चय न कर सका—यह भावनाएं कि मेरा सोनेच्का के साथ विवाह होगा और हम दोनों देहात में रहेंगे, हमारे नन्हे-नन्हे बाल-बच्चे होंगे जो किलकारी मारते फ़र्श पर चला करेंगे और मुझे 'पापा' कहकर पुकारेंगे, किसी दिन नेख्ल्यूदोव और उसकी पत्नी ल्युबोव सेर्गेयेवना अपनी सफ़री पोशाक में मेरे घर आयेंगे और हम प्रसन्नता से स्वागत करेंगे, आदि। अपनी ये भावनाएं बताने के बदले मैंने केवल अस्ताचलगामी सूर्य की ओर संकेत कर कहा—"द्मीत्री! उधर देखो, कितना सुंदर है!"

द्मीत्री मौन रहा। प्रगट था कि, उसे यह अच्छा न लगा कि जब वह मुझे अपने मन की बात बता रहा था (और ऐसा करने में उसे प्रयास करना पड़ा था) तब मैं जवाब में उसका ध्यान प्रकृति की ओर जिसके प्रति वह बिल्कुल निरुत्साह था, आकर्षित कर दूं। प्रकृति की मेरे ऊपर जो प्रतिक्रिया होती उससे नेख्ल्यूदोव की प्रतिक्रिया बिल्कुल भिन्न हुआ करती थी। उसे प्रकृति की सुषमा उतनी प्रभावित न करती जितनी उसकी रोचकता। वह प्रकृति को मस्तिष्क से प्यार करता था, भावनाओं से नहीं।

"मैं बहुत प्रसन्न हूं," मैंने इसके बाद, उस बात की परवाह न कर कि वह अपने ही विचारों में डूबा हुआ है और मैं जो कहूं उसके प्रति सर्वथा उदासीन है, उससे कहा, "शायद मैंने किसी दिन तुम्हें उस लड़की के विषय में बताया था जिसे बचपन में मैंने प्यार किया था। आज मैं उस लड़की से फिर मिला था," मैं उत्साहपूर्वक कहता गया, "और अब मैं निश्चित रूप से उसके प्रेम में पड़ गया हूं।"

उसके चेहरे पर उदासीनता का भाव बना रहा। पर मैं अपने प्रेम और आनन्दपूर्ण भावी दाम्पत्य जीवन की योजनाओं के बारे में कहता ही गया। आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रबल प्रेमावेग को विस्तारपूर्वक वर्णित करते ही वह घटने लगा।

ज्यों ही हम उन बर्च पेड़ों की कतारों के बीच रास्ते से जाने लगे, जो बंगले को जाता था, पानी बरसना आरम्भ हो गया, मुझे उसका पता केवल इसलिए लगा कि कुछ बूंदें मेरी नाक और हाथ पर पड़ीं और बर्च वृक्ष की कोपलों पर पट-पट शब्द होने लगा। उनकी ऐंठनदार शाखाएं निश्चल झुकी हुई थीं मानो उन विमल पारदर्शी बूंदों को उल्लासपूर्वक ग्रहण कर रही हों। वह मादक सुगन्ध जिससे उन्होंने उस तरुछाया-पथ को भर रखा था स्पष्टतः यही बता रही थी। हम गाड़ी से उतर पड़े ताकि बाग़ के अंदर से दौड़कर जल्दी से घर पहुंच जायें। किंतु घर के प्रवेश द्वार पर ही हमारी मुलाक़ात चार महिलाओं से हो गयी जिनमें दो के हाथ में सिलाई-करोशिये का काम था, तीसरी के हाथ में पुस्तक थी और चौथी एक छोटे-से कुत्ते को साथ लिये तेज़ी से दूसरी दिशा से चली आ रही थी। द्मीत्री ने फ़ौरन मेरा परिचय अपनी मां, बहिन, मौसी और ल्युबोव सेर्गेयेवना से करा दिया। वे एक क्षण के लिए रुकीं, पर उसी समय पहले से और भी तेज़ बारिश शुरू हो गयी।

"चलो बरामदे में चले चलें, वहां तुम फिर इस का परिचय कराना," उस महिला ने जिसे मैंने द्मीत्री की मां समझा था, कहा। और महिलाओं के साथ हम सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गये।

नेख्ल्यूदोव परिवार

पहली नज़र में ही इस मण्डली में मुझे जिसने सबसे अधिक प्रभावित किया वह थी ल्युबोव सेर्गेयेवना। हाथों में छोटा-सा कुत्ता लिये और मोटे मोटे जूते पहिने, वह सबसे पीछे सीढ़ियों पर चढ़ रही थी। दो बार उसने रुककर अनिमेष दृष्टि से मुझे देखा और गोद के कुत्ते को चूम लिया। सुन्दर तो उसे किसी भांति नहीं कहा जा सकता था। लाल केशवाली, पतली, नाटी और कुछ एकांगी-सी थी वह। उसका साधारण-सा चेहरा उसके जूड़ा बांधने के विचित्र ढंग से और भी साधारण लगता था। उसने अपने सब बाल एक ही तरफ़ करके जूड़े में बांध रखे थे (जैसे कम केशोंवाली स्त्रियां एक ही जूड़े से काम चलाने की कोशिश करती हैं)। अपने मित्र को खुश करने के ख्याल से मैंने बहुतेरी कोशिश की, पर मुझे उसके रूप में कोई भी आकर्षक बात नज़र न आयी। यहां तक कि उसकी भूरी आंखें, जिनसे स्वभाव की मृदुलता टपकती थी, बहुत ही छोटी और साधारण थीं। उनमें सौंदर्य जैसा कुछ न था। हाथ भी जो साधारणतः व्यक्ति के चरित्र का निर्देश करते हैं, बड़े या कुरूप न होते हुए भी लाल और रूखड़े थे। जब मैं सबके साथ बरामदे में पहुंचा द्मीत्री की बहिन वारेन्का को छोड़कर (वह अपनी बड़ी बड़ी, काली आंखों से केवल मुझे ध्यानपूर्वक देखे जा रही थी) सभी ने मुझसे दो-चार शब्द कहे और तब अपने अपने काम में लग गयीं। वारेन्का अपनी गोद में रखी किताब जिसमें उसने उंगली डालकर चिन्ह दे रखा था, पढ़ने लगी।

प्रिन्सेस मार्या इवानोवना लम्बी, भव्य व्यक्तित्ववाली चालीस वर्षीय महिला थीं। टोपी के नीचे से श्वेत केश, जिन्हें छिपाने का प्रयास नहीं किया गया था, झांक रहे थे। उनसे उनकी उम्र अधिक भी मानी

जा सकती थी। किन्तु उनका स्वस्थ, ताज़ा चेहरा जिसपर झुर्रियों के निशान न थे, और ख़ासकर बड़ी बड़ी आंखों की जानदार, खुशमिज़ाज दमक से उनकी उम्र कहीं कम नज़र आती थी। उनकी आंखें भूरी और पूर्णतया खुली हुई थीं, ओठ बहुत ही पतले और किंचित कठोर थे, नाक काफ़ी सुडौल और किंचित बायीं ओर को थी। उनके बड़े और मर्दाना दिखने वाले हाथों में, जिनकी उंगलियां पतली और लम्बी थीं, अंगूठियां न थीं। उन्होंने गहरे नीले रंग की चुस्त पोशाक पहन रखी थी। वह उनके और भी जवान दिखनेवाले शरीर पर जिसपर उन्हें प्रगटतः नाज़ था खूब चुस्त बैठती थी। बैठते समय उनकी पीठ असाधारण रूप से सीधी थी। वह कोई वस्त्र सी रही थीं। जब मैं बरामदे में पहुंचा, उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर अपनी ओर खींचा मानो मुझे और निकट से देखना चाहती हों और अपने बेटे जैसी ठंडी, खुली दृष्टि से मुझे देखती हुई बोलीं कि द्मीत्री के वर्णनों से वह मुझसे बहुत दिनों से परिचित थीं और एक पूरा दिन अपने यहां बिताने के लिए इसी लिए निमंत्रित किया था कि मुझसे और घनिष्ठता के साथ परिचय प्राप्त कर सकें। "हम लोगों की परवाह न करना, जैसे मन आये रहना, और हम भी तुम्हारी वजह से किसी प्रकार का तकल्लुफ़ न करेंगी। टहलो, पढ़ो, सुनो, या सोओ—जो भी अच्छा लगे करो," उन्होंने अंत में कहा।

सोफ़िया इवानोवना अधेड़ उम्र की अनब्याही स्त्री थीं। वह प्रिन्सेस की सबसे छोटी बहिन थीं, पर देखने में उनसे अधिक अवस्था की लगती थीं। उनके शरीर की बनावट उस खास क़िस्म की थी जिससे सबल चरित्र टपकता है और जो केवल मोटी-ताज़ी, नाटी, अंगिया पहननेवाली बूढ़ी कुमारियों में ही पाया जाता है। उनका सम्पूर्ण सुस्वास्थ्य इतनी प्रबलता के साथ ऊपर उठा हुआ था कि प्रत्येक क्षण ऐसा ज्ञात

होता था कि उनका दम ही घोट देगा। उनके छोटे-से मोटे मोटे हाथ उनकी चोली के उभड़े भाग के नीचे मिल नहीं सकते थे। दोनों बहिनों में बड़ी समानता थी, यद्यपि मार्या इवानोवना की आंखें श्यामल और केश काले थे और सोफ़िया इवानोवना के केश हल्के रंग के और आंखें बड़ी बड़ी, सजीव और साथ ही शांत और नीली (ऐसा संयोग विरला ही मिलता है) थीं। दोनों का एक ही भाव, एक ही नाक, और एक ही जैसे ओंठ थे। केवल सोफ़िया इवानोवना की नाक और ओंठ किंचित मोटे थे और मुसकराने पर जरा दाईं ओर झुकते थे जब कि प्रिन्सेस के जरा बाईं ओर। पोशाक और जूड़ा बांधने के ढंग को देखते हुए विदित था कि सोफ़िया इवानोवना अपने को जवान दर्शाने की कोशिश करती थीं और उनकी लटें यदि सफ़ेद हो चुकी होतीं तो वे उन्हें छिपाकर रखतीं। जिस ढंग से उन्होंने मुझे देखा और मेरे प्रति उनका सारा रुख़ मुझे आरम्भ में बड़ा ही दम्भपूर्ण जान पड़ा। उनके सामने मुझे घबराहट-सी होने लगती थी, जबकि प्रिन्सेस के सामने किसी प्रकार का संकोच या परेशानी न होती थी। सम्भवत: उनके मोटापे और कैथरिन महान के चित्र के साथ उनकी समानता से ही मुझे उनके भाव में दम्भ का भास हुआ था (ऐसा मुझे तत्काल ही महसूस हुआ था)। किन्तु जब मेरे ऊपर दृष्टि गड़ाकर उन्होंने कहा—"मेरे मित्रों के मित्र मेरे भी मित्र हैं," तो मैं लजा गया। जब ये शब्द कहने के बाद वे थोड़ा रुकीं और मुंह खोलकर सांस ली, तभी मेरी घबराहट दूर हुई और मैंने उनके बारे में अपनी राय बिल्कुल बदल दी। अवश्य ही मोटापे के कारण हर बार कुछ कहने के बाद वह लम्बी सांस लेतीं और मुंह थोड़ा खोलकर बड़ी बड़ी नीली आंखों की पुतलियां घुमाने लगती थीं। इस आदत से ऐसे मिलनसार स्वभाव और सहृदयता का भास होता था कि न जाने क्यों उसी लम्बी सांस के बाद मेरा सारा डर जाता रहा और वह मुझे बेहद अच्छी लगने लगीं। उनकी आंखें मोहक तथा स्वर लययुक्त और कर्णप्रिय था। यहां तक कि उनके

शरीर की अतीव गोल गोल रेखाएं भी युवावस्था के मेरे उस युग में मुझे सौंदर्य-रहित न जान पड़ीं।

मेरा ख्याल था कि मित्र का मित्र होने के नाते ल्युवोव सेर्गेयेवना तत्काल मुझसे कुछ मैत्रीपूर्ण और अंतरंग वातें करेंगी। और सचमुच वह मुझे बड़ी देर तक यों टकटकी वांधे देखती रहीं मानो यह निश्चय न कर पा रही हों कि वह मुझसे जो कहना चाहती हैं वह आवश्यकता से अधिक अंतरंग तो न होगा? पर जब उन्होंने मुंह खोला तो केवल इतना पूछा कि मैंने विश्वविद्यालय में क्या विषय ले रखा है। इसके वाद फिर वह देर तक मुझे निहारती रहीं। ऐसा ज्ञात हुआ कि, वह फिर इस पशोपेश में हैं कि मैत्रीपूर्ण और अंतरंग जो वात उन्हें कहनी थी वह कहें या न कहें। मैंने अनिश्चयात्मकता की इस स्थिति को परखते हुए अपने चेहरे के भाव द्वारा उनसे अपने मन की वात कह डालने की याचना की। पर उन्होंने कहा—"लोग कहते हैं कि आजकल विश्वविद्यालयों में विज्ञान की पढ़ाई की ओर वहुत कम ध्यान दिया जाता है।" और अपने नन्हें कुत्ते सुज़ेत्ता को पुकारने लगीं।

उस पूरी शाम, ल्युवोव सेर्गेयेवना ने इसी तरह विखरे टूटे-फूटे वाक्यों में वातें कीं। किन्तु मुझे द्मीत्री की परख में अव भी गहरा विश्वास था और वह भी तमाम शाम वारी वारी से मेरे और उनके चेहरे की ओर ऐसे भाव के साथ देख रहा था मानो पूछ रहा हो—"कहो दोस्त, क्या खयाल है तुम्हारा?" इसके कारण, जैसा कि आम तौर से हुआ करता है, मन में यह पक्का यक़ीन हो जाने के वाद भी कि ल्युवोव सेर्गेयेवना में कोई खास वात नहीं है, मैं अपना यह विचार अपने आप पर भी प्रगट नहीं कर पा रहा था।

परिवार की अंतिम सदस्या वारेन्का, सोलह वर्ष की किंचित मोटी-ताज़ी लड़की थी।

सौंदर्य का वोध करानेवाली उसकी एक मात्र चीज़ थी, वड़ी वड़ी गहरी भूरी आंखें जिनमें उसकी मौसी जैसी मिश्रित खुशदिली और नीरव एकाग्रता का भाव था, वड़ी वड़ी हलके रंग की लटें और अतीव कोमल और सुन्दर हाथ।

"Mr. Nicolas, महाशय, शुरू का भाग न सुनने के कारण शायद आपका इस किताव में जी न लग रहा होगा," सोफ़िया इवानोवना ने हाथ के सिलाई के कपड़ों को उलटते हुए अपने मृदुल निश्वास के साथ कहा। पुस्तक पढ़ना द्मीत्री के उठकर कहीं चले जाने के कारण एक क्षण के लिए रुक गया था।

"अथवा, सम्भवतः आप 'रॉव रॉय' पहले पढ़ चुके हैं?"

उन दिनों, छात्र की पोशाक पहनने के कारण, मैं ऐसे लोगों के जिनसे मेरा खूव परिचय न था, सादे से सादे प्रश्नों का भी उत्तर पूर्ण प्रतिभा और मौलिकता के साथ देना अपना कर्तव्य समझता था। "हां," "न," "हां, नीरस है," या—"अच्छा तो है" तथा ऐसे अन्य संक्षिप्त और सुस्पष्ट उत्तरों से काम लेना मैं लज्जाजनक समझता था। अपनी फ़ैशनदार नयी पतलून और कोट के चमकीले वटनों पर दृष्टि डालते हुए मैंने जवाव दिया कि—"रॉव रॉय" मैंने पढ़ा तो नहीं है पर सुनने में वहुत आनंद आ रहा है, क्योंकि मैं आरम्भ के वजाय वीच से पुस्तकों को पढ़ना ज्यादा पसंद करता हूं।"

"उसमें दोहरा मजा आता है क्योंकि कहानी के आदि और अंत दोनों ही के विषय में आपका कौतूहल वना रहता है," मैंने आत्मसंतोषयुक्त मुसकान के साथ कहा।

प्रिन्सेस एक अस्वाभाविक हंसी हंसने लगीं। (वाद में मुझे पता चला कि वही उनके हंसने का एक मात्र तरीका था)

"शायद तुम्हारा कहना विल्कुल ठीक है," वह बोलीं। "तुम यहां कुछ दिन ठहरोगे न, Nicolas? मैंने तुम्हारे नाम से monsieur उड़ा दिया है—बुरा तो नहीं मानोगे? तुम कब जाओगे?"

"नहीं कह सकता। शायद कल चला जाऊं, पर हो सकता है कि कई रोज़ ठहर जाऊं," मैंने उत्तर दिया यद्यपि मैं निश्चित रूप से जानता था कि अगले दिन हम चले जायेंगे।

"मेरी तो इच्छा है कि हमारे और द्मीत्री के वास्ते तुम कुछ दिन और ठहरते यहां," प्रिन्सेस ने दूर की ओर दृष्टि गड़ाकर कहा। "तुम्हारी उम्र में मित्रता बड़ी अनूठी चीज़ हुआ करती है।"

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सब के सब मेरी ओर देख रहे हैं और देखना चाहते हैं कि मैं इसका क्या जवाब देता हूं, यद्यपि वारेन्का अपनी मौसी की सिलाई पर आंखें गाड़े उसे देखने का बहाना कर रही थी। मुझे भास हुआ कि वे मुझे जांच रहे हैं। अतः यह अपनी प्रतिभा की धाक जमाने का अवसर है।

"हां," मैंने कहा, "द्मीत्री की मित्रता मेरे लिए तो बड़ी उपयोगी है, पर मेरी उसके किसी काम की नहीं हो सकती क्योंकि वह मुझसे हज़ार गुना श्रेष्ठ है"। (द्मीत्री मेरे कहे को सुन नहीं रहा था वरना मुझे यह खटका रहता कि वह मेरी उक्ति की कृत्रिमता को समझ जायगा।)

प्रिन्सेस फिर अस्वाभाविक तरीके पर जो उनके लिए स्वाभाविक था हंसने लगीं।

"ज़रा बातें तो सुनो इनकी," उन्होंने कहा, "और C'est vous qui êtes un petit monstre de perfection»*

---

*[हो छोटे, मगर बहुत पहुंचे हुए हो।]

"«Monstre de perfection», वाह! लाजवाब है, मुझे याद कर लेना चाहिए इसे," मैंने सोचा।

"तुम्हें छोड़कर वह इस मामले में पुराना उस्ताद है"। वह अपने स्वर (जो मुझे विशेषतया प्रिय लग रहा था) और आंखों से ल्युबोव सेर्गेयेवना की ओर इशारा करके कहती गयी–"हमारी 'चची बेचारी' में, (वे ल्युबोव सेर्गेयेवना को इसी नाम से पुकारते थे) जिसे उसके सुज़ेत्ते समेत मैं बीस साल से जानती हूं, उसने ऐसे-ऐसे गुण ढूंढ़ निकाले हैं कि मैं उनका अनुमान भी न कर सकती थी। वार्या! जाकर ज़रा एक गिलास पानी लाने को तो कह।" उसने बीच ही में निगाह दूर की ओर फेरते हुए और शायद यह सोचकर कि घर की अंदरूनी बातों की इतनी जल्दी मेरे साथ चर्चा करनी उचित अथवा आवश्यक न थी, कहा–"नहीं तू रहने दे। बेहतर होगा कि यही चले जायं कहने को। तुम पढ़ रही हो, और ये ख़ाली हैं। हां तो मित्र, ठीक सामनेवाले दरवाज़े से कोई पन्द्रह क़दम गलियारे में जाकर पुकारकर कहना–"प्योत्र! मार्या इवानोवना के लिए एक गिलास पानी और बर्फ़ दे जाना!" यह उन्होंने मुझसे कहा और फिर हल्के से अपनी अस्वाभाविक हंसी हंस दी।

मैंने जाते हुए मन में सोचा–"यह ज़रूर मेरे विषय में बातें करना चाहती हैं। शायद वह यही कहेंगी कि, यह नौजवान बड़ा तेज़ और बुद्धिमान है।" पर मैं पन्द्रह कदम जा भी न पाया था कि मोटी सोफ़िया इवानोवना हांफती हुई तेज क़दमों से पीछे से आ पहुंचीं।

«Mersi, mon cher»*, उन्होंने कहा। "मैं ख़ुद ही वहां जा रही हूं। और उनसे पानी के लिए कह दूंगी।"

---

*[शुक्रिया, मेरे दोस्त]

चौबीसवां परिच्छेद

प्रेम

जैसा कि मैंने बाद में जाना, सोफ़िया इवानोवना उन विरल वयस्क स्त्रियों में थीं जिनका जन्म ही पारिवारिक जीवन के हेतु होता है पर जो यह सौभाग्य न प्राप्त कर सकने के फलस्वरूप वर्षों से संजोये और हृदय में परिपुष्ट हुए प्रेमरस को कुछ चुने हुए प्रियपात्रों के ऊपर पूरा का पूरा उंडेल देने का निश्चय कर लेती हैं। और इस क़िस्म की वयस्क कुमारियों में प्रेमरस का यह भण्डार ऐसा अक्षय हुआ करता है कि प्रियपात्रों की संख्या कितनी भी बड़ी हो बहुत-सा प्यार बच रहता है। इसे वे अपने चारों ओर सभी भले और बुरे लोगों पर जिनसे भी उनकी मुलाक़ात हो जाती है उंडेलती रहती हैं।

प्रेम तीन प्रकार का होता है:

१. सुंदर प्रेम

२. आत्मत्यागी प्रेम, और

३. सक्रिय प्रेम

मैं किसी लड़की के प्रति किसी युवक के या युवक के प्रति लड़की के प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं। इस भावना से तो मैं घबराता हूं। और जीवन में मेरा यह दुर्भाग्य रहा है कि प्रेम की इस जाति में कभी सत्य का एक कण भी न मिला मुझे। वरन् मैंने पाया कि वह एक झूठ है जिसके अंदर वासना, दाम्पत्य सम्बन्ध, धन-दौलत, तथा आज़ाद होने या बंधा रहने की इच्छा इस क़दर हावी होती है कि मूल भावना दब जाती है, इतनी दब जाती है कि उसकी तह तक पहुंचना भी असम्भव हो जाता है। मैं चर्चा कर रहा हूं मानवजाति के प्रति प्रेम की जो, आत्मा की अल्प अथवा अधिक शक्ति के अनुसार, एक या अनेक पर केंद्रित होती है अथवा अनेक को सराबोर करती है। मैं चर्चा कर रहा हूं माता के, पिता

के, भाई के, वच्चों के प्रति प्रेम की; एक साथी, मित्र, या स्वदेशवासी के प्रति प्रेम की—मानव के प्रति प्रेम की।

सुंदर प्रेम है, स्वयं इस भावना के सौंदर्य और उसकी अभिव्यंजना के प्रति प्रेम। इस प्रकार का प्रेम करनेवालों के लिए उनके प्रेम का पात्र उसी अर्थ में प्रिय है जिस अर्थ में वह इस प्रिय भावना को जागृत करता है, जिसे महसूस और व्यक्त कर वे सुख प्राप्त करते हैं। सुंदर प्रेम करनेवाले प्रतिदान की वहुत ही कम चिंता करते हैं। प्रतिदान उनके लिए ऐसी वस्तु है जिससे उनकी भावना के सौंदर्य या सुखदता में कोई अंतर नहीं पड़ता। वे प्रायः ही अपने प्रेम के पात्र को वदल दिया करते हैं, क्योंकि उनका प्रधान लक्ष्य तो केवल यह होता है कि प्रेम की सुखद भावना निरंतर उमड़ी रहे। अपने अंतर में इस सुखद भावना को स्थित रखने के निमित्त वे वड़े ललित शब्दों में अपनी प्रेम-भावना की निरंतर चर्चा किया करते हैं—उसके पात्र से भी और अन्य लोगों से भी, यहां तक कि ऐसे लोगों से भी जिनका उनके प्रेम से कोई वास्ता नहीं।

हमारे देश में, एक विशेप वर्ग के लोग जो सुंदरता के साथ प्यार करते हैं न केवल सभी से अपने प्यार के विपय में वातें करते हैं, वल्कि अपरिहार्य रूप से फ़्रांसीसी भापा में वातें करते हैं। वात अनोखी अवश्य लगती है, पर मेरा विश्वास है कि अभिजात समाज में ऐसे लोग रहे हैं और अव भी हैं, विशेपकर महिलाएं, जिनका अपने मित्रों, पति अथवा वच्चों के प्रति प्यार एक क्षण में छूमंतर हो जायगा यदि उन्हें उसके विपय में फ़्रांसीसी में वोलने से मना कर दिया जाय।

दूसरे प्रकार का प्रेम, आत्मत्यागी प्रेम वह है जो प्रेम के पात्र के लिए आत्मवलिदान की प्रक्रिया से इसकी चिंता किये विना कि वह वलिदान पात्र के लिए अच्छा होगा या वुरा—प्रेम करता है। "सारी दुनिया को, अथवा उसे, महिला को या उस पुरुप को, यह दिखा देने के लिए कि मेरा प्यार सच्चा है, वुरा से वुरा काम भी ऐसा नहीं जिसे मैं न कर गुजरूं"—

यह है इस प्रकार के प्रेम का मंत्र। इस प्रकार का प्रेम करनेवाले, प्रतिदान में विश्वास नहीं करते (क्योंकि ऐसे व्यक्ति के लिए आत्मवलिदान करने में और भी यश है जो अपने आपको गुनता ही नहीं)। वे सदा रुग्ण रहते हैं, जिससे वलिदान का महत्व भी वढ़ जाता है। वे मुख्यतः एकव्रती होते हैं क्योंकि एक पात्र के लिए वे जो वलिदान कर चुके हैं उसका यश क्यों खोयें? वे उसे (नारी या पुरुष को) यह दिखा देने के लिए कि उनका प्यार सच्चा है अपनी जान क़ुरबान करने को वरावर तैयार रहते हैं। पर प्रेम के ऐसे रोज़मर्रा के प्रदर्शन जिसमें आत्मत्याग के विस्फोटों की आवश्यकता नहीं है, उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं रखते। आपने भोजन किया है या नहीं। अच्छी नींद ले सके हैं कि नहीं। प्रफुल्ल हैं या नहीं, स्वस्थ हैं या नहीं, इन वातों से उनके लिए कोई अंतर नहीं पड़ता और यदि यह उनके वश में है कि आपको उपरोक्त प्रकार के आराम पहुंचा सकें तो भी वे उसके लिए प्रयत्न न करेंगे। हां, यदि आपके लिए सीना तानकर गोली खानी हो, पानी या आग में कूद जाना हो, प्रेम में घुलकर जान गंवा देनी हो—तो वे इसके लिए विल्कुल तैयार हैं। आवश्यकता केवल अवसर पाने की है। इसके अतिरिक्त आत्मत्यागी प्रेम की प्रवृत्तिवाले सदा अपने प्रेम पर अभिमान करते हैं, ईर्ष्यालु और शंकाशील होते हैं। सवसे विचित्र वात तो यह है कि वे मनाते हैं कि उनका प्रेमपात्र खतरे में पड़े ताकि वे उसे विपत्ति से उवार सकें, ढाढ़स वंधा सकें। वे प्रेमपात्र में विकारों का होना भी पसन्द करेंगे ताकि उन्हें सुधार सकें।

आप देहात में अपनी पत्नी के साथ, जो आत्मत्यागी प्यार के साथ आपको प्यार करती हैं, अकेले रह रहे हैं। आप भले चंगे और शांत हैं। आप अपने मनपसंद कामों में लगे हुए हैं। आपकी प्रेमपूर्ण पत्नी इतनी कमज़ोर हैं कि गृहस्थी की देखभाल नहीं कर सकतीं और यह काम नौकरों के ऊपर छोड़ा हुआ है। न वह वच्चों की देखरेख कर सकती हैं, (वच्चे

दाइयों के सुपुर्द हैं) और न और कोई ऐसा काम जो उन्हें प्रिय हो, क्योंकि उन्हें केवल आपसे प्रेम है। वह साफ़ बीमार दिखाई दे रही हैं, पर आपको कष्ट न हो, इसलिए आपसे कहती नहीं। साफ़ मालूम हो रहा है कि उनका जी नहीं लग रहा है। पर आपके वास्ते वह सारा जीवन नीरसता में काट देने को तैयार हैं। यह भी साफ़ दिखाई दे रहा है कि आपका अपने कामों में (शिकार खेलना, किताब पढ़ना, खेती या सेवा जो भी हो) मनोयोगपूर्वक फंसा रहना उनके लिए प्राणघातक हो रहा है। उन्हें भी पक्का विश्वास है कि आपके ये काम आपको बरबाद किये दे रहे हैं। पर वह कुछ नहीं कहतीं, भीतर भीतर घुटी जाती हैं। लेकिन आप अचानक बीमार पड़ जाते हैं। आपकी प्रेमपूर्ण पत्नी आपके वास्ते अपनी बीमारी भूल जाती हैं। आपके बारम्बार अनुरोध करने पर भी कि व्यर्थ अपने को परेशानी में न डालें, वह आपकी खाट की बग़ल में बैठी रहती हैं और वहां से उठने का नाम नहीं लेतीं। आप प्रतिक्षण महसूस करते हैं कि उनकी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि आपके ऊपर टंगी हुई मानो कह रही है—"देखा, कहा था न मैंने? लेकिन मुझे क्या, जैसे तब वैसे अब। मैं तुम्हारे पास से नहीं हट सकती।" सुबह आपकी तबीयत कुछ बेहतर लगती है और आप दूसरे कमरे में चले जाते हैं। कमरा न गरम किया गया है, न उसमें सफ़ाई हुई है। आपको खाने के लिए शोरबा चाहिए, पर किसी ने बावर्ची से शोरबा तैयार करने को नहीं कहा है। दवा नहीं मंगायी गयी है। पर आपकी प्रेमपूर्ण बेचारी पत्नी जो आपकी खाट के पास बैठी बैठी थककर चूर हो रही हैं, सहानुभूति के उसी भाव से आपको टकटकी लगाये देख रही हैं, पंजे के बल इधर से उधर आती जाती हैं और फुसफुसाकर नौकरों को अनाप-शनाप आज्ञाएं दे रही हैं। आप चाहते हैं कि कुछ पढ़ें। आपकी प्रेमपूर्ण पत्नी आह भरकर कहती हैं, जानती हूं कि तुम मेरी बात न मानोगे और नाराज़ हो जाओगे पर मैं तो सहते सहते आदी हो चुकी हूं और यही कहूंगी कि न पढ़ो तो अच्छा है।

आप चाहते हैं कि कमरे में टहलें। लेकिन फिर वही बात—न टहलो तो अच्छा है। एक मित्र मिलने आया है और आप उससे बातें करना चाहते हैं। लेकिन फिर वही बात—बातचीत करने से तुम्हारी तबीयत खराब हो जायगी। रात को आपको फिर बुखार आ गया और आप चाहते हैं कि अकेले, चुपचाप पड़े रहें। पर आपकी प्रेमपूर्ण पत्नी, जिनका चेहरा पीला और सूखा हुआ है, रह-रहकर आहें भरती हुई आपके सामने रात की बत्ती के आधे उजाले में कुर्सी पर बैठी हुई हैं और अपनी साधारण से साधारण चेष्टा या आवाज़ से आपमें झल्लाहट और अधैर्य पैदा कर रही हैं। आपका एक बीस वर्ष पुराना नौकर है जिसके आप आदी हो चुके हैं, जो आपकी बहुत अच्छी तरह खिदमत कर सकता है क्योंकि वह दिन को काफ़ी सो भी चुका है, इसके अलावा उसे काम करने की तनख़ाह दी जाती है, पर पत्नी हैं कि उसे आपकी सेवा में न आने देंगी। वह खुद ही, अपनी कमज़ोर, अनभ्यस्त उंगलियों से सारा काम करेंगी। वे सफ़ेद उंगलियां जब बोतल का काग खोलने का निष्फल प्रयास करती हैं, मोमबत्ती बुझाने जाती हैं, या दवा ढालती हैं अथवा जब सावधानी से आपका स्पर्श करती हैं, आप ज़प्त की हुई झल्लाहट से उन्हें देखने को मजबूर हो जाते हैं। अगर आपमें धैर्य की कमी है, आप गरम मिज़ाजवाले आदमी हैं, उनसे वहां से चले जाने को कह दिया तो आपके बीमार अधीर कान दरवाज़े के बाहर ठंडी आहें भरने और सुबकने तथा फुसफुसाहट के स्वर में नौकर को कोसने की आवाज़ें सुनते हैं। और अंत में, यदि बीमारी से आपकी मौत न हो गयी तो आपकी प्रेमपूर्ण पत्नी जिन्होंने आपकी बीमारी की बीस रातें जागकर बितायी हैं (यह बात आपसे वह बारम्बार कहती हैं) बीमार पड़ जाती हैं, उनका शरीर घुलने लगता है, और दुःख सहती हैं। वह अब और भी किसी धंधे के अनुपयुक्त हो चुकी हैं। और जिस समय तक आप चंगे हो जाते हैं वह आत्मत्याग का अपना प्रेम केवल आपके चारों ओर एक प्रकार की कृपापूर्ण नीरसता बिखेरकर अभिव्यक्त करती हैं जो,

स्वतः, आपको और आपके आसपास के सभी को अपना वोध करा देता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम—सक्रिय प्रेम है, प्रेम के पात्र की सभी आवश्यकताओं, इच्छाओं, मन-मौजों और यहां तक कि उसके विकारों को भी संतुष्ट करने का प्रयत्न करना। ऐसा प्रेम करनेवाले सदा जीवन पर्यंत प्रेम करेंगे। क्योंकि वे जितना ही प्यार करते हैं उतना ही अधिक अपने प्रेमपात्र को जानते हैं और उतना ही उनके लिए प्रेम करना—अर्थात् उसकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करना—आसान होता है। उनका प्रेम शब्दों द्वारा शायद ही कभी व्यक्त होता है, और यदि होता है तो आत्मसंतोष के साथ, मुखरित स्वर में नहीं, वल्कि संकोच के साथ, वेडौल तरीके पर क्योंकि उन्हें सदा यह डर रहता है कि उनका प्यार इतना नहीं जितना होना चाहिए। ऐसे लोग प्रेमपात्र की कमजोरियों तक को भी पसंद करते हैं क्योंकि ये कमजोरियां उन्हें उसकी इच्छा की पूर्ति करने का एक और अवसर प्रदान करती हैं। वे प्रतिदान खोजते हैं। यहां तक कि अपने को जानवूझकर ठगते हुए इसमें विश्वास करते हैं और उसे पाकर प्रसन्न होते हैं। किन्तु प्रतिदान न पाने पर भी उनका प्यार वरावर रहता है और वे न केवल प्रेमपात्र के सुख और मंगल की कामना करते हैं वल्कि अपनी शक्ति भर हर नैतिक और भौतिक, महान और तुच्छ उपाय से उसके लिए सुखों का सामान जुटाने की कोशिश करते हैं।

और यही सक्रिय प्रेम—अपने भतीजे के लिए, अपनी वहिन के लिए, ल्युवोव सेर्गेयेवना के लिए, यहां तक कि मेरे लिए क्योंकि मैं द्मीत्री के प्यार का पात्र था—सोफ़िया इवानोवना की आंखों में, उनके प्रत्येक शब्द और चेष्टा में व्यक्त हो रहा था।

इसके वहुत दिनों के वाद ही मैं सोफ़िया इवानोवना का पूरा मोल आंक सका। पर उस समय भी मेरे मन में यह प्रश्न उठा था—क्या कारण है कि, द्मीत्री नवयुवकोचित प्रकृत ढंग से प्रेम को समझने के वदले भिन्न

ढंग से समझने की कोशिश कर रहा था? क्यों मृदुल, स्नेहपूर्ण सोफ़िया इवानोवना के सदा सामने उपस्थित रहते सहसा उस दुर्बोध ल्युवोव सेर्गेयेवना को प्यार करने लगा और अपनी मौसी के विषय में केवल इतना स्वीकार किया कि—"हां उनमें भी सद्गुण हैं।" मसल मशहूर है—"घर का जोगी जोगड़ा ..." दो में एक बात ही सच है—या तो मनुष्य में अच्छाई से अधिक बुराई है, या मनुष्य अच्छाई से बुराई जल्दी ग्रहण करता है। ल्युवोव सेर्गेयेवना से द्मीत्री की अधिक दिनों की मुलाक़ात न थी, पर मौसी का प्यार तो उसने जन्म से ही अनुभव किया था।

पचीसवां परिच्छेद

और घनिष्ठ परिचय

सायबान में लौटकर आने पर मैंने देखा कि वे मेरे बारे में बातें नहीं कर रहे थे जैसा मैंने सोचा था। पर वारेन्का पढ़ नहीं रही थी। किताब रखकर वह द्मीत्री के साथ किसी विषय पर गरमागरम बहस में तल्लीन थी। द्मीत्री इधर से उधर टहल रहा था। वह गले के रूमाल में अपनी गर्दन सीधी कर रहा था और पलकें सिकोड़े हुए था। उनकी बहस के विषय थे—इवान याकोव्लेविच नाम का कोई व्यक्ति तथा अंधविश्वास। किन्तु बहस इतनी गरम थी कि अवश्य ही उसका कारण (जिसकी चर्चा नहीं की गयी थी) पूरे परिवार की दिलचस्पी का विषय बना हुआ था। प्रिन्सेस तथा ल्युवोव सेर्गेयेवना मौन होकर बहस का प्रत्येक शब्द सुन रही थीं। दोनों भाग लेने को इच्छुक थीं पर एक ने वारेन्का और दूसरी ने द्मीत्री को अपना प्रतिनिधि मानकर अपने को रोक रखा था। मेरे प्रवेश करने पर वारेन्का ने एक बार ऐसी उपेक्षापूर्ण दृष्टि से मुझे देखा जिससे प्रगट था कि वह बहस में इतनी खोई हुई है कि उसे मेरे सब कुछ सुन लेने या न सुन लेने की परवाह नहीं। प्रिन्सेस के चेहरे

पर भी, जो वारेन्का के पक्ष में थीं, वही भाव था। किन्तु द्मीत्री मेरे आ जाने के बाद और भी जोर से बहस करने लगा। और ल्युबोव सेर्गेयेवना मेरी उपस्थिति से बहुत अधिक घबरायी प्रतीत हुई। उसने किसी विशेष व्यक्ति को लक्ष्य न करते हुए कहा—"बुजुर्गों की कहावत सही है—«Si jeunesse savait, si vieillesse pouvait !»*"

लेकिन उनकी कहावत से बहस खत्म न हुई। अलबत्ता मैं यह सोचने लगा कि ल्युबोव सेर्गेयेवना और मेरे मित्र ग़लती पर हैं। एक तुच्छ पारिवारिक झगड़े के समय उपस्थित रहने में मुझे संकोच हो रहा था। किन्तु इस झगड़े के दौरान परिवार के सभी लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों का खुल पड़ना और यह भावना कि मेरी उपस्थिति को वे लोग आपस में आज़ादी से बातचीत करने में बाधक नहीं समझते, सुखद और संतोषप्रद थी।

बहुधा ऐसा होता है कि आप वर्षों से किसी परिवार को शिष्टता की मर्यादा में आच्छन्न देखते हैं। उसके सदस्यों के वास्तविक पारस्परिक सम्बन्ध आपके लिए रहस्य बने रहते हैं। (मैंने तो यहां तक पाया है कि जितना ही यह बाह्य आवरण अभेद्य और अलंकारयुक्त होता है प्रायः उतना ही अधिक भद्दे उसमें छिपे पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं)। और तब किसी दिन अकस्मात इस अंतरंग पारिवारिक मण्डल के बीच किसी छोटी-सी बात पर, किसी अज्ञात सुंदर-केशी महिला को लेकर, या पति की गाड़ी में किसी को मिलने जाने की बात को लेकर एक प्रसंग उठ खड़ा होता है। और तब बिना किसी बाह्य कारण के झगड़ा अधिकाधिक तीव्र हो जाता है, तथा उस परदे की आड़ में मामला सुलझाना असम्भव हो जाता है। उस समय हठात् सभी उपस्थित लोगों को आश्चर्यचकित करते हुए और झगड़नेवालों को बदहवासी में डालते हुए वास्तविक, भोंडे पारस्परिक सम्बन्ध खुलकर सामने आ जाते हैं। परदा जिसके पीछे अब कुछ ढका नहीं रह गया दोनों प्रतिद्वंदी पक्षों के बीच व्यर्थ झलता हुआ दिखाई देता है। वह अब केवल

* [जवानी अगर जानकार होती, बुढ़ापा अगर सक्षम होता]

इतने लम्बे अरसे तक सभी के ठगे जाने की याद मात्र दिलाता है। प्राय: दीवार से पूरे ज़ोर के साथ सिर टकरा जाना उतना कष्टदायक नहीं होता जितना किसी घाव की मार्मिक जगह उंगली का हल्के से छू जाना। और घाव की ऐसी मार्मिक एक जगह लगभग हर परिवार में होती है। नेख्ल्यूदोव परिवार में वह मार्मिक जगह थी ल्युवोव सेर्गेयेवना से द्मीत्री का विचित्र प्यार जिससे उसकी माता और वहिन में यदि ईर्ष्या की भावना नहीं तो कम से कम घायल पारिवारिक भावना तो अवश्य ही जगी हुई थी। यही कारण था कि, इवान याकोवलेविच और अंधविश्वास के विषय पर उनकी वहस उनके लिए इतनी महत्वपूर्ण थी।

"लोग जिसे उपहास और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं तुम सदा उसी में घुसने की कोशिश करते हो," वारेन्का ने प्रत्येक अक्षर का स्पष्टता से उच्चारण करते हुए अपनी सुरीली आवाज़ में कहा। "और तुम ख्वाहमख्वाह उसमें कोई लाजवाव चीज़ खोज निकालने की कोशिश करते हो।"

"पहली वात तो यह कि जो व्यक्ति विल्कुल छिछला घड़ा होगा वही इवान याकोवलेविच जैसे असाधारण व्यक्ति को तिरस्कार की दृष्टि से देखने की वात करेगा।" द्मीत्री ने उत्तेजनापूर्वक अपनी वहिन की ओर से सिर झटकारते हुए कहा। "दूसरे, तुम्हीं हो जो जानवूझकर अपनी आंखों के सामने उपस्थित सद्‌गुणों को देखने से इनकार करती हो!"

वापस आने के वाद सोफ़िया इवानोवना ने कई वार भयभीत दृष्टि से कभी अपने भानजे, कभी भानजी और कभी मेरी ओर देखा। दो वार उन्होंने मुंह खोला मानो कुछ कहेंगी और लम्बी आह भरी।

"अच्छा वार्या, अव ज़रा आगे पढ़ो," उन्होंने उसे किताव थमाते और स्नेह से उसका हाथ थपथपाते हुए कहा। "मैं वड़ी उत्सुक हो रही हूं कि वह उसे फिर मिली या नहीं। (वास्तव में पुस्तक में किसी का किसी को खोजने का कोई प्रसंग न था)। और मित्या, तुम्हें ज़रा अपना

गाल ढककर रखना चाहिए क्योंकि हवा ठण्डी है और तुम्हारे दांत का दर्द फिर शुरू हो सकता है।" यह वाक्य उन्होंने अपने भानजे से कहा जिसने उन्हें गुस्से से घूरकर देखा जिसका कारण सम्भवतः यह था कि उसकी ज़बान पर आयी हुई दलील में बाधा पड़ गयी थी। पढ़ाई फिर चालू हो गयी।

इस छोटे से झगड़े ने पारिवारिक शांति और उसके नारी-जगत के बीच के समझदारी से भरे पारस्परिक सद्भाव में व्याघात नहीं डाला।

यह जगत, जिसकी अधिष्ठात्री मार्या इवानोवना थीं जो उसे उसका विशिष्ट चरित्र और दिशा प्रदान करती थीं, मेरे लिए सर्वथा नवीन और आकर्षक था। वह एक प्रकार से तर्कसम्मत, सादा और शिष्टतापूर्ण था। मुझपर उसका यह गुण उनके सामान से अभिव्यक्त होता था–घंटी, किताब की जिल्द, कुर्सी, मेज़–की सुंदरता, शुद्धता और सादगी में, प्रिन्सेस के चुस्त शरीर के साथ तनकर बैठने, उनकी श्वेत लटों और पहली ही भेंट में मुझे Nicolas और 'वह' कहकर पुकारने में, उनके कामों में–किताब का ज़ोर से पढ़ा जाना और सिलाई करना, और सभी महिलाओं के हाथों के असाधारण तौर पर गोरे होने में। (सभी के हाथों में एक सामान्य पारिवारिक विशिष्टता थी–वह यह कि हथेली का मुलायम भाग गहरे गुलाबी रंग का और हाथ की दूसरी ओर की असाधारण गोराई से बिलकुल भिन्न था)। किन्तु उनकी विशिष्टता सबसे अधिक थी–उनके फ़्रांसीसी और रूसी बोलने के लाजवाब ढंग में। हर अक्षर का स्पष्ट उच्चारण करतीं और शब्द या मुहावरे का किताबी असूलों के मुताबिक़ अंत करतीं। इन सभी कारणों से और विशेषकर इसलिए कि वे अपनी मण्डली में मेरे साथ वयस्क का सा बर्ताव कर रही थीं, मुझे अपने विचारों से अवगत करातीं और मेरी सम्मतियां सुनती थीं। मैं इसका अभी बिल्कुल ही अभ्यस्त न हुआ था और अपने चमकीले बटन और नीले कोट के बावजूद मुझे अब भी डर लगा रहता था कि कौन जाने कोई कब कह बैठे–"यह मुग़ालता छोड़ो, कि लोग तुमसे

गम्भीरता से बातें करेंगे। जाओ, जाकर पढ़ो!" मैं उनके बीच तनिक भी संकोच नहीं अनुभव कर रहा था। मैं जिस जगह चाहे बैठता और केवल वारेन्का को छोड़कर (जिसके साथ न जाने क्यों अपनी ओर से पहले बात करना मुझे अनुचित प्रतीत हो रहा था) सभी से बातें करता था।

किताब पढ़े जाने के समय, उसके मृदुल स्वर को सुनते हुए मैं कभी उसे, कभी बाग़ की रविशों को जिसपर वर्षा के गोल काले धब्बे बन रहे थे, कभी लाइम-वृक्षों को जिनके पत्तों पर विदा होते मेघ के फीके नीले किनारे से वर्षा की एकाध बूंद टपक पड़ती थी, कभी फिर उसे, और फिर डूबते सूर्य की लाल किरणों को जो पानी टपकाते घने बर्च-वृक्षों को प्रकाश से आवेष्ठित कर रही थीं, और अंत में फिर वारेन्का को देख रहा था। मेरे हृदय ने निश्चयपूर्वक कहा कि उसकी आकृति कदापि अरूप नहीं है जैसी कि वह मुझे पहले लगी थी।

"कैसे अफ़सोस की बात है," मैंने मन में कहा, "कि मैं प्रेम में पड़ चुका हूं और वारेन्का सोनेच्का नहीं है। इस परिवार का सहसा एक सदस्य बन जाना, कितना अच्छा होगा! एक साथ ही मुझे मां, मौसी और पत्नी मिल जाएंगी। और मन में जब यह विचारते हुए मैंने वारेन्का की ओर देखा और सोचा कि आकर्षण शक्ति का प्रभाव डालकर उसे अपनी ओर देखने को बाध्य करूं, उसी समय उसने पुस्तक से सिर ऊपर उठाकर मुझे देखा और आंखों से आंख मिलने के साथ मुंह फेर लिया।

"अभी वर्षा नहीं रुकी है," वह बोली।

और सहसा मेरे हृदय में एक विलक्षण भावना जागी। मुझे अनायास भान हुआ कि एक पुरानी अनुभूति की अक्षरशः पुनरावृत्ति हो रही है। उस समय भी हल्की वर्षा हो रही थी, सूर्य बर्च-वृक्षों के पीछे डूब रहा था, मैं 'उसे' देख रहा था, 'वह' पढ़ रही थी, मैंने उसपर आकर्षण-शक्ति का प्रभाव डाला था और उसने सिर उठाकर मेरी ओर ताका था। मुझे यह भी याद आया कि ऐसा मुझपर पहले बीत चुका है।

"तो क्या यह वही है? 'वही'? क्या यही वह आरम्भ है?" पर मैंने झट से निश्चय किया कि यह 'वह' न थी और न यह वह आरम्भ था। "पहली बात तो यह कि यह सुंदरी नहीं है," मैंने सोचा। "दूसरे यह तो केवल एक युवती है जिससे मेरी भेंट अत्यंत साधारण तरीके से हुई है, जब कि 'वह' असाधारण होगी जिससे मेरी भेंट किसी असाधारण स्थान पर होगी। इसके अलावा यह परिवार मुझे इतना प्रिय केवल इसलिए लग रहा है कि मैंने इसका अभी तक कुछ देखा नहीं है," मैंने निश्चय किया। "पर इस जैसे और भी कई परिवार होंगे और जीवन में मेरी उनसे भेंट भी होगी।"

छब्बीसवां परिच्छेद

मैं चमक उठा

चाय के वक्त पढ़ाई समाप्त हो गयी और महिलाएं ऐसे व्यक्तियों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में बातें करने लगीं जिनसे मैं परिचित न था। मुझे लगा कि वे जानबूझकर ऐसा कर रही थीं, यह दिखाने के लिए कि इतने प्रेमपूर्वक मेरा स्वागत किया तो क्या, उम्र-पद दोनों के लिहाज से हममें जो अंतर है, वह तो रहेगा ही। पर सामान्य विषयों की बातचीत में मैंने अपने पिछले चुप्पेपन की कमी पूरी कर दी और अपनी असाधारण बुद्धि-प्रखरता और मौलिकता का प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया। (मेरे विचार में मेरी नयी पोशाक का निर्देश यही था कि प्रत्येक वस्तु में अपनी मौलिकता की धाक जमाऊं)। ग्रामस्थित भवनों की चर्चा चली तो मैंने सहसा कह डाला कि प्रिन्स इवान इवानिच के पास मास्को के निकट ऐसा ग्रामीण बंगला है कि लंदन और पैरिस से लोग उसे देखने आया करते हैं, कि उसके चारों ओर एक ऐसा जंगला लगा हुआ है जिसे बनाने में तीन लाख अस्सी हजार रूबल लगे हैं, कि प्रिन्स इवान इवानिच मेरे नजदीकी रिश्तेदार हैं और मैं उस रोज उनके घर भोजन करके आया हूं

और उन्होंने मुझे पूरा गर्मी का मौसम उनके बंगले में ही आकर बिताने को आमंत्रित किया है, पर मैंने इनकार कर दिया क्योंकि मैं वहां इतनी बार हो आया हूं कि मेरे लिए उसमें कोई नवीनता नहीं रही है और इस तरह के जंगलों और पुलों में मेरी दिलचस्पी भी नहीं है क्योंकि शानशौक़त से और खासकर देहात में बैठकर शानशौकत दिखाने से मुझे चिढ़ है और मेरा तो मत है कि गांव की सारी चीज़ें गांव ही के अनुरूप होनी चाहिए। यह भयानक और संश्लिष्ट झूठ मुंह से निकल जाने के बाद मैं घबरा गया। मेरा चेहरा इतना लाल हो गया कि सभी लोग अवश्य ताड़ गये होंगे कि मैं झूठ बोल रहा था। वारेन्का जिसने उसी समय मेरे लिए चाय का एक प्याला बढ़ाया और सोफ़िया इवानोवना ने जो मेरी उक्त कहानी के समय मुझे एक टक देख रही थी, दूसरी ओर मुंह फेर लिये और किसी अन्य विषय की चर्चा करने लगीं। उनके मुंह पर वह भाव था (मैं तब से इसे कई बार लक्ष्य कर चुका हूं) जो भले लोगों के चेहरों पर उस समय लक्षित होता है जिस समय कोई कच्ची उम्र का आदमी उनके मुंह पर ही सफ़ेद झूठ बोलना आरम्भ कर देता है, और जिसका अर्थ होता है—"बेशक, हम जानते हैं कि वह झूठ बोल रहा है, पर ऐसा करने की ज़रूरत? छिः, कैसा आदमी है!"

प्रिन्स इवान इवानिच के बंगले की बात मैंने केवल इसलिए कही थी कि मैं उन लोगों को यह बताना चाहता था कि प्रिन्स मेरे रिश्तेदार हैं और उस रोज़ मैं उन्हीं के घर भोजन कर आया हूं। यह बताने के लिए मुझे और कोई बहाना न सूझा था। पर प्रश्न यह है कि तीन लाख अस्सी हज़ार रूबल के जंगले की और उस घर में कई बार हो आने की बात मैंने क्यों कही जब कि मैं वहां एक बार भी न गया था, और न जा ही सकता था क्योंकि प्रिन्स इवान इवानिच मास्को या नेपल्स में रहते थे और यह बात नेख्ल्यूदोव परिवार के लोगों को अच्छी तरह मालूम

थी? मैं इसका जवाब नहीं समझ पाया हूं। बचपन, किशोरावस्था अथवा बाद में वयस्क होने पर—कभी भी मैंने अपने को झूठ बोलने की आदत का शिकार न पाया था। बल्कि मैं जरूरत से ज्यादा सत्यवादी रहा हूं। किन्तु किशोरावस्था और यौवन की वयःसंधि के इस प्रथम चरण में न जाने क्यों, अकारण ही, सफ़ेद झूठ बोल जाने की इच्छा मुझे अभिभूत कर लिया करती थी। 'सफ़ेद झूठ' शब्द का मैं जानबूझकर प्रयोग कर रहा हूं, क्योंकि मैं ऐसे विषयों में झूठ बोलता था जिनमें मुझे पकड़ना बिल्कुल आसान था। मेरा विचार है कि इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण था अपने को वास्तव में जो मैं था उससे सर्वथा भिन्न प्रगट करने की एक वृथाभिमानी इच्छा और उसके साथ ऐसा झूठ बोलने की अव्यावहारिक आशा जिसमें पकड़ा न जाऊं।

वर्षा बंद हो गयी थी और शाम का मौसम स्वच्छ और शांत था, अतः चाय के बाद प्रिन्सेस ने नीचेवाले बाग़ में जाकर टहलने और उनके प्रिय स्थल का निरीक्षण करने का प्रस्ताव किया। सदा मौलिकता दर्शाने के अपने नियम का पालन करते हुए और यह सोचते हुए कि प्रिन्सेस और मेरे जैसे चतुर व्यक्तियों को साधारण सौजन्य के बंधनों में न पड़ना चाहिए, मैंने उत्तर दिया कि, निरुद्देश्य टहलना मुझे बिल्कुल नापसंद है और टहलना ही हो तो आदमी को अकेले टहलना चाहिए। मैंने यह नहीं महसूस किया कि इस प्रकार का उत्तर सर्वथा अभद्रतापूर्ण था। उस समय मेरी धारणा यह थी कि घिसे-पिसे शील-सौजन्य से बढ़कर ओछी और कोई वस्तु नहीं है और किंचित अभद्र खरापन ही सामाजिकता और मौलिकता की चरम परिणति है। तो भी अपने इस उत्तर से पूर्णतः आत्मसंतुष्ट होता हुआ मैं बाक़ी लोगों के साथ टहलने में शामिल हुआ।

प्रिन्सेस का प्रिय स्थल बाग़ के सबसे सुदूर तथा घने भाग में था। वह एक छोटे से दलदल के ऊपर बने एक पुल पर पड़ता था।

यहां से दिखाई देनेवाला दृश्य बहुत ही संकुचित था, किन्तु बहुत विषादपूर्ण और सुखद। हम कला और प्रकृति को आपस में मिला देने के इतने अभ्यस्त हैं कि बहुधा वे प्राकृतिक दृश्य जिन्हें हमने चित्रों में न देखा हो हमें वास्तविक प्रकृति नहीं जान पड़ते—यद्यपि वे ही वास्तविक प्रकृति हैं। इसी प्रकार, वे प्राकृतिक घटनाएं, जिनकी कला में बहुत अधिक पुनरावृत्ति हो चुकी है, हमें साधारण ज्ञात होती हैं, अथवा कई स्थलों पर जब उनमें विचार और भावना का अत्यधिक समावेश किया जाता है, हवाई ज्ञात होने लगती हैं। प्रिन्सेस के प्रिय स्थल से दिखाई देनेवाला दृश्य इसी प्रकार का था। इस दृश्य में एक छोटी-सी पुष्करणी थी जिसका तट घास-पात और झाड़ियों से आच्छादित था। पुष्करणी के ठीक पीछे पुराने फैले हुए वृक्षों और झाड़ियों से आच्छादित एक पहाड़ी थी। उसकी रंग-बिरंगी हरियाली में बड़ी विविधता थी। पहाड़ी की तलहटी में, पुष्करणी के ऊपर झुका हुआ एक पुराना बर्च का पेड़ था जिसकी मोटी जड़ों ने अंशतः पुष्करणी के गीले तट का आश्रय ले रखा था और जो अपनी फुनगी एक लम्बे, शानदार एश-वृक्ष पर टिकाकर बल खाती शाखाओं को पुष्करणी की चिकनी सतह पर झुला रहा था। ये झुकी हुई डालियां और इर्द-गिर्द की हरियाली पुष्करणी के शांत जल में प्रतिबिम्बित हो रही थी।

"कितना सुंदर!" प्रिन्सेस सिर हिलाते हुए और किसी व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित न करते हुए बोलीं।

"हां, बहुत ही सुंदर है। पर यह कुछ रंगमंच के परदे की याद दिलाता है," यह दिखाने की कोशिश करते हुए कि हर प्रश्न पर अपनी अलग राय रखता हूं, मैंने कहा।

प्रिन्सेस दृश्य की प्रशंसा करती रहीं मानो मेरी टीका उन्होंने नहीं सुनी और अपनी बहिन और ल्युबोव सेर्गेयेवना की ओर मुड़कर वह दृश्य का प्रत्येक ब्योरा—पुष्करणी पर झुकी हुई टेढ़ी डालें, वृक्ष का प्रतिबिम्ब

जो उन्हें विशेष सुंदर लग रहा था—दिखलाती रहीं। सोफ़िया इवानोवना ने कहा, सचमुच बड़ा सुंदर दृश्य है। उन्होंने यह भी बताया कि उनकी बहिन घंटों वहां बैठकर उस दृश्य को निहारा करती हैं। पर प्रगट था कि ये बातें उन्होंने केवल प्रिन्सेस का मन रखने के लिए कही थीं। मैंने पाया है कि सक्रिय प्रेम की प्रवृत्ति वाले बहुधा प्राकृतिक सौंदर्य के भावग्राही नहीं होते। ल्युबोव सेर्गेयेवना भी उस दृश्य पर मुग्ध जान पड़ती थीं। अन्य प्रश्नों के अतिरिक्त वह यह भी पूछ रही थीं कि—"वह वृक्ष कैसे टिका हुआ है? कब तक टिका रह सकेगा वह?" वह निरंतर अपने सुज़ेत्ता की ओर देख रही थीं जो अपनी टेढ़ी टांगों से पुल के ऊपर यों दौड़ रहा था और व्यग्रता से पूंछ हिला रहा था मानो पहले पहल कमरे से बाहर निकलने का अवसर पाया हो। द्मीत्री ने अपनी मां के साथ तर्क शास्त्रीय बहस आरम्भ कर दी। उसने कहा कि जिस स्थल पर क्षितिज संकुचित होता है वहां कोई दृश्य में रमणीकता नहीं आ सकती। वारेन्का चुप थी। जब मैंने घूमकर उसकी ओर देखा, वह पुल के जंगले पर झुककर खड़ी थी। उसके मुखड़े का पार्श्व भाग मेरी ओर था। वह सामने की ओर देख रही थी। सम्भवतः किसी वस्तु ने उसका ध्यान बहुत अधिक आकर्षित कर लिया था। शायद उस वस्तु ने उसका मर्म छू लिया था क्योंकि वह स्पष्टतः आत्मविभोर होकर भावप्रवाहों में ग़ोते खा रही थी। उसे यह भी ध्यान न था कि कोई उसे देख रहा है। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें ऐसी तन्मयता से देखे जा रहीं थीं, और उनमें इतनी शांत, सुस्पष्ट भावना थी, उसकी भावभंगी इतनी स्वाभाविक और नाटे कद के बावजूद आकृति में इतनी भव्यता थी कि मेरे हृदय पटल पर फिर वही स्मृति कौंध गयी और मैंने अपने से पूछा—"क्या यही आरम्भ है?" और दुबारा मैंने उत्तर दिया कि मेरा हृदय पहले ही सोनेच्का को अर्पित हो चुका है। वारेन्का मेरे लिए केवल एक तरुणी मात्र है, मेरे मित्र की बहिन। पर मुझे उस क्षण वह अच्छी लगी।

फलस्वरूप उसके प्रति कोई अप्रिय बात करने या कहने की मुझमें एक अस्पष्ट-सी इच्छा जागी।

"द्मीत्री! जानते हो," मैंने वारेन्का के नज़दीक जाते हुए और ऐसे स्वर में कि मेरी बात उसे सुनाई पड़े अपने मित्र से कहा, "मेरे विचार में यदि यह स्थान मच्छरों से भरा न होता तो भी यहां कोई ख़ूबसूरती नहीं। पर अब तो," मैंने थप्पड़ चलाकर ललाट पर बैठे एक मच्छर को कुचलते हुए कहा, "मच्छरों ने इसे पूर्णतः भयानक बना रखा है।"

"तो प्रकृति की शोभा आपको अच्छी नहीं लगती," वारेन्का बिना सिर घुमाये मुझसे बोली।

"प्रकृति की शोभा निहारना समय की बरबादी करना है," मैंने अप्रिय उक्तियां कहने में सफलता और मौलिकता का सिक्का जमने के पूर्ण आत्मसंतोष के साथ जवाब दिया। वारेन्का की भृकुटि प्रायः अलक्ष्य रूप से एक क्षण के लिए तन गयी। उसमें अनुकम्पा का भाव था। पहले की ही भांति अविचल और शांत होकर उसने सामने देखना जारी रखा।

मुझे उसके ऊपर खीझ महसूस हुई। किन्तु इस सबके बावजूद पुल का भूरा लोहे का कठघरा जिसका रंग मंद होता जा रहा था और जिसपर वह झुककर खड़ी थी, झुके हुए बर्च-वृक्ष के तने का, जो अपनी झुकी हुई डालियों से जा मिलने को उद्विग्न जान पड़ता था, काली पुष्करणी में प्रतिबिम्ब, दलदल की गंध, ललाट पर कुचले मच्छर का स्पर्श और उसकी ध्यानमग्न दृष्टि और भव्य भंगिमा, ये बाद में बहुधा अप्रत्याशित रूप से मेरी कल्पना में उठ खड़े होते थे।

सत्ताईसवां परिच्छेद

द्मीत्री

टहलकर लौटने के वाद वारेन्का की, और दिनों की भांति, गाने की आज इच्छा न हुई। मैंने झट इसे अपने खाते टांक लिया। मैंने तत्काल तय किया कि, पुल पर मैंने उससे जो कहा था उसी का यह परिणाम है। नेख्ल्यूदोव परिवार में रात का भोजन करने का नियम न था और वे जल्द सो जाया करते थे। और जैसा कि सोफ़िया इवानोवना ने यह प्रगट किया था उस दिन द्मीत्री के दांत का दर्द उभड़ आया। अतः हम लोग नित्य से और भी पहले द्मीत्री के कमरे में चले गये। यह प्रतीत करते हुए कि मैंने अपने नीले कालर और पीले वटनों की पूर्णतः मान-रक्षा की है और सभी मेरी वाक्चातुरी पर दंग होंगे, मैं अपने आप से वहुत ही खुश था। इसके विपरीत द्मीत्री शाम के झगड़े और दांत के दर्द के कारण उदास और मूक वना हुआ था। वह मेज़ के नज़दीक वैठ गया, अपनी कापियां, डायरी तथा वह किताव निकाली जिसमें हर शाम को वह अपने भूत और भविष्य कालीन कर्तव्य लिखा करता था और वड़ी देर तक भौंहें चढ़ाये तथा गाल को दावे लिखता रहा।

"वावा! क्यों तंग करती हो मुझे?" वह उस दासी पर झल्लाया जिसे सोफ़िया इवानोवना ने उसके दांत के दर्द का हाल पूछने और यह जानने के लिए भेजा था कि, क्या गाल सेंका जाय। इसके वाद मुझसे यह कहकर कि मेरा विस्तर थोड़ी ही देर में लग जायगा और वह स्वयं अव लेटना चाहता है ल्युवोव सेर्गेयेवना के पास चला गया।

"काश, वारेन्का सुंदर होती, सोनेच्का होती!" कमरे में अकेले रह जाने पर मैंने सोचना शुरू किया। "कितने आनंद की वह वात होती। मैं विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के वाद इन लोगों के पास आता और अपने को उसे अर्पित कर देता! मैं कहता—'प्रिन्सेस!

यद्यपि अब मेरी यह उम्र न रही कि तुम्हें एक युवक का आवेगपूर्ण प्यार दे सकूं पर मैं सदा तुम्हें बहिन के समान हृदय में रखूंगा।' और उसकी मां से कहता—'और आपके लिए तो मेरे मन में पहले ही से अपार श्रद्धा है।' 'और जहां तक आपका सवाल है, सोफ़िया इवानोवना, मैं नहीं कह सकता कि मैं आपकी कितनी इज्ज़त करता हूं!' और इसके बाद खरे और साफ़ शब्दों में वारेन्का से पूछता—'तुम मेरी पत्नी होना स्वीकार करोगी?' 'हां' कहकर वह अपना हाथ मेरे हाथ में दे देगी और उसे दबाते हुए मैं कहूंगा—'मेरा प्रेम वह वस्तु है जो शब्दों में नहीं कार्यों में व्यक्त होता है।'" तब यकायक मुझे ख्याल आया, "कहीं द्मीत्री ल्यूबोच्का से प्यार करने लगे—क्योंकि ल्यूबोच्का उसे चाहती थी—और उससे विवाह करना चाहे तो? तब तो या उसकी शादी होगी या मेरी। बड़ी शानदार बात होगी तब तो, क्योंकि तब मैं यह करूंगा—स्थिति का तत्काल लेखा-जोखा लेते हुए मैं बिना कुछ कहे चुपचाप द्मीत्री के पास चला जाऊंगा और उससे कहूंगा—'मित्र, अपने हृदयों की बातें अब एक-दूसरे से छिपाना बेकार है। तुम जानते हो कि मैं तुम्हारी बहिन को प्यार करता हूं और यह प्यार मेरे जीवन के साथ जायगा। फिर भी मुझे ज्ञात है कि तुम्हारे कारण मैं अपने जीवन की एक मात्र आशा से हाथ धो बैठा हूं, तुमने मेरा जीवन दुखमय बना दिया है। लेकिन निकोलाई इर्तेन्येव अपने सम्पूर्ण जीवन की निष्फलता का बदला लेना जानता है—यह लो मेरी बहिन का हाथ।' यह कहकर ल्यूबोच्का का हाथ मैं उसके हाथ में रख दूंगा। वह कहेगा—'नहीं। ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता।' और मैं उत्तर दूंगा—'प्रिन्स नेख्ल्यूदोव! उदारता में मुझसे बाज़ी मारने की हर कोशिश बेकार साबित होगी। पूरे धरती तल पर ऐसा मनुष्य नहीं जो निकोलाई इर्तेन्येव से बड़ा कलेजा रखता हो।' यह कहकर मैं नमस्कार करता हुआ वहां से हट जाऊंगा। द्मीत्री और ल्यूबोच्का इस आत्मत्याग से अभिभूत होकर मेरे पीछे दौड़ेंगे और कहेंगे

कि मुझे उनका आत्मत्याग स्वीकार करना होगा—और शायद मैं सहमत हो जाऊंगा और मेरा जीवन सुखी हो जायगा बशर्ते कि वारेन्का के साथ मेरा प्यार हो..." ये सपने इतने सुखद थे कि मैंने चाहा कि अपने मित्र को बताऊं। किन्तु एक दूसरे से कुछ छिपा न रखने की अपनी प्रतिज्ञा के बावजूद, मैं भली भांति जानता था कि इन विचारों से द्मीत्री को अवगत कराना असम्भव है।

द्मीत्री जब ल्युबोव सेर्गेयेवना के पास से दांत में उसकी दी हुई कोई दवा लगवाकर लौटा, उस समय उसका दर्द और भी बढ़ा हुआ था और वह अधिक उदास था। मेरा बिस्तर अभी तक नहीं लगा था। एक छोटा-सा लड़का, जो द्मीत्री का खास नौकर था, पूछने आया कि मैं कहां सोऊंगा।

"चूल्हे में जा तू! भाग यहां से," द्मीत्री पैर पटकते हुए गरजा। "वास्का! वास्का! वास्का!" लड़के के भागने के साथ वह चिल्लाया और प्रत्येक बार अधिक ज़ोर से। "वास्का, मेरा बिस्तर फ़र्श पर लगा दे।"

"नहीं, फ़र्श पर मैं सो रहूंगा!" मैंने कहा।

"क्या रखा है इन बातों में? कहीं भी लगा दो।" द्मीत्री गुस्से के उसी स्वर में कहता गया। "अबे सुनता क्यों नहीं?"

पर वास्का समझ ही न पा रहा था कि क्या करना है उसे। वह निश्चल खड़ा रहा।

"क्या हो गया है तुझे? सुनाई नहीं देता? मैं जैसे कह रहा हूं वैसे करता क्यों नहीं?" द्मीत्री ने सहसा आगबबूला होते हुए कहा।

पर वास्का अब भी न समझ सका और घबराया हुआ निश्चल खड़ा रहा।

"तू मेरी जान लेने—तू मुझे पागल करने पर तुल गया है। क्यों?" यह कहते हुए द्मीत्री कुर्सी से उछला और मुक्के से लड़के के सिर पर कई घूंसे लगाये वह भाग खड़ा हुआ। दरवाज़े पर रुककर द्मीत्री ने मेरी तरफ़ देखा। उसके चेहरे पर क्रोध और निर्दयता का जो भाव क्षण भर

पहले था, वह सिधाई, लज्जा और बालोचित स्नेह के ऐसे भाव में परिवर्तित हो गया कि मुझे उसपर दया आ गयी और यद्यपि मैं उसकी ओर से मुंह फेर लेना चाहता था पर ऐसा न कर सका। वह कुछ नहीं बोला, केवल देर तक कमरे में टहलता और बीच बीच में उसी अनुनयपूर्ण भाव के साथ मेरी ओर देखता रहा। तब उसने मेज़ से एक कापी उठा ली, उसमें कुछ लिखा, अपना कोट उतारकर सावधानी से तय किया, कोने में जहां प्रतिमाएं रखी हुई थीं, गया, सीने पर अपने बड़े बड़े सफ़ेद हाथ बांधे, और प्रार्थना करने लगा। वह इतनी देर तक प्रार्थना करता रहा कि वास्का को एक तोशक लाकर फ़र्श पर, फुसफुसाहट के स्वर में दी गयी मेरी हिदायतों के अनुसार, बिछाने का समय मिल गया। मैंने कपड़े उतारे और फ़र्श पर लगे बिस्तर पर लेट रहा। पर द्मीत्री की प्रार्थना जारी थी। जब मैंने उसकी झुकी पीठ और उसके पैर के तलवों पर दृष्टि डाली (जो उसके दण्डवत करते समय विनम्र मुद्रा में मेरी तरफ़ पेश थे) तब उसके प्रति मेरा प्यार और बढ़ गया। मैं सोचता रहा—"अपनी अपनी बहिनों के सम्बन्ध में मैंने मन में जो सोचा है, वह उसे बताऊं या न बताऊं?" प्रार्थना समाप्त कर द्मीत्री मेरी बग़ल में लेट रहा और केहुनी टेककर बड़ी देर तक स्नेहपूर्वक एकटक मेरी ओर देखता रहा। प्रगट था कि, ऐसा करने में उसे कष्ट हो रहा था, पर सम्भवतः वह अपने को दण्ड देने पर तुला हुआ था। उसकी ओर देखकर मैं मुसकुराया। वह भी मुसकुराया।

"कहते क्यों नहीं कि मैंने घृणित आचरण किया है?" वह बोला। "निश्चित रूप से तुम्हारी उसी समय से यही प्रतिक्रिया है।"

"हां," मैंने जवाब दिया। यद्यपि मैं किसी और चीज़ के बारे में सोच रहा था, पर मुझे लगा कि सचमुच मेरी वही प्रतिक्रिया हुई थी। "हां, यह भला नहीं लगा था मुझे। तुमसे मैंने ऐसी चीज़ की उम्मीद न की थी।" मैं बोला। उस समय 'तू' कहकर उससे बात करने में मुझे विशेष संतोष प्राप्त हो रहा था। "दांत का दर्द कैसा है?"

"पहले से बहुत कुछ अच्छा है अब। आह, मेरे दोस्त, मेरे निकोलेन्का," द्मीत्री इतने स्नेहसिक्त स्वर में बोला कि उसकी चमकती आंखें आंसू से भरी जान पड़ीं। "मैं जानता हूं, मुझे बोध है कि मैं कुटिल प्रकृति का आदमी हूं। भगवान मेरा साक्षी है कि मैं अपने को सुधारने की कितनी कोशिश करता हूं और उससे कितनी प्रार्थना करता हूं कि मुझे सुधारे। लेकिन, मैं अपने इस दुष्ट, क्रोधी स्वभाव को क्या करूं? बताओ, क्या करूं? मैं अपने को रोकने की, सुधारने की कोशिश करता हूं, पर अचानक कुछ हो जाता है और ऐसा करना असम्भव ज्ञात होता है—कम से कम मुझ अकेले के लिए तो जरूर। मुझे किसी की सहायता और आश्रय की आवश्यकता है। ल्युबोव सेर्गेयेवना है जो मुझे समझती है, और मेरी काफ़ी सहायता करती है। मैंने अपनी डायरी पढ़कर देखा है, पिछले एक वर्ष के अंदर मैं काफ़ी सुधरा हूं। आह मेरे दोस्त, मेरे निकोलेन्का!" वह विचित्र, अनभ्यस्त स्नेह के साथ और ऐसे स्वर में जो उक्त स्वीकारोक्ति के बाद प्रचुर मानसिक शांति का द्योतक था, कहता गया। "उस जैसी नारी का प्रभाव कितनी महान वस्तु है! हे भगवान! सोचो ज़रा कि मेरे स्वतंत्र हो जाने के बाद उस जैसी मित्र का होना कितना कल्याणकर होगा मेरे लिए! उसकी संगति में मैं दूसरा ही आदमी बन जाता हूं।"

और तब द्मीत्री मुझे अपनी योजनाएं बतलाने लगा—विवाह, ग्राम्य-जीवन और निरंतर आत्म-सुधार के उसके मनसूबे।

"मैं गांव में ही रहूंगा। शायद तुम मुझसे मिलने आओगे। सोनेच्का के साथ तुम्हारा विवाह हो चुका होगा।" वह बोला। "हमारे बच्चे एक संग खेलेंगे। इसमें शक नहीं कि वह सब अभी हास्यास्पद लगता है। पर कौन कह सकता कि यह सच साबित न होगा।"

"बेशक। क्यों नहीं?" मैंने मुसकुराते हुए और साथ ही यह सोचते हुए कि यदि उसकी बहिन से मेरा विवाह हो जायगा तो बहुत बढ़िया रहेगा, कहा।

"एक वात कहूं तुमसे," थोड़ी देर के मौन के वाद उसने कहा। "यह तुम्हारी भावना मात्र है कि तुम सोनेच्का को प्यार करते हो। मैं देखकर कह सकता हूं कि वह वास्तविक नहीं है। तुम्हें मालूम नहीं कि प्रेम की सच्ची भावना क्या होती है।"

मैंने जवाव न दिया, क्योंकि मेरी राय करीव करीव वही थी। हम दोनों कुछ देर चुप रहे।

"तुमने तो देखा ही है कि आज मेरा मिज़ाज फिर गरम हो गया था और वार्या के साथ मेरा झगड़ा हो गया। वाद में मुझे वड़ा अफ़सोस हुआ, ख़ासकर इसलिए कि हम तुम्हारे सामने लड़ वैठे थे। वहुत-सी चीज़ों के वारे में उसके सोचने का ढंग ऐसा है जैसा न होना चाहिए, फिर भी वह वड़ी शानदार लड़की है, और उसे नज़दीक से जानने पर पाओगे कि दिल की वह वड़ी ही अच्छी है।"

'मैं वास्तव में प्रेम नहीं करता था,'—इस वात से लेकर वातचीत को अपनी वहिन की प्रशंसा पर ला देना मुझे वहुत ही अच्छा लगा और मेरे चेहरे पर शर्म की लाली दौड़ गयी। पर मैंने उसकी वहिन के वारे में कुछ नहीं कहा और हम अन्य विपयों पर वातें करने लगे।

हम वड़ी देर तक इसी तरह वातचीत करते रहे यहां तक कि मुर्ग़े की दूसरी वांग सुनाई दी। जव द्मीत्री अपने विस्तर पर गया उषा की सफ़ेदी खिड़की से झांक रही थी।

"चलो, अव सो जायें," उसने कहा।

"ज़रूर," मैंने कहा, "पर केवल एक वात और।"

"क्या है?"

"ज़िन्दगी शानदार चीज़ है—है न?"

"वेशक," उसने ऐसे स्वर में कहा कि अंधेरे में भी मैं उसकी प्रफुल्ल स्नेहपूर्ण आंखों का भाव और शिशु की सी मुसकान देख सकता था।

अठाईसवां परिच्छेद

देहात में

अगले दिन वोलोद्या और मैं यात्रा-गाड़ी पर देहात के लिए रवाना हुए। रास्ते में मैं मास्को की सारी स्मृतियों को दुहराता रहा। इस प्रक्रिया में सोनेच्का वालाहिना की याद मुझे शाम को आयी—तव जव कि हम सफ़र की पांच मंज़िलें तय कर चुके थे।

"कैसी विचित्र वात है," मैंने मन में कहा। "मैं प्रेम करता हूं और यही भूल गया था। मुझे जरूर उसके वारे में सोचना चाहिए।" और मैं लगा उसके वारे में सोचने—उस तरह जिस तरह सफ़र में आदमी सोचा करता है—विना किसी क्रम के, पर स्पष्टता के साथ। इस प्रकार मैंने अपनी ऐसी हालत वना ली कि गांव पहुंचने पर घर के सभी लोगों के सामने दो दिनों तक चेहरा उदास वना रखना मुझे अपरिहार्य मालूम हुआ—खासकर कातेन्का के सामने जिसे मैं ऐसे मामलों का विशेषज्ञ मानता था और जिसे मैंने अपने प्रेम-पीड़ित अवस्था में होने का संकेत दे दिया था। किन्तु औरों के सामने तथा अपने सामने लाख सूरत वना रखने के वावजूद, प्रेमताड़ित व्यक्तियों में उनकी अवस्था के जितने भी लक्षण मैंने देखे थे उन सवकी नक़ल करने की पूरी कोशिशों के वावजूद, मुझे उन दो दिनों के अंदर चौवीसों घंटे यह याद नहीं रह पाता था कि मैं एक विरही हूं। केवल मुख्यतः शाम को यह याद ताजा रहती थी। और अंत में तो मैं देहात के नये जीवन-क्रम में इतना डूव गया कि सोनेच्का के प्रति अपने प्रेम की वात ही भूल गया।

हम लोग रात होने के वाद पेत्रोव्स्कोये पहुंचे थे। मैं उस समय इतनी गहरी नींद में था कि मैंने न घर देखा, न वर्च का छायापथ और न घर के किसी आदमी को क्योंकि वे भी सोने जा चुके थे। बूढ़े फ़ोका ने, जिसकी कमर झुक गयी थी और जो नंगे पांव तथा शरीर

में किसी किस्म के ज़नानी रूईदार ड्रेसिंग गाउन में लिपटे हुए था, हाथ में मोमवत्ती लिये हुए दरवाज़ा खोला। हमें देखकर ख़ुशी से उसकी देह सिहर उठी। उसने हमारे कंधों को चूमा ग्रौर जल्दी से दुलाई लपेटकर ग्रपने कपड़े ठीक करने लगा। मैं दालान ग्रौर सीढ़ी से गुज़रा तो ग्रावी नींद में था। किन्तु वीचवाले कमरे में पहुंचकर जव मेरी दृष्टि वहां की सुपरिचित वस्तुग्रों पर पड़ी तो सहसा पुराने घर का स्नेहसिक्त स्पर्श ताज़ा हो गया। दरवाज़े पर वही ताला लगा हुग्रा था, वही कुण्डी, वही टेढ़े तख़्ते, वही कपड़े रखने की ग्रालमारी, वावा ग्रादम के ज़माने का वही चिराग़दान जिसमें पहले की भांति मोम के दाग़ लगे थे, प्रतिमावाले ठंडे टेढ़े चिराग़ में ग्रभी ग्रभी जलायी मोमवत्ती का वही साया ग्रौर सदा धूल से भरी रहनेवाली वही दोहरी खिड़की जिसके पीछे एक पहाड़ी 'एश' वृक्ष था। "इतने दिन हम दोनों—हमारा यह प्यारा घर ग्रौर मैं—एक दूसरे के विना किस प्रकार रह सके?" मैंने ग्रचरज से भरकर ग्रपने ग्रापसे सवाल किया। ग्रौर मैं फुर्ती से यह देखने को दौड़ा कि सभी कमरे वैसे ही तो हैं! सव कुछ पहले जैसा था। केवल उनका ग्राकार छोटा, नाटा हो गया था ग्रौर मैं पहले से लम्वा, भारी ग्रौर भद्दा हो चुका था। पर हमारे घर, प्यारे घर ने जैसा मैं था उसी रूप में मुझे प्रेमपूर्वक ग्रपनी ग्रंकवार में भर लिया। हर फ़र्श, हर खिड़की, सीढ़ी का हर पग ग्रौर हर ध्वनि ने मेरे हृदय में एक सुखी ग्रतीत की भावनाएं—एक पूरी दुनिया—जो फिर लौटकर न ग्रायेगी, प्रतिध्वनित कर दी। हम वचपन के दिनों के ग्रपने शयन-कक्ष में गये। उसके कोनों ग्रौर दरवाज़े के पल्लों के पीछे वालपन के सारे भय ग्रौर खटके ग्राज भी दुवके खड़े थे। हम वैठकखाने में गये। उसकी प्रत्येक वस्तु में वही ग्रातृत्वपूर्ण स्नेह विखरा हुग्रा था। हम हॉल में पहुंचे। ऐसा लगा कि वाल्यावस्था की सारी चहल-पहल, मुक्त हंसी, ग्रौर उछल-कूद कमरे में छिपी हमारे ग्राते ही जाग उठने की प्रतीक्षा कर रही थी। वैठनेवाले

कमरे में, जहां फ़ोका ने हम लोगों के विस्तर लगा रखे थे और जहां वह हमें लिवा ले गया, सभी वस्तुएं—आईना, परदा, पुरानी लकड़ी की प्रतिमा, सफ़ेद काग़ज़ से ढकी दीवार का हर उभरा हुआ स्थान—कष्ट, मृत्यु और उन चीज़ों की कहानी कह रही थीं जो चिर-नींद से फिर न उठेंगी।

हम लेट गये और फ़ोका 'गुड-नाइट' कहकर चला गया।

"इसी कमरे में अम्मा मरी थीं न?" वोलोद्या ने कहा।

मैंने जवाब न देकर सो जाने का वहाना कर लिया। ज़रा भी मुंह खोलने पर मैं अवश्य फूट-फूटकर रोने लगता। अगले दिन नींद खुली तो पिताजी ड्रेसिंग गाउन और रंगीन स्लीपर पहने वोलोद्या के पलंग पर बैठे हुए उससे हंस-हंसकर वातें कर रहे थे। वे प्रफुल्लता के साथ छलांग मारकर मेरे पास आ गये और अपने वड़े हाथों से मेरी पीठ ठोंकते हुए, अपने गाल मेरे ओंठों पर दवा दिये।

"शावाश, मेरे कूटनीतिज्ञ, धन्यवाद है तुम्हें।" अपने खास दुलार भरे लहजे में, अपनी छोटी छोटी चमकती आंखों से मुझे देखते हुए वह वोले। "वोलोद्या वता रहा था कि तुमने वड़ी ही शान से इम्तहान पास किया है। वेवकूफ़ी के फेरे से निकल जाने का एक वार इरादा कर लेने पर सचमुच वहुत वढ़िया हुआ करते हो तुम। धन्यवाद है तुम्हें। यहां वड़ा मज़ा रहेगा तुम लोगों के आ जाने से। जाड़ों में हो सका तो हम लोग पीतर्सवर्ग चले चलेंगे। अफ़सोस इतना ही है कि शिकार ख़त्म हो गया है, वरना उसका भी मज़ा तुम लोग लेते। तुम्हारा निशाना कैसा है, वोलोद्या? यहां तो भरमार है शिकार की। किसी दिन मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। भगवान ने चाहा तो जाड़ा पीतर्सवर्ग में कटेगा। वहां तुम्हें लोगों से मिलने और जान-पहचान वढ़ाने का मौक़ा मिलेगा। वच्चो, अव तुम लोग वड़े हुए और मैं वोलोद्या से अभी यही कह रहा था कि अव तुम लोग अपने पैरों पर खड़े हो जाओ। मेरा काम ख़त्म

हुआ। तुम अकेले ही अपना रास्ता तय कर सकते हो। पर यदि तुम्हें सलाह की ज़रूरत है तो विना हिचक मेरे पास आ जाओ। मैं अब तुम्हारा पिता नहीं वल्कि तुम्हारा मित्र, साथी या सलाहकार हूं। जो भी चाहो, मुझे बना लो। तुम्हारी फिलासफी के साथ यह मेल खाता है या नहीं, कोको? ठीक, या ग़लत?"

कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने कहा कि वह विल्कुल ठीक था, और सचमुच मेरा यही ख्याल भी था। उस दिन पिताजी में एक अत्यंत आकर्षक उत्फुल्लता थी और मेरे साथ इस नये समानता के सम्वन्ध से वह मेरे लिए और भी प्रिय वन गये थे।

"अव यह वताओ कि सभी रिश्तेदारों से मिलने गये थे या नहीं? ईविन के यहां? और वूढ़े से हुई मुलाक़ात? क्या कहा उन्होंने तुमसे?" वह पूछते गये। "प्रिन्स इवान इवानिच से मिले थे तुम?"

और हम लोग रात के कपड़े पहने ही हुए इतनी देर तक गपशप लड़ाते रहे कि धूप कमरे की खिड़की से विदा होने लगी। याकोव, पहले जैसे ही वूढ़े, पीठ के पीछे उंगलियां नचाने और "जी फिर?" कहने के आदी याकोव ने, कमरे में आकर पिताजी को खवर दी कि कलश तैयार है।

"कहां जा रहे हैं आप?" मैंने पिताजी से पूछा।

"अरे, मैं तो भूल ही गया था," पिताजी ने अपनी आदत के मुताविक कंधों को झटका देते और झिझक में पड़ जाने का संकेत देनेवाली खांसी के साथ कहा, "आज मैंने एपिफ़ानोव के घर जाने का वादा कर रखा था। तुम्हें एपिफ़ानोव की याद है न – la belle Flamande?* वह तुम्हारी मां से प्रायः मिलने आया करती थीं। वड़े अच्छे लोग हैं वे" और थोड़ी झेंप के साथ कंधों को झटकारते हुए (कम से कम मुझे ऐसा ही लगा) कमरे से वाहर चले गये।

---

* [फ़्लेमिश सुंदरी]

इस बीच ल्यूबोच्का कई बार दरवाज़े पर आकर पूछ चुकी थी—"क्या मैं अंदर आ सकती हूं?" पर हर बार पिताजी ने दरवाज़े की इसी ओर से चिल्लाकर कहा था—"नहीं, नहीं अभी हम लोगों ने कपड़े नहीं पहने हैं।"

"हर्ज ही क्या है? ड्रेसिंग-गाउन में आपको तो मैं कई बार देख चुकी हूं।"

"अपने भाइयों से तुम इस हालत में कैसे मिल सकती हो?" उन्होंने इधर से चिल्लाकर कहा। "तुम्हीं बताओ, अगर सवेरे के वक़्त वे तुम्हारे कमरे के बाहर जाकर इसी तरह दरवाज़ा खटखटायें? क्या यह ठीक होगा? क्यों लड़को, जाओगे इस तरह? तुम्हारी उस वक़्त की हालत में उनका दरवाज़ा खटखटाना मात्र अनुचित होगा।"

"ओह, आप भी बड़े वैसे हैं पिताजी! खैर जल्दी करो और सभी जल्दी से बैठकखाने में आ जाओ। मीमी तुम लोगों को देखने को मरी जा रही हैं!" ल्यूबोच्का ने बाहर से पुकारकर कहा।

ज्योंही पिताजी चले गये, मैंने जितनी जल्दी हो सका अपना छात्रों वाला कोट पहना और बैठकखाने में गया। इसके विपरीत, वोलोद्या जल्दी में न था। वह बड़ी देर तक याकोव से पूछताछ करता रहा कि तीतर और बटेर कहां मिलेंगे। जैसा कि मैं कह चुका हूं, दुनिया में उसे सबसे ज़्यादा घबराहट भाई, बहिन या बाप के संग 'भावुकता' प्रदर्शित करने से हुआ करती थी। अतः भावुकता से बचने की कोशिश में वह दूसरे छोर पर, ठंडेपन पर, पहुंच जाता था जिससे प्रायः उन लोगों को जो इसका कारण नहीं समझते थे, तकलीफ़ होती थी। बीचवाले कमरे में पिताजी मिले। वे तेज़ क़दमों से चलते हुए गाड़ी में सवार होने जा रहे थे। उन्होंने अपना मास्को का फ़ैशनेबुल कोट पहन रखा था और उनसे इत्र की सुगंध उड़ रही थी। मुझे देखकर उन्होंने प्रफुल्लता से सिर हिलाया मानो कह रहे हों—"कहो, है न शानदार?"

सुबह मैंने उनकी आंखों में प्रसन्नता की जो ज्योति लक्ष्य की थी वह इस समय मुझे फिर दिखाई दी।

बैठकखाने का हमारा वही सुपरिचित कमरा था – चमकीला, ऊंची दीवारों और खुली खिड़कियों वाला जिसके उस पार से बाग़ की पीली-लाल रविशें और हरे वृक्ष प्रफुल्लता से झांक रहे थे। कोने में वही पीले रंग का विशाल अंग्रेज़ी प्यानो रखा हुआ था। मीमी और ल्यूबोच्का का चुम्बन करने के बाद मैं कातेन्का के पास जा रहा था कि यकायक मुझे ख़्याल आया कि उसका चुम्बन करना उचित न होगा और बीच ही में – मौन और संकुचित – रुक गया। पर कातेन्का ने किसी प्रकार का संकोच नहीं महसूस किया, उसने अपना गोरा हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया और विश्वविद्यालय में मेरे दाख़िले पर बधाई दी। जब वोलोद्या आया तो कातेन्का को देखने पर उसके साथ भी वही वाक़या हुआ। वास्तव में, साथ पलकर बड़े होने और हर रोज़ साथ रह चुकने के बाद अपनी प्रथम जुदाई के बाद की इस मुलाक़ात पर हम समझ नहीं पा रहे थे कि किस प्रकार एक दूसरे की अभ्यर्थना करें। कातेन्का हम सबों की अपेक्षा अधिक लाज से लाल हो रही थी। वोलोद्या घबराया नहीं किन्तु हल्के से उसकी ओर सिर नवाने के बाद ल्यूबोच्का के पास चला गया, उससे यों ही मामूली-सी कुछ बातचीत की और कहीं टहलने निकल गया।

उन्नीसवां परिच्छेद

लड़कियों के प्रति हमारा रुख़

लड़कियों के सम्बन्ध में वोलोद्या की धारणाएं विभिन्न थीं। वह ऐसे प्रश्नों में भी दिलचस्पी ले सकता था, जैसे – क्या उन्हें भूख लगी है? क्या उन्हें अच्छी तरह नींद आयी? क्या उनकी पोशाक दुरुस्त है? फ़्रांसीसी बोलने में वे ऐसी ग़लतियां तो नहीं कर रही हैं जिनके कारण

बाहर के आदमियों के सामने शर्मिन्दा होना पड़े? पर वह यह मानने को कभी तैयार न था कि लड़कियों के अंदर भी किसी तरह का इन्सानी जज़्बा हो सकता है। और यह तो वह बिल्कुल मानने को तैयार न था कि उनके साथ किसी प्रकार का वादविवाद किया जा सकता है। यदि भूले-भटके वे कभी उससे कोई गम्भीर प्रश्न पूछने आ जातीं (यद्यपि अभी ही से यह हाल था कि जहां तक हो सकता वे उसके पास न आती थीं), या किसी उपन्यास पर उसकी राय अथवा विश्वविद्यालय की उसकी पढ़ाई के सम्बन्ध में कुछ पूछ बैठतीं तो वह मुंह बिचकाता हुआ वहां से टल जाता अथवा उल्टा-सीधा कोई फ्रेंच जुमला सुना देता, या संजीदा और बुद्धू जैसा चेहरा बनाकर कोई ऐसा शब्द बोल देता जिसका प्रश्न के साथ कोई सम्बन्ध न होता, या आंखों में जड़ता का भाव लाकर कोई निरर्थक शब्द कह देता, जैसे—'रॉले' या—'वे लोग तो चले गये' या—'करमकल्ला' या ऐसा ही कोई और शब्द। ल्यूबोच्का और कातेन्का से मेरी बातें हुआ करती थीं। ये बातें जब मैं वोलोद्या को सुनाता तो वह कहता—"क्या ख़ूब आदमी हो तुम भी! उन लोगों के साथ भी गम्भीर चर्चा की जाती है? देखता हूं, बुद्धू के बुद्धू ही रहे तुम।"

उसकी इस उक्ति में कितना गम्भीर तिरस्कार भाव होता यह उसकी मुखमुद्रा को देखनेवाला ही समझ सकता था। वोलोद्या दो वर्ष हुए वयस्क हो चुका था। जो भी सुंदर स्त्री उसे मिलती उसके साथ वह प्रेम करने लगता, और यह क्रिया निरंतर चालू थी। पर कातेन्का के (जो दो साल से लम्बा घाघरा पहनने लगी थी और जिसका रूप दिन दिन निखरता जा रहा था) प्रेम में पड़ने की सम्भावना कभी उसके दिमाग़ में न आयी। हो सकता है, इसका कारण बचपन की नीरस स्मृतियां रहा हों (मास्टर की छड़ी, दच्चीवाली फ़ाक और बचकाने चोचलों की याद अब भी उसके दिमाग़ में ताज़ा थी), या वह स्वाभाविक वितृष्णा हो जो हर कम उम्र नौजवान घर की चीज़ों के बारे में महसूस करता है। या यह साधारण

मानवीय दुर्वलता हो जिससे प्रेरित जीवन के प्रारम्भिक काल में मनुष्य किसी अति सुंदर वस्तु को देखने पर यह सोचता है कि अरे, ऐसी अभी वहुत मिलेंगी। कारण जो भी रहा हो, वोलोद्या ने अभी तक कातेन्का को पुरुष की आंखों से नहीं देखा था।

वोलोद्या उन गर्मियों में वरावर अनमना-सा रहा। उसके इस अनमनेपन का मूल-कारण हम लोगों के प्रति वह तिरस्कार भाव था जिसे, जैसा कि मैं कह चुका हूं, उसने कभी छिपाने की कोशिश नहीं की। उसके चेहरे का भाव निरंतर यही कहता था – "ओह! ऊव गया मैं। यहां कोई ऐसा आदमी नहीं जिससे दो वातें की जा सकें।" सवेरे वह वंदूक लेकर निकल जाया करता था, या भोजन के वक़्त तक रात के कपड़े पहने, कमरे में वैठा किताव पढ़ा करता था। पिताजी घर पर नहीं होते थे तो वह खाने की मेज़ पर भी किताव लिये हुए आता था और हम लोगों से कुछ वोले विना पढ़ता रहता था। इससे न जाने क्यों हमें ऐसा लगता था कि हमने उसके प्रति कोई अपराध किया है। शाम को भी वह वैठकखाने में सोफ़े पर लेटा हुआ या तो केहुनी पर सिर रखकर सो जाता या हमें वेसिर-पैर की अजीव कहानियां सुनाया करता। कभी कभी इन कहानियों में अश्लीलता का पुट हुआ करता जिससे मीमी गुस्सा हो जाती और उसका चेहरा लाज से लाल हो जाता। और हम लोगों का हंसी से पेट फूल जाता। पर पिताजी या कभी कभी मुझे छोड़ वह परिवार के किसी सदस्य के साथ गम्भीरता से वात करने को तैयार न होता था। ऐसा करना वह अपनी शान के खिलाफ़ समझता था। मैं भी लड़कियों के सम्वन्ध में अनजाने ही अपने भाई के दृष्टिकोण की नक़ल करने लगता था यद्यपि भावुकता से मैं उस जितना नहीं घवराता था और न लड़कियों के प्रति मेरा तिरस्कारभाव कभी उतना गहरा और दृढ़ हुआ था। वल्कि, उस साल की गर्मियों में मनोरंजन का कोई सामान न रह जाने पर मैंने ल्यूवोच्का और कातेन्का के साथ घनिष्ठता वढ़ाने और उनसे

वार्तालाप आरम्भ करने के कई वार प्रयत्न किये। पर प्रत्येक प्रयत्न में मैंने उन्हें तर्कयुक्त विचारों से इतना शून्य पाया, साधारण से साधारण वस्तुओं, जैसे, धन क्या है, विश्वविद्यालय में क्या पढ़ाया जाता है, युद्ध क्या है, आदि के विषय में इतना अज्ञान और इन विषयों की मेरी व्याख्या के प्रति इतना रुचि-शून्य पाया कि इन प्रयत्नों के बाद उनके बारे में मेरी राय और भी प्रतिकूल हो गयी।

मुझे याद है कि एक शाम को ल्यूबोच्का प्यानो पर कोई पद दुहरा रही थी जिसे सुनते सुनते हम लोग बुरी तरह ऊब गये थे। वोलोद्या बैठकखाने में सोफ़े पर लेटा हुआ ऊंघ रहा था और बीच बीच में चिढ़कर, व्यंग्य के साथ कुछ शब्द यों बुड़बुड़ा रहा था मानो किसी को सुनाकर नहीं कह रहा हो। "हे भगवान! कैसी धुनें चली जा रही हैं! बेमिसाल संगीतज्ञ है जो है बिलकुल बीथोवेन का अवतार! ('बीथोवेन का अवतार' उसने विशेष तीखे व्यंग के साथ कहा।) वाह, उंगलियां तोड़कर रख दी हैं। तो फिर बजाना इसे। हां, ठीक!" आदि। कातेन्का और मैं अभी तक चाय की मेज़ पर थे और मुझे याद नहीं कि कातेन्का ने किस प्रकार बातचीत अपने प्रिय विषय—प्रेम—पर मोड़ दी थी। मेरी प्रवृत्ति थोड़ा तत्वज्ञान की ओर हो रही थी और मैंने बड़ी प्रकाण्डता के साथ प्रेम की परिभाषा यह कहकर दी कि, मनुष्य के पास जो वस्तु नहीं है उसी को पाने की इच्छा का नाम ही प्रेम है आदि। पर कातेन्का ने कहा कि बात उल्टी थी। प्रेम—प्रेम नहीं यदि कोई लड़की धन के लिए किसी पुरुष से विवाह करने की इच्छा करे। उसकी राय में धन-सम्पत्ति संसार की सबसे निस्सार वस्तुएं थीं और सच्चा प्रेम वही था जिसमें वियोग को सहन करने की क्षमता हो (इसका मैंने यह अर्थ समझा कि वह दुबकोव के प्रति अपने प्रेम की ओर इंगित कर रही थी)। वोलोद्या, जिसने हमारी बातचीत सुन ली थी, केहुनी के बल उठा और प्रश्नपूर्वक टोका की—"कातेन्का, क्या कोई रूसी नहीं?"

"वस तुम्हें तो सदा ही अनाप-शनाप सूझता है!" कातेन्का वोली।

"क्या कहा? मिर्चदाने में?" वोलोद्या, प्रत्येक स्वर पर ज़ोर देकर कहता गया। और मुझे लगा कि वह विल्कुल ठीक था।

वुद्धिमत्ता, सद्ग्राह्यता और कलात्मक भावना के अतिरिक्त समाज के विभिन्न मण्डलों, और विशेषकर परिवारों के अंदर कमोवेश एक प्रकार का एक निजी गुण विकसित हुआ करता है जिसे मैं 'सूझ' कहता हूं। इस गुण का सारतत्त्व हुआ करती है अनुपात की एक रूढ़िमूलक भावना और वस्तुओं के सम्बन्ध में एक मान्य एकांगी दृष्टिकोण। एक ही मण्डल, अथवा परिवार के दो व्यक्ति जिनमें यह गुण हो, अपनी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति को ऐसे स्थल तक ले जा सकते हैं जिसके उस पार के शब्दों को वे पहले ही से जान लेंगे। दोनों सटीक देख सकते हैं कि कहां प्रशंसा का अंत हुआ और व्यंग ने उसका स्थान ले लिया, कहां उत्साह की सीमारेखा आयी और स्वांग आरम्भ हुआ। पर दूसरी प्रकार की सूझवालों को सारी वातें उल्टी ही ज्ञात होंगी। एक-सी सूझवाले लोग प्रत्येक वस्तु को समान उपहासजनक, सौंदर्यपूर्ण अथवा घृणोत्पादक दृष्टिकोण से देखते हैं। सूझ की इस एकता को सुगम वनाने के लिए किसी विशेप मण्डल या परिवार के लोगों के वीच अपनी विशिष्ट भापा, अपने विशिष्ट मुहावरे, यहां तक कि अपने विशिष्ट शव्द पैदा हो जाते हैं जिनके विशिष्ट अर्थ अन्य लोग नहीं समझ सकते। हमारे परिवार में यह सूझ पिताजी और हम दो भाइयों के वीच सवसे अधिक विकसित थी। दुवकोव भी हमारी मण्डली में फिट वैठ गया था और उन विशेप अर्थों को समझने लगा था। पर द्मीत्री उससे वुद्धि में अधिक प्रखर होते हुए भी, इस मामले में वुद्धू था। किन्तु यह गुण जितना वोलोद्या और मेरे वीच विकसित था, उतना किसी और के वीच नहीं क्योंकि हम एक जैसी अवस्थाओं में पले और वड़े हुए थे। पिताजी काफ़ी पीछे छूट चुके थे और वहुत सारी चीज़ें जो हमारे लिए यों स्पप्ट थीं जैसे

दो-दो–चार वे उन्हें बोधगम्य न थीं। उदाहरण के लिए वोलोद्या और मुझमें यह तय हो चुका था कि निम्नलिखित शब्दों का निम्नलिखित अर्थ होगा। उनका यही अर्थ क्यों होगा और वह कहां से आया, यह ईश्वर ही कह सकता है। 'किशमिश' का अर्थ था, यह दिखलाने की अहंकारपूर्ण इच्छा कि मेरे पास रुपये हैं। 'टेटक' का मतलब था, (इस शब्द का उच्चारण करते हुए उंगलियां जोड़ ली जातीं और व्यंजनों पर एक साथ ज़ोर दिया जाता था) कोई ऐसी चीज़ जो ताज़ा, स्वस्थ और सुललित है, पर जिसमें छैलापन नहीं है। बहुवचन में किसी का नाम लेने का अर्थ था–उस चीज़ के प्रति अकारण पक्षपात। और इसी तरह और भी शब्द थे। इसके अतिरिक्त, अर्थ चेहरे के भाव पर, पूरी बातचीत पर निर्भर करता था। अतः हम में से एक जन किसी नये अर्थ का द्योतक कोई नया शब्द गढ़ता था तो दूसरा पहले ही इशारे में उसे ठीक उसी अर्थ में समझ जाता था। लड़कियों के पास हमारी 'सूझ' न थी। और यही हमारे नैतिक एकाकीपन का और उनके प्रति हमारे तिरस्कार-भाव का प्रधान कारण था।

सम्भवतः उनके पास एक अपनी अलग 'सूझ' थी। पर वह हमारी 'सूझ' से इतनी भिन्न थी कि जहां हम शब्दाडंबर से काम ले रहे होते उन्हें वास्तविक भावना दिखाई देती, हमारा व्यंग्य उनके लिए यथार्थ था, इत्यादि। उस समय मैं यह नहीं समझता था कि इसके लिए वे दोषी न थीं और 'सूझ' के इस अभाव से उनके बहुत ही भली और सुचतुर लड़कियां होने में कोई अंतर नहीं पड़ता था। अतः मैं उन्हें तिरस्कारयुक्त दृष्टि से देखता था। इसके अतिरिक्त मुझे स्पष्टवादिता की एक नयी सनक सवार थी और अपने मामले में मैं इसे अंतिम छोर तक लागू कर जाता था। फलतः मैं ल्यूबोच्का की गोपनीयता की भावना को जिसका मूल यह था कि वह अपने सभी विचारों और आत्मिक सहज-भावनाओं को छान-बीन करने की आवश्यकता ही नहीं महसूस करती थी, दोष दिया

करता था। उदाहरण के लिए, ल्यूवोच्का का हर रात को पिताजी के ऊपर क्रास का चिन्ह वनाना, अथवा गिरजाघर में अम्मा की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना के समय उसका और कातेन्का का रोना अथवा प्यानो वजाते समय कातेन्का का आहें भरना और आंखें नचाना, मुझे सरासर ढोंग ज्ञात होते थे और मैं मन में कहा करता था: ये लड़कियां क्यों वड़े लोगों की नक़ल करती हैं, इन्हें शर्म भी नहीं आती क्या?

तीसवां परिच्छेद

मेरे धन्धे

फिर भी इस वार की गर्मियों में मैं अन्य वर्षों की अपेक्षा अपने परिवार की युवतियों के अधिक निकट आया। इसका कारण यह था कि मुझे संगीत का शौक़ पैदा हो गया था। उस वर्ष की वसंत ऋतु में हम लोगों का एक पड़ोसी युवक हम लोगों से मिलने आया था। वैठकखाने में घुसने के साथ ही वह प्यानो को घूरने और मीमी तथा कातेन्का के साथ वातचीत करते हुए अपनी कुर्सी वाजे के नज़दीक खिसकाने लगा। थोड़ी देर मौसम तथा देहाती जीवन के आनन्द के सम्वन्ध में चर्चा करने के वाद उसने दक्षता के साथ वातचीत का रुख प्यानो का सुर साधने वालों, संगीत तथा प्यानो की ओर मोड़ दिया और अंत में यह घोषित किया कि वह स्वयं प्यानो-वादक है। और सचमुच उसने तीन 'वाल्ज़' वजाये। ल्यूवोच्का, मीमी और कातेन्का प्यानो के पास खड़ी उसका वजाना सुन रही थीं। वह नौजवान फिर कभी न आया। पर उसके वादन और साथ ही उसकी भाव-भंगिमा ने मुझे वहुत प्रभावित किया। वजाते समय झटका देकर वह अपने केश पीछे की ओर फेंकता, वायें हाथ से तेज़ी से अंगूठे और कनिष्ठा को आक्टेव के ऊपर फेरता और उन्हें साथ लाकर फिर फुर्ती से फैला देता था। उसकी अदाएं, मस्ती

का भाव, बालों को झटकारना, और औरतों का उसके गुण पर रीझना — यह सब देखकर मुझे भी प्यानो सीखने की धुन सवार हुई। इस धुन के परिणामस्वरूप मैंने दिल में यह बैठा लिया कि मुझमें संगीत की छिपी प्रतिभा और सच्चा शौक़ दोनों ही हैं। अतः मैंने अभ्यास आरम्भ कर दिया। ऐसा करते हुए मैंने उन लाखों मर्दों और विशेषकर औरतों का अनुकरण किया जो बिना अच्छे शिक्षक के, बिना झुकाव के और बिना इसकी तनिक भी सूझ के कि कला से क्या मिल सकता है और किस प्रकार उसकी देन प्राप्त करनी होगी, अभ्यास आरम्भ कर देते हैं। संगीत मेरे लिए, लड़कियों की भावनाएं जगाकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का एक साधन था। कातेन्का की मदद से मुझे स्वरों का ज्ञान जल्दी हो गया और मेरी मोटी मोटी उंगलियों में भी और लोच आ गई। यह करते हुए दो महीने मैंने इतने जोश में बिताये कि भोजन के समय घुटनों पर और रात को तकिये पर भी अपनी चौथी साथ न चलनेवाली उंगली फेरता रहता था। इस तरह कातेन्का की मदद से मैं जल्द ही कुछ टुकड़े बजा लेने लगा। कहने की जरूरत नहीं और जैसा कि कातेन्का ने भी स्वीकार किया मैं उन्हें बड़े भावपूर्ण तरीक़े से, avec âme, बजाता था, यद्यपि ताल का ध्यान अक्सर न रहता था।

जो चीज़ें मैंने सीखीं वे वही सुपरिचित चीज़ें थीं — वाल्तज़, गेलोप, प्रेमगीत, आदि। उनके स्वर रचना करनेवाले वही थे जिनकी चीज़ों में से संगीत में थोड़ी भी स्वस्थ रुचि रखनेवाला व्यक्ति संगीत की दूकानों में रखी ढेर की ढेर सुंदर चीज़ों में से एक छोटा-सा संग्रह निकालकर आपके सामने रख देगा और कहेगा — "इन्हें न बजाना, क्योंकि इनसे अधिक बुरी रुचिविहीन और रद्दी चीज़ें संगीत-पत्रों में नहीं लिखी गयी हैं," पर जिन्हें और शायद इस वजह से कि वे रद्दी हैं, हर रूसी तरुणी प्यानो पर बजाती है,। बेशक, हमारे चयन में करुण बीथोवेन के 'सोनाटा पैथेटिक' और 'सी माइनर' सोनाटे जिनका तरुणियां निरंतर गला घोंटा

करती हैं और जिन्हें ल्यूवोच्का maman की स्मृति में वजाया करती थी, तथा मास्को के उस्ताद द्वारा ल्यूवोच्का को सिखायीं अन्य सुंदर चीज़ें भी सम्मिलित थीं। किन्तु उनमें इस उस्ताद की अपनी रचनाएं भी थीं—वेतुके मार्च और गेलोप जिनका ल्यूवोच्का को उतना ही अच्छा अभ्यास था। कातेन्का को तथा मुझे गम्भीर चीज़ें पसंद नहीं थीं और हमारे सबसे अधिक प्रिय संगीत थे «Le Fou» * और 'वुलवुल' जिनका कातेन्का ने ऐसा अभ्यास कर रखा था कि वजाते समय उसकी उंगलियां आंखों से ओझल हो जाती थीं। इनकी मैंने भी काफ़ी अच्छी मश्क़ कर ली थी। मैंने उस नौजवान की भाव-भंगिमा की पूरी नक़ल कर ली थी और प्रायः यह सोचा करता था कि मेरे वजाते समय कोई अजनवी उपस्थित होता तो अच्छा था। किन्तु लिज़्त और काल्कव्रेनर शीघ्र ही मेरी क्षमता के परे सिद्ध हुए और मैंने यह भी महसूस किया कि कातेन्का की वरावरी नहीं कर सकूंगा। इसके परिणामस्वरूप मेरे दिमाग़ में यह आया कि शास्त्रीय संगीत अधिक सहज है और कुछ उसे सीखने से मेरी मौलिकता भी नज़र आएगी, मैं ल्यूवोच्का के 'सोनाटा पैथेटिक' वजाते समय झूमने लगता था यद्यपि वास्तविकता यह थी कि यह सोनाटा मुझे वहुत पहले से ही खलता था। मैं स्वयं वीथोवेन वजाने और उसके नाम का जर्मन लहजों में उच्चारण करने लगा। किन्तु इन तमाम गड़वड़झालों और दिखावटीपन के वावजूद मैं उन दिनों की याद करके कह सकता हूं कि शायद मुझमें संगीत की स्वाभाविक मति थी क्योंकि वह मेरे मर्म को छूकर आंसू ला दिया करता था और जो गीत मुझे अच्छे लगते उन्हें मैं विना स्वरलिपि के प्यानो पर सीख लेता था। अतः यदि उन दिनों किसी ने मुझे यह सूझ दी होती कि संगीत उस्तादी दिखाकर लड़कियों को रिझाने का साधन होने के वदले अपने आप में एक सुंदर लक्ष्य है तो शायद मैं अच्छा संगीतज्ञ वन सकता था।

---

*['पागल']

उन गर्मियों में मेरा दूसरा धंधा था फ़्रांसीसी उपन्यास पढ़ना। इनकी एक पूरी गड्डी वोलोद्या अपने साथ लाया था। उन दिनों 'मोन्ते क्रिस्तो' तथा विभिन्न 'रहस्य' वाले उपन्यासों का प्रकाशन आरम्भ ही हुआ था। मैंने स्यू, दूमा और पाल दी काक को चाट डाला। सभी कृत्रिम पात्र और घटनाएं मेरे लिए जीवित और वास्तविक थीं और लेखक पर उन्हें गढ़ने का संदेह करना तो दूर—मेरे लिए उसका अस्तित्व ही न था। पुस्तक के छपे पन्नों से निकलकर जीते जागते सक्रिय मनुष्य और साहसिक घटनाएं मेरे सामने खड़ी हो जाती थीं। मैंने वैसे आदमी कहीं न देखे थे तथापि इस बात में मुझे एक क्षण के लिए भी यह संदेह न होता था कि किसी दिन उनका वास्तविक अस्तित्व रहा होगा।

जितने आवेग इन पुस्तकों में वर्णित किये गये थे वे सभी मुझे अपने में मिलते थे। सभी पात्रों में मुझे अपने से समानता ज्ञात होती थी—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्वास्थ्य-विज्ञान की पुस्तक पढ़नेवाला हर भावुक व्यक्ति अपने में वर्णित बीमारियों के सभी लक्षण पाता है। इन पुस्तकों में मुझे सबसे अच्छे उनके चातुर्यपूर्ण विचार और जोशीली भावनाएं तथा वास्तविक चरित्र लगते थे। भला आदमी सोलहों आने भला और दुष्ट सोलहों आने दुष्ट हुआ करता था। तरुणाई के उन प्रारम्भिक दिनों में ऐसी ही मेरी कल्पना भी थी। मुझे इस बात से सबसे अधिक प्रसन्नता होती थी कि सारी की सारी किताबें फ़्रांसीसी भाषा में थीं। इससे यह लाभ था कि मैं उदात्त नायकों के सहृदयतापूर्ण शब्दों को याद कर अपने किसी उदात्त कर्म के अवसर पर उनका प्रयोग कर सकता था। इन पुस्तकों की मदद से मैंने बहुत से ऐसे जुमले तैयार कर लिये जिनका कोल्पिकोव से कभी मुठभेड़ हो जाने पर इस्तेमाल करूंगा। मैंने ऐसी उक्तियां भी तैयार कीं जो 'उसके' मिल जाने पर प्रणय-निवेदन में काम आयेंगी। मैंने ऐसी उक्तियां तैयार कीं कि जो उन्हें तत्काल धराशायी कर देतीं। इन्हीं उपन्यासों पर मैंने नैतिक योग्यता के वे आदर्श आधारित किये जिन्हें मैं चरितार्थ

करना चाहता था। सबसे अधिक मैं अपने समस्त कार्यकलाप और आचरण में «noble» * बनना चाहता था। (मैं यहां फ़्रांसीसी शब्द noble का प्रयोग कर रहा हूं, रूसी शब्द 'ब्लगोरोदनी' का नहीं। फ़्रांसीसी शब्द noble का जो अर्थ है वह रूसी 'ब्लगोरोद्नी' का नहीं। उसके इस अर्थ को ही समझकर जर्मनों ने उसे उसी रूप में अपना लिया और अपने ehrlich ** में और उसमें भेद रखा।) दूसरे मैं जोशीला होना चाहता था, और तीसरे, जैसा कि पहले ही से मेरा झुकाव था, मैं अधिक से अधिक comme il faut बनना चाहता था। सूरत-शक्ल और आदतों में भी मैं उन चरित्रनायकों जैसा बनने की कोशिश करता था जिनमें उपरोक्त गुण थे। उन गर्मियों में मैंने जो सैकड़ों उपन्यास पढ़े उनमें मुझे एक अतीव जोशीली प्रकृति का नायक मिला जिसकी भौंहें खूब घनी और मोटी थीं। मुझमें वेश-भूषा में भी (आत्मिक रूप से तो मैं अपने को हू-ब-हू उस जैसा समझता ही था) उसके जैसा बनने की ऐसी प्रबल इच्छा जागी कि आईने में अपनी भौंहें देखकर मैंने सोचा कि छांट देने से वे खूब घनी उग आयेंगी। पर उन्हें छांटने लगा तो एक स्थान पर ज़्यादा कट गयीं। अब मुझे सभी जगह से बराबर करना पड़ा। अंत में जब मैंने आईने में अपनी सूरत देखी तो भौंहों को नदारद पाकर मेरी बदहवासी का ठिकाना न रहा। मेरा चेहरा बड़ा भद्दा हो गया था। पर मैंने यह सोचकर संतोष किया कि शीघ्र ही उद्दाम नायक की तरह मेरी भौंहें घनी हो जायंगी। पर फिलहाल घरवालों को कैसे मुंह दिखाऊंगा? मैंने वोलोद्या से थोड़ा-सा बारूद मांगा और उन्हें भौंहों पर मलकर दियासलाई छू दी। बारूद भभका नहीं, किन्तु मेरा चेहरा कुछ कुछ झुलसा हुआ नजर आने लगा। कोई मेरी चाल को न समझ सका और मेरी भौंहें जब निकलीं तो खूब घनी होकर निकलीं। पर उस समय तक मैं उद्दाम नायक को भूल चुका था।

---

* noble का अर्थ है—उदात्त, उदार आदि।—सं०

** ehrlich का अर्थ है—ईमानदार, वफ़ादार, मानवाला आदि।—सं०

इकतीसवां परिच्छेद

Comme il faut*

अपने वृत्तांत में मैं कई बार उपरोक्त फ़ांसीसी शब्दों में सन्निविष्ट धारणा की चर्चा कर चुका हूं। मैं पूरा एक अध्याय इसी पर लिखना आवश्यक समझता हूं क्योंकि शिक्षा और समाज द्वारा जो धारणाएं संस्कार-रूप में मेरे मस्तिष्क में बैठायी गयीं, उनमें यह धारणा सबसे मिथ्या और हानिकर रही है।

मानव-जाति कई कोटियों में विभक्त की जा सकती है, जैसे अमीर और ग़रीब, अच्छे और बुरे लोग, सैनिक और नागरिक, चालाक और बेवकूफ़, आदि। किन्तु हर आदमी का वर्गीकरण का अपना-अपना प्रिय सिद्धांत होता है जिसके अनुसार वह प्रत्येक नये मनुष्य को इस या उस कोटि में अपने आप डाल लिया करता है। जिस समय की बात लिख रहा हूं उस समय वर्गीकरण का मेरा प्रिय सिद्धांत था लोगों को comme il faut और comme il ne faut pas** की दो कोटियों में बांटना। दूसरे वर्ग में फिर उपविभाजन किया गया था। एक वे जो केवल comme il faut नहीं थे, और दूसरे आम लोग। जो comme il faut थे उन्हें मैं अपनी बराबरी के दर्जे में रखता था। जहां तक दूसरी कोटि का प्रश्न था मैं उन्हें उपेक्षाभाव से देखने का दिखावा करता था किन्तु वस्तुतः वह उपेक्षाभाव न था, घृणा थी। उन्हें मैं इस दृष्टि से देखता था मानो वे मुझे व्यक्तिगत हानि पहुंचानेवाले हैं। तीसरी कोटि का मेरे लेखे अस्तित्व ही न था। उन्हें मैं सर्वथा तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखता था। मेरे इस comme il faut—का प्रथम और मुख्य तत्त्व था फ़्रांसीसी भाषा का बढ़िया ज्ञान होना और उसमें भी उत्तम उच्चारण की क्षमता। जो आदमी फ़्रांसीसी

---

*[नेक और ईमानदार व्यक्ति]

**[जो ईमानदार नहीं]

का ठीक से उच्चारण नहीं करता था उसके प्रति फ़ौरन मेरे मन में घृणाभाव जाग उठता था। "तुम जानते ही नहीं तो हम लोगों की तरह वोलने की कोशिश क्यों करते हो?" मैं मन ही मन, तीखे व्यंग्य के साथ उसके प्रति यह प्रश्न करता था। comme il faut की दूसरी शर्त थी–लंवे, साफ़, पालिश किये हुए नाखून। तीसरी थी–झुककर सलाम वजा लाना, नाचने और वातचीत करने की कला का ज्ञान। और चौथी तथा वहुत महत्वपूर्ण शर्त थी, प्रत्येक वस्तु के प्रति उदासीनता और चेहरे पर सदा एक प्रकार का तिरस्कार मिश्रित निरुत्साह का भाव धारण किये रहना। इनके अतिरिक्त मेरे पास कुछ सामान्य-चिन्हों की एक सूची थी जिससे मैं उस आदमी से वातचीत किये विना ही निश्चय कर लिया करता था कि वह किस वर्ग का है। इनमें उसके कमरे के सामानों की सजावट, उसकी मोहर, उसकी लिखावट तथा उसकी गाड़ी और घोड़ों के अतिरिक्त मुख्य थे–उसके पांव। उसके जूते उसकी पतलून के उपयुक्त थे या नहीं, इससे उस आदमी की स्थिति मेरी दृष्टि में तत्काल निर्दिष्ट हो जाती थी। विना एड़ी के, नुकीले अग्रभागवाले जूते और तंग सीट की, विना पांव के तस्मों की पतलून– या चौड़ी मुहरी की पतलून जो पंजों के ऊपर चंदवे की तरह तनी हो यह हुआ 'साधारण'। गोल, तंग पंजे और एड़ीवाले वूट, नीचे की ओर तंग और तस्मेदार–यह हुआ फ़ैशनेवुल कोटि का व्यक्ति। और इसी तरह अन्य भेद हुए।

आश्चर्य की वात यह है कि मेरे जैसा आदमी, जो स्वयं निश्चित रूप से comme il faut कहलाने के योग्य न था ऐसी धारणाओं का शिकार हो। किन्तु सम्भवतः उसके इतने गहरे प्रभाव का कारण ही यह था कि comme il faut वनने में मुझे कठिन प्रयास करना पड़ा था। आज यह सोचकर सिहरन होती है कि जीवन के सवसे मूल्यवान समय का, सोलह की उम्र के आस-पास के समय का अमूल्य भाग मैंने इस गुण को प्राप्त करने के पीछे वरवाद किया। वोलोद्या, दुवकोव या नेख्ल्यूदोव जिनकी

मैं नक़ल कर रहा था, या मेरे अन्य जाने-पहचाने लोग इसे सहज स्वाभाविकता के साथ प्राप्त कर लेते थे। मैं ईर्ष्याभरी दृष्टि से उन्हें देखता और, गुप्त रूप से, सभी चीज़ों में उनकी नक़ल उतारने के लिए कड़ी मेहनत करता। फ़्रांसीसी सीखता, जिसका अभिवादन किया जा रहा हो उसकी ओर देखे विना ही अभिवादन करने की कला का अभ्यास करता, वातचीत का ढंग, नृत्य, कृत्रिम उपेक्षाभाव और निरुत्साह दर्शाने की विद्या, नाखून काटने का खास ढंग (ऐसा करने के लिए मैं कैंची से उंगली का मांस कतर दिया करता था) आदि! अध्यवसाय के साथ इन सारी चीज़ों का अनुकरण करना सीखते हुए भी मुझे निरंतर यह ध्यान वना रहता कि अभी उद्देश्य की प्राप्ति से वहुत दूर हूं। किन्तु कमरे, लिखने की मेज़ और गाड़ी को किस तरह संवारूं कि वे comme il faut दिखें? यह मेरी समझ ही में न आता था यद्यपि व्यावहारिक कामों के प्रति अपनी स्वाभाविक अरुचि के वावजूद मैं इनकी ओर ध्यान देने का प्रयास करता था। पर ये ही चीज़ें थीं कि औरों में आप ही आप संवर जातीं, मानो वे स्वभाव का अंग ही हों। मुझे याद है कि एक वार मैंने अपने नाखून संवारने के लिए वेतरह मेहनत और वक़्त खर्च किया पर कोई नतीजा न निकला। तव मैंने दुवकोव से जिसके नाखून वड़ी ही खूवसूरती से कटे हुए थे पूछा कि क्या वे वहुत दिनों से वैसे ही थे और वह उन्हें किस तरह रखता था। दुवकोव ने जवाव दिया – "मुझे तो याद नहीं कि कभी उन्हें ऐसा वनाने की कोशिश की हो। मैं तो सोच भी नहीं सकता कि किसी भद्र व्यक्ति के नाखून इनसे भिन्न होंगे।" इस जवाव से मेरी छाती में शूल विंध गया था। उस समय मुझे यह नहीं मालूम था कि comme il faut होने की एक खास शर्त यह है कि उसे हासिल करने में की गयी मेहनत और कोशिशों को गुप्त रखा जाय। मेरी राय में comme il faut होना केवल एक सुंदर गुण, वह पूर्णता ही न थी जो मैं प्राप्त करना चाहता था। मैं उसे जीवन की अपरिहार्य शर्त

समझता था, ऐसी शर्त जिसके विना सुख, गौरव या कोई कल्याणकर वस्तु दुनिया में मिल ही नहीं सकती। मेरे सामने कोई विख्यात कलाकर, विद्वान या मानवजाति का कल्याणकर्ता भी आ जाता और वह comme il faut न होता तो मैं उसका आदर न करता। Comme il faut व्यक्ति मेरी दृष्टि में ऐसों से कहीं ऊंचा था। उसने चित्र वनाने का काम चित्रकारों के लिए, संगीत संगीतकारों के लिए, लेखन लेखकों के लिए और मानवकल्याण मानव-जाति के कल्याणकर्ताओं के लिए छोड़ रखा था। वह उनकी इन कामों के लिए प्रशंसा भी कर लेता था। और अच्छाई की, चाहे वह जिस रूप में हो, प्रशंसा क्यों न की जाय? पर वह स्वयं उनके स्तर पर खड़ा हो, ऐसा नहीं हो सकता था। वह comme il faut था और वे comme il faut न थे—वस, उसकी श्रेष्ठता इसी से सावित हो जाती थी। मुझे तो यहां तक लगता था कि यदि मेरे एक भाई या वाप या मां होती जो comme il faut न होती तो मैं वेहिचक कह सकता था कि, यह मेरे लिए दुर्भाग्य की वात है, कि मेरे और उनके वीच पटरी नहीं वैठ सकती। Comme il faut की धारणा के चलते मैंने वहुत-सा वहुमूल्य समय वरवाद किया क्योंकि मुझे उसकी शर्तों को जो मेरे लिए कठिन थीं और जिनके चक्कर में पड़ने के कारण मैं कोई गम्भीर कार्य नहीं कर सकता था, पूरा करने की ही चिन्ता सवार रहती थी। उसने मुझे मानवजाति के दस में नौ भागों के प्रति घृणा और तिरस्कारभाव रखना सिखाया। उसने मुझे comme il faut के दायरे के वाहर की सभी चीज़ों से विमुख करके रखा। किन्तु यह इस धारणा से होनेवाली मेरी मुख्य हानि न थी। मुख्य हानि इस विश्वास में थी कि comme il faut होना समाज में अपने आप ही दर्जा पा जाना है, कि यदि आप comme il faut हैं तो आपको अफ़सर या गाड़ीवान, सैनिक या विद्वान वनने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता नहीं, कि एक वार comme il faut हो जाने पर जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है और आप मानवजाति के वहुसंख्यक भाग से ऊपर उठ जाते हैं।

किशोरावस्था और तरुणावस्था की वयःसन्धि के एक विशिष्ट काल में अनेक भूलों और भटकावों के बाद आम तौर से हर आदमी सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेने की जरूरत महसूस करता है। उस समय वह उद्योग और अव्यवसाय की कोई-सी शाखा चुनकर उसमें जुट जाता है, किन्तु comme il faut व्यक्ति के साथ यह बात नहीं होती। मैंने ऐसे बहुत-से लोगों को जाना है और अब भी जानता हूं, बहुत से बुजुर्ग, गर्वीले, आत्मविश्वासयुक्त और निखरे हुए मत रखनेवालों को, जो परलोक में यह पूछे जाने पर कि "आप कौन हैं? पृथ्वी पर आपने क्या किया?" एक मात्र यही उत्तर दे सकेंगे—« Je fus un homme très comme il faut». *

यही भाग्य मेरी भी प्रतीक्षा कर रहा था।

बत्तीसवां परिच्छेद

युवावस्था

यद्यपि उन गर्मियों में मेरा मस्तिष्क विचारों की भूल-भुलैया बना हुआ था, मैं तरुण, विमल, स्वच्छंद और इसलिए लगभग सुखी था। कई बार बल्कि अक्सर, मैं खूब सवेरे उठ जाया करता। (मैं बरामदे में खुली हवा में सोया करता था और सूर्य की चमकदार तिरछी किरणें मुझे जगाती थीं)। जल्दी से कपड़े बदल, कंधे पर तौलिया और हाथ में फ़्रांसीसी उपन्यास लेकर मैं नदी में, वर्च के झुरमुट की छांह में, स्नान करने चल देता। यह स्थान घर से केवल आधे वर्स्ट की दूरी पर था। छांह में किताब लेकर मैं घास पर लेट जाता। बीच बीच में किताब से दृष्टि हटाकर मैं नदी को देख लिया करता जो प्रातः समीर में तरंगित होती हुई, वृक्षों की छांह से नीली लगती थी। मेरी दृष्टि उस पार के पक रहे

---

* [मैं आद्यंत एक ईमानदार व्यक्ति रहा हूं]

रई के खेतों पर जाती। प्रातःकालीन प्रकाश की रक्तिम किरणें वर्च-वृक्षों के तनों को जो एक कतार में दूर वन तक चले गये थे, लोहित करतीं। मैं चारों ओर ताज़ा तरुणाई से भरी जीवनी-शक्ति से अलसायी, प्रकृति की मस्ती को अपने भीतर महसूस कर प्रमुदित हो उठता। जब आकाश सुबह के छोटे छोटे सफ़ेद बादलों से घिरा होता और स्नान करने के बाद देह कांपने लगती तो मैं निरुद्देश्य वन-प्रांतर और घास के विस्तीर्ण मैदानों में टहलने लगता था जिससे ताज़ा ओस में मेरे जूते तर हो जाते और मेरा मन खिल उठता। अंतिम उपन्यास के नायक मेरे दिवा-स्वप्न में आते और मैं अपने को कभी महान सैनिक, कभी मंत्री, कभी विलक्षण बलशाली व्यक्ति और कभी उद्दाम प्रेमी समझता। आशंकित चित्र से मैं चारों ओर दृष्टि डालता—कहीं 'वह' किसी विस्तीर्ण मैदान अथवा किसी वृक्ष के पीछे से आ तो नहीं रही है? इस मटरगश्ती के दौरान यदि मैं कहीं ऐसी जगह आ निकलता जहां कोई किसान काम कर रहा होता तो साधारण जन के प्रति मेरा सारा उपेक्षाभाव न जाने क्यों मुझे प्रबल स्वतः स्फूर्त झिझक अनुभव करने से न बचा सकता था। मैं उसकी दृष्टि से बचने की कोशिश करता। जब गर्मी ज़्यादा हो जाती और स्त्रियां अभी सुबह की चाय के लिए तैयार न हुई होतीं तो मैं प्रायः बाग़ में जाकर जो भी फल या सब्ज़ी पकी हुई मिलती उसे खाने लगता था। और यह मेरे आनन्द का एक प्रधान साधन था। सेवों के बाग़ में चले जाइए, या रसभरी की लम्बी, घनी झाड़ी में घुसकर बैठिए। ऊपर गर्म, विमल आकाश है और चारों ओर नरकटों से मिली रसभरी की फीकी-हरी कंटीली शाखाएं। गहरे हरे रंग का बिच्छुआ जिसकी पतली फ़ुनगी पर फूल खिले हैं, शोभनीय ढंग से ऊपर फैला हुआ है। जानवर के पंजों जैसा बर्डक जिसके कांटेदार, लाल फूल कृत्रिम दिखते हैं रसभरी की झाड़ी से भी ऊंचा, आपके सिर पर खड़ा हुआ है। कहीं-कहीं तो बिच्छुआ के साथ वह पुराने सेब-वृक्ष की गोल, हाथीदांत की तरह

चमकीले पर अभी कच्चे, और धूप में तपे फलों से लदी डालियों को भी छू लेता है। एक नयी पत्रविहीन और प्रायः सूखी और ऐंठी रसभरी की झाड़ी के नीचे घास के हरे सूई जैसे तिनके पिछले वर्ष के पत्तों में से सूर्य की ओर मस्तक उठाये खड़े हैं। उनके ऊपर ओस की बूंदों का छिड़काव है। वे उस अनन्त छांह में हरी और सम्पन्न होकर बढ़ रही हैं मानो इन्हें इसकी खबर भी नहीं कि सेब पर कितनी कड़ी धूप पड़ रही है।

इस झाड़ी में सदा नमी रहती है। वह घनी और निरंतर छांह, मकड़े के जालों और गिरे हुए सेवों से जो कीचड़ भरी जमीन पर पड़े हुए काले हो रहे हैं, सुवासित है। उसमें से रसभरी और 'ईयरविग' की सुवास उठती है जिसे आप कभी कभी धोखे में रसभरी के साथ खा लेते हैं और तब जल्दी से दूसरी रसभरी मुंह में डालते हैं। आगे बढ़ते हुए, इस झाड़ी में सदा बसनेवाली गौरैयों को आप डरा देते हैं। उद्विग्न स्वर में उनका चों चों करना और नन्हे पंखों को डालियों पर फटफटाना आप सुनते हैं, कहीं आपको शहद की मक्खियों की भनभन ध्वनि सुनाई देती है। रविशों से माली–मूर्खराज आकिम की–जो सदा स्वगत कुछ भुनभुनाया करता है आहट आती है। आप मन में सोचते हैं–"ये तो क्या, दुनिया में कोई भी मुझे इस जगह खोज नहीं सकता।" आप दोनों हाथों से श्वेत तिकोने वृंतों से रसीली रसभरी तोड़ते और स्वाद लेते हुए खाते चले जाते हैं। आपके पैर घुटनों के ऊपर तक भीग गये हैं। कोई बिल्कुल अनर्गल बात आपके मस्तिष्क में लगातार चक्कर लगा रही है (आप हजारों बार लगातार अपने दिमाग़ में दुहराते हैं–अ-अ-औ-र ब-ब-बी-स, अ-अ-औ-र स-स-सा-त)। बिच्छुआ आपके बाहों में चुभ रहा है, यहां तक कि आप की पतलूनों को पार कर चुभ जाता है। सीधी सूर्य किरणें झाड़ी में घुसकर आपका मस्तक तपाने लगती हैं। खाने की इच्छा न जाने कब की मिट चुकी है। फिर भी आप उस

घने झुरमुट में वैठे देख और सुन रहे हैं और आप के हाथ यंत्रवत फलों को तोड़कर मुंह में डालते जा रहे हैं।

लगभग ११ वजे महिलाएं चाय पीकर अपने काम में लग चुकी होतीं तव मैं वैठकखाने में जाता। पहली खिड़की पर तने कोरे परदे के सूराखों में से चमकते सूर्य की किरणें ऐसे चकाचौंध करनेवाले वृत्त अंदर डालती हैं कि उनमें पड़नेवाली चीज़ों पर आंखें नहीं टिक सकतीं। खिड़की के पास कसीदाकारी का फ़्रेम रखा हुआ है। फ़्रेम में तने सफ़ेद कपड़े पर मक्खियां मस्ती से चहल-कदमी कर रही हैं। फ़्रेम के पास वैठकर मीमी लगातार गुस्से से सिर हिला रही है और धूप से वचने के लिए एक जगह से दूसरी जगह स्थान वदल रही हैं। पर धूप है कि कहीं न कहीं से पहुंचकर हमला कर देती है और कभी उनके हाथ और कभी चेहरे पर जा पड़ती है। वह धूप अन्य तीन खिड़कियों से भी फ़्रेम के साये के साथ पड़ रही है जिससे वर्गाकार खण्ड वन रहे हैं। इनमें से एक पर, अपनी प्राचीन आदत के अनुसार मिल्का विनारंगे फ़र्श पर लेटी हुई मक्खियों को प्रकाश के वर्ग पर टहलते देख रही थी। कातेन्का सोफ़े पर वैठी वुनाई कर रही है या पढ़ रही है। मक्खियां उसकी सघन सुनहली अलकों पर आकर भनभनाती हैं। वह अधीरता के साथ अपने श्वेत हाथों को, जो तेज़ प्रकाश में पारदर्शी से लगते हैं, हिलाकर उन्हें भगा देती है। ल्यूवोच्का या तो पीछे हाथ वांधे कमरे में उस समय तक टहलती रहती है जव तक सभी वाग़ में नहीं चले जाते, या प्यानो पर कोई धुन वजाती है जिसका एक-एक अंश मेरे लिए कभी से सुपरिचित हो चुका है। मैं भी कहीं वैठ जाता हूं और संगीत सुनता हूं या पढ़ाई करता हूं और उस समय तक प्रतीक्षा करता हूं जव मैं स्वयं प्यानो वजाने वैठ सकूंगा। भोजन के वाद वहुधा लड़कियों पर अनुग्रह करता हुआ मैं उनके साथ घुड़सवारी करने निकलता हूं (पैदल टहलना मैं अपनी उम्र और सामाजिक स्थिति के लिए अनुपयुक्त मानता हूं।) मैं लड़कियों को

असाधारण स्थलों और जंगली सूखे नालों में लिवा जाता हूं। हमारी यह सैर आनंदप्रद होती है। कभी कभी हमें ऐसी साहसिक घटनाओं का सामना करना पड़ता है जिसमें मैं अपनी जवानी का परिचय देता हूं और महिलाएं मेरी घुड़सवारी और बहादुरी की तारीफ़ करती हैं और मुझे अपना संरक्षक मानती हैं। शाम को अगर कोई बाहर के मिलनेवाले न रहें तो चाय, छांहदार सायवान में पी जाती है। इसके बाद पिताजी के साथ ज़मींदारी के कामों से थोड़ा बाहर घूम आने के बाद मैं सायवान में अपनी पुरानी जगह पर लेट जाता हूं और कातेन्का अथवा ल्यूबोच्का का संगीत सुनता हुआ पहले की भांति पढ़ता और सपनों के संसार में विचरण करता हूं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मैं बैठकख़ाने में ल्यूबोच्का के साथ अकेला रह जाता हूं, वह कोई प्राचीन धुन बजा रही है। मैं किताब छोड़कर छज्जे के खुले दरवाज़े के उस पार ऊंचे बर्च-वृक्ष की घुंघराली, लदरायी डालों (जिनपर शाम का झुटपुटा अभी से छाना शुरू हो गया है) और विमल आकाश को टकटकी लगाकर देखता रहता हूं। विमल आकाश को यदि देर तक टक लगाकर देखा जाय तो अकस्मात् धूलभरा, पीला धब्बा दृष्टिगत होगा और उसी प्रकार अचानक अंतर्द्धान भी हो जायगा। मैं बड़े कमरे से आनेवाली संगीत की धुनें, फाटक की चरमराहट तथा शाम को घर लौट रहे मवेशियों और औरतों की आवाज़ें सुनता हूं। और तब अनायास चित्र की भांति नाताल्या साविश्ना और अम्मा और कार्ल इवानिच मेरे सामने आ खड़े होते हैं और मेरा मन विषाद से भर उठता है। किंतु हमारे जीवन के इस काल में आत्मा ज़िंदगी और उम्मीद से इतनी भरीपूरी थी कि ये स्मृतियां केवल एक क्षण के लिए अपने पंखों से मुझे स्पर्शमात्र करके उड़ जाती थीं।

रात के भोजन और प्रायः किसी के साथ बाग़ में थोड़ा टहलने के बाद (अकेले बाग़ के अंधेरे कोनों से मुझे डर लगता था) मैं सायवान

के फ़र्श पर सो जाता था। यहां लाखों मच्छर मानो मुझे निगल जाने को तैयार थे, पर यहीं सोने में मुझे आनन्द आता था। पूर्ण-चन्द्र की रातें मैं बहुधा तोशक पर बैठकर काट दिया करता था। प्रकाश और छांह आती, निस्तब्धता और कोलाहल सुनाई देते, मन विभिन्न विषयों के चिन्तन में डूबा रहता। इस चिन्तन में कविता तथा विषय-वासना की प्रधानता होती थी। उन दिनों में यह मुझे जीवन के चरम सुख ज्ञात होते थे और उनके बारे में सोचकर मुझे मलाल आता था क्योंकि अभी तक मेरे भाग्य में इनकी कल्पना करना मात्र लिखा था। कभी कभी ज्योंही सभी सोने के लिए विदा हो जाते और बैठकखाने की रोशनी कोठे के कमरों में चली जाती जहां उसके पहुंचने के साथ ही औरतों की बातचीत और खिड़कियों को खोलने और बंद करने की आवाज़ें सुनाई देने लगतीं त्यों ही मैं सायवान में जाकर चहल-कदमी करने लगता और पूरे परिवार के नींद में बेखबर हो जाने तक घर की प्रत्येक ध्वनि को गहरी उत्सुकता के साथ सुना करता। जब तक उस सुख का जिसकी मैं कल्पना किया करता था एक अंश भी प्राप्त करने की तुच्छ से तुच्छ, आधारहीन आशा शेष थी, मैं अपने लिए सुख-स्वर्ग की सुस्थिर होकर कल्पना नहीं कर सकता था।

नंगे पांवों चलने की हर आहट, खांसने, आह भरने की आवाज़ों, खिड़की की ज़रा भी 'खट' या पोशाक की सरसराहट पर मैं बिस्तर से उछल पड़ता और खड़ा होकर चोरी से झांकने लगता और आहट लेता। बिना किसी दृष्ट कारण के मैं उत्तेजित हो उठता था। लेकिन कोठे की खिड़कियों की रोशनी तत्काल ही बुझ जाती। पद ध्वनि और बातचीत की आहटें खर्राटों में बदल जाती हैं। रात का संतरी डण्डे खटखटाने लगता है। खिड़कियों से आनेवाले लाल प्रकाश-स्तम्भों के मिट जाने के साथ बाग़ और उदास दिखने लगता है। घर की आख़िरी मोमबत्ती भण्डारघर से ओस से भरे बाग़ में पतली प्रकाश-किरण फेंकती

हुई दालान में चली जाती है। खिड़की से दुलाई लपेटे फ़ोका की मूर्ति दिखाई देती है। वह मोमवत्ती लिये सोने जा रहा है। मैं प्रायः छिपकर घर के काले साये में से होता हुआ नम घास पर चलकर दालान की खिड़की के पास चला जाता हूं। वहां खड़े होकर मैं वालक नौकर के खर्राटों और फ़ोका की (जो समझता था कि वह अकेला है) कराहों को और वड़ी देर तक चलनेवाली उसकी प्रभु-प्रार्थना की आवाज़ों को सुनता रहता हूं। इसमें मुझे उत्तेजनापूर्ण आनंद प्राप्त होता था। अंत में उसकी मोमवत्ती भी वुझ जाती, खिड़की वंद हो जाती और मैं विल्कुल अकेला रह जाता। उस समय अपने चारों ओर नज़र दौड़ाता हुआ कि कोई गोरी युवती झाड़ियों में या मेरे विस्तर के पास आयी तो नहीं है, मैं तेज़ी से सायवान में लौट आता था। तव वाग़ की ओर मुंह कर, और जहां तक सम्भव था मच्छरों और चमगादड़ों से अपने को ढककर मैं वाग़ को देखता, रात्रि की ध्वनियों को सुनता और प्रेम तथा सुख की कल्पनाओं में डूव जाता।

तव हर चीज़ मेरे लिए एक नया अर्थ धारण कर लेती थी। प्राचीन वर्च-वृक्ष जिसकी शाखाएं एक ओर चांदनी में चमक रहीं और दूसरी ओर झाड़ियों और सड़क पर अंधकार डाल रही थीं, पुष्करणी की नीरव, दीप्त चमक जो फूलती हुई ध्वनि की भांति अधिकाधिक दैदीप्यमान होती जा रही थी, सायवान के सामने के फूल जो सफ़ेद क्यारियों के ऊपर अपनी शोभामय छांह डाल रहे थे, ओस की वूंदों का चन्द्रकिरण में चमकना, सड़क पर किसी जानेवाले की आवाज़, दो प्राचीन वर्च-वृक्षों का शांत तथा लगभग न सुनाई देनेवाली ध्वनि के साथ आपस में रगड़ना, मेरे कानों के पास और कम्वल के नीचे मच्छरों की भनभन, सूखी डाल पर अटके पके सेव का नीचे विछी सूखी पत्तियों पर आ गिरना, मेंढकों का उछलना (ये कभी कभी सायवान की सीढ़ियों तक आ जाते और उनकी हरी पीठ चांदनी में रहस्यमय ढंग से

चमकती थी)—इन सभी चीज़ों ने मेरे लिए विलक्षण महत्व धारण कर लिया, एक अवर्णनीय सुषमा और अनन्त आनंद का महत्व। और तब 'वह' आयी—लम्बे काले केशों की वेणी, उभरे वक्ष, सदा विषादयुक्त और अतीव सुंदर, नंगी बांहें और वासना भरे आलिंगनों के साथ। वह मुझे प्यार करती है और उसके प्यार के एक क्षण, बस एक क्षण के लिए, मैं अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर देता हूं। पर चन्द्रमा आकाश में चढ़ता गया—ऊपर, और ऊपर। उसका प्रकाश दीप्त होता गया—दीप्त, और दीप्त। ध्वनि की तरह फैली पुष्करणी की अद्भुत चमक विमल होती गयी—विमल और अधिक विमल। छांह काली होती गयी—काली, और अधिक काली। प्रकाश पारदर्शी होता गया—पारदर्शी, और अधिक पारदर्शी। जब मैं इन्हें देख और सुन रहा था, किसी ने मेरे कानों में कहा कि, नंगी बांहों और आवेगपूर्ण आलिंगनों वाली 'वह' चरम सुख न थी और न उसके प्रति प्रेम चरम स्वर्ग-सुख था। जितनी ही अधिक मैं टकटकी बांधकर ऊंचे, पूर्ण चंद्र को देखता रहा उतना ही अधिक मैंने अनुभव किया कि वास्तविक सौंदर्य और स्वर्ग-सुख अधिकाधिक उच्च, विमल तथा उस प्रभु के निकट हैं जो सभी सौंदर्य और स्वर्ग सुखों का स्रोत है। इस भावना के साथ मेरी आंखों में असंतुष्ट किन्तु उत्तेजनापूर्ण आनन्द के आंसू बह चले।

फिर भी मैं अकेला था, और फिर भी मुझे ऐसा भास हो रहा था कि यह रहस्यमय भव्य प्रकृति तथा मैं एक हूं—वह रहस्यमय, भव्य प्रकृति जिसने चमकीले चन्द्र-मण्डल को खींच कर किसी कारणवश नीलाभ आकाश के ऊंचे किन्तु अनिश्चित स्थल पर खड़ा कर रखा था और जिसने साथ ही अपरिमित, अथाह अंतरिक्ष को भी भर रखा था, और मैं जो एक ऐसा तुच्छातितुच्छ कीटाणु हूं कि अभी ही समस्त टुच्चे दुनियावी विकारों का भण्डार बन चुका हूं किन्तु जिसमें साथ ही कल्पना और प्रेम की अनन्त शक्ति है।

तैंतीसवां परिच्छेद

पड़ौसी

गांव आने के पहले ही दिन जब मैंने पिताजी को एपिफ़ानोव परिवार की तारीफ़ करते हुए सुना तो मुझे आश्चर्य हुआ। मुझे और भी अधिक आश्चर्य तब हुआ जब मैंने उन्हें उनके यहां जाते देखा। एपिफानोव और हमारे परिवार के बीच बहुत दिनों से मुक़द्दमेबाज़ी चल रही थी। बचपन के दिनों में मैंने पिताजी को कई बार इस मुक़द्दमे को लेकर झल्लाते तथा एपिफानोव परिवार वालों को कोसते सुना था और उनसे अपने बचाव के लिए (मेरी उस समय ऐसी ही धारणा थी) तरह तरह के लोगों को अपने यहां बुलाते देखा था। याकोव ने कई बार उन्हें हमारा दुश्मन और 'शैतान की जात' कहा था। मुझे यह भी याद है कि एक बार अम्मा ने उनके घर के अंदर या उनकी उपस्थिति में किसी को इस परिवार का नाम लेने से भी मना किया था।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मैंने अपने बाल्यकाल में एपिफ़ानोव परिवार के बारे में यह स्पष्ट धारणा बना ली थी कि वे हमारे शत्रु हैं जो पकड़ पाने पर पिताजी का ही नहीं, उनके बच्चों का भी गला काट या घोंट डालेंगे। मैं उन्हें शाब्दिक अर्थों में 'शैतान की जात' समझता था। अतः जब अम्मा की मृत्यु के समय मैंने अवदोत्या वासील्येवना एपिफ़ानोवा, la belle Flamande,* को उनकी शुश्रूषा में लगा देखा, तो बड़ी कठिनाई से यह विश्वास कर सका था कि वह उसी परिवार की एक सदस्या है। और अभी तक इस परिवार के बारे में मैं बहुत ही हीन राय रखता था। इन गर्मियों में उन लोगों से हमारी कई बार मुलाक़ात हुई पर पूरे परिवार के प्रति हमारा प्रबल पूर्वाग्रह कायम था। वास्तव में एपिफ़ानोव परिवार के सम्बन्ध में

---

*[फ़्लेमिश सुन्दरी]

यह वात सच भी थी। परिवार में तीन जने थे—पचास वर्षीय विधवा मां जो अब भी ताज़ादम और हंसमुख थीं, उनकी सुंदर पुत्री अवदोत्या वासील्येवना और उनका बेटा प्योत्र वासील्येविच जो हकलाता था, जो फ़ौज का अवकाशप्राप्त लेफ़्टिनेंट तथा बड़ी ही गम्भीर प्रकृतिवाला क्वारा युवक था।

विधवा होने से पहले आन्ना द्मीत्रीएवना एपिफ़ानोवा बीस वर्षों से पति से अलग होकर रह रही थीं। वे पीतर्सवर्ग में रहतीं जहां उनके कई रिश्तेदार थे। पर अधिकतर उनका निवास मितीश्ची ग्राम में हुआ करता था जो हमारे गांव से तीन वर्स्ट की दूरी पर था। उनके रहन-सहन और आचरण के सम्बन्ध में पास-पड़ोस में ऐसी कुत्सित कहानियां फैली हुई थीं कि उनकी तुलना में मेसालिना का चरित्र भी फीका पड़ जाता था। इन सारे कारणों से अम्मा ने सभी से अनुरोध कर रखा था कि उनके सामने घर में एपिफ़ानोवा का नाम तक न लिया जाय। किन्तु यदि व्यंग्य की वात बिल्कुल छोड़ दी जाय तो चारों ओर देहात के पड़ोसियों द्वारा फैलायीं कलंक-कहानियों का, जिनसे अधिक द्वेषपूर्ण कुछ भी नहीं हो सकता, दसवां अंश भी विश्वास करना असम्भव है। किन्तु जिन दिनों मैंने आन्ना द्मीत्रीएवना का परिचय पाया था मित्यूशा नामक एक छैला उनका कारबार संभाला करता था। उसके केश बराबर पोमेड से घुंघराले किये रहते थे। वह च्किर्कासियन फ़ैशन का कोट पहने भोजन के समय आन्ना द्मीत्रीएवना की कुर्सी के पीछे खड़ा रहा करता था और वह मेहमानों से फ़्रांसीसी भाषा में उसके चेहरे और आंखों की खूबसूरती का मुलाहिज़ा फरमाने को कहा करती थीं। पर उनके विषय में फैलाये गये कुत्सित आरोपों जैसी कोई वात उस समय न थी। बल्कि, ऐसा प्रगट होता था कि पिछले दस वर्षों में, जब से आन्ना द्मीत्रीएवना ने अपने आज्ञाकारी पुत्र पेत्रूशा को फ़ौज की नौकरी छुड़ाकर घर बुला लिया था, उन्होंने अपना जीवनक्रम बिलकुल बदल डाला था।

आन्ना द्मीत्रीएवना की जमींदारी छोटी थी–कुल सौ रैयतों की। और अपने रासरंग के दिनों में उन्होंने इस क़दर दौलत लुटायी थी कि दस वर्ष पहले उनकी सारी जायदाद वंधक और डवल वंधक में फंस गयी थी। उसे नीलाम होने से वचाना कठिन काम था। आन्ना द्मीत्रीएवना का ख्याल था कि मुंसिफ़ का आना, उनके माल-असवाव की सूची तैयार किया जाना और उसे रिसीवर के हाथ सौंपने की तैयारियां – ये सारी अप्रिय कार्रवाइयां उन्हें केवल इसलिए वर्दाश्त करनी पड़ रही थीं कि वे अवला थीं। अतः उन्होंने फ़ौज में अपने वेटे को लिखा कि, फ़ौरन आकर मां को आफ़त से वचाये।

प्योत्र वासील्येविच की फ़ौज की नौकरी जमी हुई थी और वह शीघ्र ही स्वतंत्र हो जाने की आशा कर रहा था। पर उसने सव कुछ त्याग दिया और, जैसा कि सच्ची ईमानदारी के साथ उसने अपनी चिट्ठियों में लिखा था, वृद्धावस्था में मां की सेवा करने को ही अपना प्रथम कर्तव्य मान कर फ़ौज से अवकाश ग्रहण किया और गांव चला आया।

देखने-सुनने में अरूप, भाव-भंगिमा में भद्दा और हकलानेवाला होने के वावजूद प्योत्र वासील्येविच दृढ़ सिद्धांतों और असाधारण व्यावहारिक सूझ-वूझ का आदमी था। उसने छोटी मोटी रकमें कर्ज़ लीं, किसी से अनुनय और किसी से वादे या समझौते किये। और इस प्रकार किसी तरह जायदाद को कब्ज़े में रखा। ज़मींदारी का इंतज़ाम उसने अपने हाथों में ले लिया। भाण्डारघर में वाप का रखा रोयेंदार कालर वाला एक कोट था। उसे ही उसने धारण किया, गाड़ी-घोड़ों को वेच दिया, मितीश्ची में मेहमानों का आना-जाना कम करा दिया, आवपाशी का इंतज़ाम किया, जोत की ज़मीन वढ़ायी, रैयतों की ज़मीन घटायी, अपने जंगल से लकड़ियां कटवाकर वाज़ार में अच्छे दामों विकवाईं, और इस प्रकार गृहस्थी संभाल ली। प्योत्र वासील्येविच ने प्रण किया (और उसे निभाया भी) कि, जव तक घर का सारा कर्ज़ अदा नहीं हो जायगा वाप का 'वेकेशा' और

खुद अपना तैयार कराया किरमिच का कोट छोड़कर दूसरी पोशाक न पहनूंगा और किसानों के हल जोतनेवाले घोड़ों की देहाती गाड़ी छोड़कर और किसी सवारी पर न चढूंगा। मां का पूरा मान करते हुए (इसे वह अपना पवित्र कर्तव्य समझता था) उसने अपना वैराग्यपूर्ण जीवन समूचे परिवार पर लादने का प्रयत्न किया। बैठकखाने में वह हकलाता हुआ मां के हर इशारे पर नाचता, उनकी एक एक इच्छा को पूरी करता और यदि कोई उनका हुक्म न बजा लाता तो उसे डांटता। पर अपने अध्ययन कक्ष या दफ़्तर में, पहुंचकर उसका रूप बदल जाता। उससे बिना पूछे रसोई में बत्तख क्यों पकी? आन्ना द्मीत्रीएवना के कहने पर फलां असामी पड़ोसी के यहां उसके स्वास्थ्य का हालचाल लेने क्यों भेजा गया? किसान-लड़कियों को बाग़ में घास उखाड़ने की जगह जंगल से रसभरी लाने को क्यों भेजा गया?

चार साल में सारा कर्ज़ अदा हो गया और प्योत्र वासील्येविच मास्को से नये कपड़े और एक तारान्तास (गाड़ी) लेकर लौटा। वह सम्पन्न हो गया पर अपनी आत्मनिषेधात्मक प्रवृत्तियां नहीं त्यागीं। इसमें वह गर्व अनुभव करता और अपने परिवार तथा बाहर के लोगों के सामने उसे व्यक्त भी करता था। बहुधा हकलाते हुए वह कहता – "जो वास्तव में मुझसे मिलना चाहता है, उसे मुझे भेड़ की खाल का कोट पहने देखकर भी प्रसन्नता होनी चाहिए। वह मेरे यहां का करमकल्ले का शोरबा और खिचड़ी खाकर भी खुश रहेगा – क्योंकि मैं स्वयं यही खाता हूं।" उसके हर शब्द और हर चेष्टा से गर्व प्रगट होता था जिसका आधार थी यह चेतना कि उसने अपनी मां के हेतु अपने को पूर्णतः न्योछावर कर दिया और जायदाद का उद्धार किया था। दूसरों के प्रति उसके शब्दों और चेष्टाओं में तिरस्कार भाव व्यक्त होता था, क्योंकि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया था।

मां और बेटी का स्वभाव उसके स्वभाव से सम्पूर्णतया भिन्न था। उनमें परस्पर भी कई वस्तुओं में बड़ी भिन्नता थी। मां समाज की सबसे

खुशदिल और मिलनसार महिलाओं में थी – सदा एक समान हंसमुख रहनेवाली वह वास्तव में बड़ी मस्त तबीयत की महिला थी। उसमें युवक-युवतियों को आनंद मनाते देखकर खुश होने की वह क्षमता थी जो केवल अत्यन्त हंसमुख वूढ़ों में ही पायी जाती है। इसके विपरीत, उसकी पुत्री अवदोत्या वासील्येवना गम्भीर प्रकृति की थी, या यों कहें कि वह स्वभाव की विलक्षण, उदासीन, अपने आप में डूबी रहनेवाली, अकारण ही गर्वीली थी जो आम तौर पर अविवाहित सुंदरियों की प्रकृति हुआ करती है। यदि वह कभी हंसोड़ बनने की कोशिश भी करती तो उसकी हंसी कुछ विचित्र होती – ऐसा लगता कि वह अपने आप पर, या जिनसे बात कर रही है उनपर, अथवा सारी दुनिया पर हंस रही है यद्यपि सम्भवतः ऐसा करने का उसका इरादा न होता था। मैं प्रायः अचरज के साथ सोचता था कि ऐसी उक्तियों से जैसे – "हां, मैं अत्यन्त खूबसूरत हूं", या "बेशक सभी मेरे प्रेम में फंसे हुए हैं," उसका क्या मतलब होता। आन्ना दमीत्रीएवना सदा सक्रिय रहतीं। उन्हें घर के प्रबंध और बाग़बानी तथा फूलों, तोतों और खूबसूरत चीज़ों का बहुत शौक था। उनके अपने कमरे और बाग़ न बड़े थे और न ही उनमें बहुत सजधज थी। किन्तु प्रत्येक वस्तु इतनी सुथरी, इतने क़रीने से सजाई हुई और सबपर सुललित प्रमोद का ऐसा रंग चढ़ा हुआ होता था – वह सुललित प्रमोदपूर्ण रंग जो प्रायः वाल्ज़ या पोल्का में अभिव्यक्त होता है – कि 'गुड़िया जैसा' शब्द उनके लिए सर्वथा उपयुक्त था। अतिथिगण बहुधा प्रशंसा में इस शब्द का प्रयोग करते थे और वह आन्ना दमीत्रीएवना के साफ़-सुथरे बाग़ और घर के लिए सोलहों आने उपयुक्त भी था।

और आन्ना दमीत्रीएवना स्वयं भी गुड़िया जैसी थीं – डीलडौल में छोटी, पतली, शान्तिपूर्ण चेहरा, खूबसूरत नन्हे हाथ, सदा प्रमोदपूर्ण और सर्वदा शोभनीय पोशाक पहने। उनकी इस आकृति में केवल एक त्रुटि थी – उनके नन्हे हाथों में उभरी हुई कुछ लाल लाल-सी नसें।

इसके विपरीत, अवदोत्या वासील्येवना शायद ही कभी हाथ-पांव हिलाती हों। फूलों और भांति-भांति की नन्ही सुंदर वस्तुओं का शौक़ करना तो दूर रहा, वह स्वयं अपनी वेषभूषा का भी ख्याल न रखती थीं और आगंतुकों के आ जाने पर उन्हें सदा कपड़े बदल आने के लिए भागना पड़ता था। पर जिस समय वह कपड़े बदलकर कमरे में आ जातीं, उस समय असाधारण सुंदरी ज्ञात होतीं, सिवाय केवल आंखों और मुसकान के शीतल और एकरस भाव के जो सुंदर चेहरों की विशेषता है। उनका अत्यंत सुडौल और सुंदर चेहरा तथा भव्य आकार मानो निरंतर सभी को चुनौती देता था—"चाहो तो देखते रहो मुझे।"

किन्तु मां के चुलबुलेपन और बेटी के उपेक्षापूर्ण, आत्मरत भाव के बावजूद, कुछ ऐसी बात थी जो बताये देती थी कि मां ने ख़ूबसूरती और मस्ती को छोड़कर जीवन में और किसी वस्तु को प्यार नहीं किया और इसके विपरीत अवदोत्या वासील्येवना उस प्रकृति के व्यक्तियों में थीं जो एक बार किसी को प्यार करने पर उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं।

चौंतीसवां परिच्छेद

पिताजी का विवाह

जिस समय पिताजी ने अवदोत्या वासील्येवना एपिफ़ानोवा के साथ अपनी दूसरी शादी की, तब उनकी अवस्था अड़तालीस साल की थी।

मेरा ख्याल है कि जिस समय पिताजी लड़कियों को साथ लेकर अकेले ही देहात में आये थे उस समय वे उस प्रमुदित और मिलनसार मानसिक स्थिति में थे जो जुआरियों की खासी रक़म जीतकर खेलना छोड़ देने के बाद हुआ करती है। उनका विचार था कि सौभाग्य का अक्षय कोष अब भी उनके पास शेष है और यदि उसे उन्होंने जुए में न गवां

दिया तो जीवन में आम सफलता प्राप्त करने के लिए उसका उपयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, अभी वसंत-ऋतु थी, उनके पास अप्रत्याशित रूप से एक धन-राशि जमा हो गयी थी, तथा वह एकाकी एवं ऊबे हुए थे। कार-बार के झंझटों पर याकोव के साथ मशविरा करते हुए उन्हें एपिफ़ानोव परिवार के साथ चल रही अंतहीन मुक़द्दमेबाज़ी की और साथ ही सुंदरी अवदोत्या एपिफ़ानोवा की जिसे उन्होंने बहुत दिनों से न देखा था, याद आयी होगी और उन्होंने याकोव से कहा होगा – "जानते हो याकोव खार्लामिच, मेरा ख्याल है कि आफ़त की जड़ ज़मीन के इस छोटे-से टुकड़े को छोड़ ही देना चाहिए। क्यों, तुम्हारी क्या राय है?" और मैं कल्पना करता हूं कि याकोव की उंगलियां पीठ पीछे इस प्रश्न के उत्तर में 'न' का संकेत करने की चेष्टा में एक बार घूम गयी होंगी और उसने मन में कहा होगा – "हक़ तो हमारा ही पड़ता है, प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच।"

पर पिताजी ने 'गाड़ी' जोतने को कहा, अपना फ़ैशनेबुल ज़ैतूनी कोट पहना, सिर के बचे-खुचे बालों को ब्रुश से संवारा, रूमाल में इत्र छिड़का, और प्रमुदित मन से – जिसके पीछे यह प्रेरणा थी कि वह सच्चे अभिजात्य का परिचय दे रहे हैं, और मुख्यतः थी – एक रूपसी का दर्शन पाने की आशा, पड़ोसी के घर चल दिये।

मैं इतना ही जानता हूं कि पिताजी की प्योत्र वासील्येविच से जो खेत पर गये हुए थे मुलाक़ात न हो सकी और उन्होंने घंटा या दो घंटे महिलाओं के संग बिताये। मैं कल्पना कर सकता हूं कि अपने मुलायम जूतों से फर्श को थपथपाते हुए, फुसफुसाते और नजरें चलाते हुए वह उस समय ख़ुशमिज़ाजी के अवतार बने हुए थे। मैं यह भी कल्पना कर सकता हूं कि प्रमोदशील नाटी बूढ़ी स्त्री में अकस्मात उनके प्रति स्नेह जाग उठा होगा और उनकी उदासीन तथा सुंदर बेटी भी जानदार बन गयी होगी।

जब दासी हांफती हुई प्योत्र वासील्येविच के पास पहुंची और उनसे कहा कि बुड्ढा इर्तेन्येव ख़ुद मिलने के लिए आया हुआ है तो उन्होंने गुस्से

से जवाव दिया—"आया है तो क्या? किस लिए?" यह कहकर उन्होंने जितना अधिक समय लौटने में लगा सकते थे लगाया और सम्भवतः अध्ययन कक्ष में जाकर जानबूझकर अपना गंदा कोट पहना और वावर्ची को हिदायत दी कि किसी भी हालत में, महिलाएं कहें तव भी नहीं, भोजन का कोई विशेष सामान न तैयार किया जाय।

वाद में मैंने पिताजी को कई वार एपिफ़ानोव के संग देखा। अतः मैं कल्पना कर सकता हूं कि दोनों की उस पहली मुलाक़ात में क्या हुआ होगा। जो हुआ होगा वह यह है—पिताजी ने मुक़द्दमा तसफीया कर लेने की वात कही। फिर भी प्योत्र वासील्येविच नाराज़ और मुंह लटकाये हुए रहे क्योंकि उन्होंने अपनी मां के लिए अपना भावी जीवन न्योछावर कर दिया था जव कि पिताजी को ऐसा कोई त्याग न करना पड़ा था। पर पिताजी ने मानों उनकी उदासी लक्ष्य ही न की और हंसी के चुटकुले छोड़ते रहे। वे ऐसा वने हुए थे मानो प्योत्र वासील्येविच जैसे ख़ुशवाश आदमी से उनकी कभी भेंट ही न हुई हो। इससे कभी कभी वह वुरा भी मान जाता था और कभी कभी संकल्प के विपरीत उसे हंसना भी पड़ता था। पिताजी की आदत सभी चीज़ों को मज़ाक़ में परिवर्तित कर देने की थी। अतः वे अकारण ही प्योत्र वासील्येविच को कर्नल कहकर पुकारने लगे। कर्नल कहे जाने पर उनका चेहरा लाल हो गया और हमेशा से अधिक हकलाते हुए एक वार मेरे सामने उन्होंने कहा कि—"मैं क-क-कर्नल नहीं ले-ले-ले-फ़्टिनेंट हूं"। तो भी पांच ही मिनट वाद पिताजी ने उन्हें फिर कर्नल कहकर पुकारा।

ल्यूवोच्का ने मुझे वताया कि हम लोगों के गांव आने से पहले एपिफ़ानोव परिवार से रोज़ मुलाक़ातें हुआ करती थीं और वड़ा मज़ा आता था। पिताजी में यह गुण था कि हर चीज़ में मौलिकता और विनोद का पुट डाल देते थे, और साथ ही सादगी और ख़ूवसूरती वरक़रार रखते थे। इस गुण के साथ उन्होंने जानवरों और मछली के शिकार के कई आयोजन

किये। एक वार आतिशबाज़ी का भी प्रदर्शन कराया गया जिसमें एपिफ़ानोव परिवार के सदस्य उपस्थित थे। और ल्यूवोच्का के कथनानुसार, सारा आयोजन और भी अधिक मज़ेदार होता यदि प्योत्र वासील्येविच ने हर वात में ओंठ विचका और हकलाकर मज़ा किरकिरा न कर दिया होता।

हम लोगों के पहुंचने के वाद एपिफ़ानोव परिवार के सदस्य केवल दो वार मिलने आये और एक वार हम उनके घर गये। किन्तु सेंट पीटर के पर्व के वाद से (यह पिताजी का नाम-दिवस था और इस दिन एपिफ़ानोव परिवार के सदस्य और वहुत-से अन्य लोग हमारे यहां आये थे) एपिफ़ानोव-परिवार के साथ हम लोगों का सम्बन्ध समाप्त हो गया। अव पिताजी अकेले ही उन लोगों से मिलने जाया करते थे।

उन संक्षिप्त अवधियों में जव मुझे पिताजी और दूनेच्का को (उसकी मां उसे यही कहकर पुकारती थी) साथ देखने का अवसर मिला, मैंने देखा – पिताजी सदा उस प्रमुदित अवस्था में रहते थे जिसमें मैंने उन्हें आने के दिन देखा था। उनमें इतनी मस्ती और तरुणाई, चपलता और आनन्द था कि उसका असर चारों ओर विखरा पड़ता था और उनके आस-पास के सभी लोगों को अपने रंग में सराबोर किये डालता था। जव तक अवदोत्या वासील्येवना कमरे में रही तव तक वे एक क्षण के लिए भी उनके पास से नहीं हटे और मीठी ख़ुशामद से भरे ऐसे शब्द कहते रहे कि मुझे शर्म मालूम होने लगी। वे वैठकर चुपचाप टकटकी वांधे उन्हें ही देखते और अपने कंधों को आवेगपूर्ण तथा आत्मसंतोष की दृष्टि से हिलाते और खांसते रहें। कभी कभी वे मुसकुराकर उनके कान में कुछ फुसफुसा देते थे। किन्तु यह सारा काम वे उसी विनोदशील भाव से कर रहे थे जो गम्भीर से गम्भीर विषयों में भी उनकी विशिष्टता थी।

ऐसा ज्ञात होता था कि पिताजी की प्रसन्नता का असर अवदोत्या वासील्येवना पर भी पड़ा। प्रसन्नता उनकी वड़ी वड़ी नीली आंखों से

निरंतर फूटी पड़ती थी। केवल बीच बीच में अनायास ही शर्मीलेपन का ऐसा दौरा आ जाता था कि मुझे यह देखकर कष्ट होता क्योंकि मैं स्वयं यह भोग चुका था। उस समय उन्हें देखते हुए भी मुझे तकलीफ़ होती थी। ऐसे दौरों के वक़्त उन्हें देखकर ही ज्ञात हो जाता था कि वह हर दृष्टि, हर चेष्टा से सिहर उठती थीं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था मानों सभी लोग उन्हें ही घूर रहे हैं, उन्हीं के बारे में सोच रहे हैं और उनकी सारी चीज़ों पर आक्षेप कर रहे हैं। वह सहमी सहमी दृष्टि से सब की ओर देखती थीं। चेहरे पर रंग आता और जाता था। उस समय वह ज़ोर ज़ोर और हिम्मत के साथ बोलने लगती थीं और जो बोलतीं वह अधिकतर निरर्थक होता। उन्हें स्वयं ऐसी चेतना थी और यह भी भान कि पिताजी समेत सभी उनकी बात सुन रहे हैं। तब वह और भी शर्मा जाती थीं। ऐसे समय पिताजी यह नहीं सोचते थे कि वह नितांत निरर्थक वार्तालाप कर रही हैं। उल्टे वह और भी अधिक आवेगयुक्त ढंग से खांसना और आनंद की अनुभूति से ओत-प्रोत होकर निहारना जारी रखते थे। मैंने ग़ौर किया था कि शर्मीलेपन के दौरे उनके ऊपर अकारण ही आया करते थे। पर प्रायः वे पिताजी के सामने किसी तरुण और सुंदर स्त्री का नाम लेते ही आ जाया करते थे। विचारपूर्ण मुद्रा से सहसा विचित्र, बेडौल प्रफुल्लता की उस मानसिक स्थिति में आ जाना जिसके बारे में मैं बता चुका हूं पिताजी के प्रिय शब्दों और मुहावरों को दुहराना तथा पिताजी के साथ हुई बहस को अन्य लोगों के संग जारी रखना—ये ऐसे लक्षण थे कि यदि अपने पिताजी की बात न रही होती और मेरी उम्र थोड़ी और हुई होती तो मैं फ़ौरन पिताजी और अवदोत्या वासील्येवना के रिश्ते को समझ जाता। किन्तु मुझे किसी बात का संदेह न हुआ था। उस समय भी नहीं जब मेरे सामने प्योत्र वासील्येविच की एक चिट्ठी पाकर पिताजी बड़ी चिन्ता में पड़ गये और अगस्त के अंत तक एपिफ़ानोवों के यहां जाना बंद कर दिया।

अगस्त के अंत में पिताजी ने फिर पड़ोसियों के यहां आना-जाना आरम्भ कर दिया। मेरे तथा वोलोद्या के मास्को रवाना होने के एक दिन पहले उन्होंने हमें सूचित किया कि वे अवदोत्या वासील्येवना से विवाह करनेवाले हैं।

पेंतीसवां परिच्छेद

इस समाचार पर हमारी प्रतिक्रिया

घोषणा होने के एक दिन पहले ही घर के सभी लोगों को यह समाचार मिल गया था और चारों ओर उसी की चर्चा थी। मीमी सारा दिन अपने कमरे से वाहर न निकलीं और रोती रहीं। कातेन्का उनके साथ ही रही। वह केवल भोजन के समय चेहरे पर ऐसा भाव लेकर मानों किसी ने उसे ठेस पहुंचायी है (स्पष्टतः यह भाव मां से लिया हुआ था) वाहर आयी। इसके विपरीत ल्यूवोच्का अत्यंत प्रसन्न थी। वह भोजन के समय वोली कि उसे एक वड़ी शानदार भेद की वात मालूम है जो वह किसी को न वतायेगी।

"तुम्हारी भेद की वात शानदार-वानदार कुछ नहीं है," वोलोद्या वोला जो, स्पष्टतः, प्रसन्नता की उसकी प्रतिक्रिया में सम्मिलित न था। "वल्कि, यदि तुम्हें अक्ल हुई होती तो तुम समझतीं कि यह वड़े दुर्भाग्य की वात है।"

ल्यूवोच्का अचरज से उसका मुंह देखने लगी और मौन हो गयी।

भोजन के वाद वोलोद्या ने मेरी वांह में वांह डालनी चाही, पर सम्भवतः यह डरकर कि ऐसा करना भावुकता होगी उसने केवल मेरी कुहनी को स्पर्श किया और सिर से इशारा कर हॉल में चलने को कहा।

"ल्यूवोच्का जिस भेद की वात कर रही है, उसका पता है तुम्हें?" उसने, चारों ओर निगाह डालकर यह देख लेने के वाद कि वहां कोई और न हो, मुझसे पूछा।

वोलोद्या और मैंने आमने-सामने किसी गम्भीर विषय पर कभी बात न की थी। अतः हम दोनों इस समय एक प्रकार की झिझक महसूस कर रहे थे और वोलोद्या के शब्दों में, हमारी आंखों के सामने 'छोटे छोटे लड़के' नाचने लगे थे। किन्तु तत्काल, मेरी आंखों में छायी बदहवासी को लक्ष्य कर उसने मेरे चेहरे पर सीधी और संजीदा दृष्टि गड़ाते हुए कहा—"घबराने की बात नहीं। पर हम भाई भाई हैं और हमें महत्वपूर्ण पारिवारिक मामलों में मिलकर सलाह करनी ही चाहिए।" मैं उसकी बात समझ गया, और वह बोलता गया।

"जानते हो, पिताजी एपिफ़ानोवा से विवाह करने जा रहे हैं?" मैंने सिर हिलाया क्योंकि मैं पहले ही इसके बारे में सुन चुका था।

"बड़ी बुरी बात हो रही है," वोलोद्या बोला।

"क्यों?"

"क्यों, पूछते हो?" उसने थोड़ा खीझकर कहा। "हकलानेवाले मामा कर्नल साहब, और ये सारे लोग रिश्तेदार बनकर हमारे घर आयेंगे—यह क्या बड़ा अच्छा रहेगा? हां, अभी तो वह बड़ी भली मालूम होती हैं, लेकिन कौन जानता है कैसा स्वभाव निकलेगा उनका? मान लिया कि हम दोनों का इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, पर ल्यूबोच्का को तो दूसरे के घर जाना है। ऐसी सौतेली मां का रहना क्या सुखद रहेगा? उनकी फ़्रांसीसी सुनी है न? कितना भद्दा बोलती हैं। जाने कैसा तौर-तरीक़ा उसे सिखा देंगी! वह तो मछुआइन हैं, मछुआइन। स्वभाव की भली हों तो भी हैं मछुआइन!" वोलोद्या बोला। उसके स्वर से प्रगट था कि 'मछुआइन' की उपाधि देकर वह बहुत खुश था।

पिताजी की पसंद पर वोलोद्या का इस प्रकार टीका करना मुझे विचित्र लगा तो भी यह प्रतीत हुआ कि वह ठीक कह रहा है।

"पिताजी शादी क्यों कर रहे हैं?" मैंने पूछा।

"यह भी अजीब कहानी है, लेकिन भगवान ही जाने। मुझे इतना

ही मालूम है कि प्योत्र वासील्येविच ने उनसे शादी करने को कहा, बल्कि मांग की। पिताजी नहीं चाहते थे, पर बाद में, शायद अबला के उद्धार जैसी किसी भावना के कारण, बात उन्हें जंच गयी। विचित्र कहानी है। मैंने तो अब थोड़ा थोड़ा पिता को समझना आरम्भ किया है।" (पिताजी के बदले उसके उन्हें 'पिता' कहने से मुझे बड़ी ठेस लगी)। वोलोद्या कहता गया: "वह बहुत ही भले आदमी हैं, बुद्धिमान भी हैं, पर स्वभाव के अस्थिर और चंचल दिमाग वाले। यही तो अचम्भे की बात है। औरत को देखकर वह आपे में नहीं रहते। तुम तो जानते ही होगे कि जिस औरत से भी उनकी पहचान हुई उसी को प्रेम करने लगे। यहां तक कि मीमी को। तुम तो जानते ही होगे?"

"तुम्हारा मतलब?"

"मैं जो कहता हूं – हाल ही में मुझे पता चला है कि मीमी जब जवान थी तो पिता उसे प्यार करते थे। वे उसे कविताएं लिखकर भेजते और दोनों में कुछ चलता रहता था। मीमी पर तो अभी तक असर है।" और वोलोद्या हंस पड़ा।

"ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता!" मैंने आश्चर्यचकित होकर कहा।

"पर मुख्य चीज़ तो यह है कि," वोलोद्या फिर संजीदा होकर और अचानक फ़्रांसीसी में बोलते हुए कहता गया, "हमारे नाते-रिश्तेदार यह शादी कहां तक पसंद करेंगे! और उनसे बाल-बच्चे भी होंगे ही।"

वोलोद्या के समझदारी से भरे दृष्टिकोण तथा दूरदर्शिता से मैं इतना चकित हो गया कि कोई जवाब नहीं बन पड़ा।

उसी समय ल्यूबोच्का हमारे पास आयी।

"तो तुम लोगों को मालूम है?" उसने प्रसन्नवदन हो कहा।

"हां," वोलोद्या बोला, "पर, ल्यूबोच्का, हमें तो तुम्हारी बुद्धि पर तरस आता है। तुम अब बच्ची नहीं रहीं। पिताजी कूड़ाखाने की टोकरी को घर बैठाने जा रहे हैं और तुम्हें खुशी हो रही है। आश्चर्य है!"

ल्यूबोच्का हठात् गम्भीर दिखने लगी और विचार में डूब गयी।

"कैसे आदमी हो तुम भी, वोलोद्या? कूड़ाखाने की टोकरी! अवदोत्या वासील्येवना के प्रति ऐसा शब्द तुम मुंह से निकाल कैसे सकते हो? पापा यदि उससे व्याह करने जा रहे हैं, तो वह कूड़ाखाने की टोकरी कैसे हो सकती है?"

"हां, नहीं ... यह तो खैर एक बात कही थी मैंने। फिर भी ..."

"फिर भी, फिर भी मैं नहीं जानती," ल्यूबोच्का ने आपे से बाहर होकर कहा। "तुम जिस लड़की को प्यार करते हो, उसे क्या तुमने मुझे कूड़े की टोकरी कहते सुना है कभी? फिर तुम पापा तथा एक भली औरत के बारे में ऐसी बातें किस तरह करते हो? तुम मेरे बड़े भाई हो तो क्या, ऐसी बात मैं तुम्हारे मुंह से भी नहीं सुन सकती ..."

"तो क्या मैं किसी चीज़ के बारे में अपनी राय भी न प्रकट करूं?.."

"नहीं, हरगिज़ नहीं। हम लोगों के बाप जैसे बाप के लिए हरगिज़ नहीं," ल्यूबोच्का ने फिर उसे बीच ही में रोककर कहा। "मीमी ऐसी बात कहती है तो कहे, पर तुम नहीं कह सकते।"

"ओह, तुम तो बिल्कुल नासमझ निकलीं," वोलोद्या ने तिरस्कार के स्वर में कहा। "मेरी बात भी तो सुनो। क्या यह अच्छी बात है कि एपिफ़ानोवा दूनेच्का नाम की औरत आकर हमारी मृत मां की जगह ले ले?"

ल्यूबोच्का एक मिनट चुप रही और तब यकायक उसकी आंखों से आंसुओं की धारा फूट चली।

"मैं यह तो जानती थी कि तुम दम्भी हो, पर तुम्हारा दिल इतना काला होगा, यह मुझे नहीं मालूम था," उसने कहा, और वहां से चल दी।

"जाओ बाबा," वोलोद्या ने मज़ाकिया चेहरा बनाकर और उधर जड़तापूर्वक ताकते हुए कहा। "इन लोगों से बात करना भी माथा

छपाना है," उसने कहा मानो इसलिए अपनी भर्त्सना कर रहा हो कि ल्यूबोच्का जैसों से बात करने की भूल ही क्यों की।

अगले दिन मौसम खराब था और जिस समय मैं बैठकखाने में पहुंचा पापा या लड़कियां चाय के लिए नीचे नहीं आयी थीं। रात में पतझड़ की ठण्डी ठण्डी बारिश हुई थी। अपना जल ढाल चुकनेवाले बादलों के अवशेष अभी भी आकाश में मंडरा रहे थे। सूरज का धुंधला गोला जो काफ़ी ऊपर आ चुका था, उनके बीच से झांक रहा था। तेज़ हवा चल रही थी। मौसम नम और सर्द था। बाग़ का दरवाज़ा खुला हुआ था। बरामदे में नमी से काले पड़े तख़्तों पर रात की वर्षा से बने पानी के डबरे सूख रहे थे। हवा खुले किवाड़ों को खोल और बन्द कर रही थी। रविशें नम और पंकिल हो गयी थीं। नंगी, सफ़ेद डालों वाले पुराने बर्च-वृक्ष, झाड़ियां और घास, बिच्छुआ के पौधे, जंगली दाख और एल्डर जिनके पत्तों का पीला भाग उलटकर ऊपर आ गया था—सभी मानों अपने स्थान में धरती में जड़ें छोड़ निकल आने के लिए संघर्ष कर रहे थे। लाइम के वृक्षों की पांतों के बीच के रास्ते पर गोल, पीले पत्ते लिपटते, एक दूसरे का पीछा करते हुए दौड़ रहे थे और नमी से तर हो जाने पर भीगी सड़क तथा घास के मैदान की नम, गहरी हरी नयी घास के ऊपर बिछे जाते थे। मैं वोलोद्या के दिये दृष्टिकोण से पिताजी के भावी विवाह के विषय में सोच रहा था। अपनी बहिन के भविष्य, हमारे भविष्य—यहां तक कि पिताजी के भविष्य के विषय में मुझे आशा नहीं नज़र आ रही थी। मुझे यह सोचकर परेशानी हो रही थी कि एक बाहरी व्यक्ति, अजनबी, और सबसे बड़ी बात यह कि एक जवान औरत जिसे कोई अधिकार न था अचानक कई बातों में किसी की जगह ले लेगी। वह एक साधारण जवान औरत है जो मेरी मृत मां की जगह बैठेगी! मेरा मन उदासी से भरा जा रहा था और पिताजी मुझे अधिकाधिक दोषी जान पड़ते थे। उसी समय मैंने भण्डारघर

में उनके और वोलोद्या के बीच वार्तालाप की आवाज़ें सुनीं। उस क्षण मैं पिताजी को देखना नहीं चाहता था और दरवाज़े से हट गया। पर ल्यूबोच्का ने आकर कहा कि, पापा बुला रहे हैं।

वह बैठकख़ाने में खड़े थे। उनका एक हाथ प्यानो के ऊपर था और वह मेरी ओर अधीरता और साथ ही गंभीर भाव से देख रहे थे। इधर की अवधि में मैं तारुण्य और आनन्द का जो भाव उनके चेहरे पर देखा करता था, वह लुप्त हो चुका था। वह चिन्तित दिखायी दे रहे थे। वोलोद्या हाथ में एक पाइप लिये कमरे में टहल रहा था। मैंने पिताजी के पास जाकर प्रातः अभिवादन किया।

"तो मेरे दोस्तो," उन्होंने सिर ऊपर उठाते हुए संकल्प के साथ और उस ख़ास चुस्त आवाज़ में कहा जो, किसी अप्रिय विषय को छेड़ते समय लोग अपनाते हैं जिसपर सलाह-विचार का समय जा चुका है, "तुम लोग शायद जानते ही हो कि मैं अवदोत्या वासील्येवना के साथ शादी करने जा रहा हूं।" (वह थोड़ी देर के लिए चुप हो गये) "तुम्हारी अम्मा के जाने के बाद मैं शादी नहीं करना चाहता था, पर... (वह फिर थोड़ा रुके) पर ज़ाहिर है कि होनी को कोई नहीं रोक सकता। दूनेच्का बड़ी प्यारी और भली लड़की है, और अब बहुत छोटी उमर की भी नहीं है। मैं आशा करता हूं, मेरे बच्चो, कि तुम उसे प्यार करोगे और वह तो अभी ही तुम लोगों को हृदय से प्यार करती है, वह नेकदिल औरत है। "अब," उन्होंने वोलोद्या और मेरी ओर मुड़कर हमें बीच में कुछ कहने का मौक़ा न देते हुए कहा, "तुम लोगों के यहां से जाने का समय हो गया है। पर मैं नववर्ष यहीं रहूंगा और उसके बाद ही मैं भी... (यहां वह फिर हिचके) अपनी पत्नी और ल्यूबोच्का के साथ मास्को पहुंच जाऊंगा।" पिताजी को अपने सामने इस तरह सहमा हुआ और अपराधी-सा देखकर मुझे

हार्दिक कष्ट हुआ। मैं उनके और नज़दीक चला गया। पर वोलोद्या पाइप पीता और सिर झुकाये कमरे में टहलता रहा।

"तो दोस्तो, यही तुम्हारे बुड्ढे बाप ने तय किया है," पिताजी अंत में बोले। और उनका चेहरा लाल हो गया और खांसे। उन्होंने वोलोद्या का और मेरा हाथ दबाया। बोलते समय उनकी आंखों में आंसू थे मैंने यह भी देखा कि वोलोद्या की ओर जो उस समय कमरे के दूसरे किनारे पर था उन्होंने जो हाथ बढ़ाया था वह कांप रहा था। इस कांपते हाथ को देखकर मेरी छाती पर आरी चल गयी। एक विचित्र ख्याल मेरे मस्तिष्क में उठा जिसने मुझे और भी विचलित कर दिया। मुझे ख्याल आया कि पापा १८१२ में फ़ौज में थे और जैसा कि सभी जानते थे वे एक बहादुर अफ़सर रहे थे। मैंने उनका लम्बा, गठीला हाथ पकड़े रखा और उसे चूम लिया। उन्होंने उत्साह से मेरा हाथ दबाया और आंसुओं को घोंटते हुए सहसा ल्यूबोच्का के काले केशयुक्त मस्तक को दोनों हाथों में थाम लिया और लगे उसकी आंखों को चूमने। वोलोद्या ने पाइप के हाथ से छूट जाने का स्वांग किया। झुककर उसे उठाने के बहाने उसने मुट्ठी से आंखें पोंछ लीं और औरों की नज़र बचाने की कोशिश करते हुए कमरे से बाहर निकल गया।

छत्तीसवां परिच्छेद

विश्वविद्यालय

शादी दो हफ़्ते के बाद होनेवाली थी। पर हमारी पढ़ाई शुरू हो चुकी थी और वोलोद्या तथा मैं सितम्बर के आरम्भ में मास्को चले गये। नेख्ल्यूदोव परिवार भी देहात से लौट आया था। द्मीत्री फ़ौरन ही मुझसे मिलने आया (विदा होते समय हम लोगों ने एक-दूसरे को पत्र लिखने का वादा किया था, पर, कहने की ज़रूरत नहीं कि न उसने

लिखा और न मैंने ही)। हम लोगों ने तय किया कि अगले दिन मेरे प्रथम लेक्चर के लिए वह मुझे विश्वविद्यालय ले जायेगा।

उस दिन खूब तेज़ धूप खिली हुई थी।

कालेज के हॉल में घुसते ही मुझे भास हुआ कि मस्त नौजवानों की उस टोली में जो खिली धूप में कोलाहल करती दरवाज़ों और दालानों में चक्कर लगा रही थी, मेरा व्यक्तित्व गुम हो गया है। यह अनुभूति कि मैं उस बड़ी मण्डली का सदस्य हूं अत्यंत सुखद थी। किन्तु उन सारे व्यक्तियों में बहुत कम लोगों को जानता था और कुछ से जो जान-पहचान थी वह मिलने पर सिर हिला देने और यह पूछ लेने कि "कैसे हो, इर्तेन्येव?" मात्र तक सीमित थी। किन्तु दूसरों को मैंने हाथ मिलाते, घुलमिल कर बातें करते देखा। मैत्री के शब्दों का आदान-प्रदान, मुसकान और हंसी-मज़ाक़ का बाज़ार गर्म था। चारों ओर उस नौजवान मण्डली को परस्पर जोड़नेवाले बंधनों का परिचय मिलता था। केवल मैं किसी प्रकार इस बंधन से वंचित रह गया हूं, ऐसी मेरी विषादपूर्ण अनुभूति थी। किन्तु यह क्षणिक प्रतिक्रिया थी। इसके और इससे होनेवाली झिझक के फलस्वरूप मुझे फ़ौरन ही यह भी पता चल गया कि वास्तव में यह अच्छी बात थी कि मैं इस मण्डली का अंग न था, कि मुझे तो चुने हुए लोगों की एक अलग मण्डली चाहिए थी। और मैं तीसरी बेंच पर, जहां काउन्ट व०, बैरन ज०, प्रिन्स र०, ईविन और उसी वर्ग के अन्य भद्रलोग बैठे हुए थे, जा बैठा। इनमें मैं केवल ईविन तथा काउन्ट व० को जानता था। इन लोगों ने जिस ढंग से मेरी ओर देखा उससे मुझे भास हुआ कि मैं इनके समाज का भी सदस्य न था। मैं अपने चारों ओर की सभी वस्तुओं का निरीक्षण करने लगा। श्वेत, बिखरे बालों और सफ़ेद दांतोंवाला सेम्योनोव, कोट के बटन खोले मेरे नज़दीक ही केहुनी पर झुका हुआ कलम चबा रहा था। इम्तहान में प्रथम आनेवाला कालेज-छात्र पहली बेंच पर काले रूमाल

में अपनी गर्दन लपेटे अपनी साटन की वास्कट में लगी घड़ी की चांदी की जंजीर से खेल रहा था। इकोनिन जो किसी तिकड़म से विश्वविद्यालय में आ गया था, सबसे ऊंची बेंच पर बैठा हुआ था। वह नीली पतलून पहने था जिससे उसके जूते पूरी तौर से छिप गये थे। वह हंस रहा था और चिल्लाकर कह रहा था कि, हम पार्नासस पर पहुंच गये हैं। ईलेन्का मेरे सामने की बेंच पर बैठा था। जब उसने न केवल उपेक्षा बल्कि तिरस्कार के भाव से मुझे सलाम किया मानो मुझे याद दिलाना चाहता हो कि यहां सभी बराबर हैं, तो मैं अचरज में पड़ गया। वह अपनी पतली टांगों को इतमीनान से बेंच पर रखकर (मुझे लगा कि वह मुझे दिखाने के लिए ही ऐसा कर रहा था) दूसरे छात्र के साथ बातचीत कर रहा था और बीच बीच में मेरी ओर निगाह डाल लेता था।

ईविन की मण्डली आपस में फ़्रांसीसी में बातचीत कर रही थी। ये लोग मुझे बड़े मूर्ख ज्ञात हुए। उनकी बातचीत का हर शब्द जो मेरे कानों तक पहुंचता था वह मुझे न केवल निरर्थक और ग़लत मालूम होता था बल्कि मेरी समझ में फ़्रेंच था ही नहीं (ce n'est pas Français, मैंने मन में कहा।) दूसरी ओर सेम्योनोव, ईलेन्का तथा औरों की भाव-भंगिमा, बातचीत और आचरण मुझे ओछे, कुलीनों के अयोग्य, comme il faut के प्रतिकूल लगे।

मैं किसी भी मण्डली में न था, और यह महसूस करके कि मैं अकेला पड़ गया हूं, कि मेरी कोई अपनी मण्डली नहीं है, मेरा मन झल्लाहट से भर उठा। हमारे सामने की एक बेंच पर बैठा एक छात्र अपने नाख़ून जिसके नीचे का चमड़ा बिल्कुल लाल हो गया था, चबा रहा था। यह मुझे इतना बीभत्स ज्ञात हुआ कि मैं उससे और दूर खिसक गया। मेरे अंतरतम में यह स्मृति बनी हुई है कि विश्वविद्यालय का मेरा प्रथम दिन बड़ी ही उदासी में बीता था।

प्रोफ़ेसर ने क्लास में प्रवेश किया और एक क्षण की खलवली के बाद चारों ओर शांति छा गयी। मुझे याद है कि उस समय मैंने उन्हें भी व्यंग्ययुक्त दृष्टिकोण से देखना आरम्भ किया। मुझे उस समय अचरज हुआ जब उन्होंने अपना लेक्चर एक ऐसे मुहावरे के साथ आरम्भ किया जो मेरी राय में बिल्कुल निरर्थक था। मैं चाहता था कि प्रोफ़ेसर का भाषण आदि से अंत तक ऐसा सारगर्भित हो कि उसमें से एक शब्द भी इधर से उधर न किया जा सके। किन्तु मेरा भ्रम टूट गया और मैंने अपने साथ लायी सुंदर जिल्दवाली कापी में प्रथम लेक्चर शीर्षक से माला की तरह वृत्त में बंधे अठारह चेहरे रेखांकित किये। चित्र बनाते समय मैं बीच बीच में हाथ ऊपर उठा लिया करता था। यह प्रोफ़ेसर को दिखाने के लिए कि मैं लिख रहा हूं, क्योंकि मुझे विश्वास था कि वे मेरी गतिविधि पर नज़र रखे हुए हैं। इसी लेक्चर के दौरान मैंने तय कर लिया कि हर प्रोफ़ेसर जो कुछ कहता है उसे लिखते जाना न केवल ग़ैर ज़रूरी है, बल्कि ऐसा करना मूर्खता है। और पूरे साल भर मैंने इसी नियम का पालन किया।

अगले लेक्चरों में मुझे एकाकीपन का उतना एहसास नहीं हुआ। मेरा परिचय काफ़ी लोगों से हो गया था। मैं भी सबों से हाथ मिलाता और गप्पें लड़ाता था। पर न जाने क्यों मुझमें और मेरे साथियों में अंतरंग मित्रता नहीं हो पाती थी और मैं बहुधा अपने को उदास और बाहर से प्रफुल्लता का दिखावा करते हुए पाता था। ईविन तथा 'अभिजात' छात्रों की मण्डली में (लोग उसे इसी नाम से पुकारते थे) मैं सम्मिलित नहीं हो सकता था क्योंकि जैसा कि मुझे याद है, मैं उनके साथ रूखेपन और उद्दण्डता से पेश आता था। जब वे मुझे सलाम करते तभी मैं उन्हें सलाम करता था। और, स्पष्टतः उन्हें भी मेरी संगति की चाह न थी। दूसरों के साथ यह बात बिल्कुल दूसरे ही कारण से होती थी। ज्योंही मुझे भास होता कि कोई साथी मेरी ओर झुक रहा है, मैं

उसे यह खबर सुना देता कि मैं प्रिन्स इवान इवानिच के यहां खाना खाता हूं और मेरे अपनी द्राश्की है। ये बातें मैं केवल अपना अधिक रंग जमाने के लिए और साथी का अपने प्रति झुकाव बढ़ाने के लिए कहता था। किन्तु लगभग हर बार इसका उल्टा ही नतीजा होता देखकर मैं अचम्भे में पड़ जाता। यह सुनने के साथ ही कि मैं प्रिन्स इवान इवानिच का रिश्तेदार हूं मेरा दोस्त मेरे प्रति उपेक्षापूर्ण और उद्धत हो जाता।

हम लोगों में ओपेरोव नामक एक विद्यार्थी था जो सरकारी वज़ीफ़े से पढ़ रहा था। वह सुशील और अत्यंत योग्य युवक था। हाथ मिलाते समय उसकी उंगलियां न हिलती थीं न मुड़ती थीं। हाथ फट्टे की तरह कड़ा रहता था। इसलिए मज़ाकिया साथी भी कभी कभी उससे उसी रीति से हाथ मिलाते थे और उसे 'तख्ते की रीति' से हाथ मिलाना कहते थे। मैं प्रायः उसी की बग़ल में बैठा करता था और हम लोगों में अक्सर बातचीत हुआ करती थी। ओपेरोव प्रोफ़ेसरों के विषय में अपनी एक मुक्त राय रखता था जिसकी वजह से वह मुझे विशेष भाता था। हर प्रोफ़ेसर के पढ़ाने के ढंग की खूबी-खराबी की वह बड़ी सफ़ाई और निश्चयात्मकता के साथ परिभाषा करता था। और कभी कभी वह उनका मज़ाक़ भी बनाता था जिसे उसके छोटे-से मुंह और शांत स्वर में सुनकर मेरे ऊपर एक विचित्र एवं चौंकानेवाला असर पड़ता था। फिर भी, वह बिना चूके अपनी बारीक लिखावट में सावधानी से सभी लेक्चरों के नोट लेता रहता था। हम लोगों की दोस्ती बढ़ चली थी और हमने एक साथ ही अध्ययन करने का निश्चय किया। मेरे उसकी बग़ल में जाकर बैठने पर उसकी छोटी छोटी, भूरी, अल्पदृष्टिवाली आंखों में हर्ष का आभास दिखाई देने लगा था। पर मुझे न जाने क्या सूझी कि मैंने उसे एक दिन यह बतलाया कि मेरी मां ने मरते समय पिताजी से अनुरोध किया था कि उसके बेटों को सरकारी सहायताप्राप्त संस्था में न भेजा जाय

और सरकारी संस्था में पढ़नेवाले विद्यार्थी कितने भी अच्छे क्यों न हों उनमें उपयुक्त अभिजात्य की कमी रहती है। «Ce ne sont pas des gens comme il faut»,* मैंने हकलाते हुए और यह जानते हुए कि किसी वजह से मेरा चेहरा लाल हो रहा है, कहा। ओपेरोव कुछ न वोला। पर अगले दिन से उसने मुझे देखते ही सलाम करना, अपना तख्ते जैसा हाथ वढ़ाना और मुझसे वोलना वंद कर दिया। जव मैं अपनी जगह पर आकर वैठता तव वह अपना सिर इतना झुका लेता कि वह किताव से छू जाता और ऐसा दिखावा करता मानो पढ़ने में डूव गया है। ओपेरोव के अंदर अचानक आ जानेवाले इस उपेक्षा भाव से मैं आश्चर्य में पड़ गया। किन्तु मुझे यह उचित न मालूम हुआ कि एक *pour un jeune homme de bonne maison*** सरकारी वज़ीफ़े पर पढ़नेवाले की खुशामद करे। अतः मैंने उसे कुछ नहीं कहा, यद्यपि मैं स्वीकार करूंगा कि उसके यों सर्द पड़ जाने से भीतर ही भीतर मुझे क्लेश हो रहा था। एक दिन मैं कक्षा में उससे पहले पहुंचा। उस दिन एक अच्छे प्रोफ़ेसर का लेक्चर था इसलिए वाहर घूमनेवाले लड़के भी क्लास में आ गये थे और सभी सीटें भर चुकी थीं। मैं ओपेरोव की सीट पर जा वैठा और डेस्क पर अपनी कापियां रखकर वाहर चला गया। क्लास में लौटने पर अपनी कापियां पीछे के वेंच पर डाली हुईं और ओपेरोव को अपनी जगह पर वैठा देखकर मैं हैरान रह गया। मैंने उससे कहा कि, यहां मेरी कापियां रखी थीं।

"मैं कुछ नहीं जानता," उसने अचानक क्रोध में आकर और मेरी ओर ताके विना ही जवाव दिया।

"कह तो रहा हूं कि यहां मेरी कापियां रखी थीं," मैं गरजा। "सभी ने देखा है," मैंने आस-पास के विद्यार्थियों की ओर देखते हुए कहा। वहुतों ने मेरी ओर देखा भी पर कोई कुछ नहीं वोला।

---

* [वे सच्चे अर्थों में ईमानदार आदमी नहीं होते हैं]
** [अभिजात्य युवक के लिए]

"यहां सीट की बुकिंग थोड़े ही होती है। जो पहले जगह पाता है, बैठ जाता है," ओपेरोव ने और जमकर अपनी जगह पर बैठते और गुस्से से मेरी ओर घूरते हुए कहा।

"इसका तो मतलब है कि तुम असभ्य हो," मैंने कहा।

ओपेरोव कुछ भुनभुनाया। मुझे कुछ ऐसा लगा कि उसने "तुम मूर्ख पिल्ले हो" शब्द का इस्तेमाल किया, पर निश्चय ही मैंने सुना नहीं। और सुनता भी तो उससे लाभ? Manants* की तरह झगड़ना क्या हमें शोभा देता? (यह manants शब्द मुझे बहुत प्रिय था। अनेक जटिल परिस्थितियों में यह शंका-समाधान का काम देता था।) शायद मैंने कुछ और कहा होता, पर उसी समय दरवाजा खुला और नीला फ़ाक-कोट पहने, पैरों को रगड़ते हुए प्रोफ़ेसर ने कक्षा में प्रवेश किया और अपनी मेज पर पहुंच गये।

पर इम्तहान के समय जब मुझे नोटों की ज़रूरत पड़ी तो ओपेरोव को अपना वादा याद था। उसने मुझे अपने नोट ले लेने को कहा और साथ आकर पढ़ने का भी न्योता दिया।

सैंतीसवां परिच्छेद

दिल की वार्ता

इन जाड़ों में मेरा काफ़ी ध्यान प्रेम-प्यार की बातों में लगा रहा। मैं तीन बार प्रेम में गिरफ़्तार हुआ। एक बार तो मैं एक मोटी महिला के प्रेम में बुरी तरह फंस गया। वह फ़ेताग के घुड़सवारी के स्कूल में जाया करती थी। अतः मैं भी प्रत्येक मंगल और शुक्रवार को (वह इन्हीं दो दिनों घुड़सवारी करने जाया करती थी) वहां उसे देखने के

---

* [फूहड़ लोग]

लिए जाया करता था। किन्तु मुझे इस बात का बड़ा डर लगा रहा करता था कि वह कहीं मुझे घूरते हुए देख न ले। अतएव मैं सदा उससे काफ़ी दूरी पर खड़ा हुआ करता और जब भी ऐसा लगता कि वह शायद मेरे खड़े होने की जगह पर आयेगी, भाग खड़ा होता था। जब वह मेरी दिशा में देखती तो मैं फ़ौरन ही लापरवाही के अंदाज़ में मुंह फेर लेता था जिसका परिणाम यह हुआ कि मैं कभी मजे से उसका चेहरा न देख सका और आज तक नहीं जानता कि वह वास्तव में सुंदर थी या नहीं।

दुबकोव की इस महिला के साथ जानपहचान थी और उसने एक बार मुझे घुड़सवारी के स्कूल में अर्दलियों और उनके कंधों पर लदे रोएंदार कोटों के पीछे छिपा खड़ा देख लिया। द्मीत्री से उसे मेरे प्रेम की कहानी मालूम हुई थी और उसने उस मर्दानी औरत से मेरी जान-पहचान करा देने का प्रस्ताव किया। इसपर मैं इतना डर गया कि फ़ौरन वहां से भागा। तब से यह कल्पना कर कि उस महिला को उसने मेरे बारे में बता दिया है मेरी हिम्मत फिर उस स्कूल के अंदर जाने की न हुई... वहां तक भी नहीं जहां अर्दली खड़े हुआ करते थे क्योंकि मुझे यह डर हो गया कि कहीं उस महिला से मुलाक़ात न हो जाय।

जब मैं ऐसी स्त्रियों के प्रेम में गिरफ़्तार होता था जिन्हें मैं जानता न था—खासकर विवाहितों के—तो मेरे ऊपर सोनेच्का के सामने आये शर्मीलेपन के दौरे से हज़ार गुना गहरा दौरा होता था। मैं इस भय से अभिभूत हो जाता था कि प्रेम की बात तो दूर, मेरी प्रेयसी कहीं मेरे अस्तित्व के विषय में ही न जान जाय। ऐसा लगता था कि उसे कहीं यह बात मालूम हो गयी तो वह इसे अपना इतना बड़ा अपमान समझेगी कि आजीवन मुझे क्षमा न करेगी। और वास्तव में यदि उस मर्दानी औरत को उन बातों का पता चला होता जो अर्दलियों के पीछे खड़े होकर उसे घूरते समय मेरे मन में उठती थीं, तो उसका अपमान

अनुभव करना सर्वथा उचित होता। मैं उसे बाहों में जकड़कर गांव ले भागने की बात सोचता था और वहां उसके साथ रिहायश और क्या कुछ न करने की कल्पनाएं मेरे दिमाग़ में उठा करती थीं। यह स्पष्टतया मेरी समझ में न आया कि उससे मेरी जान-पहचान हो भी गयी तो वह मेरे मन की सभी बातें नहीं जान सकेगी, अतएव उसके साथ परिचय करने में शर्म की बात न थी।

सोनेच्का को अपनी बहिन के साथ देखने पर मैं फिर उसके प्रेम में गिरफ़्तार हो गया। उसके प्रति दूसरी बार का मेरा प्रेम कब का लोप हो चुका था। पर उस समय मैं तीसरी बार उसके प्रेम में पड़ गया जब ल्यूबोच्का ने सोनेच्का द्वारा नक़ल की हुई कविताओं की एक कापी मुझे दी जिसमें लेर्मोन्तोव के 'शैतान' के प्रेम सम्बन्धी कई दर्दीले पदों के नीचे लाल पेंसिल से निशान लगा हुआ था और पन्नों के बीच फूल डालकर निशान लगाये गये थे। मुझे याद आया कि पिछले साल अपनी प्रेमिका का छोटा-सा मनीबैग पाने के बाद वोलोद्या ने उसे चूमा था और मैंने भी यही करने की कोशिश की। वस्तुतः, शाम को अपने कमरे में अकेला होने पर मैं उसके ध्यान में विभोर हो गया और फूलों को एक टक निहारता हुआ उन्हें चूमने लगा। ऐसा करते हुए मुझे एक प्रकार की विरह-विह्वलता की सुखद अनुभूति हुई। मैं फिर प्रेम का बंदी हो गया, अथवा, कम से कम कई दिनों तक मेरा ऐसा विचार था कि मुझे उससे प्रेम हो गया है।

अंत में, उन जाड़ों में, तीसरी बार मैं उस युवती के प्रेम में पड़ा जिसे वोलोद्या प्यार करता था और जो हमारे घर आया करती थी। आज जब उस युवती को याद करता हूं तो कह सकता हूं कि उसमें रूप जैसी कोई चीज़ न थी, कम से कम वह विशेष प्रकार का रूप तो बिल्कुल नहीं जो सामान्यतः मुझे पसंद था। वह मास्को की एक सुविख्यात पढ़ी-लिखी, विदुषी महिला की बेटी थी। वह नाटी, पतली

अंग्रेज़ी फ़ैशन की लम्बी गोरी घुंघराली लटों और चेहरे की पारदर्शी गोराई वाली युवती थी। सभी का कहना था कि यह तरुणी अपनी मां से अधिक तीक्ष्ण बुद्धिवाली और पढ़ी-लिखी है। पर मैं इस विषय पर अपनी कोई राय न क़ायम कर सका क्योंकि उसकी विद्वत्ता की बात सोचकर मैं उसके सामने एक प्रकार की हीनता और झेंप महसूस करता था। मैंने उसके साथ केवल एक बार बातचीत की और वह भी बहुत सहमते हुए। किन्तु उसके प्रति वोलोद्या की प्रेम की मस्ती ने (वह दूसरों की उपस्थिति में भी उसे व्यक्त करने में अपने को रोक न सकता था) मुझे इतनी प्रबलता से प्रभावित किया कि मैं भी उसके साथ जी-जान से मुहब्बत करने लगा। मैं समझता था कि यह समाचार कि 'दो भाई एक ही युवती के प्रेम में गिरफ़्तार हैं,' वोलोद्या को कभी न अच्छा लगेगा। अतएव मैंने उससे अपने प्रेम की चर्चा न की। बल्कि, मैं मन ही मन यह सोचकर बहुत संतोष लाभ करता था कि हमारा प्रेम इतना शुद्ध है कि एक ही आकर्षक व्यक्ति को प्यार करते हुए भी हम मित्र बने हुए हैं और अवसर आने पर एक दूसरे के लिए अपने प्रेम की बलि देने को तैयार हैं। पर ऐसा ज्ञात हुआ कि वोलोद्या स्वार्थ-त्याग की इस भावना में साझीदार न था। वह उस युवती के प्रेम में इतना पागल हो रहा था कि उस आदमी के (वह एक वास्तविक कूटनीतिज्ञ), जिसका उस लड़की से विवाह होने जा रहा था, चांटा रसीद करने और द्वंद्व-युद्ध के लिए चुनौती देने को तैयार था। मेरे लिए अपने प्रेम की बलि देने की भावना सम्भवतः इसलिए सुखद थी कि ऐसा करने में मुझे प्रयास करने की आवश्यकता न थी और मैंने उस युवती के संग केवल एक बार शास्त्रीय संगीत की बहुमूल्यता के सम्बन्ध में कोई एक बड़ी प्रकाण्ड-सी टीका की थी। मेरी तमाम कोशिशों के बावजूद मेरी मुहब्बत की कली अगले ही हफ़्ते मुरझाकर खतम हो गयी।

अड़तीसवां परिच्छेद

सोसाइटी

विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के बाद मैंने जिन फ़ैशनेबुल क्रीड़ाओं में भाई की भांति सम्मिलित होने की बात सोची थी, उनका कहीं पता न था। वोलोद्या नाच-रंग में खूब शरीक हुआ करता था। पापा भी अपनी तरुणी पत्नी के साथ बॉल-डान्सों में जाया करते थे। पर वे अवश्य ही मुझे ऐसी क्रीड़ाओं में भाग लेने के अयोग्य या अभी बच्चा समझते थे। कोई मेरा उन घरों में परिचय न कराता था जहां बॉल-डान्स हुआ करते थे। द्मीत्री के साथ मैं कुछ भी न छिपा रखने को वचन-बद्ध था, मैंने उसे भी नहीं बताया कि बॉल-डान्सों में जाने की मेरी इच्छा है या मेरी ओर कोई ध्यान नहीं देता तथा मुझे दार्शनिक समझकर घर पर ही छोड़ जाते हैं जिससे मुझे गहरा आंतरिक क्लेश और खीझ उठती है। (इस प्रकार उपेक्षित होने पर मुझे वास्तव में दार्शनिकता का स्वांग करना पड़ता था।)

पर जाड़ों के दौरान ही, प्रिन्सेस कोर्नाकोवा ने एक सायंकालीन पार्टी का आयोजन किया। उन्होंने स्वयं आकर हम सभी को, मुझे भी, न्योता दिया। और मैं पहले पहल बॉल-डान्स में जा रहा था। रवाना होने के पहले वोलोद्या मेरे कमरे में देखने आया कि मैंने किस तरह तैयारी की है। उसके इस कार्य से मुझे बहुत अचरज और हैरानी हुई। मेरा ख्याल था कि कपड़ों द्वारा ठाठ-बाट बनाने की इच्छा लज्जाजनक थी और उसे छिपाकर रखना चाहिए। इसके विपरीत, वह इसे स्वाभाविक ही नहीं, अपरिहार्य समझता था। उसने मुझसे साफ़ कहा कि उसे डर है कि कहीं भद्दी पोशाक में जाकर मैं अपनी भद्द न करा लूं। उसने चेताया कि पेटेन्ट लेदर के जूते अवश्य पहनूं। मुझे साबर के चमड़े के दस्ताने पहनते देख वह स्तम्भित हो गया। उसने मेरी घड़ी की चेन एक

ख़ास फ़ैशन से बांधी और अपने साथ 'कुज़्नेत्स्की मोस्त' में एक बाल संवारने की दूकान में लिवा ले गया। वहां मेरे बालों को घुंघराला किया गया और वोलोद्या ने दो क़दम पीछे हटकर निहारा कि, मैं अब ठीक लग रहा हूं या नहीं।

"ठीक है। लेकिन यह गुच्छा जो पीछे उठा है, उसे क्या बराबर नहीं किया जा सकता," उसने नाई से कहा।

Mr. Charles ने गोंद जैसी कोई चीज़ लेकर मेरे उठे हुए केश-गुच्छ को बहुत बैठाया। पर हैट पहनते वक्त वह ज्यों का त्यों उठ खड़ा हुआ। कुल मिलाकर, घुंघराले बालों पर मेरी सूरत पहले से बिगड़ी हुई ही लग रही थी। मेरे लिए एक मात्र उपाय था बेपरवाही का स्वांग करना। तभी मेरी सूरत में कुछ तुक आ सकती थी।

ऐसा ज्ञात हुआ कि वोलोद्या की भी यही राय थी, क्योंकि उसने मुझसे घुंघरालेपन को पहले जैसा बराबर कर देने को कहा। जब मैंने यही किया और अब भी मेरी सूरत न सुधरी तो उसने मेरी ओर देखना ही बंद कर दिया और कोर्नाकोवों के घर तक पूरे रास्ते मौन और उदास बना रहा।

मैंने निर्भीकता से वोलोद्या के संग उनके घर में प्रवेश किया। किन्तु जब प्रिन्सेस ने मुझे नाचने को आमंत्रित किया और मैंने न जाने क्यों उनसे यह कह दिया कि मैं नहीं नाचता—यद्यपि मैं केवल ख़ूब नाचने के विचार से ही पार्टी में गया हुआ था—तब मेरी निर्भीकता जाती रही। और ऐसे लोगों के बीच पड़कर जिन्हें मैं नहीं जानता था शर्मीलेपन का मेरा अपरिहार्य और उत्तरोत्तर बढ़ता जाने वाला दौरा सवार हो गया। मैं पूरी शाम वहीं का वहीं, गुम-सुम बैठा रह गया।

वाल्ज़-नृत्य के दौरान कोर्नाकोवा कुमारियों में से एक मेरे पास आयी और, जैसी कि इस परिवार के सभी लोगों की आदत थी, आत्मीयता के दिखावे से मिली रस्म-अदाई के साथ पूछा कि नाच क्यों

नहीं रहा था मैं। मुझे याद है कि इस प्रश्न पर मैं बहुत शर्मा गया था, पर साथ ही, बिल्कुल अनजाने में, मेरे चेहरे पर एक आत्मसंतोष भरी मुसकान खेल गयी और मैं भारी-भरकम फ्रांसीसी में खींचे-ताने लम्बे वाक्यों के साथ कुछ इस तरह की बकवास करने लग गया कि आज, दर्जनों वर्षों बाद भी उसकी याद करके लज्जा आती है। शायद संगीत ने मेरे ऊपर यह प्रभाव डाला था और मेरे स्नायु उत्तेजित हो उठे थे। मुझे यह भी आशा थी कि मैं जो विशेष दुर्बोध चीजें कह रहा हूं वे संगीत में दब जायेंगी। मैं जो कह रहा था उसका सम्बन्ध ऊंची सोसाइटी और लोगों के, विशेषकर नारी-जाति के, अहंकार भाव से था और बोलते हुए मैं अपने वाक्जाल में स्वयं कुछ ऐसा उलझ गया कि एक वाक्य के बीच ही में रुक जाना पड़ा क्योंकि मैं उसे पूरा न कर सका।

शिष्ट आचरण की अभ्यस्त वह प्रिन्सेस भी हमारी वक्तृता से घबरा गयी, और भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से मेरा मुंह देखने लगी। मैं मुसकुराया। ठीक उसी समय वोलोद्या जिसने मुझे जोश से कुछ बकते हुए देख लिया था, शायद यह जानने के लिए कि न नाचने के दोष का मैं सम्भाषण द्वारा किस प्रकार परिमार्जन कर रहा हूं, दुबकोव के संग निकट आ गया। मेरा मुसकुराना और प्रिन्सेस का डरा हुआ चेहरा देखकर और उन भयानक अंतिम उक्तियों को सुनकर जिनके साथ मैंने अपनी वक्तृता समाप्त की थी, उसका चेहरा एकबारगी लाल हो गया और उसने मुंह फेर लिया। प्रिन्सेस उठी और चली गयी। मैं मुस्कुराता रहा किन्तु यह संज्ञा कि मैंने परले दर्जे की मूर्खता का प्रदर्शन किया है, मेरा कलेजा सील रही थी। मैं चाहता था कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं। मैंने सोचा कि इस परिस्थिति का किसी न किसी प्रकार निराकरण करना और अपना बचाव करना आवश्यक है। मैंने दुबकोव के पास जाकर पूछा कि वह क्या बहुत बार 'उसके' साथ नाचा है? यह मैंने मानो मजाक़ में कहा था। किन्तु वास्तव में उससे सहायता की

याचना कर रहा था—उसी दुबकोव से जिसे 'यार' में भोजन के दिन 'ज़बान बंद करो' कहकर डांट दिया था। दुबकोव ऐसा बन गया मानो मेरी बात सुनी ही नहीं और मुंह फेर लिया। मैं वोलोद्या के पास गया और ज़ोर लगाकर स्वर में विनोद का पुट लाते हुए कहा—"अभी पेट नहीं भरा है तुम्हारा?" पर वोलोद्या ने मुझे इस प्रकार देखा मानो कह रहा हो—"अकेले में तो तुम इस तरह बातें नहीं करते मुझसे।" और चुपचाप वहां से दूर खिसक गया। स्पष्टतः, वह यह डर रहा था कि कहीं मैं उसके साथ न लग जाऊं।

"हे भगवान, मेरा भाई भी मुझे छोड़े जा रहा है!" मैंने अपने मन में कहा।

फिर भी न जाने क्यों विदाई लेकर घर जाने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। मैं मुंह लटकाये शाम के अंत तक वहीं का वहीं खड़ा रह गया। जिस समय सभी कमरे से बाहर निकलकर दालान में इकट्ठे हो रहे थे और अर्दली ने मुझे कोट पहनाते हुए हाथ के धक्के से मेरी टोपी तिरछी कर दी उस समय मैं आंसुओं को पीते हुए सूखी हंसी हंसा और किसी विशेष व्यक्ति को लक्ष्य किये बिना कहा—« Comme c'est gracieux!»*

उनतालीसवां परिच्छेद

शराब-पार्टी

यद्यपि द्मीत्री के प्रभाव से मैं अभी तक छात्रों की साधारण रंगरलियों में जिन्हें कुत्योज (शराब पार्टी) के नाम से पुकारा करते थे, नहीं भाग लिया करता था, किन्तु इन जाड़ों में मैं एक दिन मौज के इस आयोजन में सम्मिलित हुआ और उसका मेरे ऊपर बुरा असर पड़ा। घटना यों हुई।

---

*[यह भी लाजवाब रहा!]

वर्ष के आरम्भ में एक दिन लेक्चर के दौरान वैरन ज़० ने हम सबों को शाम को अपने घर आकर थोड़ी देर मिल बैठने और मौज मनाने का न्योता दिया। वैरन एक छरहरा, गोरा नौजवान था जिसका चेहरा बहुत सुडौल और सदा गम्भीरता का भाव लिये रहता था। 'हम सबों से' अर्थ—कक्षा के एक ख़ास स्तर के लड़कों से था—वे जो comme il faut थे। कहने की आवश्यकता तो नहीं कि इनमें ग्राप, सेन्योनोव या ओपेरोव अथवा उनसे नीचे स्तर वाले छात्र सम्मिलित न थे। वोलोद्या को जब मालूम हुआ कि मैं प्रथम वर्ष के छात्रों के मद्यपान में जा रहा हूं तो वह तिरस्कार भाव से मुसकुराया। किन्तु मैं उन सायंकालीन गोष्ठी में बड़ी बड़ी आशाएं लेकर जा रहा था। मेरी समझ में शाम बिताने का यह लाजवाब तरीक़ा था। और मैं न्योते के ठीक समय पर—आठ बजे—ज़० के घर पहुंच गया।

वैरन सफ़ेद वास्कट पहने और कोट के बटन खोले अपने छोटे-से घर के, जहां उसके मां-बाप रहते थे, प्रकाश से जगमगाते हॉल और बैठकख़ाने में अतिथियों को बैठा रहा था। उसके माता-पिता ने आज शाम की दावत के लिए इन कमरों का इस्तेमाल करने की इजाज़त दे दी थी। दालान में कुतूहलपूर्ण नौकरानियों के सिर अथवा पोशाकों की झलक दिखाई पड़ जाती थी। जलपानकक्ष में एक बार एक भद्र महिला की भी झांकी मिली। वह सम्भवतः वैरनेस स्वयं थीं।

अतिथियों की संख्या कुल बीस थी। इनमें हेर फ़ास्ट को जो ईविन के साथ आ गये थे और एक अन्य लम्बे, लाल चेहरे तथा नागरिक पोशाकवाले सज्जन को छोड़कर, सभी छात्र थे। ये सज्जन दावत के इंतज़ाम की देखभाल कर रहे थे। सभी जानते थे कि, वे वैरन के रिश्तेदार तथा देर्पात विश्वविद्यालय के भूतपूर्व छात्र हैं। आरम्भ में तो कमरों के जगमग प्रकाश और आतिथ्यकक्ष की औपचारिक सजावट का अनुभवहीन नौजवानों की इस मण्डली पर सर्द असर पड़ा। सभी के सभी दीवारों से दुबके बैठे

रहे। केवल दो-एक उत्साही जीव तथा देर्पात के भूतपूर्व छात्र महोदय इससे भिन्न थे। भूतपूर्व छात्र महोदय ने तो अभी से अपनी वास्कट के बटन खोल लिये थे और मानो एक ही समय सभी कमरों में और सभी कमरों के सभी कोनों में मौजूद थे। पूरा घर उनकी मस्त, बुलंद और कभी न रुकनेवाली आवाज़ से गूंज रहा था। किन्तु बाक़ी लोग या तो चुप थे या दबे स्वरों में प्रोफ़ेसरों, पढ़ाई या इम्तहान की, तथा ऐसे ही अन्य गम्भीर और अरोचक विषयों की चर्चा कर रहे थे। बिना अपवाद, सभी जलपान-कक्ष के द्वार की ओर टकटकी बांधे हुए थे। उन्हें स्वयं इसकी चेत न थी। पर उनके चेहरे मानो कह रहे थे—"अब किस चीज़ की देर है?" मैं भी यही समझ रहा था कि कार्यारम्भ होना चाहिए और अधीरतापूर्ण आनन्द से कार्यारम्भ की प्रतीक्षा कर रहा था।

अर्दली जब मेहमानों को चाय दे गया तो देर्पात के विद्यार्थी ने फ्रास्ट से रूसी में पूछा:

"पंच* बनाना जानते हो न फ्रास्ट?"

„O ja!"** फ्रास्ट ने अपनी पिंडलियों को नचाते हुए कहा। पर देर्पात के छात्र ने उनसे फिर रूसी में कहा:

"तो आ जाओ।" (दोनों के एक विश्वविद्यालय में रह चुकने के नाते देर्पात का छात्र फ्रास्ट को 'तू' कहकर पुकारता था।) और फ्रास्ट अपनी टेढ़ी, पुट्ठेदार टांगों से लम्बे डग भरते जलपानकक्ष के अंदर और बाहर आने जाने लगे। इस तरह कई बार अंदर-बाहर करने के बाद उन्होंने मेज़ पर शोरबे का एक विशाल बरतन रख दिया, जिसमें दस पाउंड की शक्कर की भेली विद्यार्थियों की तीन कटारों के सहारे

---

*शराब के साथ गरम पानी या दूध, शक्कर, नीबू, मसाले आदि मिलाकर बनाया पेय।—सं०

**[ओ, हां!]

रखी थी। इस बीच वैरन ज० हर मेहमान के पास जाकर सबों से अविचलित गम्भीर मुख-मुद्रा के साथ और एक ही शब्दावली का प्रयोग करते हुए कह रहा था—"साहिबान, आइये, सच्चे साथियों की भांति और छात्रोचित शैली में हम लोग पियें और मौज मनायें। बड़े अफ़सोस की बात है कि इस साल के हमारे दर्जे के साथियों के मन नहीं मिलते। आ जाइये, अपने वास्कट के बटन खोल लीजिये, या जी आये तो औरों की तरह उसे उतार ही डालिये।" और वास्तव में देर्पात का छात्र कोट उतार, क़मीज़ की सफ़ेद आस्तीनों को अपनी श्वेत बांहों की कुहनियों तक चढ़ा तथा डट जाने के भाव से दोनों टांगें चीर, शोरबे के बरतन में आग लगा चुका था।

"बत्तियां गुल कर दो, दोस्तो!" वह सहसा मधुर और तेज़ स्वर में इतने ज़ोर से चिल्लाया मानो हम सभी एक साथ चिल्लाये हों। हम सभी चुप होकर शोरबे के बरतन और देर्पात के छात्र को देख रहे थे। सभी समझ रहे थे कि, असली रस्म का अवसर आ गया है।

„Löschen Sie die Lichter aus, Frost!"* देर्पात का छात्र फिर चिल्लाया। प्रगट था कि वह बहुत अधिक उत्तेजित हो चुका था। फ्रास्ट और हम सभी मोमबत्तियां बुझाने लगे। कमरे में अंधेरा छा गया। केवल सफ़ेद आस्तीनें और कटारों पर शक्कर की भेली को टिका रखनेवाले हाथ हल्की नीली लौ में चमक रहे थे। अब कमरे में केवल देर्पात के छात्र की ही बुलंद आवाज़ नहीं गूंज रही थी बल्कि हर कोने से छात्रों के हंसने और बातचीत करने की आवाज़ें आने लगी थीं। बहुतों ने अपने कोट उतार लिये (खासकर उन लोगों ने जिन्होंने नीचे अच्छी और खूब साफ़ क़मीज़ें पहन रखी थीं)। मैंने भी यही किया। मैं समझ गया कि खेल शुरू हो गया है। अभी तक बहुत मज़ा आने जैसी कोई बात नहीं हुई थी, पर

---

*[बत्तियां गुल करो, फ्रास्ट!]

मुझे दृढ़ विश्वास था कि प्रस्तुत पेय एक एक गिलास चढ़ा चुकने के बाद असली आनन्द आरम्भ हो जायेगा।

पेय तैयार हो चुका था देर्पात का छात्र उसे गिलासों में ढाल रहा था और ढालते समय मेज़ पर काफ़ी छलकाता भी जा रहा था और चिल्लाकर कह रहा था—"आओ, आ जाओ, दोस्तो।" हर बार सभी के उस लसलसे पेय का एक पूरा गिलास भर लेने पर फ़ास्ट और देर्पात का छात्र किसी जर्मन गीत की एक कड़ी छेड़ देते थे जिसमें "युखे!" शब्द बारम्बार आता था। हम लोग भी बीच बीच में बेसुरे स्वर में ही गाने में शामिल हो जाते थे। गिलासों का खनखनाना, चिल्लाना, पेय की प्रशंसा करना और मीठी तेज़ शराब के घूंट पर घूंट पीना आरम्भ हो गया। हम लोगों ने एक-दूसरे की बांह में बांह डाल रखी थी, या यों ही अलग खड़े होकर गिलास उठा रहे थे। अब रुकना कैसा! मद्यपान पर्व आरम्भ हो चुका था। एक गिलास पेय मैं चढ़ा चुका था, और मेरा गिलास दूसरी बार भर दिया गया था। मेरी कनपटी में कम्पन होने लगा था, आग का रंग रक्त-लाल लग रहा था। चारों ओर सभी के चिल्लाने और हंसने की आवाज़ें आ रही थीं। अभी तक बड़ा मज़ा आने जैसी कोई बात नहीं हुई थी। बल्कि मेरा तो दृढ़ विश्वास था कि मैं तथा सभी और लोग ऊब रहे थे। किन्तु किसी कारणवश सभी बड़े आनन्द में होने का स्वांग कर रहे थे। एक मात्र व्यक्ति जो नक़ल नहीं कर रहा था, देर्पात का छात्र था। उसका रंग निरंतर अधिकाधिक लाल होता जा रहा था और बकवास करना बढ़ता ही चला जा रहा था। वह हर ख़ाली गिलास को फ़ौरन भर देता था। ऐसा करते हुए मेज़ पर अधिकाधिक पेय छलका रहा था। मेज़ चिपचिपाने लगी थी। मुझे याद नहीं कि आगे कैसे और क्या हुआ। बस इतना ही याद है कि उस दिन मैं फ़ास्ट तथा देर्पात के छात्र को कलेजे का टुकड़ा समझ बैठा था, एक ज़र्मन गीत मैंने ज़बानी याद कर लिया था, और दोनों के मीठे ओठों का बोसा

लिया था। यह भी याद है कि उन्हीं चंद घंटों के अंदर मैं देहात के छात्र से नफ़रत करने लगा था और एक बार उसे एक कुर्सी खींच मारनी चाही थी, पर रुक गया था। यह भी याद है कि 'यार' की उस दिन की दावत के बाद जिस प्रकार मेरे अंग अंग ने जवाब दे दिया था, उसी तरह की हालत आज भी हो रही थी। सिर दुख रहा था। मैं मानो हवा में तैर रहा था। अब मरा तब मरा जैसा महसूस करने लगा था। यह भी याद है कि सभी न जाने क्यों फ़र्श पर बैठ गये और डांड़ की तरह अपने हाथ चलाते हुए 'मां-वोल्गा के वक्ष पर' नामक गीत गाने लगे। मैं यह सब करते हुए भी सोच रहा था कि यह सब करना आवश्यक नहीं है। यह भी याद है कि फ़र्श पर पड़े हुए मेरी एक टांग किसी और की टांग से फंस गयी थी और हम लोग जिप्सियों की कुश्ती लड़ रहे थे। मैंने किसी की गर्दन मरोड़ दी और सोचा कि यदि उसने पी न होती तो ऐसा न होता। मुझे यह भी याद है कि हम लोगों ने कुछ भोजन किया और फिर कोई और चीज़ पी, कि मैं अपने को ताज़ा करने के लिए आंगन में गया, कि मेरा सिर ठण्डा मालूम हो रहा था, कि घर चलते समय मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि घनघोर अंधेरा छाया हुआ है, कि हमारी द्राश्की का पावदान ढालवां और फिसलनदार हो गया है और कुज्मा को पकड़े रहना असम्भव है क्योंकि वह बहुत कमज़ोर हो गया है तथा लत्ते की तरह हिल रहा है। परन्तु उस रात के विषय में ख़ास बात जो मुझे याद है वह यह कि, मैं लगातार महसूस कर रहा था कि यह स्वांग करके कि बड़े आनन्द में हूं, कि ख़ुद पीता हूं और नशे में होने जैसी कोई बात नहीं, मैं मूर्खता कर रहा था और दूसरे लोग भी यह स्वांग करके बड़ी मूर्खता कर रहे थे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि हममें से कोई भी ऐसा न था जिसे मन ही मन वह सारा खेल बुरा न लग रहा हो। पर औरों का मज़ा किरकिरा न हो जाय, इस ख़याल से सभी ख़ुद भी मज़े में होने का स्वांग रच रहे थे। इसके

अतिरिक्त, विचित्र बात यह है कि मैंने यह सोचा था कि स्वांग इसलिए जारी रखना आवश्यक है कि शोरबे के बरतन में दस रूबल फ़ी बोतल के हिसाब से तीन बोतल शैम्पेन और चार रूबल फ़ी बोतल के हिसाब से दस बोतल रम ढाली गयी थी—यानी कुल ७० रूबल डाले गये थे। अपनी इस धारणा का मुझे इतना दृढ़ विश्वास था कि अगले दिन क्लास में यह देखकर कि बैरन ज़० की पार्टी में सम्मिलित होनेवाले छात्रगण लज्जित होने के बदले इस तरह पार्टी की चर्चा कर रहे थे कि दूसरे छात्र सुन लें, मैं आश्चर्यचकित हो गया। उन्होंने कहा कि कुत्योज आयोजन खूब जमा था, कि देर्पात विश्वविद्यालय वाले इन सब चीज़ों में बड़े उस्ताद होते हैं कि बीस आदमी मिलकर चालीस बोतल रम चढ़ा गये और बहुत-से तो मुर्दा समझकर मेज़ के नीचे छोड़ दिये गये। मेरी समझ में न आया कि वे क्यों उसके बारे में बात कर रहे हैं और इतना ही नहीं—अपने बारे में झूठ गढ़ रहे हैं।

चालीसवां परिच्छेद

नेख़्ल्यूदोव परिवार के साथ मेरी मित्रता

उन जाड़ों में द्मीत्री मेरे घर अक्सर आया करता था। उससे हमारी मुलाक़ात तो होती ही थी उसके परिवारवालों के साथ भी मेरी घनिष्ठता बढ़ चली थी।

नेख़्ल्यूदोव परिवार—मां, मौसी और बेटी—सदा शाम का वक़्त घर पर ही बिताती थीं। और प्रिन्सेस को ऐसे नौजवानों का घर आना पसंद था जो, जैसा कि उन्होंने कहा, बिना ताश खेले या नाचे शाम बिता सकने की क्षमता रखते हैं। किन्तु सम्भवतः ऐसे नौजवानों की संख्या नगण्य थी क्योंकि यद्यपि मैं लगभग हर शाम उनके यहां जाया करता था तथापि मुझे शायद ही कोई मेहमान दिखाई पड़ा हो। मैं इस

परिवार के लोगों और उनके अलग अलग स्वभावों से भली भांति परिचित हो चुका था। यहां तक कि उनके पारस्परिक आंतरिक सम्बन्धों का भी मुझे स्पष्ट ज्ञान हो गया था। मैं उनके कमरों और उन कमरों की सजावट का आदी हो गया था। जब कोई मेहमान न होता तो मैं पूरी बेतकल्लुफ़ी के साथ उस घर में रहता था, हां, सिवाय ऐसे अवसरों के जब मैं वारेन्का के साथ कमरे में अकेले रह जाता। मेरे दिमाग़ में यह घुस गया था कि चूंकि वह सुंदर लड़की नहीं है इसलिए यदि मैं उससे प्रेम करूं तो उसे बड़ी खुशी होगी। पर यह झिझक भी धीरे धीरे खत्म होने लगी। मुझसे या अपने भाई से या ल्युबोव सेर्गेयेवना से बातें करते समय उसके चेहरे पर एक ऐसा स्वाभाविक भाव हुआ करता था मानो उसके लिए तीनों में कोई अंतर नहीं है। अतः मैं उसके प्रति यों सोचने लगा कि उसकी सोहबत में प्राप्त होनेवाले सुख की बात यदि मैं व्यक्त भी कर डालूं तो वह शर्मनाक या खतरनाक न होगा। उसके साथ परिचय की पूरी अवधि में कभी तो वह मुझे अत्यंत कुरूप लगती और कभी उतनी कुरूप नहीं लगती। पर यह प्रश्न मैंने अपने से कभी नहीं किया— "मैं उसे प्यार करता हूं या नहीं?" कभी कभी मुझे उसके साथ भी सीधे बातें करने का अवसर मिला, पर अधिकतर मैं उसकी उपस्थिति में कभी ल्युबोव सेर्गेयेवना और कभी द्मीत्री को सम्बोधन करते हुए ही उससे वार्तालाप करता था और इस ढंग में मुझे खास मज़ा आता था। उसके सामने बातें करने में, उसका गायन सुनने में या यों ही कमरे में उसकी उपस्थिति को बोध करने में मुझे बड़ा संतोष प्राप्त होता था। किन्तु अब आगे चलकर वारेन्का के साथ मेरा सम्बन्ध क्या हो सकता है, यदि मेरा मित्र मेरी बहिन से प्रेम करने लगे तो मेरे आत्मत्याग करने के स्वप्न—ये अब मेरे मस्तिष्क में नहीं उठते थे। यदि कभी ऐसी भावनाएं उठती भी थीं तो मैं भविष्य सम्बन्धी विचारों को टाल जाने की कोशिश करता था, क्योंकि मुझे वर्तमान पर ही संतोष था।

किन्तु इस मैत्री के बावजूद मैं अपनी वास्तविक भावनाओं और प्रवृत्तियों को पूरे नेख्ल्यूदोव समाज से और विशेषकर वारेन्का से छिपा रखना जरूरी कर्तव्य समझता था। मैं वास्तव में जो था उससे सदा भिन्न प्रगट होने का–ऐसा प्रगट होने का जैसा सम्भवतः मैं कदापि हो नहीं सकता था–प्रयत्न करता था। मैं ज़िंदादिल और सहृदय बनने की कोशिश करता था। कोई वस्तु यदि मुझे बहुत भाती तो मैं बड़ी उत्फुल्लता प्रकट करता, आवेगयुक्त भाव-भंगिमा दिखाता, हर्ष अथवा विस्मयसूचक शब्द कहता। साथ ही हर असाधारण घटना के प्रति, जो मेरे सामने होती अथवा जिसकी मुझसे चर्चा की जाती, मैं उदासीनता का दिखावा करता। मैं अपने को ऐसा व्यक्ति दर्शाने का प्रयास करता जो सभी वस्तुओं को कुटिल तिरस्कार के भाव से देखता है, जिसके लिए पवित्र कुछ भी नहीं, किन्तु जो सभी वस्तुओं का गहराई से पर्यवेक्षण करता है। मैं अपने को सभी कामों में तर्कयुक्त एवं जीवन में परिष्कृत एवं सटीक, साथ ही सभी भौतिक वस्तुओं से घृणा करने वाला दर्शाने की कोशिश करता। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि मेरा वास्तविक चरित्र उस विलक्षण प्राणी से कहीं अच्छा था जो मैं अपने को दिखाने का प्रयत्न करता था। किन्तु मैं जो भी स्वांग बनाऊं, नेख्ल्यूदोव परिवार के सदस्य मुझे चाहते थे और, सौभाग्यवश, जैसा कि मुझे पता चला, मेरे स्वांगों में विश्वास न करते थे। केवल ल्युबोव सेर्गेयेवना, जो मुझे बहुत बड़ा आत्मवादी, धर्मविहीन एवं आस्थाशून्य व्यक्ति समझती थी, मुझसे खिंची-सी रहा करतीं। वह बहुधा मुझसे झगड़ पड़तीं, क्रोध में आ जातीं और अपनी असंगत, बेतुकी उक्तियों से मुझे विस्मय में डाल देतीं। द्मीत्री अब भी उनके साथ अपना पुराना विलक्षण मैत्री सम्बन्ध बनाये हुए था। वह कहा करता कि, लोग ल्युबोव सेर्गेयेवना को समझ नहीं पाते हैं, कि उन्होंने उसका बहुत बड़ा उपकार किया है। ल्युबोव सेर्गेयेवना के साथ उसकी मित्रता परिवार के क्लेश का कारण बनी रही।

एक वार वारेन्का ने मेरे संग दोनों के इस सम्वन्ध की जो उनके लिए सर्वथा दुर्बोध थी विवेचना करते हुए, निम्नांकित विश्लेपण दिया—"द्मीत्री आत्मवादी है। वह अत्यधिक गर्वशील है और लाख समझदार होते हुए भी अपनी प्रशंसा का भूखा। वह सदा सभी वस्तुओं में सर्वप्रथम होना पसंद करता है। और चची हैं कि अपनी आत्मा की निर्मलता से प्रेरित होकर उसे सदा प्रशंसायुक्त दृष्टि से देखती हैं तथा उनमें यह कौशल नहीं कि अपना प्रशंसा भाव छिपा सकें। अतः वह उसकी खुशामद करती हैं—दिखावे से नहीं, सच्चे हृदय से।"

मुझे उसका यह विश्लेपण याद रहा। और वाद में उसपर विचार करते हुए मुझे स्वीकार करना पड़ा कि वारेन्का की सूझ पैनी थी। और मैंने अपनी दृष्टि में उसकी प्रशंसा की जिसके फलस्वरूप मुझे संतोप प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसके अंदर वुद्धि की तीक्ष्णता देखकर अथवा अन्य नैतिक गुणों के फलस्वरूप मैं उसकी मानसिक प्रशंसा, परिमित दृढ़ता किन्तु संतोप के साथ करता था। और प्रशंसा की चरम सीमा, हर्पोन्माद तक नहीं जाता था। अतः एक दिन जव सोफ़िया इवानोव्ना ने, जो अपनी भानजी का गुणगान करते कभी न थकती थीं, वतलाया कि चार वर्प पहले वारेन्का ने गांव में किसानों के वच्चों को, विना अनुमति, अपने जूते-कपड़े उतारकर दे दिये थे और उन्हें वाद में किसानों के घरों से उन सामानों को मंगवाना पड़ा था तो मैंने, तत्काल अपनी सम्मति में इस घटना को उसकी प्रशंसनीयता के खाते में नहीं डाला, वल्कि अव्यावहारिक दृष्टिकोण वाली होने के हेतु मन में उसकी हंसी उड़ायी।

जव उस परिवार में दूसरे मेहमान या वोलोद्या और दुवकोव आ जाते तो मैं आत्मसंतोपयुक्त भाव के साथ अपने को पीछे खींच लेता। मैं तो परिवार का अंग हूं—इस शांत शक्तिदायी चेतना में लिप्त रहकर मैं वात भी न करता था, केवल औरों की वातें सुनता था। और वे लोग जो भी कहते वह मुझे ऐसा नितांत मूढ़तापूर्ण ज्ञात होता था कि मैं मन

में यह विस्मय करने लगता था कि प्रिन्सेस जैसी सुचतुर और युक्तियुक्त मस्तिष्कवाली स्त्री तथा उसके परिवार के उतने ही समझदार अन्य लोग किस प्रकार उस बकवास को सुन लेते हैं और उसका उत्तर भी देते हैं। उस समय यदि दूसरों की बातों की तुलना कहीं मैंने उससे की होती जो अकेला होने पर मैं स्वयं किया करता था तो मुझे तनिक भी अचरज न होता। और उससे भी कम विस्मय मुझे तब होता जब मैं यह विश्वास करता कि स्वयं मेरे घर की स्त्रियां, अवदोत्या वासील्येव्ना, ल्यूबोच्का और कातेन्का बिल्कुल अन्य नारियों के समान थीं, औरों से ज़रा भी घटकर नहीं। दुबकोव, कातेन्का और अवदोत्या वासील्येव्ना सांझ की सांझ गपशप और हंसी-क़हक़हों में काट दिया करती थीं। उनकी लगभग सभी गोष्ठियों में दुबकोव उपयुक्त अवसर पाते ही आवेगयुक्त स्वर में «Au banquet de la vie, infortuné convive...»* अथवा "शैतान" की पंक्तियां सुनाने लगता। वे सब लोग घंटों रस ले-लेकर दुनिया भर की निरर्थक चर्चा किया करते।

जब अतिथि आये हुए होते तब वारेन्का, उस समय की अपेक्षा जब हम अकेले हुआ करते थे, स्वभावतः मेरी ओर कम ध्यान देती थी। उन अवसरों पर पढ़ाई या संगीत, जिन में मुझे बहुत आनन्द आता था, बंद हो जाते थे। अतिथियों से बातें करते समय वारेन्का का मेरे लिए जो प्रधान आकर्षण था– उसकी सादगी और शांत विचारशीलता – वह लुप्त हो जाया करती थी। मुझे याद है कि वोलोद्या के साथ उसे थिएटर और मौसम के विषय में बातें करते देख मुझे कितना आश्चर्य हुआ था। मैं जानता था कि वोलोद्या को वार्तालाप के घिसेपिटे विषयों से सख़्त चिढ़ थी। वारेन्का भी मौसम आदि के विषय में किये जानेवाले दिखावटी मनोरंजन की बातों की सदा हंसी उड़ाया करती थी। फिर क्या कारण

---

* [जीवन के भोज में उपस्थित अभागा आगन्तुक]

था कि मिलने पर दोनों निरंतर ऐसे ही ऊलजलूल विषयों की असह्य चर्चा करते और वह भी यों मानो एक दूसरे से सकुचा रहे हैं? ऐसे प्रत्येक वार्तालाप के वाद मैं मन ही मन वारेन्का से झल्लाया। अगले दिन मैं उन अतिथियों की हंसी उड़ाता। तो भी नेख्ल्यूदोव परिवार–मण्डल में अकेले रहना मुझे और अधिक भाता था।

वात जो भी हो, अब द्मीत्री के साथ आमने-सामने अकेला रहने के वजाय उसकी मां के वैठकखाने में रहना मुझे अधिक अच्छा लगता था।

इकतालीसवां परिच्छेद

नेख्ल्यूदोव के साथ मेरी मित्रता

इन दिनों नेख्ल्यूदोव के साथ मेरी मित्रता एक धागे पर टिकी हुई थी। मैं इतने दिनों से उसकी आलोचना कर रहा था जिससे यह तो मुझे मालूम हो गया था कि उसमें कमज़ोरियां क्या हैं। तरुणावस्था के प्रारम्भिक काल में हम किसी को प्यार करते हैं तो आवेगयुक्त ढंग से; अतएव हमारे प्यार का पात्र सदा सर्वांग-श्रेष्ठ व्यक्ति ही होता है। किन्तु जब आवेग का कुहासा मिटने लगता है और अनिवार्य रूप से युक्तिपूर्ण विचारों की किरणें अंदर प्रवेश करती हैं तो प्यार का पात्र अपने वास्तविक रूप में, गुण तथा अवगुण दोनों लिये हुए, सामने आ जाता है। उस समय अवगुण हमें अप्रत्याशित प्रतीत होते हैं और दृष्टि उन्हें वढ़ाकर उनके ही ऊपर टिक जाती है। नवीनता का आकर्षण और यह आशा कि वह किसी अन्य व्यक्ति में प्राप्त की जा सकेगी, पूर्व पात्र के प्रति उपेक्षा ही नहीं अरुचि का भाव जगाती है और हम निर्ममतापूर्वक उसका परित्याग कर नवीन सर्वांग-श्रेष्ठता की खोज में अग्रसर होते हैं। यदि द्मीत्री के सम्वन्ध में ठीक यही चीज़ मेरे साथ नहीं गुज़री तो इसका कारण यह था कि मैं उसके संग एक हठीले, कितावी और वौद्धिक

प्रीति के धागे से, हार्दिक प्रीति-पाश से नहीं, बंधा था और इस प्रीति के प्रति झूठा बनने में मुझे संकोच होता था। इसके अतिरिक्त हम एक दूसरे के साथ खरापन बरतने के अपने विलक्षण नियम से आबद्ध थे। हमें अत्यधिक भय था कि एक-दूसरे का परित्याग करने पर अपनी अंतरंग बातें जो हमने एक-दूसरे को बता रखी थीं और जिनके कारण हमें लाज आती थी, एक-दूसरे की मुट्ठी में होंगी। यद्यपि, जैसा कि हम दोनों पर प्रकट था, बहुत दिनों से हमने एक-दूसरे से कुछ न छिपाने के अपने नियम का पालन नहीं किया था। इससे हमें बड़ी झिझक महसूस होती थी और हमारे आपसी सम्बन्ध विचित्र हो गये थे।

उन जाड़ों में लगभग जब भी मैं द्मीत्री के घर गया उसे विश्वविद्यालय के उसके साथी बेज़ोबेदोव के साथ पाया जिसके संग वह पढ़ा करता था। बेज़ोबेदोव का हुलिया यों था: नाटा, पतला, चेचकरु, चित्तियों से भरे बहुत छोटे छोटे हाथ, सिर पर ढेर से घने, बिखरे लाल बाल। वह सदा फटे और गंदे कपड़े पहने रहा करता था। वह अशिक्षित और पढ़ने में भी कमज़ोर था। ल्युबोव सेर्गेयेव्ना की भांति, इस व्यक्ति के साथ द्मीत्री का सम्बन्ध भी मेरी समझ में न आता था। विश्वविद्यालय के सारे साथियों में से बेज़ोबेदोव को ही अपना घनिष्ठ मित्र चुनने का एकमात्र कारण यही रहा होगा कि बेज़ोबेदोव विश्वविद्यालय का सबसे बदसूरत लड़का था। सम्भवत: इसी कारण मानो सभी को अंगूठा दिखाते हुए द्मीत्री उसके प्रति मित्रता का प्रदर्शन करके आनंद प्राप्त करता था। उपर्युक्त छात्र के साथ उसके पूरे सम्बन्ध का आधार यह उद्दण्ड और घमण्डभाव था कि—"तुम चाहे जो हो—जैसे हो, मेरे लिए सभी बराबर हैं। अगर मैं उसे पसंद करता हूं तो वह अच्छा है।"

मुझे इस बात पर अचरज होता था कि अपने आप पर निरंतर अंकुश डाले रखना द्मीत्री को कष्टकर प्रतीत नहीं होता था और अभागा

वेज़ोवेदोव भी अपनी बेमेल स्थिति को बर्दाश्त कर रहा था। दोनों की यह मैत्री मुझे ज़रा भी न भाती थी।

एक बार मैं द्मीत्री के यहां इस इरादे से गया कि उसकी मां के बैठकखाने में उसके साथ गपशप करके शाम काटूंगा और वारेन्का का गाना या पढ़ना सुनूंगा, पर कोठे पर वेज़ोवेदोव बैठा हुआ था। द्मीत्री ने कटु स्वर में कह दिया कि वह नीचे नहीं आएगा क्योंकि उसके मुलाक़ाती आये हुए हैं।

"इसके अलावा वहां बैठने में क्या रखा है?" उसने कहा। "उससे तो यहीं बैठकर बातें करना बेहतर है।" दो घंटे वेज़ोवेदोव के संग बैठने और बातें करने का ख्याल मुझे कुछ जंचा नहीं पर मजबूरी थी। मैं अकेले बैठकखाने में नहीं जा सकता था। अपने मित्र के झक्कीपन पर मन ही मन झल्लाकर मैं वहीं झूलेवाली कुर्सी में बैठकर पेंग लेने लगा। मुझे द्मीत्री और वेज़ोवेदोव पर बड़ा गुस्सा आ रहा था क्योंकि उन्होंने मुझे नीचे जाने के आनंद से वंचित रखा था। मैं चुपचाप बैठा उनकी बातचीत सुनकर मन ही मन खीझ और वेज़ोवेदोव के विदा होने की प्रतीक्षा कर रहा था। नौकर चाय ले आया और द्मीत्री को कम से कम पांच बार वेज़ोवेदोव से एक गिलास चाय लेने का अनुरोध करना पड़ा क्योंकि लजीले मेहमान महोदय का ख्याल था कि उन्हें शुरू में इनकार करना और कहना चाहिए–"नहीं, मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। आप पीजिए।" उस समय मैंने मन में कहा–"वाह, खूब मेहमान मिला है समय काटने के लिए!" द्मीत्री प्रयासपूर्वक (यह स्पष्ट दिख रहा था) अतिथि को बातचीत में उलझाये हुए था। उसने मुझे भी उसमें खींचने के कई निष्फल प्रयत्न किये। मैंने मलिन मौन अपना रखा था।

कुर्सी में चुपचाप, नियमित पेंगें भरते हुए मैंने मन में ही द्मीत्री से कहा–"यह दिखावा करने से लाभ कि मैं ऊबा हुआ नहीं हूं?" अपने मित्र के प्रति जो मेरे मन में शांत, सम घृणा की आग धधक रही

थी, उसे मैं अधिकाधिक सुलगाता गया। मन में कहा—"कितना बड़ा गधा है यह! अपने घर के लोगों के संग कितनी आनंदपूर्ण शाम बिता सकता है पर इस जानवर को लिये यहां बैठा हुआ है। और इतनी देर तक इसी तरह बैठा रहेगा कि फिर नीचे जाने का वक़्त ही न रहेगा।" मैंने कुर्सी के पीछे से अपने मित्र को देखा। उसका हाथ, बैठने का रुख़, गर्दन और विशेषकर गर्दन का पिछला भाग मुझे इतना घृणित और क्षोभजनक लगा कि उस समय क्या-कुछ न कर बैठता, और वह करके मुझे सन्तोष भी होता।

ख़ैर, किसी तरह वेज़ोवेदोव जाने को उठा, पर द्मीत्री साहब भला ऐसे सुखद अतिथि से क्योंकर बिछड़ना पसंद कर सकते थे? उन्होंने उसे रात को वहीं ठहर जाने का अनुरोध किया। सौभाग्यवश, वेज़ोवेदोव ठहरने को राज़ी न हुआ और विदा हो गया।

उसे पहुंचाकर द्मीत्री लौटा और आत्मसंतुष्ट ढंग से ख़ूब मुसकुराते और हाथों को रगड़ते हुए, जिसका कारण सम्भवतः यह था कि वह अपनी हठ पर खड़ा है और सम्भवतः यह भी कि एक नीरस व्यक्ति से अंततः पल्ला छूटा है, वह कमरे में टहलने लगा। ऐसा करते हुए वह बीच बीच में मुझे एक नज़र देखता जाता था। इस समय वह मुझे और भी घृणित लग रहा था। "गधा कहीं का। देखो किस तरह खीसें निकाल रहा है और टहलता जा रहा है।" मैंने मन ही मन कहा।

"तुम मुझसे नाराज़ क्यों हो?" उसने सहसा मेरे सामने आकर रुकते हुए कहा।

"मैं बिल्कुल नाराज़ नहीं हूं।" मैंने साधारण औपचारिक ढंग से कहा। "मुझे केवल इसलिए हैरानी हो रही है कि तुम मेरे प्रति, वेज़ोवेदोव के प्रति, और अपने प्रति भी ऐसे ढोंगी क्योंकर बन गये।"

"क्या व्यर्थ की बातें कर रहे हो? मैं कभी किसी के प्रति ढोंग नहीं करता"।

"हम लोगों ने वचन दिया था कि एक-दूसरे से सब कुछ खुलकर कहेंगे। मैं उसे नहीं भूला हूं और तुमसे खुलकर मन की बात कहूंगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि वेज़ोवेदोव जितना असह्य मेरे लिए है उतना ही तुम्हारे लिए भी, क्योंकि वह मूर्ख है, गधा है और ईश्वर जाने क्या क्या है। किन्तु तुम उसकी दृष्टि में महान दिखना चाहते हो।"

"यह बिल्कुल सच नहीं। इसके अलावा वेज़ोवेदोव अव्वल तो बहुत अच्छा आदमी है..."

"लेकिन मैं कह रहा हूं, यह बिल्कुल सच है। मैं तो यह भी कहूंगा कि ल्युबोव सेर्गेयेवना के साथ तुम्हारी दोस्ती का आधार भी यही है कि वह तुम्हें देवता समझती है।"

"और मैं कह रहा हूं, यह बिल्कुल ही सच नहीं।"

"मैं कह रहा हूं यह बिलकुल सच है क्योंकि मैं अपने अनुभव से यह जानता हूं।" मैंने दबी झल्लाहट की उत्तेजना में, अपनी स्पष्टवादिता द्वारा उसे निःशस्त्र कर देने की ठान कर कहा। "मैं तुमसे कह चुका हूं, और फिर कह रहा हूं कि मुझे सदा ऐसे लोग अच्छे लगते हैं जो मेरी मनभावनी बातें करते हैं। और जब मैं इसका निकटता से निरीक्षण करता हूं तो मुझे पता चलता है कि हममें वास्तविक प्रेम नहीं है।"

"नहीं।" द्मीत्री ने झल्लाहट भरे झटके के साथ गर्दन का रूमाल ठीक करते हुए कहा। "जब मैं प्यार करता हूं तो प्रशंसा या निन्दा मेरी भावना में कोई परिवर्तन नहीं ला सकती।"

"यह सच नहीं। मैं तुमसे अपने हृदय की बात बता चुका हूं। पापा ने भी जब मुझे नालायक़ और निकम्मा कहा था तो कुछ देर के लिए मुझे उनसे इतनी घृणा हो गयी थी कि उनकी मृत्यु-कामना करने लगा था। ठीक उसी तरह जिस तरह तुम..."

"अपने ही बारे में बोलो। यह बड़े दुख की बात है यदि तुम ऐसे हो कि..."

"जी नहीं। इसके विपरीत," मैंने कुर्सी से उछलते हुए और आखिरी कोशिश के लिए अपनी सारी ताक़त बटोरकर उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा। "तुम ऐसी बात कह रहे हो जो कदापि उपयुक्त नहीं। तुमने क्या भाई के विषय में नहीं कहा था? मैं तुम्हें उसकी याद न दिलाऊंगा क्योंकि ऐसा करना नीचता होगी। क्या तुमने नहीं कहा था... मैं तुम्हें अब क्या समझता हूं यह साफ़ कह दूंगा..."

और उसने मेरे प्रति जैसी जलानेवाली बात कही थी उससे अधिक जलानेवाली बात उसके प्रति कहने की आवेशयुक्त आतुरता के साथ, मैं लगा उसके समक्ष यह सिद्ध करने कि वह किसी को प्यार नहीं करता तथा वे सारी बातें कहने लगा, जिन्हें लेकर मैं, अपने विचार में, उसकी अधिकारपूर्वक भर्त्सना कर सकता था। मुझे उसे कुछ सुना डालने पर बड़े संतोष का बोध हो रहा था। यह मैं भूल ही गया था कि मेरे कहने का एकमात्र उद्देश्य जो यह था कि वह अपनी कमज़ोरियों को जिनकी मैं सूची गिना रहा था खुले दिल से स्वीकार करे—उस समय, जब कि वह उत्तेजित हो रहा था, कदापि पूरा नहीं हो सकता था। किन्तु मैंने ये बातें उससे उस समय कभी न कहीं जब वह शांत चित्त था और उन्हें स्वीकार कर सकता था।

बहस झगड़े का रूप लेने लगी थी। उसी समय द्मीत्री एकबारगी चुप हो गया और बग़ल के कमरे में चला गया। मैं बकना जारी रखते हुए उसके पीछे पीछे उस कमरे में जाने ही वाला था, पर उसने मेरी बातों का जवाब न दिया। मैं जानता था कि, उसके विकारों की सूची में हिंसापूर्ण आवेग भी है और इस समय वह इसे दबाने का प्रयास कर रहा है। मैं उसकी समस्त योजनाओं की भर्त्सना करता रहा।

यही अंततः हमारे इस नियम का कि—"अपनी सभी भावनाएं एक-दूसरे से कह दिया करेंगे और किसी तीसरे आदमी से एक-दूसरे के विषय में कुछ न कहेंगे," परिणाम था। स्पष्टवादिता की तरंगों में वह

जाते हुए हम लोगों ने कभी-कभार एक दूसरे से हृदय के भावों के शर्मनाक से शर्मनाक ब्योरे बयान कर डाले थे। यहां तक कि अस्पष्ट सपने और आकांक्षाएं भी बयान कर डाली थीं मानो वे निश्चित अभिलाषाएं और भावनाएं रही हों, मसलन जैसी कि मैंने अभी अभी उसके सामने व्यक्त की थी। इन स्वीकारोक्तियों ने हमारे मैत्री पाश को सुदृढ़ करने के बदले भावना के स्रोत को ही सुखा डाला और हमें विलग कर दिया था। और आज बात यहां तक पहुंची कि अहंकार ने उसे एक तुच्छ-सी बात भी न स्वीकार करने दी और बहस के आवेश में आकर हम लोगों ने एक दूसरे के विरुद्ध उन्हीं तीरों का प्रयोग कर डाला जिन्हें हमने स्वयं एक-दूसरे के तरकश में डाला था—ऐसे तीर जिन्होंने हमारे हृदयों को बुरी तरह बींध डाला।

बयालीसवां परिच्छेद

सौतेली मां

पापा अपनी पत्नी के साथ नववर्ष के पहले मास्को नहीं आनेवाले थे। लेकिन वह अक्तूबर में ही पहुंच गये, ठीक उस समय जब कि गांव में कुत्तों के साथ शरदकालीन शिकार का सर्वोत्तम सुयोग उपस्थित था। उन्होंने कहा कि मास्को में उनका मुक़दमा सुना जानेवाला था इसी लिए उन्हें अपना कार्यक्रम बदलना पड़ा। किन्तु मीमी ने बताया कि अवदोत्या वासील्येव्ना का मन देहात में बिल्कुल ऊब गया था, वह बारम्बार मास्को की ही चर्चा और बीमारी के बहाने कर रही थीं। पापा को बाध्य होकर उनका मन रखना पड़ा। "वह उन्हें प्यार-व्यार क्या करेगी केवल दौलतमंद आदमी को फंसाने के लिए दुनिया भर में प्रेम का ढिंढोरा पीटे हुई थी।" मीमी ने विचारों में डूबते हुए आह भरकर कहा जिसका मतलब यह था—"एक 'ख़ास व्यक्ति' मौजूद था जो उनके लिए क्या कुछ न कर सकता था बशर्ते कि उन्होंने उसे पूछा होता। पर, अफ़सोस!"

पर वह 'खास व्यक्ति' वास्तव में अवदोत्या वासील्येव्ना के साथ अन्याय कर रहा था। पापा के प्रति उसका प्यार—समग्र हृदय का प्यार—और आत्मवलिदान का भाव, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक दृष्टि और प्रत्येक चेष्टा से प्रगट होता था। किन्तु यह प्यार पति का संग न छोड़ने की इच्छा के अतिरिक्त मैडम एन्नेत की दूकान की वनी अनोखी, शुतुरमुर्ग़ के असाधारण नीले पंखवाली टोपियों और वेनिस के नीले मखमल के वने गाउनों को—जिनसे उनकी सुंदर श्वेत वांहें और वक्षस्थल, जिनका अभी तक केवल उनके पति या परिचारिकाएं दर्शन पाती रही थीं, कलापूर्ण रीति से दिग्दर्शित होते थे—प्राप्त करते जाने की आग्रहयुक्त आकांक्षा को नहीं रोक सकता था। वेशक, कातेन्का अपनी मां का पक्ष लेती थी। जहां तक हम लोगों का सवाल था आगमन के प्रथम दिन से ही सौतेली मां और हमारे वीच एक प्रकार का विलक्षण परिहासयुक्त सम्वन्ध स्थापित हो गया। उनके गाड़ी से उतरते ही वोलोद्या गम्भीर चेहरे और जड़ मुद्रा के साथ, क़वायद की भंगिमा में उनके हाथ चूमने गया और ऐसे स्वर में मानों किसी के साथ उनका औपचारिक परिचय करा रहा हो, वोला:

"अपनी परमप्रिय माताजी को वधाई देने और उनके हाथ चूमने के लिए उनका पुत्र सादर उपस्थित है।"

"ओ, मेरे प्रिय वेटे," अवदोत्या वासील्येव्ना ने अपनी सुंदर, एक-रस मुसकान के साथ कहा।

"और अपने द्वितीय प्रिय पुत्र को न भूल जाइएगा।" मैंने भी उनके हाथ को चूमने के लिए वढ़ते और अनजाने ही वोलोद्या के भाव और स्वर का अनुकरण करने की कोशिश करते हुए, कहा।

यदि हमें और हमारी विमाता को अपने पारस्परिक स्नेह का निश्चय होता तो सम्भवतः उपरोक्त भाव-व्यंजना केवल स्नेह के प्रतीकों का दिखावा करने के प्रति तिरस्कार का सूचक होती। यदि हममें

पारस्परिक मनोमालिन्य होता तो वह सम्भवतः व्यंग्य, अथवा झूठे दिखावे के प्रति तिरस्कारभाव अथवा पिताजी से (जो वहां उपस्थित थे) वास्तविक सम्बन्धों तथा अन्य भावनाओं और आवेगों को छिपाने की इच्छा की द्योतक होती। किन्तु इस स्थान पर उपर्युक्त भाव-व्यंजना जो स्वयं अवदोत्या वासील्येव्ना की पसंद के सर्वथा अनुकूल थी, किसी भी वस्तु की द्योतक न थी। उससे केवल यही इंगित होता था कि किसी भी प्रकार के सम्बन्ध आपस में नहीं हैं। उसके बाद से मैंने बहुधा अन्य परिवारों में, जिसके सदस्य पहले से यह समझ जाते हैं कि उनके सम्बन्ध बहुत सुखद नहीं हो रहे हैं, ऐसे ही मिथ्या और परिहासयुक्त सम्बन्ध देखे हैं। और चाहें या न चाहें, ऐसे सम्बन्ध हम लोगों और अवदोत्या वासील्येव्ना के बीच भी बन गये। हम कभी इनसे इधर या उधर न होते थे। हम सदा उनके प्रति आडम्बरयुक्त विनम्रता बरतते, फ़्रांसीसी में बातचीत करते, औपचारिक ढंग से अभिवादन करते, और उन्हें फ़्रांसीसी में chère maman* कहकर पुकारते जिसका वह भी परिहास द्वारा उसी शैली में और अपनी सुंदर, एक-रस मुसकान के साथ प्रत्युत्तर करती थीं। केवल बात बात में आर्द्र हो उठनेवाली, सरल-हृदय से बड़बड़ लगाये रखने एवं टेढ़ी टांगोंवाली ल्यूबोच्का विमाता के प्रति तुरंत आकृष्ट हो गयी। वह सरल बचपने के साथ, और कभी कभी बड़े भोंड़े ढंग से उन्हें पूरे परिवार के निकटतर लाने का प्रयास किया करती थी। अवदोत्या वासील्येव्ना को भी पिताजी के प्रति अपने आवेगयुक्त प्रेम के अतिरिक्त दुनिया में यदि किसी के प्रति कुछ स्नेह था तो ल्यूबोच्का के प्रति। बल्कि वह उसके प्रति कभी कभी हर्षातिरेकपूर्ण प्रशंसा और एक प्रकार का सहमा हुआ आदरभाव प्रदर्शित करती थीं जिससे मैं आश्चर्यचकित हो जाया करता था।

---

* [प्यारी मां]

शुरू में अवदोत्या वासील्येव्ना को अपने को विमाता कहने का बड़ा शौक़ था और वह संकेत किया करती थीं कि चूंकि घर के बच्चे और अन्य सदस्य विमाता को सदा दोष से पूर्ण समझने और अन्याययुक्त दृष्टि से देखने के अभ्यस्त हैं इसलिए वह अपने को कठिन स्थिति में पाती हैं। किन्तु स्थिति की अप्रियता को समझते हुए भी उन्होंने कभी उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं किया। मसलन, वह कभी-कभार किसी को प्यार कर देतीं, किसी को कोई उपहार लाकर दे देतीं अथवा निरंतर भुनभुनाना छोड़ सकती थीं जो उनके लिए अत्यंत सहज भी था क्योंकि वह स्वभाव की मिलनसार थीं और उनमें कठोरता का सर्वथा अभाव था। किन्तु इनमें से उन्होंने एक भी न किया। उलटे अपनी स्थिति की अप्रियता को पहले ही से सोचकर आक्रांत हुए बिना ही प्रतिरक्षा की तैयारियां कर डालीं। यह मान कर कि घर के सभी लोग यथाशक्ति उन्हें अपमानित करने और परिस्थिति को उनके लिए अप्रिय बनाने की इच्छा रखते हैं उन्हें हर चीज़ में बुरी नीयत ही दिखाई दी और उन्होंने सोच लिया कि उनके लिए सबसे मर्यादापूर्ण मार्ग चुपचाप सब कुछ सहन करते जाना है। निश्चेष्ट सहिष्णुता के इस रुख़ ने औरों का स्नेह जीतने के बदले उनमें विरोधभाव उत्पन्न किया। इसके अलावा, बिना शब्दों के ही एक-दूसरे को समझने के गुण का जिसकी मैं पहले चर्चा कर चुका हूं और जो हमारे घर में अत्यधिक विकसित अवस्था में था उनमें इतना अभाव था और उनकी आदतें उन आदतों के जो हमारे परिवार में इतने दिनों से जमी हुई थीं ऐसी विपरीत थीं कि अकेले इसी ने लोगों का मनोभाव उनके प्रतिकल कर दिया। हमारे साफ़-सुथरे, व्यवस्थित घर में वह यों रहतीं मानो अभी अभी कहीं बाहर से आयी हों। कभी वह ख़ूब सवेरे उठ जातीं, सवेरे ही सोने चल देतीं, और कभी इसका उलट होता। कभी वह सब के साथ भोजन के लिए नीचे आतीं, कभी नहीं। कभी रात का अंतिम भोजन करतीं, कभी नहीं। जब कोई बाहर से आया हुआ न होता तो

वह अधिकांश समय आधे कपड़े पहने ही गुज़ार देतीं। उन्हें केवल एक सफ़ेद पेटीकोट पहने, शाल लपेटे, बांहें उघाड़े, हम लोगों के सामने आने में लाज नहीं मालूम होती थी। यहां तक कि नौकरों के सामने भी नहीं। आरम्भ में तो रूढ़ियों की यह उपेक्षा मुझे अच्छी लगी। किन्तु परिणाम यह हुआ कि उनके प्रति मेरा सारा आदरभाव शीघ्र ही लुप्त हो गया। जो बात मुझे उनमें सबसे अनोखी लगती थी वह यह कि उनके अंदर दो बिल्कुल भिन्न स्त्रियां थीं। एक किसी बाहरी व्यक्ति की मौजूदगी में और दूसरी किसी बाहरी व्यक्ति के न होने पर प्रगट होती थी। जो अतिथियों के समक्ष उपस्थित होती, वह एक स्वस्थ, सर्द तरुण सुंदरी थी, कमनीयतापूर्वक वस्त्रावेष्ठित, न चालाक, न मंद बुद्धि, किन्तु उत्फुल्लचित। दूसरी वह थी जो मेहमानों के न रहने पर घर में दिखाई देती थी—उदास, थकी नारी, जो अब उतनी तरुण न थी, फूहड़, और ऊबी हुई, किन्तु स्नेहमय। जिस समय वह कहीं लोगों से मिल-मिलाकर घर लौटतीं और बाहर की सर्दी से हुआ गुलाबी चेहरा तथा रूप की सुखद संज्ञा लिये हुए आईने के सामने जाकर सिर से टोपी उतारतीं, अथवा, बाल-डान्स में जानेवाली कीमती, गर्दन के नीचे खुली पोशाक सरसराती हुई नौकरों के सामने किंचित संकुचित किन्तु गर्वयुक्त भाव से गाड़ी में सवार होने के लिए नीचे उतरतीं, अथवा घर पर शाम को जब कई मेहमान जमा होते और चुस्त रेशमी गाउन और कोमल गर्दन के पास मुलायम झालर लगाये, अपनी एकरस किन्तु सुंदर मुसकान की छटा के साथ सभी की ओर देखती हुई बैठी होतीं, उस समय मैं बहुधा मन में सोचता—इन्हें विस्मय-विमुग्ध, प्रशंसा की दृष्टि से देखनेवाले तक क्या कहेंगे जब वे मेरी तरह, उन्हें शाम के वक़्त घर पर छाया की भांति एक से दूसरे अर्ध-प्रकाशित कमरे में निरुद्देश्य, केश बिखराये, कंधों पर ओढ़ने की कोई चीज़ डाले, पति के क्लब से लौटने की प्रतीक्षा करते हुए घूमते देखेंगे? ऐसे समय वह कभी

प्यानो पर जा वैठतीं और ज़ोर लगाकर, जिससे उनकी त्योरी पर वल पड़ जाता, वाल्ज़ का एक टुकड़ा वजातीं। फिर उठतीं और कोई उपन्यास उठा लेतीं और वीच से दो-चार पंक्तियां पढ़कर उसे भी फेंक देतीं। अथवा नौकरों को न जगाने के विचार से वरतनों की आलमारी के पास चली जातीं और वहां खड़े ही खड़े ककड़ी और ठंडा मांस खाने लगतीं। अथवा थकी और ऊवी हुई कमरों का निरुद्देश्य चक्कर लगातीं, किन्तु जो वस्तु हम लोगों के वीच सवसे अधिक दूरी उत्पन्न करती थी, वह यह कि वह हमें कुछ समझती ही न थीं। यह उनकी उन अनुग्रहयुक्त चेष्टाओं से व्यक्त होता था जो वे उस समय व्यवहृत करती थीं जिस समय कोई उनसे ऐसे विषय पर कुछ कहने जाता जिसका उन्हें ज्ञान न होता। इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता कि उन्हें ऐसे विषयों पर कुछ कहे जाने के समय जिनमें उनकी दिलचस्पी न थी (और अपने और अपने पति के अतिरिक्त उन्हें किसी भी वस्तु में दिलचस्पी न थी) केवल ओठों द्वारा हल्के मुसकुराने और सिर झुका देने की अनजाने ही आदत-सी पड़ गयी थी। किन्तु वारम्वार की वह मुसकान और सिर का झुकाना अवर्णनीय रूप से अरुचिकर था। उनका हास-परिहास भी जो मानो अपनी, हम लोगों की और समूची दुनिया की हंसी उड़ाता था, किसी पर प्रभाव न डालता। उनकी संवेदनशीलता में ज़रूरत से ज्यादा चाश्नी मिली होती थी। किन्तु प्रधान वस्तु यह थी कि उन्हें सभी के सामने निरंतर पापा के साथ अपने प्रेम की चर्चा करने में लाज नहीं लगती थी। उनके यह कहने में कि उनका सम्पूर्ण जीवन पति-प्रेम को अर्पित है किंचित मात्र अतिशयोक्ति न थी, और उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन द्वारा इसे सिद्ध कर दिखाया, तथापि हम लोगों के लिए इस प्रकार निरंतर निःसंकोच अपने प्रेम की चर्चा करना नितांत अरुचिकर था। जव वह अजनवी आगंतुकों के सामने भी यही करने लगतीं तो हम लोग शर्म से गड़ जाते, उससे भी अधिक जितना कि उनके ग़लत फ़्रांसीसी वोलने पर।

वह संसार में सभी वस्तुओं से अधिक अपने पति को प्यार करती थीं। और उनके पति भी उन्हें प्यार करते थे, विशेषकर आरम्भ में जब वह देखते थे कि वह केवल उन्हीं के लिए मनोहारिणी न थीं। उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य पति का प्रेम प्राप्त करना था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि वह जान-बूझकर ऐसे ही सारे काम करती थीं जो पति को अप्रिय हो सकते थे। और यह करती थीं वह, उन्हें प्रेम का पूरा सामर्थ्य तथा आत्मोत्सर्ग की अपनी तत्परता जताने के लिए।

उन्हें फ़ैशनेबुल कपड़ों का शौक़ था। मेरे पिताजी उन्हें सोसाइटी की रूपगर्विता रमणी के रूप में देखना पसंद करते थे ऐसी रमणी जिसे देखकर लोग दांत तले उंगली दवा लेते हैं। उन्होंने पिताजी के हेतु उत्सवों-उछाहों में सम्मिलित होने के अपने शौक़ का वलिदान कर दिया और भूरा ब्लाउज़ पहने घर पर ही पड़ी रहतीं। पापा जिनका सदा से यह मत था कि पारिवारिक सम्वन्धों में स्वतंत्रता और समानता का होना एक अपरिहार्य शर्त है, आशा करते थे कि उनकी प्रेमप्रिय ल्यूबोच्का और उनकी नेक तरुणी पत्नी के बीच सच्ची दोस्ती का सम्बन्ध बन जायगा। किन्तु अवदोत्या वासील्येव्ना चूंकी आत्मोत्सर्ग-व्रती थीं अतएव वह घर की असली मालकिन—जैसा कि वह ल्यूबोच्का को कहा करती थीं—के प्रति अनुपयुक्त आदरभाव दर्शाना आवश्यक समझती थीं। इससे पापा को वड़ी ही तकलीफ़ होती थी। इस बार जाड़ों में पिताजी खूव जुआ खेले और अंत में वहुत-सा रुपया हार गये। किन्तु जुए के सम्वन्ध की वातें वह सदा परिवार से छिपाकर रखते थे। क्योंकि अपना जुआ खेलना वह पारिवारिक जीवन के साथ मिलाना न चाहते थे। आवदोत्या वासील्येव्ना प्रायः वीमार रहने पर भी अपने को उत्सर्ग किये दे रही थीं। जाड़ों के अंत में, जिस समय पिताजी चार के बाद या पांच वजे क्लव से, प्रायः थके और धन गवांकर आने के बाद

लज्जित से लौटते, उस समय वह, गर्भवती होने पर भी, अपनी भूरी ब्लाउज़ और वेसंवारे केशों के साथ डगमगाती हुई जाकर, उनका स्वागत करना अपना कर्तव्य मानती थीं।

अनावस्थित ढंग से वह पूछतीं कि खेल का नतीजा अच्छा रहा या नहीं जब पिताजी क्लब की अपनी करनी बयान करने लगते और उनसे, शायद सौवीं दफ़ा इतनी रात गये तक इंतज़ार में बैठे न रहने का अनुरोध करते तो वह अपने अभ्यस्त अनुग्रहपूर्ण ध्यान के साथ एवं मस्तक को किंचित हिलाते हुए सुनती जातीं। उन्हें पापा की जीत या हार में–जिन पर कि उनकी सारी जायदाद निर्भर थी–रत्ती भर भी दिलचस्पी न थी, तथापि रात में क्लब से लौटने पर सबसे पहले वही उनसे जाकर मिलतीं। पर केवल आत्मोत्सर्ग की भावना से प्रेरित होकर ही वे उनसे नहीं मिलने जाया करती थीं। उसके पीछे ईर्ष्या की एक गुप्त भावना भी थी जिसने उन्हें अभिभूत कर रखा था। दुनिया में कोई न था जो उन्हें यह यकीन करा सकता कि पिताजी क्लब में थे किसी चहेती के घर नहीं। वह पापा के चेहरे से उनके प्रेम रहस्यों को भांपने की कोशिश करती थीं। वहां कुछ न पाने पर वह ठंडी आह भरतीं और अपनी दुखियारी अवस्था की सुखद कल्पना में डूब जातीं।

इस तथा ऐसी ही निरंतर अनेक आत्मबलिदानपूर्ण कृतियों के कारण पापा के मन में शीत-ऋतु का अंत आते आते जब कि वह जुए में बहुत-सा धन गवां चुके थे और इसके कारण अधिक समय खिन्न रहा करते थे, पत्नी के प्रति 'मूक घृणा' की एक प्रकट और मिश्रित भावना उत्पन्न हो गयी। यह प्रेम के पात्र के प्रति वह दबा हुआ घृणाभाव था जो उस पात्र को हर प्रकार का तुच्छ नैतिक क्लेश देने की अचेतन कोशिश करता है।

तैंतालीसवां परिच्छेद

नये साथी

जाड़ा न जाने कब बीत गया। बर्फ़ का गलना आरम्भ हो चुका था। विश्वविद्यालय में परीक्षा-कार्यक्रम टांगे जा चुके थे। उस समय मुझे सहसा याद आया कि मुझे अठारह विषयों में जिनके लेक्चर मैंने सुने तो थे पर लिखा एक भी न था, और न उनपर ध्यान दिया और न ही उन्हें याद किया था, इम्तहान पास करना है। अचरज की बात है कि "इम्तहान कैसे पास करूंगा?" ऐसा सीधा सवाल कभी भी मेरे दिमाग़ में न उठा था। किन्तु उस पूरी शीत-ऋतु में सयाने तथा Comme il faut हो जाने की खुशी में मेरा दिमाग़ धुंधलेपन की ऐसी हालत में था कि यह सवाल उठने पर भी मैंने अपने साथियों के साथ अपनी तुलना की और कहा— "वे पास हो जायंगे तो क्या, उनमें से अधिकांश अभी तक Comme il faut नहीं हैं। अतएव मैं अब भी उनके मुक़ाबले में बेहतर स्थिति में हूं, और इम्तहान जरूर पास करूंगा। मैं लेक्चरों में केवल अभ्यासवश और इसलिए कि पापा मुझे घर से जाने को कहते थे, जाया करता था। इसके अलावा विश्वविद्यालय में अपने अनेक जानपहचानी थे जिनके संग खूब मौज से वक़्त कटता था। कक्षा का गुल-गपाड़ा, बातचीत और हंसी खेल मुझे बहुत अच्छे लगते थे। अब मैं पीछे की ओर बैठना पसंद करता था। प्रोफ़ेसर के भाषण की एकरस ध्वनि के बीच मैं विभिन्न विषयों का चिंतन करता या अपने साथियों को देखता। बीच बीच में किसी के संग, चुपके से मातेर्न की दूकान में जाकर थोड़ी वोद्का पी आने और कुछ खा-पी लेने में बहुत मज़ा मिलता था। ऐसा करने पर प्रोफ़ेसर की डांट सुनने के डर से उनके कक्षा से चले जाने के बाद दरवाज़े को धीरे से खोल हम अंदर आते। मुझे दालान में हंसी-ठहाके के साथ आयोजित "एक क्लास के दूसरी क्लास के साथ दंगलों में भाग लेना भी खूब अच्छा लगता था।

इन वातों में वड़ा मज़ा था। किन्तु जिस समय सभी लोग अधिक नियमित होकर लेक्चरों में आने लगे और भौतिक विज्ञान के प्रोफ़ेसर ने पाठ्यक्रम समाप्त कर परीक्षा तक के लिए विदा ली उस समय छात्र-गण अपने नोट इकट्ठे करने लगे और इम्तहान की तैयारियों में लग गये। मैं भी परीक्षा की पढ़ाई आरम्भ कर देने की सोचने लगा। ओपेरोव ने जिससे अव भी मेरी सलाम-वंदगी हो जाया करती थी पर दूर ही दूर से, न केवल मुझे अपने नोट दिये वरन् अपने यहां आकर अन्य छात्रों के संग अध्ययन करने का न्योता दिया। मैंने उसे धन्यवाद दिया और उसके संग पढ़ाई करने के लिए सहमत हो गया। उसे यह सम्मान प्रदान करते हुए मैं यह आशा कर रहा था कि उसके साथ पुराने झगड़े के दाग़ मिट जायंगे। मैंने केवल यह कहा कि, पढ़ाई मेरे घर पर हुआ करे क्योंकि मेरा घर वहुत अच्छा है।

इसपर अन्य छात्र साथियों ने जवाव दिया कि वारी वारी से सभी के घर पर पढ़ाई होनी चाहिए—कभी इनके यहां वैठ लिये, कभी उनके यहां, जहां भी निकटता की सुविधा हो। पहली वैठक जूख़िन के घर जमी। वह त्रूब्नी वौलेवार्द पर एक वड़े से घर का एक छोटा-सा कमरा था जो विभाजक-दीवार देकर अलग किया हुआ था। पहली वैठक में मैं देर से पहुंचा। उस समय पढ़ाई आरम्भ हो चुकी थी। वह छोटा-सा कमरा जूख़िन द्वारा इस्तेमाल किये जानेवाले निकृष्ट तम्वाकू के धुएं से भरा हुआ था। मेज़ पर वोद्का की एक चौकोर वोतल, गिलास, पावरोटी, नमक और वकरे के मांस की एक हड्डी रखी हुई थी।

जूख़िन ने विना उठे ही मुझे वोद्का की एक घूंट लेने और कोट उतार डालने को आमंत्रित किया।

"मैं जानता हूं, इस प्रकार के निमंत्रणों के तुम अभ्यस्त न होगे।" वह वोला।

सभी अलग से अलग कालर वाली छपे हुए कपड़े की गंदी कमीज़ें पहने हुए थे। उनके प्रति अपना घृणाभाव न प्रगट करने के हेतु मैंने कोट

उतार डाला और वेतकल्लुफ़ी से सोफ़ा पर लेट रहा। जूख़िन पढ़ता गया। बीच बीच में कापी में लिये नोटों को देखता जाता था। दूसरे छात्र कभी कभी उसे रोककर कोई प्रश्न पूछ लेते थे जिनका वह संक्षिप्त सारगर्भित और बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर देता था। मैं कुछ देर तो सुनता रहा पर जो कुछ पहले पढ़ा जा चुका था उसे न जानने के कारण मेरी समझ में ज़्यादा कुछ न आ रहा था। अतः मैंने एक सवाल पूछ दिया।

"देखो दोस्त, अगर यह भी नहीं जानते तो यह पाठ सुनने से तुम्हें कोई लाभ न होगा," जूख़िन बोला। "मैं तुम्हें कापियां दे दूंगा। कल तक पीछे के पृष्ठ पढ़ लेना।"

मुझे अपनी ग़ैरजानकारी पर शर्म मालूम हो रही थी। साथ ही जूख़िन की उक्ति मुझे बिल्कुल सही और उचित जंची थी। अतः मैं पाठ सुनना छोड़कर अपने नये साथियों का पर्यवेक्षण करने लगा। *comme il faut* और comme il faut नहीं के मानवों के मेरे वर्गीकरण के अनुसार ये स्पष्टतः दूसरी कोटि में आते थे। अतः मैं सहज ही उन्हें किंचित नीची निगाहों से देख रहा था। इतना ही नहीं, उन्हें देखकर मुझमें नफ़रत का एक भाव जाग रहा था जिसका कारण यह था कि comme il faut न होते हुए भी वे मुझे न केवल अपनी बराबरी का समझ रहे थे वरन् एक खास दोस्ताना अंदाज़ में मेरी पीठ ठोंक रहे थे। उनके पैर, गंदे हाथ जिनके नाख़ून पूरे छिले हुए थे, ओपेरोव की कनिष्ठा का एक लम्बा नाख़ून, उनकी गुलाबी कमीज़ें, अलग से लगे कालर, घनिष्ठतापूर्ण बोलचाल में खास खास कसमों का प्रयोग, जूख़िन का उंगली से एक नथुना दबाते हुए निरंतर नाक में सुंघनी डालना, और जानकर कुछ शब्दों का विशेष लहजे के साथ प्रयोग करना, जो मुझे किताबी, और घृणित बचपना जान पड़ता था—ये सब मुझमें उनके प्रति नफ़रत की दबी भावना जगा रहे थे। किन्तु मुझमें एक दयानतदार आदमी की नफ़रत कतिपय रूसी और विशेषकर विदेशी शब्दों के उनके उच्चारण के ढंग से सबसे अधिक उभड़ रही थी।

किन्तु उनके इस बाह्य रूप के बावजूद जो निश्चय ही मेरे अंदर जबर्दस्त अरुचि उत्पन्न कर रहा था—मैं उनमें अच्छाई पा रहा था। उनकी मस्ती से भरी आपस की दोस्ती देखकर मुझे ईर्ष्या हो रही थी और मैं उनके प्रति आकृष्ट हुआ जा रहा था। मैं उनसे घनिष्ठतर परिचय प्राप्त करना चाहता था जो मेरे लिए कठिन था। सीधे और नेक ओपेरोव से मेरी पहले ही से जानपहिचान थी। तेज़ और असाधारण प्रखर बुद्धि वाला जूख़िन जो स्पष्टतः इस मण्डली का सरताज था, मुझे बहुत ही अच्छा लगा। उसका हुलिया यों था—नाटा, बलिष्ठ, काले बालों वाला, किंचित सूजा हुआ और सदा चमकता किन्तु अत्यंत मेधावी, चपल और स्वतंत्र चेहरा। उसके चेहरे के इस भाव का विशेष कारण उसका ललाट जो ऊंचा न था वरन् गहरी काली आंखों के ऊपर मेहराब की तरह छाया हुआ था, उसके छोटे छोटे खड़े बाल और घनी काली दाढ़ी थी जो ऐसी दिखती थी मानो कभी उस्तरे के दर्शन न हुए हों। वह अपने विषय में नहीं सोचता था (यह गुण मुझे सदा बहुत प्रिय लगता था) किन्तु इतना स्पष्ट था कि, उसका मस्तिष्क कभी काहिल नहीं बैठता था। उसका चेहरा उन भावपूर्ण आकृतियों में था जिनमें प्रथम दर्शन के कुछ ही घंटों के अंदर आपके देखते ही देखते हठात् परिवर्तन हो जाता है। शाम होते होते यही जूख़िन के साथ भी हुआ। हठात उसके चेहरे पर नयी रेखाएं दिखाई दीं, आंखें और गहरी डूब गयीं, मुसकुराहट बदल गयी और पूरा चेहरा ऐसा परिवर्तित हो गया कि मैं कठिनाई से उसे पहिचान सकता था।

बैठक समाप्त होने पर, जूख़िन, अन्य छात्रों ने तथा मैंने अच्छे हमजोली बन जाने के उपलक्ष्य में वोद्का का एक एक जाम पिया। बोतल लगभग खाली हो गयी। जूख़िन ने पूछा कि किसी के पास चौथाई रूबल हो तो घर वाली बुढ़िया को और वोद्का लाने भेजा जाय। मैं पैसे देने लगा, पर जूख़िन ओपेरोव की ओर मुड़ गया मानो मेरी बात नहीं सुनी।

ओपेरोव ने जेव से मनकों से गुथा एक छोटा-सा मनीवेग निकाला और पैसे दे दिये।

"लेकिन ज्यादा न ढाल जाना," ओपेरोव जो स्वयं नहीं पीता था, वोला।

"नहीं, ऐसी क्या वात है," ज़ूखिन ने हड्डी में से गूदा चूसते हुए कहा। (मुझे याद है, उस समय मैंने सोचा था कि उसकी वुद्धि की प्रखरता का कारण हड्डी का गूदा खाना है)। "ऐसी क्या वात है," उसने किंचित मुस्कुराते हुए दुहराया। उसकी मुस्कुराहट ऐसी थी कि वरवस आपका ध्यान खींच लेती और हृदय उसके लिए कृतज्ञता से भर जाता था। "और ज्यादा पी ही लूं तो क्या नुकसान है? नीरस से नीरस सवक़ भी अव दावे के साथ घोंख सकता हूं। सव कुछ यहां मौजूद है।" उसने गर्व से अपने सिर को छूते हुए कहा। "लेकिन सेम्योनोव मालूम होता है फ़ेल होने पर तुल गया है। उसने शराव की वुरी तरह आदत डाल ली है।"

वास्तव में श्वेत केशोंवाले सेम्योनोव जिसने मेरे पहले इम्तहान के अवसर पर मुझसे वुरी पोशाक में होने के कारण मुझे संतोप प्राप्ति का सुखद अवसर प्रदान किया था और जिसने प्रवेशिका परीक्षा में द्वितीय स्थान प्राप्त करने के वाद विश्वविद्यालय के प्रथम मास में नित्य नियम से हाज़िरी दी थी, पियक्कड़ हो गया था। वर्प के अंतिम दिनों में तो उसने विश्वविद्यालय आना ही छोड़ दिया था।

"वह है कहां आजकल?" किसी ने पूछा।

"मुझे भी पता नहीं," ज़ूखिन वोला। "अंतिम वार जव मेरी उससे लिस्वन होटल में मुलाक़ात हुई थी, काफ़ी होहल्ला रहा। वड़ा मज़ा आया। लोग कहते हैं कि वाद में वहां कोई काण्ड हो गया था। वड़े जीवट का आदमी है वह। उसके अंदर धधकती आग है। और दिमाग़ भी क्या तेज़ पाया है उसने। अगर उसे कुछ हो गया तो वड़ा ही वुरा होगा। लेकिन सत्यानाश से वह वचेगा भी नहीं। वैसे अशान्त कलेजे का लड़का विश्वविद्यालय में हाथ पर हाथ धरे वैठा नहीं रह सकता।"

थोड़ी देर और बातचीत करने के बाद सभी घर जाने के लिए उठ खड़े हुए। तय पाया कि आगे भी जूखिन के यहां ही बैठक हो क्योंकि उसी का स्थान सबसे नज़दीक पड़ता था। आंगन में आने पर मेरी आत्मा ने मुझे कचोटा कि सभी पैदल हैं और मैं द्राश्की में। मैंने सकुचाते हुए ओपेरोव को उसके घर तक पहुंचा देने का प्रस्ताव किया। जूखिन हम लोगों के साथ ही बाहर आया था। उसने ओपेरोव से चांदी का एक रूबल उधार लिया और रात में चकल्लस के लिए अपने कुछ मित्रों के यहां चला गया। द्राश्की में जाते समय ओपेरोव ने मुझे जूखिन के चरित्र और रहन-सहन के बारे में बहुत-सी बातें बतलायीं। घर पहुंचने पर मुझे बड़ी देर तक नींद न आयी। बड़ी देर तक पड़ा अपने परिचय के इन नये लोगों के विषय में सोचता रहा। एक ओर तो उनकी विद्या, सादगी, सचाई और युवकोचित्त काव्य एवं साहस के प्रति आदरभाव जगता था, दूसरी ओर उनके असंस्कृत बाह्य रूप के प्रति अरुचि। मैं जागा हुआ देर तक इन दोनों भावों के बीच झूलता रहा। अपनी समस्त इच्छा के बावजूद, उस समय उनकी संगत करना मेरे लिए अक्षरशः असम्भव था। हमारे विचार सर्वथा भिन्न थे। विचार परिष्कार और आचरण के अपरिमेय सूक्ष्म स्तर थे जिनमें मेरे लिए जीवन का समस्त रस और सत् सन्निविष्ट था। पर उन्हें इनकी खबर भी न थी। और यही बात दूसरी तरफ़ भी लागू होती थी। किन्तु हम लोगों के साथी न बन सकने का प्रधान कारण था मेरा बीस रूबल का कीमती कोट, मेरी द्राश्की और मेरी बढ़िया कमीज़ें। यह कारण मेरे लिए खास महत्व रखता था। मुझे ऐसा बोध होता था कि अपनी सम्पन्नता द्वारा उनका अपमान कर रहा हूं। मैं उनके सामने अपने को अपराधी महसूस करता था। मैं किसी भी प्रकार उनके साथ समानता का सच्चा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता था क्योंकि पहले तो मैंने अपने को तुच्छ विनम्रता के स्तर पर उतारा, फिर इस अपमान पर जिसका मैं पात्र न था, मेरा मन विद्रोह कर बैठा, और मुझमें आत्मविश्वास जाग

उठा। किन्तु जूखिन में मैंने शौर्य का जो काव्यमय तेज देखा उसने उस समय मेरी दृष्टि में उसके चरित्र के अपरिष्कृत निम्न पक्ष को इस भांति अभिभूत कर लिया था कि उसका मेरे ऊपर अरुचिकर प्रभाव न पड़ा।

दो सप्ताह तक मैं हर शाम को जूखिन के यहां पढ़ने जाता रहा। मैं पढ़ता-वढ़ता नाम को ही था। कारण, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, मैं आरम्भ में ही पिछड़ गया था और मुझमें ऐसा अध्यवसाय न था कि अकेले ही पढ़कर सबों के बराबर आ सकूं। फलस्वरूप, संयुक्त बैठकों में जो पढ़ाई होती थी उसे सुनने और समझने का मैं केवल स्वांग कर रहा था। मुझे बोध था कि, मेरे साथी इस स्वांग को समझते हैं। मैंने देखा कि वे प्रायः अंशों को जो उन्हें याद थे, छोड़कर आगे बढ़ जाया करते और मुझसे न पूछते थे।

इस मण्डली के अव्यवस्थित जीवन के प्रति मैं दिनोदिन अधिकाधिक उदार होता जा रहा था। उसके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही जाता था और यह मुझे काफ़ी कवित्वमय लगने लगा था। केवल दूमीत्री को दिया वह वचन कि उन लोगों की पीने-पिलाने की गोष्ठियों में कभी न जाऊंगा उनके आमोदों में सम्मिलित होने की मेरी इच्छा को बेड़ी बनकर रोके हुए था।

एक बार मेरे मन में आया कि उन लोगों पर अपने साहित्य-ज्ञान का, विशेषकर फ़्रांसीसी साहित्य के ज्ञान का रोब-ग़ालिब करूं। अतः मैंने कौशल से बातचीत का रुख इस विषय की ओर मोड़ दिया। किन्तु उस वक़्त मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि विदेशी पुस्तकों के नाम रूसी लहजे में लेने के बावजूद उन्होंने मुझसे कहीं अधिक पढ़ रखा था। उन्हें अंग्रेज़ी और स्पेनी साहित्यकारों का भी ज्ञान था और वे उनकी बड़ी क़दर करते थे। उन्होंने लेसाजे को पढ़ रखा था, जिसका मैंने नाम भी न सुना था। पुश्किन और जुकोव्स्की की कृतियां उनके लिए साहित्य थीं (मेरी तरह पीली जिल्द में बंधी नन्हीं किताबें नहीं जिन्हें मैंने बचपन में याद किया था)। वे दूमा, सुये और फ़ेवल को समान भाव

से नापसंद करते थे। और मुझे यह भी मानना पड़ेगा कि साहित्यक विपयों की वे मुझसे कहीं अच्छी तरह आलोचना कर सकते थे, विशेपकर जूखिन। संगीतज्ञान में भी मैं उनसे ऊपर न था। यह जानकर मेरे आश्चर्य का ओर-छोर न रहा कि ओपेरोव वायोलिन वजाता था और एक अन्य सेलो और प्यानो। दोनों विश्वविद्यालय की वादकमण्डली के सदस्य थे। संगीत का उन्हें वढ़िया ज्ञान था और वे इस विद्या की वड़ी क़दर करते थे। संक्षेप में, फ़्रांसीसी और जर्मन के उच्चारण को छोड़कर वे, उन विपयों को जिनकी मैं उनके सामने डींग हांकना चाहता था, मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानते थे और इसका उन्हें तनिक अभिमान न था। अव सम्भवतः मैं अपनी दुनियावी व्यवहार-कुशलता का घमण्ड कर सकता था, पर वोलोद्या जैसा यह गुण भी मेरे पास न था। तो वह कौनसा श्रेष्ठ स्तर था जहां खड़ा होकर मैं इन लोगों को अपने से नीचा समझ सकता था? प्रिन्स इवान इवानिच के साथ परिचय होना, फ़्रांसीसी का सही उच्चारण करना? अपनी द्राश्की होना? कीमती कमीज़ें पहनना? सुघड़ नाख़ून रखना? क्या चीज़ थी वह? कुछ भी नहीं क्योंकि उपरोक्त विशिष्टताएं कोरी वकवास थीं। यह विचार, जिसका प्रेरक स्रोत वह ईर्ष्या थी जो उस सीधी-सादी, मस्त नौजवान मित्र मण्डली को देखकर मेरे मन उठती थी, प्रायः मेरे मस्तिप्क में आता। वे सभी एक-दूसरे को 'तू' कहकर पुकारते थे। उनकी वातचीत की सादगी में परिष्कारशून्यता थी। किन्तु उस खुरदरेपन के नीचे भी एक-दूसरे को चोट न पहुंचाने का जो आग्रह था, वह छिपा नहीं रह सकता था। वे एक-दूसरे को प्यार से 'आवारा' और 'सूअर' आदि शव्दों से सम्वोधित करते थे। इन्हें सुनकर मैं घृणापूर्ण प्रतिक्रिया से भर जाता और भीतर ही भीतर उनकी हंसी उड़ाता। किन्तु वे इन शव्दों का तनिक भी वुरा न मानते और न इनसे उनके सौहार्द में व्याघात पहुंचता था। एक-दूसरे के प्रति व्यवहार में वे सावधानी और समझदारी से काम लेते थे — ऐसी सावधानी और

समझदारी से जो बहुत ग़रीब और बहुत नौजवान व्यक्तियों में ही पायी जा सकती है। किन्तु प्रधान बात यह थी कि ज़ूख़िन के चरित्र और निस्बन होटल की उसकी दुस्साहसिक क्रीड़ाओं में निःसीमता और बंधन-मुक्ति की गंध आती थी। मेरा ख़्याल था, बैरन ज० के यहां की जली हुई रम और शैम्पेन के हमारे आडम्बरपूर्ण खेल-तमाशे से उनके ये आमोद सर्वथा भिन्न होंगे।

चौवालीसवां परिच्छेद

ज़ूख़िन और सेम्योनोव

मैं नहीं जानता कि ज़ूख़िन समाज के किस वर्ग से आया था। मुझे इतना ही पता था कि, वह 'एस' हाईस्कूल का विद्यार्थी, बिल्कुल निर्धन, प्रकटतः अकुलीन माता-पिता की संतान है। उस समय उसकी उम्र अठारह साल की थी यद्यपि वह कहीं अधिक वयस्क दिखता था। उसकी बुद्धि असाधारण रूप से प्रखर थी। नये विचारों को ग्रहण करने में वह ख़ास तौर से तेज़ था। किसी विषय के सभी पक्षों को ग्रहण कर लेना, उसकी शाखाओं-प्रशाखाओं और उससे निकल सकनेवाले निष्कर्षों को पहले ही जान लेना उसके लिए ज़्यादा आसान था बनिस्बत ज्ञान के आधार पर उन नियमों का विश्लेषण करने के जिनसे उन निष्कर्षों पर पहुंचा जा सकता है। वह जानता था कि वह मेधावी है। उसे इसका अभिमान था और इस अभिमान के फलस्वरूप सभी के साथ अपने वार्तालाप और सम्बन्धों में वह सदैव सरल और सुशील था। जीवन में उसे अवश्य बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा था। उसकी दुर्धर्ष और संवेदनशील प्रकृति उनमें तपकर प्रेम और मैत्री, दुनियादारी और पैसे को प्रतिबिम्बित करने लगी थी। यद्यपि सीमित तौर पर, और केवल समाज के निम्न वर्गों तक, किन्तु कोई भी ऐसी वस्तु न थी जिसे एक बार प्रमाण बना लेने के बाद वह तिरस्कार की दृष्टि से अथवा विस्मित

उपेक्षा और ध्यानशून्यता के साथ न देखता हो। इसका मूल-स्रोत हर वस्तु को आसानी से ग्रहण करने की उसकी असाधारण क्षमता थी। प्रकटतः, प्रत्येक नवीन वस्तु को वह केवल इसलिए ग्रहण करने की कोशिश करता था कि उद्देश्य-सिद्धि के पश्चात प्राप्त वस्तु का तिरस्कार कर सके। और उसका मेवावी मस्तिप्क सदैव उद्देश्य प्राप्ति में सफल होता था। अतएव उसे तिरस्कारभाव रखने का पूरा अविकार था। विज्ञान के विपय में भी यही वात थी। वह वहुत कम पढ़ता, नोट भी न लेता, तो भी गणित का वह पूर्ण पण्डित था। उसको दावा था कि वह प्रोफ़ेसर साहव को भी पछाड़ सकता है और इसमें अत्युक्ति न थी। उसके विचार में कालेज में जो पढ़ाया जाता था वह अविकांश वेतुका और फ़जूल था। किन्तु अपने सहज व्यावहारिक नटखट स्वभाव के वश वह तत्काल प्रोफ़ेसर के तक़ाज़े समझ जाता और उसकी पूर्ति करता। अतः सभी प्रोफ़ेसर उसे मानते थे। अविकारियों के समक्ष वह निर्भीक होकर वोलता था, फिर भी वे उसका आदर करते थे। विज्ञान के प्रति उसमें श्रद्धा अयवा उससे प्रेम न था। वल्कि वह उन लोगों को तिरस्कारभाव से देखता था जो उस विपय पर जिसे वह इतनी आसानी से ग्रहण कर लेता, माया खपाया करते थे। विज्ञान के लिए जैसा कि वह उसे जानता था—उसके मस्तिप्क वल का दसवां अंश भी आवश्यक न था। छात्र जीवन में ऐसी कोई वस्तु न थी जहां उसकी सम्पूर्ण क्षमता का उपयोग हो सकता। परन्तु उसकी दुर्घर्प, सक्रिय प्रकृति पूर्ण सार्थक जीवन की मांग करती थी। अतएव वह अपने अल्पवयस्क-सावनों के उपयुक्त व्यसनों में लगाम ढीली कर कूद पड़ता था। वह चाहता था कि जहां तक हो सके उसका उत्कट आवेग इस प्रक्रिया में निःशेप हो जाये। परीक्षा के पहले ओपेरोव की भविप्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। वह दो सप्ताह के लिए लापता हो गया। अतः परीक्षा के ठीक पहले हम लोगों को दूसरे छात्र के कमरे में पढ़ाई करनी पड़ी। किन्तु प्रथम परीक्षा के दिन

वह हाल में उपस्थित था—पीला चेहरा, रुक्ष आकृति, दुबला-पतला और कांपते हाथ। वह शानदार नम्बरों के साथ पास कर गया।

वर्ष के आरम्भ में पीनेवालों की मण्डली के आठ सदस्य थे जिनका अगुआ जूखिन था। पहले इकोनिन और सेम्योनोव भी इस दल में थे। इकोनिन ने दल का परित्याग कर दिया क्योंकि वर्ष के आरम्भ से ही चलनेवाली निर्बाध रंगरलियों को वह सहन न कर सका। सेम्योनोव ने मण्डली इसलिए छोड़ी कि उसकी क्रीड़ाएं उसे तुच्छ और छिछली ज्ञात होती थीं। आरम्भ में हमारी कक्षा के सभी लड़के इस मण्डली के सदस्यों को भयंकर प्राणी समझते थे। लोग आपस में उनके कारनामों की चर्चा करते।

प्रधान नायक जूखिन और—वर्ष के अंत में सेम्योनोव थे। सेम्योनोव को लोग आतंकित दृष्टि से देखने लगे थे। जिस दिन वह क्लास में आ जाता (ऐसा विरल ही होता था) क्लास में सनसनी-सी फैल जाती।

ठीक इम्तहान के पहले सेम्योनोव ने अपने जीवन के इस दुर्व्यसनमय अध्याय की बड़े ही मौलिक और ओजपूर्ण ढंग से इतिश्री की। जूखिन के साथ परिचय होने की वजह से मुझे अपनी आंखों से यह नाटक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। घटना यों हुई—एक शाम को हम लोग जूखिन के यहां एकत्र थे। ओपेरोव ने चिराग़दान की मोमबत्ती के अलावा बोतल के सिर पर एक और मोमबत्ती जलाकर भौतिक शास्त्र की, घनी लिखावट वाली कापी से अपनी तेज़ आवाज़ में पढ़ना शुरु ही किया था कि मकान मालकिन बुढ़िया ने कमरे में आकर सूचित किया कि, कोई आदमी जूखिन के लिए एक चिट्ठी लेकर आया है।

जूखिन बाहर चला गया, पर शीघ्र ही लौट आया। वह सिर झुकाये किसी चिंता में डूबा हुआ था। उसके हाथ में सामान लपेटने के भूरे कागज़ पर लिखी एक चिट्ठी और दस रूबल के दो नोट थे।

"दोस्तो! आप के लिए एक विचित्र ख़बर है," उसने सिर उठाते और हम लोगों को संजीदगी से देखते हुए गम्भीर स्वर में कहा। "क्या

हुआ? जहां मास्टरी करते थे वहां से रुपये आये हैं?" ओपेरोव ने अपनी कापी के पन्ने उलटते हुए पूछा। "चलो पढ़ो," किसी ने कहा। "नहीं दोस्तो, मेरे लिए तो पढ़ाई में शरीक होना इस समय असम्भव है," जूखिन उसी स्वर में कहता गया। "मैं आपको वता चुका कि मुझे एक विचित्र खवर मिली है—ऐसी खवर कि विश्वास नहीं होता। सेम्योनोव ने मेरे पास एक सिपाही को ये वीस रूवल लौटाने के लिए भेजा है जो कभी उसने मुझसे उधार लिये थे। साथ ही उसने लिखा है कि, यदि मिलना हो तो वारिक में आ जाऊं। इसका अर्थ क्या है, इसे आप समझ रहे हैं?" उसने सब को वारी वारी से देखते हुए पूछा। हम लोग कुछ न वोले। "मैं अभी उसके पास जा रहा हूं। अगर आप लोग भी आना चाहें तो आ जाइए मेरे साथ।" सभी फ़ौरन अपने कोट पहनने लगे। "लेकिन वुरा तो नहीं लगेगा हम सवों को उसे एक साथ इस तरह देखने जाना जैसे वह अजायवघर का प्राणी है," ओपेरोव अपनी पतली आवाज़ में वोला। मेरी भी वही राय थी। खासकर सेम्योनोव से मेरा विलकुल साधारण परिचय था। किन्तु मैं अपने को उस मण्डली का एक अंग वोध करने तथा सेम्योनोव को देखने को इतना उत्सुक था कि ओपेरोव की इस उक्ति पर कुछ न वोला।

"फ़जूल की वातें हैं," जूखिन वोला। "एक साथी से विदा लेने के लिए सभी के जाने में वुरा क्या है? वह किस स्थान पर है, इससे क्या होता है! यह सव विलकुल फ़जूल की वातें हैं। अगर इच्छा है तो ज़रूर चलो।"

हम लोगों ने कई गाड़ियां किराये पर कीं और सिपाही को साथ लेकर चल पड़े। ड्यूटी पर जो अफ़सर था वह हमें वारिक में नहीं जाने देना चाहता था। किन्तु जूखिन ने किसी प्रकार उसे मना लिया। वह सिपाही जो चिट्ठी लेकर आया था, हमें एक वड़े कमरे में ले गया जहां वहुत से छोटे छोटे चिराग़ों से धुंधली रोशनी हो रही थी। दोनों ओर

सोने के लिए पटरियां लगी हुई थीं जिन पर भूरे ओवरकोट पहने रंगरूट लोग बैठे या लेटे हुए थे। सभी के सिर मुंडे हुए थे। बारिक में घुसते ही जो चीज़ मुझे सबसे अजीब लगी वह था वहां का दम घोंटनेवाला वातावरण और एक संकीर्ण स्थान में बंद सैकड़ों लोगों के एक साथ खर्राटे। हम अपने पथप्रदर्शक तथा ज़ूखिन के पीछे पीछे चले जा रहे थे। ज़ूखिन पटरियों की कतार के बीच आत्मविश्वास के साथ मार्च करता चला जा रहा था, मैं पटरियों पर बैठी या लेटी प्रत्येक आकृति को कल्पना में लम्बे, घुंघराले लगभग पूर्णतः श्वेत केशों, पीले ओठों, और मेधावी आंखों की गम्भीर चितवन वाले सेम्योनोव से मिलाने की कोशिश कर रहा था। सेम्योनोव की आकृति भद्दी, फ़ुर्तीली थी। बारिक के आखिरी छोर पर जहां काले तेल से भरे मिट्टी का अंतिम दिया भुकभुका रहा था, ज़ूखिन ने अपनी चाल तेज़ कर दी और सहसा एक स्थान पर आकर खड़ा हो गया।

"हेल्लो! सेम्योनोव!" उसने एक रंगरूट ने जो औरों की तरह सिर मुड़ाये, सिपाहियों की मोटी गंजी पहने और कंधे पर भूरा बरान-कोट डाले अपनी सीट पर बैठा हुआ था, कहा। वह अन्य रंगरूटों से बातें कर रहा और कुछ खा रहा था। यही सेम्योनोव था—सफ़ेद बाल बिल्कुल छटे हुए और सिर मुण्डा होने से नीला पड़ा हुआ। सदा की भांति उसके चेहरे पर गाम्भीर्य और ओज था। मुझे खटका हुआ कि मेरे घूरने से वह बुरा मान जायगा। अतः मैंने दृष्टि दूसरी ओर कर ली। ओपेरोव भी यही सोच रहा था। अतः वह पीछे ही खड़ा रहा। किन्तु ज़ूखिन एवं दूसरों का अपने पुराने बेतकल्लुफ़ाना ढंग से अभिवादन करते समय सेम्योनोव के स्वर ने हमें सर्वथा आश्वस्त कर दिया और हम लोग फुर्ती से आगे बढ़ आये। मैंने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया। ओपेरोव ने भी अपना तख्ते जैसा हाथ आगे कर दिया। किन्तु इसके पहले ही सेम्योनोव ने हमें अपना काला, भारी हाथ देकर हमें इस अप्रिय भावना से बचा लिया कि हम उसे सम्मान प्रदान कर रहे हैं। अपने पुराने तरीक़े से, वह शांत

स्वर में और झिझक के साथ बोल रहा था। "हेलो ज़ूखिन! धन्यवाद यहां आने के लिए। बैठ जाओ, दोस्तो। कुद्रयाश्का, तुम जाओ," यह उसने उस रंगरूट की ओर देखकर कहा जिसके संग वह भोजन और गपशप कर रहा था। "फिर बातें करेंगे हम लोग। आइए, बैठ जाइए। तुम्हें तो बहुत अचरज हुआ होगा, ज़ूखिन? क्यों?"—"तुम्हारी किसी बात से मुझे अचरज नहीं होता," ज़ूखिन ने चौकी पर उसकी बग़ल में ऐसी सूरत के साथ बैठते हुए कहा जैसे मरीज़ की चारपाई पर डाक्टर की सूरत होती है। "मुझे ज़्यादा अचरज तब होता जब कि तुम इम्तहान देने आये होते। ख़ैर, अब यह बताओ कि तुम कहां रहे इतने दिनों तक और यहां किस प्रकार आ पहुंचे?"—"कहां रहे?" सेम्योनोव ने अपने गहन, गम्भीर स्वर में कहा। "सरायों, अड्डों और ऐसी ही जगहों में रहा। आ जाइए, आप लोग। बैठ जाइए। काफ़ी जगह है—ऐ, पैर उधर करो अपना" उसने आज्ञा के स्वर में, अपने श्वेत दान्त चमकाते हुए बायीं ओर लेटे रंगरूट से कहा जो बांहों पर सिर रखे निष्क्रिय कुतूहल से हम लोगों की ओर ताक रहा था। "हां, मैं शराब के दौर में डूबा हुआ था। बड़ा गंदा काम था, पर आनंद भी कम न था।" वह कहता गया। हर छोटे वाक्य के साथ उसके चेहरे का भाव बदल जाता था। "व्यापारी वाला क़िस्सा तो सुना होगा? वह, नालायक, मर गया। वे लोग मुझे निर्वासित करना चाहते थे। मेरे पास जो रुपया-पैसा था सब स्वाहा कर डाला। लेकिन बात यहीं तक होती तो उतना बुरा न था। मेरे सिर पर बहुतों का कर्ज़ इकट्ठा हो गया। कुछ में तो बड़ी आफ़त का सामना था। कर्ज़ चुकाऊं तो कहां से? बस यही कहानी का अंत है।" "लेकिन यह बात तुम्हें सूझी कहां से?" ज़ूखिन ने पूछा। "इसमें क्या है—सीधी-सी बात थी। मैं उन दिनों यारोस्लाव्ल—स्तोजेन्का में जैसा कि तुम जानते हो—नाच-रंग में डूबा हुआ था। मैं एक भूतपूर्व व्यापारी के साथ था। वह अब रंगरूट भरती का ठेकेदार है। मैं

उससे बोला—'मुझे एक हज़ार रूबल दो, मैं अभी रंगरूटों में भरती हो जाता हूं।' और हो गया मैं।"—"लेकिन तुम तो भले ख़ानदान के हो?" ज़ूखिन ने कहा।—"उसमें क्या रखा है। किरील इवानोव ने इसका पक्का बंदोबस्त कर दिया था।"—"किरील इवानोव कौन?"—"वही ठेकेदार जिसने मुझे ख़रीदा था। (यह कहते समय उसकी आंखों में परिहास और ठिठोलियेपन की चमक थी, और ऐसा लगा कि वह मुसकुराया भी)। हमें सिनेट की विशेष अनुमति मिल गयी। मैंने इसके बाद पीने पिलाने का एक और दौर चलाया, कर्ज़ उतार दिये और आ गया यहां जैसा कि तुम देख रहे हो। बस यही कुल कहानी है, बुरी नहीं है। वे मुझे कोड़ों की सज़ा नहीं दे सकते। और काम से पांच रूबल मैंने ज़्यादा ही कमा लिये हैं ... इसके अलावा कौन जानता है—कहीं युद्ध ही छिड़ जाय।"

इसके बाद वह ज़ूखिन को अपने अचरज भरे अनुभवों के क़िस्से सुनाता रहा। ऐसा करते समय उसके स्फूर्तियुक्त चेहरे का भाव लगातार बदलता जाता था, आंखें तीव्रता से चमक रही थीं।

बारिक में जब और ठहरना असम्भव हो गया तब हम लोगों ने सेम्योनोव से विदा ली। उसने हर एक से हाथ मिलाया और हमें बाहर पहुंचाने के लिए उठे बिना, बोला—"कभी कभी आ जाया करना, दोस्तो। कहते हैं अभी और महीना भर हमें यहीं रखा जायगा।" और फिर उसने हल्की-सी मुसकान के साथ जो उसकी विशेषता थी, हम लोगों को देखा। पर ज़ूखिन कुछ क़दम आगे बढ़ने के बाद फिर पीछे लौट गया। मैं देखना चाहता था कि वे एक-दूसरे से किस प्रकार विदा होते हैं, अतः मैं भी रुक गया। मैंने ज़ूखिन को जेब से कुछ रूबल निकालकर सेम्योनोव को देते हुए देखा, पर उसने उसका हाथ परे कर दिया तब हमने उन्हें एक-दूसरे को चूमते देखा। और ज़ूखिन ने हम लोगों के पास पहुंचते हुए ज़रा ऊंची आवाज़ में कहा—"अलविदा, दोस्त। मुझे विश्वास है कि हम लोग पढ़ते ही होंगे तब तक तू अफ़सर हो जायगा!" सेम्योनोव जो कभी हंसता न

था, तीखी आवाज़ में, असाधारण ढंग से अट्टहास कर उठा। इस अट्टहास से मेरा मन आर्द्र हो उठा। हम लोग बाहर चले गये।

घर हम लोग पैदल चलते हुए पहुंचे। जूख़िन सारा वक़्त मौन रहा। वह लगातार कभी एक नथुना और कभी दूसरा दबा कर सुंघनी ले रहा था। हमें घर पहुंचाकर वह चल दिया। ऐन इम्तहान के दिन तक वह कहीं शराब के दौर में डूबा रहा।

पैंतालीसवां परिच्छेद

मैं फ़ेल हो गया

आख़िरकार पहले इम्तहान का दिन आ पहुंचा। परचा डिफरेन्शल और इन्टेग्रल कैल्कुलस का था। किन्तु मेरे दिमाग़ में कुहासा छाया हुआ था। पता नहीं, क्या सामने आनेवाला है। जूख़िन और उसके साथियों की संगति का मज़ा लेने के बाद उस दिन शाम को मैं सोचने लगा कि मुझे अपनी धारणाओं में परिवर्तन करना होगा, कि उस मण्डली में कुछ ऐसा था जो अशोभन और अपरिष्कृत था। किन्तु अगले दिन; सूर्योदय के बाद मैं फिर 'ईमानदार' बन गया था और उसी में ख़ुश था। मैं अपने में कोई तबदीली नहीं चाहता था।

मैं इसी मानसिक स्थिति में परीक्षा में बैठने गया। मैं इस ओर बैठा जिधर प्रिन्स, काउन्ट और बैरनगण बैठा करते थे और उनसे फ़्रांसीसी में बातें करने लगा। आश्चर्य यह है कि उस समय मुझे ज़रा भी ख़्याल न था कि, थोड़ी ही देर में मुझसे ऐसे विषय पर सवाल पूछे जाएंगे जिसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं शांत और स्थिर चित्त से इम्तहान देने जानेवालों को देख रहा था। कभी कभी उनकी चुटकी भी ले लेता था।

"क्यों आप," मैंने ईलेन्का के लौट आने पर कहा, "बहुत डर लग रहा था क्या?"

"देखूंगा तुम क्या करके आते हो!" इलेन्का बोला। वह विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के दिन से मेरे प्रभाव के प्रति पूरा विद्रोही बन गया था। मैं उससे कुछ कहता तो मुसकुराता तक न था, और मन में मुझसे खोट रखता था।

इलेन्का के उत्तर पर मैं तिरस्कारभाव से हंस दिया। किन्तु उसने जो शंका उठायी थी उसने एक क्षण के लिए मुझे मानसिक झटका अवश्य दिया। किन्तु यह भावना फिर कुहासे से ढक गयी। मैं इतना उदासीन और अनावस्थित बना रहा कि परचा समाप्त होने पर बैरन ज़० के साथ मार्तेन की दूकान में जाकर मध्यान्ह-भोजन करने का वचन दे दिया (मानो यह बिलकुल तुच्छ-सी बात रही हो)। जब इकोनिन के साथ मेरी पुकार हुई तो अपनी पोशाक का लटकन संभालता, पूर्ण उपेक्षा के भाव से पड़पड़ाता हुआ इम्तहान की मेज़ के पास जा खड़ा हुआ।

पर मेरे बदन में उस समय कंपकंपी-सी दौड़ गयी जिस समय नौजवान प्रोफ़ेसर ने (यह वही प्रोफ़ेसर था जिन्होंने प्रवेशिका परीक्षा के समय मुझसे प्रश्न किये थे) सीधे मेरे चेहरे की ओर देखा और मैंने प्रश्न-कार्ड को स्पर्श किया। इकोनिन ने उसी तरह अपना पूरा शरीर डोलाते हुए कार्ड उठाया था जिस तरह पिछले इम्तहान में, पर उसने सवालों का कुछ न कुछ जवाब अवश्य दे दिया यद्यपि वे रद्दी जवाब थे। और मैंने वह किया जो उसने पिछले इम्तहान में किया था। बल्कि उससे भी बुरा। क्योंकि मैंने दुबारा कार्ड निकाला और कोई जवाब न बन पड़ा। प्रोफ़ेसर ने मेरे प्रति खेद प्रकट करते हुए किन्तु दृढ़, शांत स्वर में कहा:

"आपको अगले दर्जे के लिए तरक्की नहीं मिल सकती, मि० इर्तेन्येव। बेहतर होगा कि दूसरे परचों में आप न बैठें। पहले इसी पाठ्य-क्रम को पक्का कर लेना उचित है। और यही बात आप पर भी लागू है, मि० इकोनिन।"

इकोनिन ने इम्तहान में दुबारा बैठने की अनुमति मांगी मानो भीख

मांग रहा हो। पर प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया कि साल भर में जो काम न किया गया वह दो दिनों में नहीं हो सकता, अतः उसका पास करना असम्भव है। इकोनिन ने फिर गिड़गिड़ा कर याचना की पर प्रोफ़ेसर ने फिर इनकार कर दिया।

"आप लोग जा सकते हैं, महाशय," उन्होंने उसी धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में कहा।

इसके बाद ही मैं वहां से टलने का निश्चय कर सका। अपनी चुप्पी द्वारा इकोनिन की उस गिड़गिड़ाहट भरी याचना का साझीदार बनने में मुझे बड़ी शर्म आ रही थी। मुझे याद नहीं कि किस प्रकार हाल में बैठे छात्रों के बीच होता हुआ बाहर निकला, उनके सवालों के क्या जवाब दिये, किस प्रकार बीच वाले कमरे से गुज़रा और घर पहुंचा। मैं अपमानित, दलित और सम्पूर्ण हृदय से दुखी था।

तीन दिन तक मैं अपने कमरे से बाहर न निकला। न किसी से मिला। किशोरावस्था की भांति अब भी आंसुओं ने मुझे सांत्वना प्रदान की और मैं खूब रोया। मैंने एक पिस्तौल की तलाश की ताकि अधिक उत्कट इच्छा होने पर अपना प्राणांत कर सकूं। मैंने सोचा कि ईलेन्का ग्राप से भेंट होने पर वह मेरे मुंह पर थूकेगा और उसका ऐसा करना सर्वथा उचित होगा; ओपेरोव मेरे दुर्भाग्य पर हंसेगा और सबसे इसका बखान करेगा; कि कोल्पिकोव ने 'यार' में ठीक ही मेरा अपमान किया था; कि प्रिन्सेस कोर्नाकोवा के सम्मुख मैंने जो मूर्खतापूर्ण भाषण किया था उसका अन्य परिणाम हो ही न सकता था आदि, आदि, मेरे जीवन के वे सभी क्षण जिनमें मेरे आत्मप्रेम ने यातना पायी थी और जिन्हें सहन करना कठिन था, एक एक कर मानसपटल पर आये। मैं अपने दुर्भाग्य का दोष किसी और पर मढ़ने का प्रयत्न करने लगा। मैंने सोचा कि यह सब किसी ने जानबूझकर करवाया है। मैंने अपने विरुद्ध एक पूरे षड्यंत्र की कल्पना कर डाली। मैंने प्रोफ़ेसर को, अपने साथियों

को, वोलोद्या को, द्मीत्री को, और पिताजी को (क्योंकि उन्होंने मुझे विश्वविद्यालय में भेजा था) कोसा। मैंने विधाता को अभियुक्त बनाया—क्योंकि उसने मुझे ऐसा अपमान देखने के लिए जीवित रखा है। अंत में, यह प्रतीत करते हुए कि मेरी पहचान के सभी लोगों में मेरा मुंह काला हो चुका है, मैंने पापा से हुसार* दस्ते में भरती करा देने, अथवा काकेशस जाने की अनुमति देने का अनुरोध किया। वह मुझसे नाराज़ थे। किन्तु मेरी भयानक मानसिक यातना को देखकर मुझे सांत्वना देने लगे। जो हुआ वह उतना बुरा नहीं है। मैं दूसरा विषय ले लूं तो स्थिति सुधर जायगी। वोलोद्या भी जिसे मेरे दुर्भाग्य में इतनी भयानक कोई बात नहीं नज़र आ रही थी, बोला कि मुझे कम से कम दूसरे पाठ्यक्रम के अपने साथियों के बीच तो लज्जित न होना चाहिए।

घर की स्त्रियों को यह सब काण्ड कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वे न जानती थीं न जानना चाहती थीं कि इम्तहान क्या चीज़ है, कि फ़ेल होना क्या होता है। उन्हें केवल मुझे शोक में डूबा हुआ देखकर मेरे ऊपर दया आ रही थी।

द्मीत्री मुझसे रोज़ मिलने आया करता था। इस पूरे दौर में वह मेरे प्रति अत्यंत सुकोमल और मैत्रीपूर्ण रहा। किन्तु इसी वजह से मुझे प्रतीत हुआ कि वह मेरे प्रति उदासीन हो गया है। वह जब कमरे में आकर, मौन साधे, मेरी बग़ल में कुछ इस भाव से बैठ जाता जैसे किसी कठिन रोगी की खाट की बग़ल में डाक्टर, तो मुझे क्लेश होता और मैं अपमान महसूस करने लगता था। सोफ़िया इवानोवना और वारेन्का ने उसके मार्फ़त ऐसी किताबें भेजीं जिन्हें मैंने पहले पढ़ने की इच्छा प्रगट की थी। और उन्होंने आकर मुलाकात करने को कहलाया। किन्तु उनकी इस मेहरबानी में मुझे घमण्ड और अपने प्रति—एक ऐसे व्यक्ति के प्रति जिसका पतन हो गया था—अपमानजनक अनुग्रह का भाव दृष्टिगत हुआ। तीन दिनों के बाद

---

* घुड़सवार अफ़सर।—सं०

380

मेरा मन थोड़ा स्वस्थ हुआ। किन्तु देहात जाने के दिन तक मैं घर से वाहर न निकला केवल अपने क्लेशजनक दुर्भाग्य की वात सोचता और घर के सभी आदमियों से दूर रहने की कोशिश करता हुआ, निरुद्देश्य सभी कमरों में इधर-उधर घूमता रहा।

मैं सोचता रहा, सोचता रहा। अंत में एक दिन जब कि रात कुछ चली गयी थी और मैं नीचे वैठा हुआ अवदोत्या वासील्येव्ना का वाल्ज़ सुन रहा था, सहसा उछल पड़ा और एक सांस से कोठे पर दौड़ा। वहां मैंने अपनी वह कापी निकाली जिसके ऊपर लिखा हुआ था—"जीवन के नियम," उसे खोला, और पश्चात्ताप एवं नैतिकता के उभार के एक क्षण ने मुझे अभिभूत कर दिया। मैं रोने लगा, किन्तु इस वार ये निराशा के आंसू न थे। मैंने स्वस्थ-चित्त होने पर जीवन की अपनी नियमावली फिर लिख डालने का निश्चय किया। मुझे दृढ़ विश्वास था कि अव से मैं कभी कोई ग़लत काम न करूंगा, न एक क्षण काहिली में गंवाऊंगा, न कभी अपने नियमों की अवहेलना करूंगा।

यह नैतिक प्रेरणा पर्याप्त समय तक टिकी या नहीं, इसका सारतत्व क्या था, इसने हमारे नैतिक विकास को किन नये नियमों से मर्यादित किया—ये वातें अगले और अपनी तरुणावस्था के अधिक सुखकर अर्धांश में वताऊंगा।

२४ सितम्वर, १८५२–१८५६

यास्नाया पोल्याना

पाठकों से

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है:

२१, जूबोव्स्की बुलवार, मास्को, सोवियत संघ।

Л. Н. ТОЛСТОЙ

ДЕТСТВО. ОТРОЧЕСТВО. ЮНОСТЬ